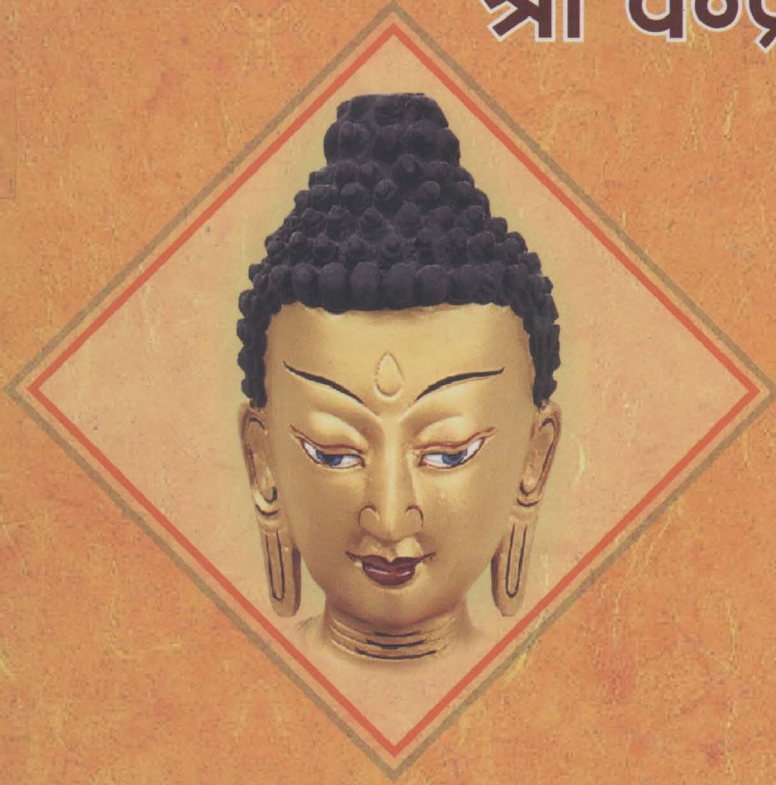


श्री चन्द्रप्रभ



महोपाध्याय

समयसुन्दर

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महोपाध्याय समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा स्वीकृत
शोध-प्रबन्ध

श्री चन्द्रप्रभ

श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ श्री संघ, जोधपुर
श्री जितयशा फाउंडेशन, जयपुर

प्रकाशक

1. श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ,
कुशल भवन,
आहोर की हवेली के पास,
जोधपुर (राज.)

जैन दादाबाड़ी, 10वीं रोड, सरदारपुरा,
जोधपुर (राज.)

2. श्री जितयशा फाउंडेशन,
बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम.आई.रोड,
जयपुर (राज.) फोन: 0141-2364737

प्रकाशन वर्ष : जनवरी, 2008
मुद्रक : भारत प्रिंटर्स, जोधपुर

प्रकाशकीय

श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ, जोधपुर एवं श्री जितयशा फाउंडेशन के लिए यह सौभाग्य की बात है कि हमें 'महोपाध्याय समयसुन्दर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शोध-प्रबंध को पुनः प्रकाशित करने का अवसर मिला है।

यह शोध-प्रबंध प्रसिद्ध साहित्यकार एवं महान चिंतक पूज्य श्री चन्द्रप्रभ जी द्वारा लगभग 25 वर्ष पूर्व जैन दर्शन के अप्रतिम विद्वान डॉ. सागरमल जी जैन के निदेशन में लिखा गया था। इसी ग्रंथ पर उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहबाद द्वारा महोपाध्याय की उपाधि प्रदान की गई थी।

धर्मसंघ के सर्वश्रद्धेय कवि, विद्वान एवं साहित्यकार उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी महाराज स्वयं अपने समय में भी एक महान दार्शनिक एवं साहित्यमनीषी के रूप में पूजे गये और आज भी उनके गीत हर परंपरा में गाये-गुनगुनाये जाते हैं। उनके हजारों गीत और सैंकड़ों ग्रंथ हमारे बीच मौजूद हैं। उनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनकी विद्वत्ता की धाक इतनी जबरदस्त थी कि वे सम्राट अकबर के भी चहेते संत हो गये थे। उनके द्वारा 'राजा नो ददते सौख्यम्' जैसे एक साधारण वाक्य के दस लाख से अधिक अर्थ निकाले गये थे। इस एक बात से ही यह सिद्ध हो जाता है कि समयसुन्दर जी केवल एक संत नहीं थे वरन् माँ सरस्वती के कृपापात्र पुत्र भी थे। उनके सार्वभौम और सार्वकालिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हर आम एवं प्रबुद्ध व्यक्ति भली-भांति परिचित हो सके, इसी उद्देश्य से हमने प्रस्तुत ग्रंथ को प्रकाशित करने का संकल्प लिया। हमें प्रसन्नता है कि हम अपने संकल्प को पूरा कर पाने में सफल हुए।

यह शोध-प्रबंध आज भी शोधकर्त्ताओं के लिए आदर्श रूप है। किसी भी शोधार्थी को कितनी गहन खोजबीन के साथ अपना कार्य करना चाहिए, यह बात सीखने के लिए विद्वान लोग इस ग्रंथ का उपयोग करते हैं। ग्रंथ-प्रकाशन हेतु हम अपने सभी सहयोगी सदस्यों के प्रति आभारी हैं।

प्रकाश दफ्तरी

सचिव

जितयशा फाउंडेशन,

जयपुर

कुंदनमल जिंदानी

अध्यक्ष

श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ,

जोधपुर

पुरोवाक्

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और अनेक प्रादेशिक भाषाओं के विकास में जैन साहित्यकारों की एक समृद्ध परम्परा रही है। उनके महत्त्वपूर्ण योगदान का शोधपरक दृष्टि से अध्ययन करना नितान्त अपरिहार्य है। जैन साहित्यकारों ने साहित्य को सदैव आध्यात्मिक, व्यवस्थामूलक और नैतिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने साहित्य के शाश्वत मूल्यों को ही निरन्तर स्थापित किया तथा दूषित उद्देश्यों एवं कल्पनाओं से अपनी सृजनात्मक शक्ति को परे रखा। उन्होंने साहित्य को समाज के शाश्वत तथा स्वस्थ जीवन के प्रदर्शक के रूप में ही ग्रहण किया था। अतः उनका साहित्य दिशा-भ्रमित जीवन के लिए स्थायी प्रकाश-स्तम्भ के समान है।

महोपाध्याय समयसुन्दर भारतीय साहित्य की महान् विभूति थे। भारतीय चिन्तन, साहित्य एवं साधना के क्षेत्र में उनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे न केवल महान् गुरु और समाज-सुधारक ही थे, अपितु विलक्षण प्रतिभा तथा सर्जन-क्षमता से सम्पन्न मनीषी भी थे। जहाँ एक ओर उन्होंने मरुगुर्जर के इतिहास को प्रभावित किया, भारत के विविध अञ्चलों में यात्रा कर जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया, अनेक राजाओं को प्रेरित कर उनके राज्यों को अहिंसामय बनाया; वहीं उन्होंने दर्शन, साहित्य, व्याकरण, काव्य-शास्त्र आदि वाङ्मय के समस्त महत्त्वपूर्ण अंगों पर साहित्य का निर्माण कर, इस दिशा में एक नवीन पथ को प्रकाशित भी किया। वास्तव में, न केवल जैन-साहित्य अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के मूर्धन्य रचयिताओं में महोपाध्याय समयसुन्दर का नाम गौरव के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। सचमुच, उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व — दोनों बहुविध सम्पन्न थे।

महोपाध्याय समयसुन्दर का जीवन, रचना-काल, रचनाएँ और उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ अधिकतर उपलब्ध हैं। उन्होंने पूर्वाचार्यों से बहुत-कुछ ग्रहण किया, तो परवर्ती विचारकों को चिन्तन के लिए बहुत-कुछ प्रदान भी किया। साहित्य-प्रेमियों ने उनके साहित्य को सम्हाल कर सुरक्षित रखा है, तथापि उनका कुछ साहित्य काल-कवलित हो गया। उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और अवशिष्ट हस्तलिखित

ग्रन्थ प्रकाशन की अपेक्षा रखते हैं, किन्तु जहाँ तक उनका अनुसंधानपरक दृष्टि से अध्ययन करने का प्रश्न है, अनेक विद्वानों ने इसके लिए प्रयास किया है। इस क्षेत्र में यदि किसी ने सर्वप्रथम उल्लेखनीय कार्य किया, तो वह जैन साहित्य के महारथी मोहनलाल दलीचन्द देसाई हैं। उन्होंने भावनगर (गुजरात) में आयोजित सप्तम गुजराती साहित्य परिषद् में 'कविवर समयसुन्दर' नामक अपने विस्तृत शोधनिबन्ध का पठन किया था। तत्पश्चात् प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अगरचन्द नाहटा एवं श्री भंवरलाल नाहटा का इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। नाहटा-बन्धुओं को तो उनके शैशव-काल से ही कवि समयसुन्दर की रचनाओं का माधुर्य प्राप्त होता रहा। समयसुन्दर की रचनाएँ उनके लिए मातृदुग्ध के समान थीं। समयसुन्दर की लगभग ५०० फुटकर रचनाओं को सुसम्पादित एवं प्रकाशित कर, शोधकर्त्ताओं को उन्होंने अच्छी सामग्री प्रदान की। कवि समयसुन्दर की कतिपय वृहत् रचनाओं पर भी उनका कार्य स्तुत्य है।

महोपाध्याय विनयसागर ने कविवर समयसुन्दर के साहित्य के लगभग सभी अंगों पर नवीन अध्ययन प्रस्तुत किया है। यद्यपि उनका प्रस्तुतिकरण अतिसंक्षिप्त है, तथापि उन्होंने जितना किया है, वह अपने आप में इस प्रकार का सर्वप्रथम प्रयास होने के कारण अभिनन्दनीय है।

समयसुन्दर के साहित्य पर आज तक हुए शोधमूलक अध्ययनों में डॉ. सत्यनारायण स्वामी का 'महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ' नामक शोध-प्रबन्ध उल्लेखनीय है। इसमें कविवर समयसुन्दर के जीवन-चरित्र एवं भाषा-साहित्य का आकलन करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि डॉ. स्वामी ने समयसुन्दर की राजस्थानी रचनाओं के संदर्भ में श्लाघ्य प्रयास किया है, परन्तु मैंने जब उनके शोधप्रबन्ध का अवलोकन किया, तो मुझे लगा कि अभी तक भी समयसुन्दर के भाषा-साहित्य पर शोध की अपेक्षा है। इसके अतिरिक्त समयसुन्दर का संस्कृत-साहित्य तो अभी तक अछूता ही रहा। समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का बहिरंग अवश्य प्रकाशित हुआ, किन्तु अन्तरंग अस्पष्ट ही पड़ा रहा। इस प्रकार महोपाध्याय समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के गवेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता व्यापक रूप से अभी भी बनी हुई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी दिशा में एक प्रयास है।

शोधकार्य प्रारम्भ करने से पूर्व यद्यपि मैंने महोपाध्याय समयसुन्दर के मौलिक एवं व्याख्यात्मक संस्कृत-साहित्य का विषय चुना, किन्तु बाद में विचार आया कि क्यों न समयसुन्दर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को ही अध्ययन का विषय बनाया जाय, ताकि अन्य क्षेत्रों में रही अपूर्णता को भी पूर्ण करने का प्रयास किया जा सके। अतः 'महोपाध्याय समयसुन्दर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' — यह विषय निर्धारित कर मैंने मनोयोगपूर्वक शोध-कार्य शुरू किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मैंने महोपाध्याय समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विविध दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न अनुसार है —

प्रथम अध्याय में समयसुन्दर के जीवन-वृत्त का सविश्लेषण विवेचन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम समयसुन्दर के जीवन-वृत्त को प्रस्तुत करने के लिए उपलब्ध सामग्री का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् उपलब्ध प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर समयसुन्दर के नाम, जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, माता-पिता, जाति तथा गोत्र, गृहस्थ-जीवन, दीक्षा, गुरु-परम्परा, शिक्षा और शिक्षा-गुरु, पदारोहण, पद-यात्राएँ, अभाव तथा संघर्ष, क्रियोद्धार, व्यक्तित्व, अन्तिम जीवन एवं समाधिमरण और शिष्य-परिवार पर क्रमशः विचार किया गया है। समयसुन्दर के व्यक्तित्व का परिचय देते हुए उनके ज्ञान-गाम्भीर्य, भक्ति-प्रवणता, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवधारणा से अभिभूतता, साम्प्रदायिक औदार्य, आचार-निष्ठा, साहित्य-सेवा आदि विशेषताओं का मुख्यतः विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय अध्याय का सम्बन्ध समयसुन्दर के कृतित्व से है। इस अध्याय में महोपाध्याय समयसुन्दर की रचनाओं को मौलिक संस्कृत रचनाएँ, संस्कृत-टीकाएँ, संग्रह-ग्रन्थ, भाषा-कृतियाँ, बालावबोध या भाषा-टीका, प्रकीर्णक रचनाएँ — इस प्रकार वर्गीकरण करते हुए उनके उपलब्ध साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रकीर्णक रचनाओं में समयसुन्दर की तीर्थङ्कर सम्बन्धित रचनाएँ, मुनियों से सम्बन्धित रचनाएँ, सतियों से सम्बन्धित रचनाएँ, गुरु-गीत, उपदेशपरक रचनाएँ, विरह-गीत और अन्य समस्त फुटकर रचनाओं को सम्मिलित किया गया है।

तृतीय अध्याय में समयसुन्दर की भाषा का अध्ययन भाषा-परिचय, भाषा-शैली एवं भाषा-शक्ति — इन तीन मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। भाषा-परिचय में समयसुन्दर की संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा, मरु-गुर्जर भाषा (प्राचीन हिन्दी) और सिन्धी भाषा का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। भाषा-शैली के अन्तर्गत समयसुन्दर की गद्य-शैली, पद्य-शैली एवं गद्य-पद्य-मिश्रित-शैली का निर्देशन करते हुए उन-उन शैलियों में लिखित ग्रन्थों का वर्गीकरण किया गया है। इसके बाद वर्ण्यविषय आदि के आधार पर समयसुन्दर की बहुविध भाषा-शैली का विशेष अध्ययन किया गया है, जिनमें तार्किक शैली, अनेकार्थी शैली, संवाद शैली, दृष्टान्त शैली, व्याख्यात्मक शैली, मिश्रित-भाषा शैली, पादपूर्ति शैली आदि प्रमुख हैं। तत्पश्चात् भाषा-शक्ति के अन्तर्गत समयसुन्दर का भाषा-सामर्थ्य सविस्तार वर्णित है।

चतुर्थ अध्याय में समयसुन्दर के वर्णन-कौशल की चर्चा की गई है। इसमें प्रकृति, नगर, वैभव, स्वप्न, नख-शिख, नर्तकी, स्वयंवर-मण्डप, विवाह, युद्ध, शकुन,

नगर-प्रवेशोत्सव, आलेखन, षोडश रोग आदि विभिन्न वर्णनों में समयसुन्दर के कौशल को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

पंचम अध्याय में काव्यशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत है। इसमें समयसुन्दर की रचनाओं में प्राप्त साहित्यिक तत्त्वों पर विशद प्रकाश डाला गया है। यह अध्याय विवेचन की सुविधा की दृष्टि से दो खण्डों में विभक्त है। खण्ड 'क' में रस-परिपाक, अलंकार-शिल्प, गुण, छन्द-योजना, रागें तथा देशी — इन्हें केन्द्र-बिन्दु बनाकर समयसुन्दर के काव्यों में प्राप्त साहित्यिक तत्त्वों को उजागर किया गया है। खण्ड 'ख' में विवेच्य साहित्य में उपलब्ध सूक्त-सुभाषितों, कहावतों तथा मुहावरों का उल्लेख है।

षष्ठ अध्याय समयसुन्दर का विचार-पक्ष है, जिसमें उनके दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिकतापूर्ण वैचारिक पक्ष का विवेचन है।

सप्तम अध्याय में समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है, जिसमें समग्र शोध-प्रबन्ध का सिंहावलोकन करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समुचित दिग्दर्शन करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रयास को मूर्त रूप देने में जिन सहृदय महानुभावों का आशीर्वाद और सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करना भी मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

सर्वप्रथम मैं उन आदर्श महापुरुषों के प्रति विनयावनत हूँ, जिनके उपदेश आज भी जीव-मात्र के लिए शाश्वत मार्गदर्शक हैं। साथ ही मैं महोपाध्याय समयसुन्दर जी के प्रति भी श्रद्धावनत हूँ, जिनके विशाल साहित्य पर मैंने यह शोध-कार्य किया है।

समयसुन्दर की रचनाएँ जिस रूप में हमें संग्रहीत मिलती हैं, हम उनके संग्रहकर्ताओं के प्रति भी आभारी हैं, जिनके फलस्वरूप समयसुन्दर के साहित्य की वह पवित्र निधि सुरक्षित रहकर हमें उपलब्ध हो सकी है। हम मुनि सुखसागरजी, मुनि मंगलसागरजी आदि महानुभावों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने दानदाताओं एवं प्राचीन पुस्तकोद्धारक प्रकाशकों को सत्प्रेरणा देकर महोपाध्याय समयसुन्दर के साहित्य को प्रकाशित करवाने में रुचि ली। मोहनलाल दलीचन्द देसाई, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, महोपाध्याय विनयसागर, डॉ. सत्यनारायण स्वामी, डॉ. रमणलाल ची. शाह आदि विद्वानों के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमारे आलोच्य साहित्यकार को अपनी साहित्य-सेवा में संलग्न किया और उनके आलोक को जन-जन तक पहुँचाने में सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

अब सर्वप्रथम मैं पूज्यातिशय गुरुवर्य आचार्य जिनकान्तिसागरसूरिजी के प्रति हार्दिक विनयांजलि समर्पित करता हूँ, जिनकी अनुकम्पा से मैं अपने लक्ष्य का सन्धान

करने में सफल हो पाया हूँ। साथ ही जीवन में उच्च शिक्षा एवं दीक्षा के प्रेरणा-प्रदायक पितृ-पुरुष मुनिराज श्री महिमाप्रभसागर जी के चरण-कमलों में भावपूरित हृदय से श्रद्धा-सुमन समर्पित करना मेरा कर्तव्य है। पूज्यश्री का मंगलमय वरद हस्त मेरी अमूल्य थाती है। सत्य तो यह है कि उनकी वरद छत्रछाया के परिणामस्वरूप ही मैं आज यह ज्ञान-पुष्प निर्मित कर पाने की स्थिति में हूँ।

इस सन्दर्भ में मैं अपने अनन्य आत्मीय भाई मुनिवर श्री ललितप्रभसागर जी को आभार समर्पित करता हूँ, जिन्होंने न केवल प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में, अपितु मेरे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मुझे कृपापूर्ण सहयोग प्रदान किया। उनके प्रति नमन करते हुए एक पथ-सहचर की अनन्य भावना का गौरव बनाए रखना मेरे जीवन की पूंजी है।

कृतज्ञता-ज्ञापन की इस कड़ी में उन गुरुजनों के प्रति, जिनके व्यक्तिगत स्नेह, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन ने मुझे सक्रिय सहयोग प्रदान किया है, आभार प्रकट करना भी मेरा परम कर्तव्य है। सर्वप्रथम मैं प्रस्तुत गवेषणा के निर्देशक तथा ऋजुता एवं विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति डॉ. सागरमल जी जैन का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने अपने स्वास्थ्य एवं समयाभाव की चिन्ता न करते हुए प्रस्तुत गवेषणा के समस्त अंशों को सदैव ध्यानपूर्वक पढ़ा एवं उसमें सुधार तथा संशोधन के लिए मार्गदर्शन किया। वस्तुतः इस प्रबन्ध में उनका आदि से अन्त तक सर्वाधिक सहयोग रहा, जो अविस्मरणीय है। मैं नहीं समझता हूँ कि केवल शाब्दिक आभार प्रकट करने मात्र से मैं उनके प्रति अपने दायित्व से उद्भूत हो सकता हूँ; जिनसे धर्म, दर्शन और शास्त्र का ज्ञान उपाजित कर सका और जिनके सहकार से यह महत् कार्य सम्पन्न कर सका, उनके प्रति कैसे आभार प्रकट करूँ, यह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। वे मेरे लिए गुरुतुल्य हैं, मेरे लिए यही गौरव की बात है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी का विशाल ग्रन्थागार एवं शांतिपूर्ण वातावरण इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हुआ है। संस्थान के निदेशक एवं व्यवस्थापक/संचालकों के अतिरिक्त शोध-सहायक डॉ. रविशंकर मिश्र, डॉ. अरुणकुमार सिंह तथा पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. मंगलप्रकाश मेहता एवं अन्य सभी कर्मचारीगण से प्राप्त सहयोग के लिए उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; श्री पूरणचन्द नाहर-संग्रहालय, कोलकाता; जैन भवन, कोलकाता; श्री जिनहरिसागरसूरिज्ञान-भण्डार, पालीताणा; श्री कुशलचन्द्र सूरिज्ञान-भण्डार, वाराणसी आदि विविध संग्रहालयों का भी आभारी हूँ, जहाँ से महोपाध्याय समयसुन्दर के हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हुए।

वात्सल्य-मूर्ति साध्वी-रत्ना, माताजी महाराज श्री जितयशाश्री जी म. की शुभांशाएँ मेरी लक्ष्य-पूर्ति में सहायक रहीं। सभी शुभेच्छुकों एवं सहयोगियों के प्रति आभार-ज्ञापन।

वाराणसी में दो वर्ष तक स्थिरवास करके मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध को साकार रूप दिया है। इस अवधि में श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती बड़ा मंदिर एवं खरतरगच्छ संघ, कोलकाता द्वारा प्राप्त हुई विशिष्ट सेवाओं के लिए उनका आभार प्रकट करता हूँ। इसी क्रम में इतिहासविद् श्री अगरचंद जी नाहटा, विद्वद्ध्य श्री भंवरलालजी नाहटा, समाज रत्न श्री ज्ञानचन्दजी लूणावत, कोलकाता; देवतुल्य भाई श्री प्रकाशचन्द जी दफ्तरी, बीकानेर/कोलकाता; श्रीमती कमला जैन, शाजापुर; अनन्य सेवाभावी श्रीमती बेलादेवी वाराणसी आदि के निरन्तर सहयोग हेतु धन्यवाद समर्पित करता हूँ। प्रस्तुत प्रबन्ध पुनर्प्रकाशन हेतु जोधपुर के खरतरगच्छ श्रीसंघ एवं जितयशा फाउंडेशन की सक्रियता अभिनन्दनीय है। जोधपुर के समादृत समाज-रत्न श्री कुंदनमल जी जिंदानी के आग्रह और अनुरोध के कारण ही इस ग्रन्थ का पुनर्प्रकाशन सम्भव हो सका है।

पुनः अभिवादन सहित।

— चन्द्रप्रभ

विषय-सूची

	पृष्ठ
पुरोवाक्	i-vi
प्रथम अध्याय : समयसुन्दर का जीवन-वृत्त	१-६९
द्वितीय अध्याय : समयसुन्दर की रचनाएँ	७१-२६९
तृतीय अध्याय : समयसुन्दर की भाषा	२७१-३०५
चतुर्थ अध्याय : समयसुन्दर का वर्णन-कौशल	३०७-३३६
पंचम अध्याय : समयसुन्दर की रचनाओं में साहित्यिक तत्त्व	३३७-४४७
षष्ठ अध्याय : समयसुन्दर का विचार-पक्ष	४४९-४८०
सप्तम अध्याय : उपसंहार	४८१-४९२
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	

प्रथम अध्याय

समयसुन्दर का जीवन-वृत्त

१. पूर्वकथन

साहित्य-संसार में महोपाध्याय समयसुन्दर के पूर्ववर्ती अनेक कवियों ने बहुविध ग्रन्थ-रत्नों की सृष्टि की है, जिनमें नाटक आदि दृश्य-काव्य एवं जीवन-आख्यान, महाकाव्य, मुक्तकादि श्रव्य-काव्य समाहित हैं, जिनके मंचन, अवलोकन, पठन या श्रवण से प्रसुप्त स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आस्वादमयी एवं आनन्दमयी लोकोत्तर अनुभूति कराते हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा में जिन पूर्ववर्ती कृतिकारों ने महान् कृतियों का हृदयहारी प्रणयन किया है, वे सभी हमारी साहित्यिक संचेतना और आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए आधारभूत हैं। ये कृतियाँ जीवन में साहस एवं निष्ठा का संचार करती हैं और स्थितप्रज्ञ होने का अनवरत सन्देश प्रदान करती हैं।

इन ग्रन्थ-रत्नों के उल्लेख्य महत्त्व के साथ-साथ जब हम इनके रचयिताओं के जीवन-वृत्त का परिज्ञान प्राप्त करने के विषय में उत्सुक होते हैं, तो गहन उदासीनता एवं निराशा का सामना करना पड़ता है। कवि हाल, कालिदास, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी प्रभृति अनेक मूर्धन्य कवियों के जीवनवृत्त से आज भी हम यथार्थतः अपरिचित ही हैं। इनके पावन एवं प्रेरणास्पद उदात्त जीवन के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत ज्ञान परवर्ती कवियों तथा साहित्यकारों के द्वारा उनके सम्बन्ध में किये गये उल्लेखों से ही प्राप्त हो पाता है। अद्यावधि विद्वत्समाज इन उल्लेखों की व्याख्या के सम्बन्ध में एकमत नहीं हो सका है। यही कारण है कि इनके जीवनवृत्त आज भी विवादास्पद बने हुए हैं। कितना अच्छा होता यदि वे मनीषी अपनी जीवनी भी स्वयं ही वर्णित कर देते! सम्भवतः उनकी महनीयता ने ही उन्हें यह कार्य करने से रोका होगा कि वे अपने विषय में कभी लेखनी चलाने को सोच भी न सकें। उन्हें क्या पता था कि उनकी जीवनी को अवगत करने के लिए उनकी भावी पीढ़ियाँ इतनी अधिक उत्सुक और लालायित होंगी।

कविवर समयसुन्दर के द्वारा अपना जीवन-वृत्त न लिखने के कारण उनका जीवन-वृत्त भी किसी सीमा तक विवादग्रस्त है।

२. जीवन-वृत्त की सामग्री

कवि समयसुन्दर के जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में जो सामग्री हमें उपलब्ध होती है, वह अधोलिखित है —

- (क) कवि समयसुन्दर की रचनाओं में प्राप्त आत्म-कथन।
- (ख) परवर्ती जैन कवियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में समयसुन्दर एवं उनके सम्बन्ध में प्राप्त उल्लेख।

(ग) वर्तमान विद्वानों के शोधपूर्व लेख एवं ग्रन्थों की भूमिकाओं में कवि का जीवन-परिचय।

प्रथम प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत समयसुन्दर-लिखित रचनाओं से उनका जन्म-स्थान, गुरु, गुरु-वंश-परम्परा, उपाधि, प्रवास, जीवन-संघर्ष, क्रियोद्धार आदि के सम्बन्ध में कई बातें ज्ञात होती हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में ग्रन्थ के आरम्भ एवं समाप्ति का समय, काव्य-रचना की प्रेरणा, साहित्य-सर्जन, समकालीन परिस्थिति, दुष्काल इत्यादि घटनाओं की जानकारी भी प्रदान की है। साथ ही साथ इन ग्रन्थों से उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा कुछ स्वभावगत विशेषताओं का भी परिचय उपलब्ध होता है।

परवर्ती जैन कवियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में भी समयसुन्दर के जीवन-वृत के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। अनेक परवर्ती कवियों ने अपनी कृतियों में महोपाध्याय समयसुन्दर का स्मरण श्रद्धापूर्वक किया है। इनमें हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत के कवि भी सम्मिलित हैं। कविराज ऋषभदास, वादीन्द्र हर्षनन्दन, कवि राजसोम, कवि देवीदास, पंडित विनयचन्द्र एवं उपाध्याय लब्धिमुनि ने अपनी रचनाओं में समयसुन्दर का उल्लेख किया है। समयसुन्दर की प्रतिभा को प्रकाशित करनेवाले कुछ पद्य द्रष्टव्य हैं—

(क) ऋषभदास :

सुसाधु हंस समयसुरचन्द, शीतल वचन जिम शारद चन्द।

ए कवि मोटा, बुद्धि विशाल, ते आगलि हूँ मूरख बाल ॥^१

(ख) हर्षनन्दन :

तच्छिष्य मुख्यदक्षाः विद्वद्वर समयसुन्दराह्वयः।

कलिकाल-कालिदासाः, गीतार्था ये उपाध्याया ॥

प्राग्वाट शुद्धवंशाः, षड्भाषागीतिकाव्यकर्तारः।

सिद्धान्त-काव्य-टीका-करणादज्ञान-हर्तारः ॥^२

(ग) राजसोम :

नव खंड में जसु नाम पंडित गिरुआ हो, तर्क व्याकरण भण्णया।

अर्थ किया अभिराम, पद एकणरा हो, आठ लाख आकरा ॥

साधु बड़ो ए महन्त अकबर शाहे हो, वखाणीयो।

समयसुन्दर भाग्यवंत पातिशाह तूटे हो, थापलि इम कह्यो ॥^३

१. कुमारपाल-रास (रचना-सं. १६७०)

२. उत्तराध्ययन-टीका, प्रशस्ति (सं. १७११)

३. नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३२

(घ) देवीदास :

समयसुन्दर वाणारस बंदिये, सुललित वाणी वखाणो जी ।
राय रंजण गीतारथ गुणनिलो, महिमा मेरु समाणो जी ॥^१

(ङ) विनयचन्द्र :

ज्ञान-पयोधि प्रबोधिवारे, अभिनव शशिहर प्राय ।
कुमुदचन्द्र उपमान बहे रे, समयसुन्दर कविराय ॥
ततपर शास्त्र समरथिवारे, सार अनेक विचार ।
वल कलिन्दीका कमलिनी रे, उल्लासन दिनकार ॥^२

(च) उपाध्याय लब्धिमुनि :

महोपाध्याय सुख्यात, कविश्रेष्ठ- विशारदः ।
सकलचन्द्र - शिष्योभूद्गणि समयसुन्दरः ।
संस्कृत-गद्य-पद्यात्म-ग्रन्था अनेन भूरिशः ।
स्वाध्यायस्तव-रासाद्या, भाषात्मकाः प्रचक्रिरे ॥^३

तृतीय प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत आधुनिक विद्वानों द्वारा लिखे गये शोधपूर्ण लेख तथा ग्रन्थों की भूमिकाएँ आती हैं। इनमें कवि के जीवन-वृत्त को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, जिनका विवरण प्रथम प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत पूर्व में दिया जा चुका है। परवर्ती कवियों की रचनाओं में प्रयुक्त कवि समयसुन्दर के जीवन-वृत्त विषयक उल्लेखों के आधार पर उनकी जीवनी में कुछ नवीन आयाम भी प्रस्तुत हुए हैं। माता-पिता, गोत्र, जन्म-दीक्षा-अवस्था, शिक्षण, पदवी, पर्यटन-क्षेत्र आदि जो अप्राप्य तथ्य प्रकाश में आये हैं, वे आधुनिक विद्वानों की ही देन हैं। संक्षेप में यह सामग्री इस प्रकार है —

(क) श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने 'कविवर समयसुन्दर'^४ नामक अपने निबन्ध में तथा 'जैन गूर्जर कविओ, प्रथम भाग'^५ एवं 'जैन साहित्य नो इतिहास'^६ नामक कृतियों में कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का सर्वप्रथम प्रामाणिक एवं विस्तृत परिचय दिया है।

१. नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३५

२. उत्तमकुमार-चरित्र-चौपाई (३. ८-९) रचनाकाल सं. १७५२

३. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि-चरितम्, पृष्ठ ८९, ९१

४. यह निबन्ध सप्तम गुजराती साहित्य-परिषद में पठित एवं 'जैन-साहित्य-संशोधक', भाग २, अंक ३-४ में प्रकाशित है।

५. जैन गूर्जर कविओ, भाग १, (पृष्ठ ३३१-३९१)

६. जैन साहित्य नो इतिहास, प्रकरण ४-५

(ख) श्री अग्रचंद नाहटा एवं श्री भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' नामक ग्रन्थ की भूमिका में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,^१ श्री अग्रचंद नाहटा, श्री भँवरलाल नाहटा^२ और महोपाध्याय श्री विनयसागर^३ ने कवि के जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में विस्तृत प्रकाश डाला है।

(ग) श्री अग्रचंद नाहटा तथा श्री भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'सीताराम चौपाई'^४ में कवि की जीवनी के सम्बन्ध में विशद् विवेचन प्राप्त होता है।

(घ) श्री अग्रचन्द नाहटा का 'कविवर समयसुन्दर'^५ नामक निबन्ध भी प्रकाशित हुआ है। इसमें कवि के जन्म और दीक्षा-समय को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण सामग्री को विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है।

(ङ) समयसुन्दर कृत 'नलदवदंती-रास' नामक ग्रन्थ की भूमिका में ग्रन्थ-सम्पादक रमणलाल चीमनलाल शाह^६ ने कवि के जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में बहुविध विवेचन किया है।

(च) महोपाध्याय विनयसागर ने कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व पर स्वतंत्र रूप से 'महोपाध्याय समयसुन्दर'^७ नामक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में भी संकलित है।

(छ) डॉ. सत्यनारायण स्वामी ने 'महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ' नामक अपने शोध-प्रबन्ध में कवि के राजस्थानी भाषागत साहित्य का सर्वांगीण सविस्तार विवेचन किया है।

इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जैनसाहित्य-संशोधक, कुशल-निर्देश आदि पत्रिकाओं में भी समय-समय पर प्रकाशित कवि के जीवन-वृत्त सम्बन्धी निबन्धों से भी हमें कतिपय जानकारियाँ मिल जाती हैं।

उपर्युक्त तीन प्रकार की सामग्री का पर्यवेक्षण करने पर हमें पता चलता है कि समयसुन्दर का जीवन-वृत्त सुनिश्चित करने में प्रथम प्रकार की सामग्री ही सर्वाधिक उपादेय प्रतीत होती है। वैसे दूसरे प्रकार की सामग्री भी एक सीमा तक उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालती है। कवि के माता-पिता, वंश, पद-प्रदान-संवत्, शिक्षण, प्रतिभा,

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ५-८

२. वही, पृष्ठ ९-३२

३. वही, पृष्ठ १-१००

४. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ३१ से ६०

५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, सं. २००९

६. कवि समयसुन्दर कृत नलदवदन्ती-रास, भूमिका, पृष्ठ २० से ३२

७. महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ १-१००

निधन आदि की सूचना इसी सामग्री से प्राप्त होती है। तीसरे प्रकार की सामग्री वस्तुतः प्रथम और द्वितीय प्रकार की सामग्री पर ही आधारित है।

आगामी पृष्ठों में हम पूर्व में निर्देशित समस्त सामग्री का उपयोग करते हुए उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कविवर महोपाध्याय समयसुन्दर के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

३. नाम

कवि समयसुन्दर जैन मुनि थे, उनके गृहस्थ-जीवन के सन्दर्भ में कोई भी प्रामाणिक सूचना प्राप्त नहीं होती है। कवि का गृहस्थ-जीवन का नाम क्या था, इसका उल्लेख न तो कवि ने स्वयं अपनी कृतियों में किया है और न कवि को श्रद्धांजलि अर्पित करने वाले गीतों में उनके विद्वान् शिष्यों ने ही किया है। अतः प्रब्रज्या को अंगीकार कर 'समयसुन्दर' नामकरण होने के पहले इनका नाम क्या था, इस सन्दर्भ में कोई जानकारी नहीं मिलती है। वे दीक्षितावस्था के नाम 'समयसुन्दर' से ही साहित्य-जगत् में विश्रुत हैं। इसके अतिरिक्त इनके अन्य किसी नाम का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। कवि ने सर्वत्र अपने लिए एक ही नाम 'समयसुन्दर' का प्रयोग किया है। परवर्ती जैन-कवियों ने भी इनके 'समयसुन्दर' नाम का उल्लेख किया है।^१ यद्यपि समयकालीन कवि ऋषभदास ने अवश्य ही इन्हें 'समयोसुरचन्द' नाम से सम्बोधित किया है।^२

कवि के नाम के साथ प्रयुक्त 'गणि'^३ विशेषण इनकी मेधावी प्रतिभा, संयमशीलता और संघ में इनकी प्रतिष्ठा का सूचक है। आपके नाम के साथ संलग्न 'वाचनाचार्य'^४ की उपाधि भी आपके आगमिकज्ञान एवं विशद् पाण्डित्य की परिचायक है। उपाध्याय^५ तथा महोपाध्याय^६ के पदों का उल्लेख भी कालान्तर में आपके नाम के साथ प्राप्त होता है।

१. तच्छिष्य मुख्यदक्षाः, विद्वद्वर समयसुन्दराह्वयः।

—वादीन्द्र हर्षनन्दन (उत्तराध्ययन-टीका, रचना-सं. १७११)

२. सुसाधु हंस समयोसुरचन्द, शीतल वचन जिम शारद चन्द।

—कुमारपाल-रास (रचना सं. १६७०)

३. तच्छिष्य समयसुन्दर गणिना स्वाभ्यास वृद्धिकृते।

—भावशतक (९९), रचना सं. १६४१

४. गुणविनय समयसुन्दरगणिकृतौ वाचनाचार्या

—कर्मचन्द्र-वंश-प्रबन्ध

५. समयसुन्दर तसु सानिधि करी रे, इस पभणइ उवझाय रे।

—सिंहलसुत-प्रियमेलक-रास (११.६)

६. श्रीसमयसुन्दर महोपाध्याय-चरणसरोरुहाभ्यां नमः।

—हर्षनन्दन (उत्तराध्ययनसूत्र-टीका, प्रारम्भ में)

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अन्ततः यही मानना होगा कि 'महोपाध्याय समयसुन्दर' के नाम से ही जैन-साहित्याकाश में आपकी प्रसिद्धि रही है। आपके शिष्य वादीन्द्र हर्षनन्दन ने भी आपको उपर्युक्त नाम से ही सम्बोधित किया है।

४. जन्म-स्थान

कविवर समयसुन्दर को वीरभूमि राजस्थान में जन्म लेने का गौरव प्राप्त है। राजस्थान न केवल वीरप्रसूता है, अपितु उसने अनेक शूरवीरों के साथ ही साथ दानवीरों, भक्तों और विद्वानों को भी जन्म दिया है। राणाप्रताप जैसे शूरवीर, भामाशाह और जगडूशाह जैसे दानवीर, मीरा जैसी भक्त कवयित्री ने इसी पवित्र भूमि में जन्म लिया है। अनेकानेक जैन आचार्य और सन्त भी इसी भूमि में उत्पन्न हुए हैं। ईसा-पूर्व से लेकर आज तक यह क्षेत्र जैन धर्म के विकास और प्रसार का प्रमुख केन्द्र रहा है। देलवाड़ा, राणकपुर तथा जैसलमेर के जैन मन्दिर इसी प्रदेश में स्थित हैं, जो अपनी कलापूर्ण अमर गरिमाओं के लिए विश्वविख्यात हैं। जैन साहित्य की सुरक्षा के हेतु जिन ज्ञानभण्डारों की स्थापना की गई थी, उनमें से भी अधिकांश आज राजस्थान में ही केन्द्रित हैं। जैसलमेर का ज्ञान-भण्डार सर्वाधिक लोकप्रिय है। ऐसी जैन संस्कारों से परिपूर्ण भूमि में हमारे विवेच्य कवि को भी जन्म लेने का पुनीत अवसर प्राप्त हुआ है और उन्होंने अपनी अमूल्य साहित्यिक सेवाओं से अपनी मातृभूमि की इस गरिमा को और अधिक गौरवान्वित किया है।

राजस्थान प्रदेश के सांचोर नामक नगर में कवि का जन्म हुआ था। कवि स्वयं इसकी प्रामाणिक पुष्टि करते हुए कहते हैं —

मुझ जनम श्री साचोर मांहि, तिहां च्यार मासि रह्या उछाहि।^१

वादी हर्षनन्दन ने भी 'साच साचोरे सदगुरु जनमियारे'^२ कहकर 'साचोर' स्थल को ही समयसुन्दर का जन्म-स्थान सिद्ध किया है। कवि देवीदास^३ ने भी इसी स्थान की पुनरुक्ति की है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री अगरचन्द नाहटा आदि विद्वानों ने भी कवि की 'साचोर/सांचोर' जन्मभूमि ही स्वीकार की है।^४

कवि की जन्मभूमि सांचोर, भगवान् महावीर के तीर्थ के रूप में जैनसाहित्य में प्रसिद्ध है। इस नगर का प्राच्य नाम 'सत्यपुर' है। कवि ने संवत् १६७७ में 'साचोर-मंडन-महावीर-स्तवन'^५ नामक गीत की रचना भी की है।

१. सीताराम-चौपाई (६.३.५०)

२. नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३७

३. जन्मभूमि साचोरे जेहनी रे —वही, पृष्ठ १३५

४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ७

५. वही, पृष्ठ २२९

५. जन्म-तिथि

अर्वाचीन साहित्यकारों की यह अपेक्षा है कि प्राचीन कविजन अपने जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में अपनी जन्मतिथि का अंकन भी कर देते तो बहुत अच्छा होता, क्योंकि बाद में उन कवियों की जन्मतिथि का निर्धारण कर पाना एक जटिल समस्या बन जाती है। समयसुन्दर ने भी अपनी जन्मतिथि का कोई उल्लेख नहीं किया है। परवर्ती कवियों ने भी कवि के जन्म दिनांक का निर्देश नहीं दिया है। तदर्थ इनके जन्म-संवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

मोहनलाल दलीचंद देसाई के मतानुसार कवि का जन्म-काल सम्भवतः संवत् १६२० है। उनका अभिमत है कि कवि का प्रथम ग्रन्थ 'भावशतक' है। 'भावशतक' ग्रन्थ की रचना संवत् १६४१ में हुई है — ऐसा ग्रन्थ के अन्त में निर्दिष्ट है। अतः इस ग्रन्थ की रचना के समय यदि हम उनकी आयु २१ वर्ष स्वीकार करें, तो उनका जन्म सं. १६२० में हुआ होगा, यह कह सकते हैं।^१

श्री देसाई के मत को मान्य करते हुए श्री अगरचंद नाहटा ने भी कवि का जन्म-समय विक्रम संवत् १६२० ही स्वीकृत किया है।^२ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी श्री नाहटा के कथन को ग्रहण करते हुए कवि का जन्मकाल सं. १६२० ही मान्य किया है।^३ मोहनलाल भगवानदास झवेरी भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं;^४ जबकि महोपाध्याय विनयसागर^५, डॉ. रमणलाल चीमनलाल शाह^६ और डॉ. सत्यनारायण स्वामी^७ ने उनका जन्म कुछ पूर्व माना है। विनयसागर के मतानुसार कवि का जन्म संवत् १६२० में न होकर संवत् १६१० में हुआ होगा।^८ डॉ. शाह भी यही जन्मकाल मानने के पक्ष में हैं।^९ लेखक को भी यही जन्म-समय समीचीन जान पड़ता है। इस बात की सिद्धि के लिए अनेक तर्क दिये जा सकते हैं —

(क) समयसुन्दर का सबसे पहला ग्रन्थ 'भावशतक' सं. १६४१ में रचित है। इस संस्कृत-ग्रन्थ में उन्होंने मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का अध्ययन कर ध्वनि आदि सूक्ष्म

१. आनन्द-काव्य-महोदधि, मौक्तिक, ७, कविवर समयसुन्दर
२. कविवर समयसुन्दर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ५७, अंक १, सं. २००९)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ७
४. गाथा-सहस्री, प्रस्तावना, पृष्ठ १
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ४
६. समयसुन्दर कृत नलदवदंती-रास, भूमिका, पृष्ठ २१
७. महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ २९
८. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ३-४
९. समयसुन्दर कृत नलदवदंती-रास, भूमिका, पृष्ठ २१-२२

विषयों की १०० श्लोकों में चर्चा की है। महोपाध्याय विनयसागर का कहना है कि 'काव्यप्रकाश' जैसे क्लिष्ट ग्रन्थ का अध्ययन कर ध्वनि जैसे सूक्ष्म विषयों पर लेखनी चलाने के लिए प्रौढ़ एवं तलस्पर्शी ज्ञान की आवश्यकता है, जो दीक्षा के पश्चात् ५-६ वर्ष में पूर्ण नहीं हो सकता। यह ज्ञान कम से कम १०-१२ वर्ष के निरन्तर अध्ययन के फलस्वरूप ही हो सकता है।..... मरुधर-प्रान्त जिसमें सांचोर डिविजन में देवगिरा के पठन-पाठन का अत्यन्त अभाव होने से इनका अध्ययन दीक्षा पश्चात् ही हुआ हो, समीचीन मालूम होता है।..... अतः दीक्षा का अनुमानतः संवत् १६२८-३० स्वीकार करते हैं, तो जन्म संवत् १६१० के लगभग निश्चित होता है।^१

(ख) 'भावशतक' ग्रन्थ में कविवर अपने को 'गणि समयसुन्दर' के रूप में उल्लेखित करते हैं। 'गणि' उपाधि जैनसमाज द्वारा उसी मुनि को प्रदान की जाती है, जो आचार और विचार—दोनों में सुदृढ़ है और ५-६ वर्ष के अल्प दीक्षा-पर्याय में 'गणि' पद प्राप्त हो जाय, असम्भव है। वैसे भी जैन-आगमों में यह निर्दिष्ट है कि दीक्षा ग्रहण करने के आठ वर्ष पश्चात् आचारांग आदि आगमों का ज्ञान होने पर ही 'गणि' पद दिया जा सकता है।^२ अतः कवि की दीक्षा १६२८ से १६३० विक्रम संवत् के मध्य हुई होगी, और चूंकि उन्होंने यौवनवय में दीक्षा ली। अतः विक्रम संवत् लगभग १६१० में उनका जन्म हुआ होगा — यह बात उपयुक्त लगती है।

(ग) आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने वि. सं. १६२८ में सांभलि श्री संघ को पत्र दिया था, उसमें समयसुन्दर का नाम नहीं है। हो भी नहीं सकता, क्योंकि इस पत्र में उल्लिखित उपाधिधारक प्रमुख साधुओं के ही नामों का उल्लेख है।^३ यह सम्भव है कि उस समय तक या तो इनकी दीक्षा ही नहीं हुई होगी या ये नवदीक्षित रहे होंगे। इसलिए इनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया होगा।

(घ) वादी हर्षनन्दन ने अपने 'समयसुन्दर उपाध्याय गीत' में कवि को 'नवयौवन भर संयम संग्रहौ' कहकर कवि के दीक्षा ग्रहण करने की संभावित आयु स्पष्ट कर दी है। नवयौवन भर अवस्था १८ से २० वर्ष की मानी जाती है। अतः कवि ने इसी तरुण-अवस्था में संयम धारण किया था। दीक्षा-समय अनुमानतः संवत् १६२८-३० स्वीकार करते हैं, तो जन्म संवत् १६१० निर्धारित होता है।

उपर्युक्त प्राप्त सर्व तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि समयसुन्दर का जन्म लगभग विक्रम संवत् १६१० में हुआ होगा।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ३-४

२. देखिए—व्यवहार सूत्र (३.७; १०.२४-२७)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका — महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ४

६. माता-पिता

समयसुन्दर के माता-पिता कौन थे, उनका उल्लेख श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने अपने 'कविवर समयसुन्दर'^१ नामक शोधयुक्त लेख में नहीं किया है। उपाध्याय लब्धिमुनि, महोपाध्याय विनयसागर आदि अन्य साहित्यकारों ने कवि के माता-पिता के नामों का निर्देश दिया है। कवि ने स्वयं अपने माता-पिता के नाम की कोई सूचना नहीं दी है, किन्तु दीक्षितावस्था के पश्चात् अपने माता-पिता के प्रति हृदयहारी आस्था अवश्य व्यक्त की है। वे स्वयं कहते हैं—

माता-पिता प्रणमं सदा, जनम दियो मुझ जेण ।

वाटुं दीक्षा-गुरु वली, धरम-रतन दियो तेण ॥^२

माता-पिता पिण मन धरि, दीधौ जिण अवतार ।

नाम लेई नै गुरु नमुं, दीक्षा न्यान दातार ॥^३

आपके माता का नाम लीलावती था, और पिता का नाम रूपसिंह (रूपसी) था। इसका उल्लेख परवर्ती कवियों में वादी हर्षनन्दन ने 'रूपसीजी रा नन्द'^४ और देवीदास ने 'मातु लीलादे रूपसी जनमिया',^५ उपाध्याय लब्धिमुनि ने 'रूपसी जनको माता लीलादेव्यभवद्वरा'^६ शब्दों द्वारा किया है। माता-पिता के अतिरिक्त कवि के परिवार के सम्बन्ध में कोई संकेत प्राप्त नहीं होते हैं।

७. जाति तथा गोत्र

यद्यपि कविवर के गोत्र के सन्दर्भ में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है तथापि उनकी जाति के सम्बन्ध में कुछ निर्देश अवश्य ही उपलब्ध होते हैं। 'महाकवि समयसुन्दर' का जन्म पोरवाल वंश में हुआ था।^७ जैनियों में श्रीमाल, ओसवाल और पोरवाल—यही तीन जातियाँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। पोरवालों का उद्गम-स्थान भी श्रीमालनगर ही है।^८

१. जैन साहित्य-संशोधक, पत्रिका, मई १९२५, खण्ड २, अंक ३
२. सीताराम-चौपाई (६ १ से पूर्व दूहा १)
३. चम्पकश्रेष्ठिचौपाई (ढाल १ से पूर्व दूहा ३)
४. नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३७,
५. वही, पृष्ठ १३६
६. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि-चरितम्-पृष्ठ ९०
७. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ३४
८. अनेकान्त, वर्ष ४, अंक ६, पृष्ठ ३९०

प्रबन्धकोष से ज्ञात होता है कि चण्डप इस वंश के प्रथम पुरुष रहे हैं।^१ प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित 'प्रज्ञाप्रकर्ष प्राग्वाटे' वाक्य इस वंश की बुद्धि-वैभव की विशेषता को प्रकट करता है। विमल-प्रबन्ध में पोरवाल-जाति की सप्त विशेषताओं में चतुर्थ विशेषता 'चतुः प्रज्ञाप्रकर्षवान' निर्दिष्ट है, जो 'पोरवाल जाति का इतिहास' के अवलोकन से सत्य सिद्ध होती है। श्रीपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, विजयपाल, ऋषभदास प्रभृति इस जाति की प्रज्ञाप्रकर्षता के जाज्वल्य उदाहरण हैं। पूर्व परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए इस जाति ने हमारे विवेच्य कवि को भी जन्म दिया।

कवि को जिस 'धर्मश्री' नामक साध्वी ने सतत् सत्प्रेरणा प्रदान की थी, वह भी प्राग्वाटवंश-रत्ना थी। इसी कारण कवि के सुशिष्य वादी हर्षनन्दन ने कवि को 'धर्मश्री-आर्यिका-पुत्र' कहा है। इस तथ्य की ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। यह विचारणीय है कि आर्या धर्मश्री का उन पर ऐसा कौन सा उपकार रहा, जिसके कारण उन्हें 'धर्मश्री आर्यिका-सूनु'^२ कहा गया।

समयसुन्दर पोरवाल जाति के थे, इसका उल्लेख परवर्ती कवि देवीदास ने भी अपने 'समयसुन्दर-गुरु-गीत'^३ में किया है। वादी हर्षनन्दन ने भी इस प्रमाण की पुष्टि 'मध्याह्न-व्याख्यान-पद्धति'^४, 'ऋषिमंडलवृत्ति'^५, 'श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायनां गीतम्'^६, 'उत्तराध्ययन-वृत्ति'^७ आदि अपनी कृतियों में की है।

८. गृहस्थ-जीवन

कवि का जन्म-स्थान, माता-पिता और वंश — केवल ये तीन ही उल्लेख कवि के गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं। उनका प्रारम्भिक अध्ययनकाल और बाल्यकाल किस प्रकार व्यतीत हुआ, किन परिस्थितियों में उनका पालन हुआ, इन सब के विषय में कोई भी निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है। अतः कवि के गृहस्थ-जीवन के सन्दर्भ में किसी प्रकार की जानकारी प्रस्तुत नहीं की जा सकती है। जहाँ तक उनके प्रौढ़ अध्ययन का प्रश्न है, वह गृहस्थाश्रम में न होकर दीक्षा के पश्चात् ही हुआ होगा, क्योंकि

१. मन्त्रिमंडलमार्तण्डश्चण्डपः प्रथमः पुमान् ।

कुले तिस्मन्नृदेति स्म, तमसामवसानं कृत् ॥

—कीर्ति-कौमुदी, वस्तुपालवंशवर्णनम्, तृतीय सर्ग, पृष्ठ १३

२. प्राग्वाट-वंश-रत्ना धर्मश्री मज्जिकासूनुः । —ऋषिमंडलवृत्ति

३. वंश पोरवाड् विख्यातो जी— नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३६

४. प्रज्ञाप्रकर्ष प्राग्वाटे इति सत्यं व्यधायि यः—मध्याह्न व्याख्यान-पद्धति

५. प्राग्वाट-वंश-रत्ना धर्मश्री मज्जिकासूनुः ।—ऋषिमंडलवृत्ति

६. परगड् वंश पोरवाड् ।—नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई

७. प्राग्वाट शुद्धवंशा षडभाषागीतिकाव्यकर्तारः ।—उत्तराध्ययनवृत्ति

उस युग में मरुधर-प्रान्त के सांचोर क्षेत्र में प्रौढ़ अध्ययन के साधन उपलब्ध होना अत्यन्त दुर्लभ थे ।

हर्षनन्दन ने ऋषिमंडलवृत्ति में कवि को 'प्राग्वाट-वंश-रत्ना-धर्मश्री मज्जिकासुनुः' कहा है । इससे प्रतीत होता है कि कवि को इस साध्वी ने गृहस्थ-जीवन में संयम-पथ अंगीकार करने के लिए प्रेरणा दी होगी । अतः कवि ने दीक्षितावस्था से पूर्व अवश्य ही प्रारम्भिक धार्मिक प्रशिक्षण पाया होगा ।

समयसुन्दर को गृहस्थ-अवस्था में अपने गुरु सकलचन्द्रगणि का भी सत्संयोग मिला होगा, क्योंकि आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि ने स्वहस्त^१ से कवि को दीक्षा प्रदान कर अपने शिष्य-रत्न सकलचन्द्रगणि का शिष्य घोषित किया था, जबकि शिष्य होना चाहिए था दीक्षादाता का । गुरु के जीवित रहते हुए शिष्य का शिष्य होना तभी सम्भव है जब दोनों में अत्यधिक आत्मीय प्रेम हो । कवि ने यह स्वीकार किया है कि मुनिवर्य सकलचन्द्र की मुझ पर महती कृपा रही है और मैं उन्हीं की अनुकम्पा से आज असीम आनन्द पा रहा हूँ ।^२ वैसे कवि को प्रगुरु से भी स्नेह था । इसी कारण उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रगुरु का भी स्थान-स्थान पर श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है ।^३

उपाध्याय लब्धिमुनि का अभिमत है कि समयसुन्दर ने संसार को असार समझकर और वैराग्यपूर्वक लघु-वय में चरित्र अंगीकार किया था ।^४ वादी हर्षनन्दन ने अपने गुरु-गीत में कहा है कि उन्होंने यौवन-अवस्था में संयम ग्रहण किया । हर्षनन्दन कवि के ही प्रथम शिष्य थे । अतः उनका उल्लेख लब्धिमुनि के उल्लेख की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक लगता है । इसका तात्पर्य यह है कि वे कवि कम से कम सोलह-सतरह वर्ष तक गृहस्थ-जीवन में रहे । यद्यपि उस युग में बालवय में विवाह हो जाया करते थे, किन्तु कवि के सन्दर्भ में ऐसी कोई भी जानकारी नहीं मिलती है, जिसके आधार पर उनके विवाह होने या न होने के सम्बन्ध में अधिकारपूर्वक कुछ कहा जा सके ।

१. जिनचन्द्रसूरि संई हथे दीखिया सकलचन्द्र गुरु शीशो जी ।

—देवीदास कृत समयसुन्दर गीत, नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३६

२. सकलचन्द्र मुनिवरु रे सुपसाय रे, समयसुन्दर आणंद करू रे ।

—कलश-गीतम्, समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १४

३. जिणचंद पय अरविंद सुन्दर, सार सेवा महुरो ।

—श्री महावीरदेव-षट्कल्याणकगर्भित-स्तवनम्, स. कृ. कु. पृष्ठ २१५

४. संसारासारतां ज्ञात्वा, वैराग्यरंगवासितः ।

लघु वयसि चारित्रं, सूरि पार्श्वाल्लौ सकः ॥

—युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि-चरितम्, पृष्ठ ९०

९. दीक्षा

जैन परम्परा में दीक्षा का अर्थ है — समभाव की साधना। समभाव की साधना या वीतरागता की उपासना ही जैन धर्म का केन्द्रीय-तत्त्व है। इसी के माध्यम से मनुष्य वीतरागता के आदर्श को प्राप्त करता है। दीक्षित व्यक्ति चित्तविक्षोभों को समाप्त कर निर्विकल्प दशा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है। श्री जिनेन्द्र वर्णी लिखते हैं कि वैराग्य की उत्तम भूमिका को प्राप्त होकर मुमुक्षु व्यक्ति अपने परिजनों से क्षमा माँगकर, गुरु की शरण में जा, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर देता है और ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थित रहता हुआ समभावपूर्क जीवन जीने की प्रतिज्ञा करता है।^१

जब मनुष्य प्रव्रज्या अंगीकार करता है, तब वह यह प्रतिज्ञा ग्रहण करता है कि मैं सामायिक (समभाव) ग्रहण करता हूँ और पापकारी प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ। जीवनपर्यन्त मन, वचन और शरीर से सावद्य-योग (हिंसक प्रवृत्तियों) को न स्वयं करूँगा और न दूसरे से कराऊँगा। हे स्वामिन्! पूर्वकृत् पाप से मैं निवृत्त होता हूँ, अपने हृदय में उसे बुरा समझता हूँ और उनकी आलोचना करता हूँ तथा मैं अपनी आत्मा को पाप-क्रिया से पृथक् करता हूँ।^२

वस्तुतः साधक को अन्तः और बाह्य सभी बन्धनरूप गांठों से मुक्त होकर जीवन-यात्रा पूरी करनी चाहिए।^३ जो गतिशील और स्थित (त्रस एवं स्थावर) — सभी प्राणियों के प्रति समभाव से युक्त है, वही जिनशासन में सामायिक से युक्त कहा गया है।^४ और साधक समता से ही श्रमण कहलाता है।^५ शत्रु-मित्र में, प्रशंसा-निन्दा में, लाभ-अलाभ में, तृण और स्वर्ण में जब समभाव रहता है, तभी उसे प्रव्रज्या या दीक्षा कहा जाता है।^६ दीक्षा यथार्थतः आत्मसंस्कार का ही नामान्तर है। मानवीय चेतना, भाव, ज्ञान और संकल्प को सम्यक् दिशा में नियोजित करने का जो प्रयास है, वही दीक्षा है। दीक्षा शब्द दी+क्षा से निर्मित हुआ है। इसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए किसी संस्कृत के विद्वान् ने कहा है —

१. द्रष्टव्य — जैनेन्द्र-सिद्धान्त-कोश, तृतीय भाग, पृष्ठ १५०
२. करेमि भन्ते! सामाइयं, सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भन्ते! पडिक्कमामि निंदांमि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। — आवश्यक-सूत्र (१.१)
३. गंधेहिं विचित्तेहिं, आउकालस्स पारए। — आचारांग (१. ८. ८. ११)
४. जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु अ।
तस्स सामाइयं होइ, इह केवल्लिभासियं ॥ — अनुयोगद्वार (१५०.२)
५. समयाए समणो होइ। — उत्तराध्ययन (२५.३२)
६. सत्त मित्ते य समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पवएज्जा एरिसा भणिया ॥ — बोधपाहुड़ (४७)

दीयतेज्ञानसद्भावः, क्षीयते पशुवासना ।

दानक्षपण संयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्तिता ॥^१

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान दिया जाता है और पशुवासना का क्षय होता है, ऐसी दान और क्षपणयुक्त क्रिया को दीक्षा कहते हैं ।

कवि को दीक्षा प्रदान करने वाले आचार्य जिनचन्द्रसूरि हैं । कवि के व्यक्तित्व का विकास भी इनकी ही उपस्थिति में और इनके ही प्रसाद से हुआ था । वादी हर्षनन्दन ने अपने गुरु-गीत में यह दर्शाया है कि जिनचन्द्रसूरि ने कवि को स्वहस्त से दीक्षा प्रदान की थी ।^२ कवि ने इसी कारण अपने स्तवनों में गुरु के नाम के साथ प्रगुरु के नाम का भी आस्थापूर्वक उल्लेख किया है और गुरु का नाम तो उन्होंने लगभग अपनी समस्त रचनाओं में उल्लिखित किया है । यद्यपि इनके गुरु सकलचन्द्रगणि इनकी प्रव्रज्या के कुछ ही वर्षों पश्चात् स्वर्गवासी हो गये थे, परन्तु कवि द्वारा प्रायः प्रत्येक रचना में सकलचन्द्रगणि का नाम देखकर ऐसा लगता है कि शिष्य का गुरु के प्रति सघन आत्मीय प्रेम था । गुरु के नाम को विश्व में प्रसिद्ध करना, उनके उपकारों से उन्मत्त होने का सहज पथ है । कवि के गुरु सकलचन्द्र ही हैं, इसकी पुष्टि कवि ने अनेक स्थलों पर की है ।^३ पश्चकालीन कवियों ने भी इसी तथ्य को प्रस्तुत किया है ।^४ जबकि वर्तमान में आचार्य पद्मसागरसूरिजी ने समयसुन्दर की विलक्षण प्रतिभा की चर्चा करते हुए उन्हें आचार्य हीरविजयसूरि का शिष्य माना है ।^५ किन्तु यह बात किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि एक तो

१. उद्धृत — भारतीय संस्कृति और साधना, प्रथम भाग, पृष्ठ २६६

२. सई हथे श्री जिनचन्द्र । — नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३७

३. (क) श्री खरतरगच्छ राजीया, श्री युगप्रधान जिनचन्दो रे ॥
प्रथम शिष्य श्री पूज्यना, गणि सकलचन्द्र सुखकन्दो रे ॥
समयसुन्दर शिष्य तेहना, श्री उपाध्याय कहीजइ रे ।
— नलदवदन्ती - रास (७.२४-२५)

(ख) चन्द्रकुले श्री खरतरगच्छे जिनचन्द्रसूरिनामानः ।
जातायुगप्रधानास्तच्छिष्यः सकलचन्द्रगणिः ॥
तच्छिष्य समयसुन्दरगणिना चक्रे..... ।

— दशवैकालिक-वृत्ति, प्रशस्ति २-३

४. (क) जिनचन्द्रसूरि सई हथे दीखिया, सकलचन्द्र गुरु शीशो जी ।
समयसुन्दर गुरु चिर प्रतपै सदा, छै देवीदास आसीसो जी ॥
— देवीदास कृत समयसुन्दरगीत, नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३६

(ख) वाल्हो लागे चतुर्विध संघने, सकलचंद्र गणि शीश ।

— हर्षनन्दन कृत समयसुन्दरगीत. वही, पृष्ठ १३८

५. द्रष्टव्य — (क) षोडश मार्ग में बीस कदम

(ख) प्रवचन-पराग, पृष्ठ १२९

हीरविजयसूरि का समयसुन्दर नामक कोई शिष्य था, ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। दूसरे कवि ने स्वयं अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर अपने को खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि का प्रशिष्य एवं गणि सकलचन्द्र का शिष्य बताया है। अतः सम्प्रदाय या गच्छ के व्यामोहवश अन्य किसी प्रकार की कल्पना करना समीचीन नहीं होगा।

कवि समयसुन्दर ने 'जुग-प्रधान भये बड़भागी' स्तवन में तपागच्छ के आचार्य हीरविजयसूरि को महाप्रभावक आचार्य बताकर उनकी प्रशंसा की है, किन्तु इससे उनमें गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता है। यह तो सम्प्रदायातीतता तथा गुणग्राहकता का ही परिचायक है। मात्र यही नहीं, उन्होंने पुज्जा-ऋषि का, जो उनसे छोटे भी थे, गुणानुवाद कर उन पर भी स्वतन्त्र रचना लिखी है। किसी का गुणानुवाद करना और उसका शिष्य बनना — यह दो अलग बातें हैं। अतः मात्र गुणानुवाद के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वे हीरविजयसूरि के शिष्य थे। समयसुन्दर ने अपनी अन्तिम रचनाओं में भी अपने को सकलचन्द्रगणि का ही शिष्य बताया है। अतः यह सम्भावना पूर्णतया निरस्त हो जाती है कि वे हीरविजयसूरि के शिष्य थे।

जहाँ तक कवि की दीक्षा ग्रहण करने की तिथि का प्रश्न है, वादी हर्षनन्दन ने कवि के तरुणवय में प्रव्रज्या ग्रहण करने का उल्लेख किया है। अभी तक के अनुसंधान से यह संकेत प्राप्त नहीं हो पाया है कि कवि ने किस तिथि को प्रव्रज्या धारण की थी। 'जन्मतिथि' सम्बन्धी विवेचन में हमने देखा है कि कवि ने सम्भवतः संवत् १६२८ से ३० के मध्य दीक्षा ली होगी। कवि का 'समयसुन्दर' नाम दीक्षित-दशा का होना चाहिये। यह नाम उन्हें दीक्षा के समय ही मिला होगा, क्योंकि जैनधर्म में प्रव्रज्या ग्रहण करने के उपरान्त साधू-साध्वियों के सांसारिक नाम, गोत्र, वंश-परम्परा आदि परिवर्तित हो जाते हैं। सांसारिक वृत्तियों से निवृत्त हो जाने के कारण सन्त अपने सांसारिक नाम, गोत्र, जन्मस्थान, जन्मतिथि आदि का निर्देश देने के प्रति उपेक्षित ही रहते हैं। इसलिए वे वंश-परम्परा आदि की सूचना न देकर गुरु-परम्परादि की सूचना देते हैं।

१०. गुरु-परम्परा

'गुरु' शब्द का अर्थ महान् होता है। लोक में अध्यापकों को गुरु कहते हैं। माता-पिता भी गुरु कहलाते हैं। उपकारीजनों को भी कदाचित् गुरु माना जाता है, किन्तु जैन परम्परा में आचार्य, उपाध्याय एवं साधु गुरु कहलाते हैं, क्योंकि वे अपनी आदर्श जीवन-चर्या के द्वारा एवं अपने उपदेश के द्वारा जन-जन को कल्याण का सच्चा मार्ग दिग्दर्शित करते हैं, जिस पर चलकर व्यक्ति सदा के लिए कृतकृत्य हो जाता है। दीक्षा-गुरु, शिक्षा-गुरु, परमगुरु आदि के भेद से गुरु कई प्रकार के होते हैं। अर्हन्त भगवान् परमगुरु हैं।

दीक्षा-ग्रहण करते समय गुरु की प्रधानता होती है, क्योंकि वही दीक्षा प्रदान करता है। दीक्षा-गुरु ज्ञानी तथा समत्वयोगी होना चाहिए। जो निर्विकल्प सामायिक चारित्र्य का

प्रतिपादन करके शिष्य को प्रव्रज्या देते हैं, वे आचार्य दीक्षागुरु हैं।^१

साधना के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन नितान्त आवश्यक है। जैन-विचारणा के अनुसार गुरु ही साधना के क्षेत्र में दिशा-निर्देशक का कार्य करता है। गुरु कौन हो सकता है — इसके लिए कहा गया है कि जो पाँच इन्द्रियों का संयम करने वाला; नववाड़ों से ब्रह्मचर्य के रक्षण में सदैव जाग्रत; क्रोध, मान, माया और लोभ — इन चार कषायों से मुक्त; अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह — इन पाँच महाव्रतों से युक्त; पाँच प्रकार के आचार का पालन करने वाला; गमन, भाषण, याचना, निक्षेपण और विसर्जन — इन पाँच समितियों का विवेकपूर्ण ढंग से सम्पादित करने वाला तथा मन, वचन और काया से जो संयत होता है, वही गुरु है।^२

कविवर को आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने दीक्षा-मन्त्र प्रदान किया था और उन्हें गणि सकलचन्द्र का शिष्य घोषित किया था। इस प्रकार कवि के दीक्षा-गुरु जिनचन्द्र-सूरि और गुरु गणि सकलचन्द्र हैं। कवि की दीक्षा के कुछ समय पश्चात् ही गणिसकलचन्द्र का स्वर्गवास हो गया। अतः कवि का विद्या-अध्ययन जिनचन्द्रसूरि के शिष्य महिमराज और समयराज के सान्निध्य में हुआ। स्वयं कवि ने अपनी भाव-शतक, अष्टलक्षी आदि कृतियों में इन्हें शिक्षा-गुरु के रूप में स्वीकार किया है। कवि ने स्वयं अपनी अष्टलक्षी एवं खरतरगच्छ-पट्टावली नामक कृतियों में अपनी गुरु-वंश-परम्परा का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। कवि ने अपनी गुरुवंश-परम्परा का मूल परमगुरु भगवान् महावीर और गणधर गौतम को बताया है। उन्हीं की परम्परा में हुए हरिभद्रसूरि का आदरपूर्वक उल्लेख किया है और इस प्रकार यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि वे जैनधर्म की श्वेताम्बरपरम्परा से सम्बन्धित हैं। इसी वंश-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने नेमिचन्द्रसूरि, उद्योतनसूरि का भी सादर स्मरण किया है। ये उद्योतनसूरि ही कवि की खरतरगच्छ-शाखा के प्रथमपुरुष जिनेश्वरसूरि के प्रगुरु थे।^३ जिनेश्वरसूरि से लेकर आगे के सभी खरतरगच्छ-परम्परा के आचार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है —

१०.१ वर्द्धमानसूरि — आपका समय वि. सं. १०२० से १०८८ तक माना जाता है। आपका नामोल्लेखपूर्वक सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमा-अभिलेख कटिग्राम में संवत् १०४९ का पाया जाता है। आपने संचेती, लोढ़ा, पीपाड़ा आदि गोत्रों की स्थापना की। पाटण का नरेश

१. द्रष्य — जैनेन्द्र-सिद्धान्त-कोश, भाग-२

२. जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों को तुलनात्मक अध्ययन, भाग २, पृष्ठ २६७

३. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र १-२ (स्व. पूरणचन्द्र नाहर-संग्रहालय, कोलकाता में उपलब्ध प्रति के आधार पर पत्र-संख्या है।)

दुर्लभराज आपका परमभक्त था। जिनेश्वरसूरि आपके प्रभावक शिष्य थे।^१

१०.२ जिनेश्वरसूरि — कालक्रम के प्रभाव से जैन-यतिवर्ग अपने आचार में शिथिल हो गया था। आपने शिथिलाचारी चैत्यवासी यतियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन किया। संवत् १०७४ के लगभग आपने अणहिलपुर पाटण में दुर्लभराज की राज्यसभा में चैत्यवासियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर 'खरतर' विरुद्ध प्राप्त किया। इसका चैत्यवास पर गहरा प्रभाव पड़ा। जैन समाज में नूतन युग का सूत्रपात हुआ। आपकी श्रमण-परम्परा खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपके प्रखर पाण्डित्य, उत्कृष्ट चारित्र, गम्भीर व्यक्तित्व और प्रबुद्ध कृतित्व के फलस्वरूप ही हमारे कवि ने इन्हें 'जगत् विश्रुत' बताया है। आपके प्रणीत अष्टक-प्रकरणवृत्ति, षट्स्थान-प्रकरण, कथाकोश-प्रकरण आदि ग्रन्थ आपकी असाधारण साहित्यिक प्रतिभा के परिचायक हैं। आपके गुरुभ्राता बुद्धिसागरसूरि ने 'बुद्धिसागर-संस्कृत-व्याकरण' की रचना की, जो श्वेताम्बर जैन परम्परा के आचार्यों द्वारा रचित व्याकरणों में प्रथम है।^२

१०.३ जिनचन्द्रसूरि — आप श्रमणधर्म की विशिष्ट साधना करते हुए युगप्रधान-पद पर आसीन हुए। आपका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। आपकी कृतियों में १८००० श्लोक-प्रमाण में विरचित 'संवेगंगशाला' (रचना-काल सं. ११२५) विशिष्ट कृति है। आपकी पंचपरमेष्ठी-नमस्कार-फलकुलक, क्षपक-शिक्षा-प्रकरण, जीव-विभक्ति आराधना, पार्श्वस्तोत्र आदि रचनाएँ भी प्राप्त हैं। आपके शिष्य द्वारा निर्मित 'दिनचर्या' नामक ग्रन्थ भी ख्याति प्राप्त है।^३

१०.४ अभयदेवसूरि — आप आत्मज्ञ और आगमज्ञ थे। आपका जन्म वि. सं. १०७२, आचार्य-पद सं. १०८८ और देहावसान संवत् ११३५ या ३६ के आसपास हुआ। आपने

१. (क) यकः शोधयामास वै सूरिमन्त्रं, गिरीन्द्रार्बुदस्याद्भुतेशुंगभागे।

विधयाष्टमं सन्नमन्नागनाथस्ततो, वर्धमानाभिधः सूरिरासीत् ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति ७

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र २

२. (क) श्रीमद्दुर्लभराजराजसदसि 'श्रीपत्तने' पत्तने।

वादं श्वेतपटैः प्रभूतकपटैः साकं सदा लम्पटैः ॥

कृत्वा यः प्रकटीचकार वसतेर्मार्ग-मनोहारिणं।

सूरिभूरिजयो जिनेश्वरगुरुर्जातो जगद्धिश्रुतः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति ८

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र २

३. (क) संवेगंगशाला येन कृता जगति लोकहितहेतुः।

जातः श्री जिनचन्द्रः सूरिस्तत्पट्ट समचन्द्रः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति ९

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र २

खेतसी, पगारिया और मेड़तवाल गोत्रों की स्थापना की एवं विशद् साहित्य का निर्माण किया।^१ आपके उल्लेख्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सन्दर्भ में मुनि श्री जिनविजय^२ का अभिमत है कि जिनेश्वरसूरि के अनुक्रम में शायद तीसरे, परन्तु ख्याति और महत्ता की दृष्टि से सर्वप्रथम ऐसे महान् शिष्य श्री अभयदेवसूरि थे, जिन्होंने जैन ग्रन्थों में सर्वप्रधान जो एकदशांग सूत्र हैं, उनमें से नव अंग (३ से ११) सूत्रों पर सुविशद् संस्कृत टीकाएँ बनाईं। अभयदेव अपनी इन व्याख्याओं के कारण जैन साहित्य-आकाश में नक्षत्र के समान सदा प्रकाशित रहेंगे। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के सभी विद्वानों ने अभयदेवसूरि को बड़ी श्रद्धा और सत्यनिष्ठा के साथ प्रमाणभूत एवं तथ्यवादी आचार्य के रूप में स्वीकार किया है और इनके कथनों को पूर्णतया आस-वाक्य की कोटि में समझा है।

१०.५ जिनवल्लभसूरि — आपको विक्रम संवत् ११६७ में आचार्य की उपाधि से अलंकृत किया गया और पदोत्सव के चार माह पश्चात् ही आपका निधन हो गया। आपकी पिण्डविशुद्धि-प्रकरण, कर्मग्रन्थ प्रभृति प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं में निबद्ध पचासों रचनाएँ प्राप्त हैं। पश्चवर्ती विद्वानों ने इन्हें महाकवि कालिदास के सदृश कवि बतलाया है। आपने दस हजार नूतन जैन बनाकर जिनशासन की प्रभावना की।^३

१०.६ जिनदत्तसूरि — आपका जन्म गुजरात-प्रान्तीय धोलका नामक नगर में हुंबड़ जातीय वाळ्मिग की धर्मपत्नी बाहड़देवी की कुक्षि से संवत् ११३२ में हुआ था। वि. सं. ११४१ में प्रव्रज्या ग्रहण कर सोमचन्द्र नाम से अभिषिक्त हुए। सं. ११६९ में यही सोमचन्द्र आचार्य-पद पर स्थापित होकर जिनदत्तसूरि के नाम से विख्यात हुए। संवत् ११२९ में अजमेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपने अपने अद्भुत बुद्धिबल, तपोबल एवं आत्मबल के द्वारा एक लाख, तीस हजार नवीन जैन बनाकर जिनशासन का विपुल विस्तार किया। आपकी गणधर सार्धशतक, धर्मरसायन, चैत्यवन्दनकुलक आदि साहित्यिक कृतियाँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश

१. (क) अतिचंगनवांगीवृत्तिकार! खरतरगणनायक! सुगुणधा (धो ?) र!
यशसा युतं! जय चिरमभयदेवसूरीश्वर! सुरकृतचरणसेव!

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति १०

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र २

२. कथाकोश-प्रकरण, प्रस्तावना, पृष्ठ १२

३. (क) कृत्वाऽसमीपेऽभयदेवसूरैर्येनोपसम्पद्ग्रहणं प्रमोदात्।

पपे रहस्यामृतमागमानां, सूरिस्ततः श्री जिनवल्लभोऽभूत्।

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति ११

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र २

भाषा में मिलती हैं।^१ कवि समयसुन्दर ने आप पर स्वतन्त्र रचनाएँ भी रची हैं।^२

१०.७ जिनचन्द्रसूरि — आप महान् प्रतिभाशाली एवं विद्वान् आचार्य थे। आपका जन्म वि० सं० ११९७ में जैसलमेर के निकट विक्रमपुर नगर में हुआ था। इनके पिता शाह रासल तथा माता देल्हणदेवी थी। संवत् १२०३ में आपने भगवती जैन दीक्षा ली। आपकी असाधारण मेधा, प्रभावशाली मुद्रा एवं आकर्षक व्यक्तित्व के फलस्वरूप सं० १२०५ में ही आपको आचार्य-पद प्रदान कर दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि आपके गुरु जिनदत्तसूरि को आपके महान् व्यक्तित्व का ज्ञान आपके माता के गर्भ में अवतीर्ण होने के पूर्व ही हो गया था। इसी कारण इन्हें लघुवय में आचार्य-पद पर अधिष्ठित किया होगा। कारण, इतनी अल्प-आयु में किसी को आचार्य-पद दिया गया हो, ऐसे उल्लेख विरले ही हैं। आगमिक मर्यादा भी दीक्षा के पाँच या आठ वर्ष पश्चात् आचारांग आदि अंग-सूत्र एवं छेद-सूत्रों का ज्ञान होने पर ही आचार्य-पद देने की है। ऐसा बताया जाता है कि आपके मस्तक में मणि थी, जिनके कारण ही 'मणिधारी' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। सं० १२२३ में आप स्वर्ग सिधार गए।^३

१०.८ जिनपतिसूरि — आपका जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में मालू गोत्रीय यशोवर्द्धन की पत्नी सृहवदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ में दीक्षा ग्रहण की और सं० १२२३ में आचार्य पदाभूषण से अलंकृत हुए। ऐसा कहा जाता है कि आपने ३६ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की। इसी कारण इन्हें 'षट्त्रिंशत् विजेता' कहा जाता है। सम्राट पृथ्वीराज चौहान आपकी प्रतिभा एवं सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य देखकर बहुत प्रभावित हुआ, और वह आपको अपना सद्गुरु मानता था। उपाध्याय जिनपाल आपके बहुश्रुत विद्वान् शिष्य थे, जिन्होंने 'खरतरगच्छ वृहद् गुर्वावली' आदि की रचना की। इस ग्रन्थ में आपके व्यक्तित्व की विशिष्ट प्रतिभा का भी अङ्कन है। आपकी रचनाओं में 'संघपट्टक

१. (क) जिगियरे येन योगिन्यश्चतुःषष्टिर्यतीन्दुना।

सूरिः श्री जिनदत्तोऽभूत्, तत्पदाम्बुजभास्करः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति १२

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ३

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दादा जिनदत्तसूरिगीतम्, पृष्ठ ३४९

३. (क) ततस्तनुभृतां प्रियः समजनिष्ट शिष्टक्रियः।

प्रणष्टतिमिरोत्करः सुजिनचन्द्रसूरीश्वरः ॥

कवित्वसुभमालिको न रमणी मनोज्ञालिको।

नमन्निखिलनायकः प्रबलसौख्य सन्दायकः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति १३

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ४

वृहद् वृत्ति', 'पंचलिंगी-प्रकरण-टीका', 'प्रबोधोदय-वादस्थल', 'खरतरगच्छ समाचारी', 'तीर्थमाला' आदि के अतिरिक्त कतिपय स्तुति-स्तोत्रादि भी पाये जाते हैं।^१

१०.९ जिनेश्वरसूरि— आप श्री नेमिचन्द्र भंडारी के पुत्र थे। आपका दीक्षा नाम वीरप्रभ रखा गया। वि० सं० १२७७ में जालौर में आपको आचार्य-उपाधि दी गई। तत्पश्चात् जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के नाम से आपने ख्याति प्राप्त की। संवत् १३३१ में आपका अनशन-पूर्वक समाधि निधन हुआ।^२

१०.१० जिनप्रबोधसूरि— आप शाह श्रीचन्द्र की भार्या सिरियादेवी के पुत्र थे। संवत् १२८५ में आपने जन्म ग्रहण किया। आपका जन्म-नाम पर्वत था। सं० १२९६ में आप श्रमणधर्म में दीक्षित हुए। आपका नवीन नामकरण प्रबोधमूर्ति हुआ। सं० १३३१ में आपको आचार्य की उपाधि प्रदान की गई। तत्पश्चात् वे जिनप्रबोधसूरि के नाम से अभिहित हुए। श्री पंजिका-प्रबोध, वृत्त-प्रबोध, बौद्धाधिकार-विवरण आदि आपकी कृतियाँ हैं, किन्तु आज वे अप्राप्य हैं।^३

१०.११ जिनचन्द्रसूरि— आप जन्म वि० सं० १३२६ में समियाणा (सिवाणा) नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम मन्त्री देवराज छाजहड़ तथा माता का नाम कमलादेवी था। आपका मूल जन्म-नाम खंभराय था। आने वि० सं० १३३२ में जालौर नगर में प्रब्रज्या-व्रत अङ्गीकार किया और वि० सं० १३४१ में जालौर में ही आप आचार्य-पद से सुशोभित हुए। आपने चार राजाओं को प्रतिबोध दिया, अनेक शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की एवं 'कलिकाल-केवली' विरुद्ध से ख्याति अर्जित की। इस तरह जिनशासन की उन्नति करते हुए आपने वि० सं० १३७६ में कालधर्म को प्राप्त किया।^४

१०.१२ जिनकुशलसूरि— आपका जन्म मारवाड़ के बाड़मेर जनपद के सिवाना तहसील में वि० सं० १३३७ में हुआ। आपके पिता जेसलजी छाजेड़ थे और माता जयतश्री थीं। वि० सं० १३४७ में आपने जिनचन्द्रसूरि के पास प्रब्रज्या ग्रहण की, जो संसार-पक्ष में आपके चाचा थे। आपका दीक्षा-नाम कुशलकीर्ति रखा गया। सं० १३७७ में आपको आचार्य-पद प्रदान किया गया। बाद में यही कुशलकीर्ति, जिनकुशलसूरि के नाम से विख्यात हुए। आपने पचास हजार नये जैन बनाकर अपनी गुरु-परम्परा के मिशन को अक्षुण्ण रखा। जिनदत्तसूरि कृत 'चैत्यवन्दन-कुलक' नाम २७ गाथा की लघु रचना पर चार हजार श्लोक परिमित टीका रचकर आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया। विद्या-विनोद, कविता-विनोद, भाषा-विनोद आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त आप द्वारा रचित

१. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ४

२. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ४

३. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ४

४. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ४-५

संस्कृत में नौ ग्रन्थ और उपलब्ध होते हैं। आपके शिष्य विनयप्रभ उपाध्याय ने 'श्री गौतम स्वामी नो रास' रचना में भाषा-साहित्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम प्रकृति का अत्यन्त मनोहर चित्रण किया है। सं० १३८९ देरावर (सिन्ध) में आपने देह विसर्जन किया।^१ आप हमारे विवेच्य कवि के इष्ट थे। कवि ने आप पर अनेक गीत लिखे हैं। इनमें ग्यारह गीत प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं।^२

१०.१३ जिनपद्मसूरि — आपका जन्म सं० १३८२ में हुआ था। आप लक्ष्मीधर के पुत्र थे और नीकीका के नन्दन थे। आपकी माता ने भी संयम अंगीकार किया था। आपको 'कुर्चालसरस्वती' का विरुद प्राप्त था। वि० सं० १३९० में आपको आचार्य-पद प्राप्त हुआ। सं० १४०० में कपटपूर्वक आपकी हत्या कर दी गई। आपका ग्रन्थ श्री स्थुलिभद्र फाग (सिरिथुलिभद्र फागु) प्राचीन होने के कारण वर्तमान काव्यसंग्रहों में गौरवपूर्ण स्थान को प्राप्त है।^३

१०.१४ जिनलब्धिसूरि — आपका जन्म विक्रम संवत् १३७८ में मालू गोत्र में हुआ था। सं० १३८८ में पाटण में आपने पत्रज्या ग्रहण की थी। संवत् १४०० में आपका आचार्य-पदाभिषेक सम्पन्न हुआ था और स्वर्गगमन सं० १४०६ में हुआ था।^४

१०.१५ जिनचन्द्रसूरि — मरुदेश के कुसुमाण ग्राम में मंत्री केल्हा छाजहड़ निवास करते थे। उनकी पत्नी सरस्वती से सं० १३८५ में आपका जन्म हुआ था। आपका जन्म-नाम पाताल कुमार था। आपने सं० १३९० में भगवती जैन दीक्षा ग्रहण की थी। (यद्यपि ५ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा प्रदान करने का निर्देश आगमों में अनुपलब्ध है। आगमानुसार कम

१. (क) यस्यादेशात् 'खरतर' वसत्यात्ख्यचैत्यं प्रचक्रे।
तेजः पालो विपुलविभवोऽपि स्वयं तत्र चैत्ये ॥
यः प्रतिष्ठित् त्रिभुवनगुरोः शान्तिनाथस्य बिंबं।
सोऽभूच्छ्रीमज्जिनकुशलराट् सूरिराजीतुराषाट् ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, १५

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ५

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ३४९-३५६

३. (क) नम्रानेकविवेकसेक-विलसत्क्षमापालजम्बालज-
प्रत्यग्रपतिबोधबन्धुररविः प्रत्यर्थिभूत्पविः।

यः 'कुर्चालसरस्वती' ति सुतरां ख्यातिं क्षितौ प्राप्तवान्,
स श्रीमज्जिनपद्मसूरिसुगुरुजास्ततस्तारकः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, १६

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ५

४. (क) तच्चारुचरणनीरज-चंचुरतरचंचरीककरणिरभूत्।

स श्रीमज्जिनलब्धिः सूरिः सौभाग्य गुण लब्धिः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, १७

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ५

से कम आठ वर्ष की आयु में ही संयम ग्रहण किया जा सकता है।^१) दीक्षा के बाद यही पातालकुमार, यशोधर के नाम से विख्यात हुए। वि० सं० १४०६ में आचार्य की पदवी प्राप्त होने पर इन्हें जिनचन्द्रसूरि के नाम से अभिषिक्त किया गया। संवत् १४१४ में आप कालधर्म को प्राप्त हुए।^२

१०.१६ जिनोदयसूरि — आपका जन्म विक्रम संवत् १३७५ में पाल्हेणपुर निवासी माल्हु गोत्रीय साह रुद्रपाल की धर्मपत्नी धारलदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। आपका जन्मनाम समर था। वि० सं० १३८९ में आपने और आपकी बहिन कील्हू, दोनों ने साथ-साथ दीक्षा व्रत स्वीकार किया। जिनकुशलसूरि ने दीक्षा देकर आपका सोमप्रभ नाम रखा। संवत् १४१५ में खंभात में आप खरतरगच्छ के आचार्य बने और संवत् १४३२ में आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी रचनाओं में वि० सं० १४१५ में निर्मित 'त्रिविक्रम-रास' आज उपलब्ध है।^३

१०.१७ जिनराजसूरि — विक्रम संवत् १४३३ में अणहिलपुर में इन्हें आचार्य-पद प्रदान कर जिनोदयसूरि का पट्टधर घोषित किया गया। आप सवा लाख श्लोक के प्रमाण के न्यायग्रन्थों के अध्येता थे। संवत् १४६१ में देलवाड़ा में आपका देहावसान हुआ।^४

१०.१८ जिनभद्रसूरि — आपका जन्म संवत् १४४९, दीक्षा सं० १४६१, आचार्यपद सं० १४७५ और देहोत्सर्ग सं० १५१४ में हुआ। आप अखिल भारत में एक महान् साहित्य-संरक्षक के रूप में स्मरण किये जाते हैं। सं० १४७५ से १५१५ तक के ४० वर्षों में हजारों, बल्कि लाखों ग्रन्थ लिखवाये और उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों में रखकर अनेक नये-नूतन

१. द्रष्टव्य — प्रवचनसारोद्धार, द्वार १०७, गाथा ७९१

२. (क) तदनु विगतच(त?)न्द्राः पश्चिमाभोधिमन्द्राः,

कुशलकुमुदचन्द्राः प्रतभव्यांगिभद्राः।

प्रणमदमरचन्द्रा निर्जितश्लोकचन्द्राः,

इह भुवि जिनचन्द्राः सूरिराजीसुरेन्द्राः॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, १८

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ५

३. (क) यद्वीक्षिताः समभवन् पदिनः सुशिष्याः,

श्राद्धाश्च सङ्घपतयोऽर्पितवासयोगात्।

प्राप्तोदयः प्रवरलब्धि समृद्धिसिद्धेः,

पात्रं ततोऽजति जिनोदयसूरिराजः॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, १९

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ६

४. (क) रेजिरे राजराजास्या, राजराजिनमस्कृताः।

श्री जिनराजसूरीन्द्रा, भव्यराजीवभास्कराः॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, ३०

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ६

ग्रन्थ भण्डार कायम किये।^१ आपने जैसलमेर, खंभात, नागौर, कर्णावती, पाटण, मांडवगढ़, जालौर आदि अनेक स्थानों पर ज्ञान-भण्डारों की स्थापना की। जैसलमेर दुर्ग के जैन मंदिर में स्थित 'जिनभद्रसूरि-ज्ञान-भंडार' आज भी देश-विदेश के विद्वानों का आकर्षण केन्द्र है। यहाँ हजारों हस्तलिखित पाण्डुलिपियों और ताड़पत्रीय प्राचीन ग्रन्थों का विराट संग्रह है। जिनसत्तरी प्रकरण आदि कई ग्रन्थों के आप निर्माता भी हैं।^२

१०.१९ जिनचन्द्रसूरि — आपका जन्म वि० सं० १४८७ में हुआ था। आपके पिता चम्म गोत्रीय साह वच्छराज थे और माता वाल्हादेवी थीं। सं० १४९२ में आप प्रव्रजित हुए। आपका जन्म-नामकरण और दीक्षा-नाम कनकध्वज था। संवत् १५१५ में आपको आचार्य-पद प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् जिनचन्द्रसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। सं० १५३० में आपका निधन हुआ।^३

१०.२० जिनसमुद्रसूरि — आप उच्च कोटि के साधक और उद्भट विद्वान् थे। ये बाड़मेर के देकासाह पारख के पुत्र थे। आपने माता देवलदेवी का मृदु प्यार पाया था। सं० १५०६ में जन्म, सं० १५२१ में प्रव्रज्या, सं० १५३३ में आचार्य-पद और सं० १५३६ में आपका समाधि-मरण हुआ।^४

१०.२१ जिनहंससूरि — आपका जन्मस्थान सेत्रावा नामक नगर है। सं० १५२४ में आपका जन्म हुआ था। श्री मेघराज चौपड़ा इनके पिता और कमलादेवी माता थीं। आपका जन्मनाम धनराज था। वि० सं० १५३५ में प्रव्रजित होने पर यही धनराज नाम धर्मरंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आचार्य-पद प्राप्त होने पर आप जिनहंससूरि के नाम से अभिहित हुए। आपने अनेक जिनमंदिरों में प्रतिष्ठाएँ करवाईं और अनेक भव्य व्यक्तियों को दीक्षाएँ प्रदान कीं। आपका लिखित साहित्य आज अनुपलब्ध है। सं० १५८२ में आप स्वर्गस्थ हुए।^५

१०.२२ जिनमाणिक्यसूरि — आपका जन्म सं० १५४९, दीक्षा सं० १५६०, आचार्य-पद सं० १५८२ और तन-त्याग सं० १६१२ में हुआ। आपका सांसारिक नाम सारंग था। आपने माता रयणादेवी की मृदु क्रीड़ा में क्रीड़ा की और पिता राउल देव चौपड़ा का

१. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ ३९

२. (क) श्री मज्जेसलमेरुदुर्ग-नगरे 'जावाल' पुर्यां तथा।

श्री मद् 'देवगिरौ' तथा 'अहि' पुरे 'श्रीपत्तने' पत्तने ॥

भाण्डागारमबीभरद् वरतरैर्नानाविधैः पुस्तकैः।

स श्री मज्जिनभद्रसूरि-सुगुरुर्भाग्याद्भुतोऽभूद् भुवि ॥ — अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, २१

(ख) खरतरगच्छ पट्टावली, पत्र ६

३. खरतरगच्छ-पट्टावली पत्र ६

४. खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ६

५. वही, पत्र ६

असीम प्यार प्राप्त किया था। आप गुरु जिनहंससूरि के तत्त्वावधान में दीक्षित हुए। आपकी कृतियों में 'कुर्मापुत्र-रास' नामक कृति मिलती है। आपके प्रबुद्ध शिष्य कवि कनक ने 'मेघकुमार रास' आदि की रचना की है।^१

१०.२३ जिनचन्द्रसूरि — आप कवि के प्रगुरु हैं। आपका जन्म सं० १५९५ में ओसियां (मारवाड़) के निकट खेतसर नामक गांव में ओसवाल-वंश के रीहड़ गोत्र में हुआ। आपके पिता का नाम श्रीवंत तथा माता का नाम श्रीयादे (श्रीयादेवी) था। आपकी दीक्षा सं० १६०४ में और आचार्य-पदारोहण सं० १६१२ में सम्पन्न हुआ। आप सम्राट अकबर प्रतिबोधक के रूप में जैन समाज में बहुविश्रुत हैं। अकबर आपसे इतना अधिक प्रभावित था कि उसने आपको वि० सं० १६४९ में 'युगप्रधान' पद प्रदान किया था।^२ आपके सदुपदेश से अकबर ने अहिंसा-प्रचार तथा तीर्थ-रक्षा के लिए कई फरमान^३ (आधिकारिक राजकीय आदेश) निकाले। नरेश जहांगीर भी आपको अपना गुरु मानता था। समयसुन्दर ने भी आप पर तेरह रचनाएँ लिखी हैं।^४ वि० सं० १६१४ में स्वगच्छ में प्रचलित शिथिलाचार को दूर करने के लिए आपने बीकानेर में क्रियोद्धार किया। इस प्रक्रिया में २८४ शिथिलाचारी साधुओं को गच्छ से अलग किया गया।

श्री जिनचन्द्रसूरि के महामन्त्री कर्मचन्द्र बच्छावत और संघपति श्री सोमजी शिवा आदि प्रमुख भक्त और उपासक थे। आपने पीचा आदि १८ गोत्रों की स्थाना की। साहित्य-निर्माण में आपकी जिनवल्लभसूरि कृत 'पौषध-विधि-प्रकरण' पर ३५५४ श्लोक-परिमाण की विशद् टीका अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थों में द्रौपदी, बारह भावना-अधिकार, शीलवती, शांबप्रद्युम्न-चौपाई, बारव्रत नौ रास आदि ग्रन्थ भी मिलते हैं। सं० १६७० में जोधपुर जनपद के बिलाड़ा नगर में आपका देह-विलय हुआ था।^५

१. वही, पत्र ६

२. द्रष्टव्य - (क) मंत्री कर्मचन्द्रप्रबन्ध वृत्ति, (ख) जयसोम कृत् प्रश्रोत्तर-ग्रन्थ,
(ग) श्रीवल्लभोपाध्याय कृत् अभिधान-चिन्तामणि-नाममाला-टीका

३. (क) सरस्वती, पत्रिका, अंक ६, जून १९१२

(ख) मूल प्रतिलिपि — खरतरगच्छ-ज्ञान-भंडार, लखनऊ।

४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ३५७ से ३७७

५. (क) तदीयपद - पूर्वाद्रि - प्रकाशनरविप्रभा:
श्री जिनचन्द्रसूरीन्द्रा, जयन्ति जयिनो धुना ॥
येभ्यो मुद्रा दायियुगप्रधान-पदं प्रभु श्रीमदकब्बरेण।
प्रभूतभाग्योदयसुप्रसिद्धा, जयन्तु ते श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति २२

(ख) खरतरगच्छ-पट्टावली, पत्र ६

१०.२४ गणिसकलचन्द्र — आप जिनचन्द्रसूरि के आद्य शिष्य हैं और हमारे कवि के गुरु हैं। आपके जन्म एवं माता-पिता के सन्दर्भ में कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं होता है। केवल इतना संकेत मात्र मिलता है कि आप रीहड़ गोत्रीय थे। समयसुन्दर ने कल्पसूत्र की कल्पलता नामक टीका की प्रशस्ति में 'गणिसकल चन्द्राख्यो, रीहड़ान्वयभूषणम्' उल्लेख कर उन्हें रीहड़ गोत्रीय ही माना है। समाचारी शतक में भी उक्त बात की पुष्टि मिलती है।^१ खरतरगच्छ-पट्टावली के अनुसार इनकी दीक्षा विक्रम सं० १६१२ में बीकानेर में हुई थी। इसी आधार पर यह अनुमान भी लगाया जाता है कि आप बीकानेर के निवासी थे। आपका स्वर्गवास नाल, बीकानेर में ही हुआ होगा, क्योंकि वहाँ पर आपके ही परिजनों, रीहड़-गोत्रियों के द्वारा आपकी चरण-पादुका का निर्माण हुआ है। सं० १६२८ के सांभली-वाले पत्र में आपके नाम का उल्लेख प्राप्त होता है और आपकी चरण-पादुका की प्रतिष्ठा आचार्य जिनचन्द्रसूरि के द्वारा वि० सं० १६४९ में कराई गई। अतः इसी के बीच आपका स्वर्गवास हुआ होगा।^२

सकलचन्द्र गणि के नाम से जिनवल्लभसूरि कृत 'धर्मशिक्षा' पर वृत्ति तथा प्राकृत में रचित 'हिताचरण' नामक एक अन्य ग्रंथ पर वृत्ति प्राप्त होती है। यद्यपि यह दोनों कृतियाँ गणि सकलचन्द्र की कही गई हैं, तथापि ये गणि सकलचन्द्र कौन से हैं, यह विवादास्पद है। उसी काल में तपागच्छ में विजयदानसूरि के शिष्य और महोपाध्याय भानुचन्द्र के दीक्षागुरु एक अन्य गणि सकलचन्द्र भी थे।^३

कवि ने अपनी गुरु-वंश-परम्परा का जो विस्तृत विवरण अपनी कृति 'खरतरगच्छ-पट्टावली' एवं 'अष्टलक्षी' की प्रशस्ति में दिया है, उसके आधार पर हमने उपर्युक्त विवेचन प्रस्तुत किया है। कवि ने इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा में भी गुर्वावलियों की रचना की है,^४ जिनमें मुख्यतः आचार्य गणनायकों का नाम उल्लेखमात्र ही मिलता है। फिर भी इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि अपनी गुरुवंश-परम्परा से पूर्णतया अवगत थे और उसका सादर स्मरण करते थे। इस गुरुवंश-परम्परा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह गुरु-वंश जैनधर्म की श्वेताम्बर-शाखा के खरतरगच्छ से सम्बन्धित है। खरतरगच्छ वह परम्परा है, जिसने चैत्यवास और मुनि-जीवन के शिथिलाचार के विरुद्ध

१. द्रष्टव्य — समाचारी-शतक, प्रारम्भ ९

२. तच्चारुचरणाम्भोज-चंचरीकमना सना।

गणिः सकलचन्द्राख्यो, विख्यातो मुख्य शैक्षकः ॥

— अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति, २३-२४

३. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ १२-१३

४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, खरतर-गुरु-पट्टावली और गुर्वावली गीतम्, पृष्ठ

३४७-३४९

एक क्रान्ति की थी और जिसमें अनेक प्रभावशाली आचार्य और अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् मुनिजन हुए, जिन्होंने अपनी सामाजिक सेवाओं और कृतियों से खरतरगच्छ का नाम गौरवान्वित किया है तथा जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र बने हैं। खरतरगच्छ की विद्वत् परम्परा में भाषा, साहित्य, दर्शन, इतिहास, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विधाओं पर हजारों कृतियों की रचना हुई। आज भी इनकी कृतियों से जैन-भंडार भरे पड़े हैं। इनकी यह विद्योपासना न केवल जैनधर्म की दृष्टि से अपितु समग्र भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

स्पष्ट है कि समयसुन्दर की गुरु-परम्परा में जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनपतिसूरि, जिनभद्रसूरि आदि अनेक प्रभावशाली युगप्रधान एवं विद्वान् आचार्य हुए हैं। हमारे विवेच्य कवि भी इस विद्वत्-परम्परा की शृंखला की एक कड़ी हैं।

११. शिक्षा और शिक्षा गुरु

कविवर्य समयसुन्दर के जीवनवृत्त के परिप्रेक्ष्य में उनकी स्वरचित कृतियों और पञ्चवर्ती मुनियों की कृतियों के आधार पर अनेक प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रव्रज्या ग्रहण करने से पूर्व कवि ने कुछ विद्याध्ययन किया या नहीं, इस विषय में कोई निश्चित निर्देश नहीं मिलता है। मारवाड़, उसमें भी सांचौर जैसे पिछड़े हुए गाँव में ज्ञानाभ्यास के लिए कवि को अधिक अनुकूलता प्राप्त हुई हो, यह संभव नहीं है; परन्तु इनके द्वारा रचित साहित्य की नामावली-मात्र देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कितना अधिक अध्ययन किया था। कवि की 'अष्टलक्षी' नामक केवल एक कृति ही इनकी प्रखर विद्वता की प्रतिनिधित्व करती है। इसमें यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि दीक्षा के बाद ही इन्हें प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त हुई होगी।

कवि के गुरु सकलचन्द्र का निधन कवि की दीक्षा के कुछ ही वर्षों के पश्चात् हो गया था। अतः इनको गुरु के द्वारा अधिक शिक्षा नहीं मिल पाई थी। कवि के स्वयं के उल्लेखानुसार इनका विद्याध्ययन वाचक महिमराज और उपाध्याय समयराज के सान्निध्य में हुआ था। कवि ने इस तथ्य का अङ्कन इस प्रकार किया है —

श्री महिमराज वाचक-वाचकवर-समयराज पुण्यानां,
मद्विद्यैकगुरुणां प्रसादतो सूत्रशतकमिदम्।^१

× × ×

श्री जिनसिंह मुनीश्वर वाचकवर समयराज-गणिराजाम्,
मद्विद्यैक गुरुणामनुग्रहो मेऽत्र विज्ञेयः॥^२

१. भावशतक (१.१)

२. अनेकार्थरत्न मंजूषा, अष्टलक्षार्थी, प्रशस्ति २८

कवि के इन दोनों शिक्षा-गुरुओं का संक्षिप्त उल्लेख कर देना यहाँ अप्रासंगिक नहीं है।

११.१ महिमराज — आप मेघावी और प्रतिभासम्पन्न थे एवं सदा अध्ययन, मनन, चिंतन में अपना समय सार्थक करते थे। आपका जन्म वि० सं० १६१५ में हुआ था। आपका जन्म-नाम मानसिंह था। आपके पिता का नाम शाह चांपसी चौपड़ा और माता का नाम चाम्पल देवी था, जो खेतासर ग्राम में निवास करते थे। आपने कवि के प्रगुरु आचार्य जिनचन्द्रसूरि से वि० सं० १६२३ में आठ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षावस्था का आपका नाम महिमराज रखा गया था। असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान होने के कारण जिनचन्द्रसूरि ने आपको वि. स. १६४० में 'वाचक' पद प्रदान किया था। सम्राट अकबर आपसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने ही जिनचन्द्रसूरि से निवेदन कर बड़े उत्सव के साथ आपको वि० सं० १६४९ में आचार्य-पद प्रदान करवा कर जिनसिंहसूरि नाम रखवाया। कवि समयसुन्दर ने 'जिनसिंहसूरि-पदोत्सव-काव्यम्' में इस सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किया है। सम्राट जहांगीर ने अपने पिता का अनुकरण कर आपको 'युगप्रधान' का पद प्रदान किया था।^१ आपकी कविवर समयसुन्दर पर इतनी अधिक महती कृपा रही और कवि की भी आपके प्रति इतनी अधिक आस्था थी कि कवि ने आपके ऊपर तैतीस रचनाएँ रची थीं।^२ आपके जिनराजसूरि एवं जिनसागरसूरि आदि विद्वान सुशिष्य थे। वि० सं० १६७४ में आपकी मृत्यु हुई।

११.२ समयराज — आपके जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं होता है। आप उपाध्याय-पद से विभूषित थे। आपने और वाचक महिमराज ने समयसुन्दर को महान् श्रुतज्ञानी बनाया। फलस्वरूप कवि ने आप दोनों शिक्षागुरुओं के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा प्रकट की है। आपकी धर्ममंजरी-चतुष्पदी, पर्युषण-व्याख्यान-पद्धति, जिनकुशलसूरि प्रणीत शत्रुञ्जय-ऋषभजिन-स्तव-अवचूरि, साधु-समाचारी आदि कृतियाँ प्राप्त हैं।

समयसुन्दर ने इन दोनों के समीप किन-किन ग्रन्थों का अभ्यास किया, इसकी सूचना प्राप्त नहीं होती है। फिर भी महोपाध्याय विनयसागर का अनुमान है कि कवि की जिस प्रतिभा का परिचय हमें 'अष्टलक्षी' में प्राप्त होता है, उससे यह प्रमाणित होता है कि आपने वाचकों से सिद्धहेमशब्दानुशासन, अनेकार्थ-संग्रह, विश्वशंभुनाममाला, काव्यप्रकाश, पंचमहाकाव्य आदि ग्रंथों के साथ-साथ जैन आगमिक साहित्य का और जैन-दर्शन का विशेषतया अध्ययन किया था।^३

१. द्रष्टव्य — राजसमुद्र कृत जिनसिंहसूरि-गीतम्।

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृ० ३७८-४०३

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृ० १५

१२. पदारोहण

१२.१ गणिपद — कविप्रवर समयसुन्दर की सर्वप्रथम कृति है, 'भावशतक'। यह कृति कवि की प्रबुद्धता का परिचय कराती है। कवि ने इस कृति के अन्त में अपने नाम के साथ 'गणि' पदावतंश शब्द का प्रयोग भी किया है।^१ इस कृति का निर्माण वि० सं० १६४१ में समाप्त हुआ।^२ कवि को 'गणि' पद कब प्राप्त हुआ, इसका संकेत अन्य कहीं उपलब्ध न होने से यह ग्रन्थ ही इस तथ्य को प्रमाणित करने का मूलाधार है।

कवि की दीक्षा यदि वि० सं० १६२८-३० में हुई मान्य करते हैं, तो गणिपद दीक्षा के ८-१० वर्ष पश्चात् स्वीकार कर सकते हैं। कवि को जिनचन्द्रसूरि ने आगमिक प्रशिक्षण, उच्च अभ्यास, तीक्ष्णबुद्धि, मेधावी प्रतिभा तथा तप-संयम के पालन में दक्ष देखकर गणिपद प्रदान किया होगा। अनुमानतः समयसुन्दर के शिक्षागुरु वाचक महिमराज के साथ ही इन्हें भी जिनचन्द्रसूरि ने वि० सं० १६४०, माघ शुक्ल पंचमी को जैसलमेर में 'गणि' की उपाधि से विभूषित किया होगा।

१२.२. वाचकपद — 'कर्मचन्द्रवंश-प्रबंध'^३ एवं 'चौपाई'^४ के अनुसार समयसुन्दर को 'वाचनाचार्य' अथवा वाचक-पद प्राप्त हुआ था। वाचक-पद संप्राप्त होने के पश्चात् कवि की लिखित शाम्बप्रद्युम्न चौपाई, चार प्रत्येक-चौपाई, मृगावती-चरित्र-चौपाई इत्यादि कृतियों में स्वयं को 'वाचक समयसुन्दर' के रूप में ही प्रस्तुत किया है।

राजसोम कृत 'समयसुन्दर गीतम्' के अनुसार यह निश्चित है कि कवि के प्रगुरु ने ही आपको 'वाचक पद' प्रदान कर सम्मानित किया था।^५ कवि के शिक्षागुरु वाचक महिमराज को लाहौर में 'आचार्य पदवी' प्रदान करते समय ही कवि को 'वाचक पद' की उद्घोषणा हुई थी। यह पदोत्सव-कार्यक्रम वि० सं० १६४९, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को सम्पन्न हुआ था।^६ कवि ने इस समय तक रास, गीत, प्रबन्ध, स्तवन, छत्तीसी आदि काव्य के विविध अङ्गों पर साहित्य लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

१. तच्छिष्य समयसुन्दरगणिना स्वाभ्यास वृद्धिकृते। — भावशतक (१९)

२. शशिसागररस-भूतल संवति विहितं च भावशतकमिदम्। — भावशतक (१००)

३. तेषु च गणि जयसोमा, रत्ननिधानाश्च पाठका विहिता।

गुणविनय समयसुन्दर गणि कृतौ वाचनाचार्यौ॥ — कर्मचन्द्रवंश-प्रबन्ध (६२)

४. वाचक पद गुणविनय नइ, समयसुन्दर नइ दीधउ रे।

युगप्रधान जी नइ करइ, जाणि रसायण सीधउ रे॥ — जैन-रास-संग्रह, भाग-३, चौपाई

५. (क) युगप्रधान जिनचन्द्र स्वयंहस्त वाचक हो पद लाहोरे दियो।

— समयसुन्दर कृत नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई,

(ख) राजसोम कृत समयसुन्दर जी गीतम्, पृष्ठ १३३

६. कवि समयसुन्दर कृति जिनसिंहसूरि पदोत्सव-काव्यम्

१२.३ उपाध्याय पद — कवि को वाचक पद के इक्कीस-बाईस वर्ष के पश्चात् उपाध्याय-पद प्राप्त हुआ था। कवि राजसोम की रचना के आधार पर यह संकेत तो मिलता है कि समयसुन्दर को उपाध्याय-पद उनके शिक्षा गुरु जिनसिंहसूरि के कर-कमलों से जोधपुर जिले के लवेरा नगर में प्रदान किया गया था,^१ लेकिन कवि राजसोम ने यह उल्लेख नहीं किया है कि यह पद उन्हें किस संवत् में दिया गया। अस्तु! समयसुन्दर की कृतियों पर से इसका संवत् निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

कवि समयसुन्दर अपनी रचनाओं में वि० सं० १६७१ तक 'वाचक समयसुन्दर' के रूप में ही अपनी पहचान करवाते हैं। किन्तु सं० १६७२ और उसके पश्चकाल में रचित कृतियों में कवि ने अपने नाम के साथ 'उपाध्याय' विशेषण का प्रयोग किया है। वि० सं० १६७२ में रचित कृतियों में 'उपाध्याय' उपाधि का उल्लेख इस प्रकार है —

तेषां शिष्यो मुख्यः स्वहस्तदीक्षित सकलचन्द्रगणिः।

तच्छिष्य-समयसुन्दर, सुपाठकैरकृत शतकमिदम् ॥^२

×

×

×

जयवंता गुरु राजिया रे, श्री जिनसिंहसूरि राय।

समयसुन्दर तसु सानिधि करी रे, इप पभणइ उवझाय रे ॥^३

अतः स्पष्ट है कि समयसुन्दर को वि० सं० १६७१ से १६७२ तक के मध्यवर्ती काल में ही 'उपाध्याय' पद प्रदान किया गया था। श्री अगरचन्द नाहटा तथा श्री भंवरलाल नाहटा ने कवि की अन्य कृतियों में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यही बात सिद्ध की है कि 'अनुयोगद्वार' (रचना नं० १६७१) की पुष्पिका में 'वाचक' और 'ऋषिमंडल-वृत्ति' (१६७२) की पुष्पिका में उपाध्याय-पद उल्लिखित होने से इसी बीच इनका 'उपाध्याय पद' पाना निश्चित है।

१२.४ महोपाध्याय-पद — प्राच्य साहित्य के अवलोकन से अवगत होता है कि खरतरगच्छ की यह परम्परा रही है कि उपाध्याय-पद में जो सबसे बड़ा होता है, वही महोपाध्याय कहलाता है। पश्चवर्ती कई कवियों ने समयसुन्दर को महोपाध्याय की श्रेष्ठ उपाधि से सूचित किया है। यह उपाधि इन्हें परम्परागत प्राप्त हुई थी, क्योंकि आचार्य जिनसिंहसूरि के कालधर्म प्राप्त करने के पश्चात् अर्थात् वि० सं० १६८० से गच्छ में मात्र आप ही ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध और दीक्षापर्यायवृद्ध थे। अतः गच्छ की परम्परा के कारण कवि महोपाध्याय कहलाये। यही कारण है कि वादी हर्षनन्दन ने अपनी रचना

१. श्री जिनसिंहसूरिद सहेर लवेर हो पाठक-पद कीयो।

— नलदवदन्ती रास, परिशिष्ट ई; राजसोम कृत समयसुन्दर गीतम्, पृष्ठ १३३

२. विशेष-शतक (४)

३. सिंहलसुत-प्रियमेलक-रास (११-६)

‘उत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति’ के आरम्भ में ही उन्हें ‘महोपाध्याय’^१ के विशेषण से सम्बोधित किया है।

उपर्युक्त पदों की प्राप्ति से स्पष्ट हो जाता है कि कवि अपने समय के एक विश्रुत विद्वान् थे, संघ पर उनकी प्रतिभा की अनुपम छाप थी और वे जन-जन के श्रद्धा के अभिनव पात्र थे।

१३. पद-यात्राएँ

यात्रा शिक्षा का एक साधन है। भिन्न-भिन्न स्थानों को देखने तथा सभी प्रकार के व्यक्तियों से बातें करने से हम बहुतेरी नयी चीजें सीखते हैं। यूरोप में तो यात्रा के बिना शिक्षा अधूरी समझी जाती है। प्राचीन भारत में भी तीर्थयात्रा को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। अनेक नदियों और पहाड़ों के इस देश में पद-यात्राएँ करना तो बड़ा आनन्दप्रद होता है।

आज विज्ञान के युग में जब आवागमन के द्रुतगामी साधन उपलब्ध हैं और मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है, तब पद-यात्राओं के महत्त्व का प्रतिपादन करना भी एक प्रश्न-चिह्न ही बन जाता है। आज जब यह कहा जाता है कि जैन मुनि इस युग में भी वाहन का उपयोग नहीं करता। नहीं करना चाहिए, तो अनेकों को आश्चर्यजनक लगता है, किन्तु पद-यात्राओं का अपना एक विशिष्ट महत्त्व और स्थान है, जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

किसी देश और संस्कृति की मूलात्मा का दर्शन उस सुदूर ग्रामीण अंचलों में ही होगा, जो आज भी आवागमन के द्रुतगामी साधनों से वंचित हैं। पद-यात्री जिस निकटता से उन लोगों के जीवन, भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों का अवलोकन एवं आकलन कर पाता है, वह द्रुतगामी वाहन-यात्रियों के लिए संभव नहीं है।

पद-यात्राओं में व्यक्ति अधिकाधिक व्यक्तियों से सम्पर्क में आता है। उसका ज्ञान एवं दृष्टिकोण, व्यापक और उदार बनता है। पद-यात्राओं में उसे अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिलता है। यथार्थतः पद-यात्रा आचार-विचार की गंगा-यमुना को ग्राम-ग्राम में ले जाने वाली एक अनुपम सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक परम्परा है और देश-दर्शन, स्वाध्याय, स्वानुभूति, सत्संग एवं ज्ञानार्जन का उत्कृष्ट साधन है।

वाहन-यात्रा में प्रकृति का वह सौन्दर्य-बोध भी कथमपि सम्भव नहीं है, जो किसी पदयात्री को हो सकता है। कहाँ भीड़ों से संकुल वाहनों की यात्रा और कहाँ शान्त तथा नीरव पद-यात्राएँ। दोनों में कोई तुलना नहीं। पद-यात्री पदयात्रा में जिस आध्यात्मिक शान्ति और आत्मतोष का अनुभव करता है, वह वाहन-यात्री को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता।

१. श्री समयसुन्दर-महोपाध्यायचरणसरोरुहाभ्यां नमः। — उत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति (प्रारम्भ में)

वाहन-यात्रा के लिए अर्थ आवश्यक होता है, किन्तु 'अत्थो मूलं अणत्थाणं'- यह आगमवाक्य है। अतः एक अपरिग्रही साधक के लिए अर्थ जुटाना न केवल उसके चारित्रिक पतन का कारण होगा, अपितु उसे पूंजीपतियों का आश्रित भी बना देगा, उसका स्वावलम्बीपन और निरपेक्ष जीवन समाप्त हो जाएगा। ऐसी अवस्था में वह साधु नहीं, सांसारिक वृत्तियों में रचा-पचा गृहस्थ ही होगा।^१ अतः अध्यात्म-जगत् में रमण करने वाले साधु के लिए पद-यात्रा ही अधिक उपयुक्त एवं उचित है।

महोपाध्याय समयसुन्दर जैन साधु थे, इसलिए पदयात्रा करना उनके लिए एक धार्मिक दायित्व था, क्योंकि शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार मुनि को नवकल्पी विहार करना चाहिये अर्थात् वर्षावास को छोड़कर शेष आठ मास पदयात्रा करनी चाहिए।^२ अतः कवि ने दीक्षा से मृत्यु पर्यन्त जो पद-यात्राएँ की थीं, उसका क्षेत्र काफी विस्तृत और व्यापक है। कवि के रचित ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ, तीर्थमालाएँ और तीर्थस्तवों को देखने से ज्ञात होता है कि कवि ने सिन्ध, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों की पदयात्रा की थी। कवि की पदयात्रा सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारे पास उनकी कृतियों के अतिरिक्त आज अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

कवि समयसुन्दर की संवतोल्लेख पूर्वक सर्वप्रथम रचना 'भावशतक' है, जो वि० सं० १६४१ में विरचित है। वि० सं० १६४१ से पूर्व की कोई कृति प्राप्त न होने से यह कहना कठिन है कि इससे पूर्व कवि ने कहाँ-कहाँ पर्यटन किया था। अनुमानतः वे दीक्षा ग्रहण करने के बाद अपने गुरु और प्रगुरु के साथ ही विचरण करते रहे होंगे; क्योंकि प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यही प्रतीत होता है कि कविवर काफी समय तक अपने गुरुओं के सान्निध्य में ही रहे, जहाँ उनके व्यक्तित्व का परिमार्जन तथा विकास हुआ।

पद-यात्रा के सन्दर्भ के कवि समयसुन्दर की सर्वप्रथम रचना 'श्री शत्रुञ्जय तीर्थभास'^३ और 'श्री शत्रुञ्जय आदिनाथ भास'^४ प्राप्त हुई है। इससे परिज्ञात होता है कि वि० सं० १६४४ में कवि के प्रगुरु जिनचन्द्रसूरि के नेतृत्व में अहमदाबाद से पोरवाड़-वंश के सोमजी और शिवजी ने शत्रुञ्जय महातीर्थ, जिसे मन्दिरों का नगर कहा जाता है, कि यात्रा करने के लिए श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ निकाला। इस विराट संघ में कवि ने भी अपने प्रगुरु, शिक्षागुरु प्रभृति के संग शत्रुञ्जय की यात्रा की। कवि ने उल्लेखानुसार यह पदयात्रा चैत्र कृष्णा चतुर्थी, बुधवार को सम्पूर्ण हुई। कवि ने लिखा है कि यहाँ का वातावरण शांत है, प्रकृति प्रसन्न है, वायुमण्डल स्वच्छ है और देवालय-दर्शन कल्याणकर है।

१. द्रष्टव्य — दशवैकालिक (६.१९)

२. बृहत्कल्पभाष्य (६३४६)

३. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृ० ६७-६८

४. द्रष्टव्य — वही, पृष्ठ ६५-६६

तत्पश्चात् कवि की रचना 'श्री जिनसिंहसूरि-सपादाष्टक'^१ से ज्ञात होता है कि सम्राट अकबर को जैन धर्म का विशिष्ट बोध पाने की इच्छा हुई। अतः इस उद्देश्य से मन्त्री कर्मचन्द्र ने श्रीजिनचन्द्रसूरि का भयंकर ग्रीष्मऋतु में आना कष्टकर जान, उनके मूर्द्धन्य शिष्य वाचक महिमराज को निमन्त्रण रूप विज्ञप्तिपत्र देकर जिनचन्द्रसूरि के समीप भेजा। श्री जिनचन्द्रसूरि ने महिमराज को हमारे कवि आदि छः विद्वान् मुनियों के साथ वि० सं० १६४७ में लाहौर भेजा। कवि के उल्लेखानुसार वे सिरोही, जालोर, रिणी, सरसापुर, पीरोजपुर आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों में पादस्पर्श करते हुए लाहौर पहुँचे। इस लम्बी पदयात्रा में कवि ने कई राजमहल, किले, प्राचीन इमारतें, सुन्दरनगर, नदियाँ, बाग-बगीचे, तीर्थ आदि दर्शनीय स्थल देखे — ऐसा संकेत कवि ने 'श्री जिनसिंहसूरि-सपादाष्टक' में किया है।

लाहौर में इनका अत्यधिक अभिनन्दन तथा स्वागत हुआ। इन विद्वान् मुनियों की आर्षवाणी ने सम्राट अकबर और जहांगीर को बहुत प्रभावित किया, जिससे उन दोनों की इनके प्रति श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। कवि समयसुन्दर की 'अष्टलक्षी' कृति^२ के अनुसार वि० सं० १६४९, श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को काश्मीर-विजय के उद्देश्य से अकबर ने प्रयाण कर राजा श्री रामदास की वाटिका में विश्राम ग्रहण किया, जहाँ कवि ने 'राजा नो ददते सौख्यम्' इस आठ अक्षर में बने वाक्य का १०,२२,४०७ अर्थ करके अपने अभूतपूर्व ग्रन्थ को पढ़कर सुनाया। उत्तरवर्ती कवियों के संकेतों के अनुसार अकबर तथा उपस्थित विद्वत्परिषद ने इस अद्वितीय ग्रन्थ की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।^३ 'कर्मचन्द्रवंश-प्रबन्ध' के अनुसार काश्मीर विजय कर लाहौर वापस आने पर अकबर के अनुरोध पर महिमराज को 'आचार्य' पद और कवि समयसुन्दर को 'वाचक' पद से सम्मानित किया गया।

'स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तव'^४ तथा 'दादा श्री जिनकुशलसूरि-गुरोष्टकम्'^५ रचना से जानकारी मिलती है कि कवि वि० सं० १६५१ में 'गडालय' गये और दादा गुरुदेव के तीर्थ का मंगल दर्शन प्राप्त किया। छह राग-छत्तीस रागिणी नामगर्भित श्री जिनचन्द्रसूरि

१. द्रष्टव्य — वही, पृष्ठ ३९०-३९३

२. अनेकार्थरत्नमंजूषा — अष्टलक्षार्थी, पृष्ठ ५५

३. द्रष्टव्य — (क) राजसोम कृत महोपाध्याय श्री समयसुन्दर गीतम्,
(ख) देवीदास कृत महोपाध्याय समयसुन्दरजी गीतम्,
(ग) वादी हर्षनन्दन कृत समयसुन्दर उपाध्यायानां गीतम्,

— नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृ० १३२-१३८

४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १८४-१८५

५. वही, पृष्ठ ३४९-३५०

गीत^१ में प्राप्त उल्लेखों के अनुसार कवि वि०सं० १६५२ में खम्भात में गये। गीत में कार्तिक शुक्ला चतुर्थी तिथि का निर्देश भी है, जिससे पता चलता है कि वह चातुर्मास उन्होंने खंभात में व्यतीत किया था। जैसलमेर के खरतरगच्छ-पंचायती-भंडार में विद्यमान कवि की स्वलिखित 'मंगलवाद'^२ रचना की अन्तिम पंक्तियाँ यह बात स्पष्ट करती हैं कि वे वि० सं० १६५३ में पद-यात्रा करते हुए इलादुर्ग पहुँचे थे। सप्तदश राग गर्भित श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्व-जिनस्तवनम्^३ में प्राप्त संकेतों के अनुसार कवि वि० सं० १६५६ में जैसलमेर आए और अक्षय तृतीया को वे जैसलमेर में रहे।

विक्रम संवत् १६५७ में जिनसिंहसूरि के साथ चैत्रकृष्ण चतुर्थी-तिथि को आप आबू पहुँचे तथा वस्तुपाल और तेजपाल द्वारा बनाये गये अद्वितीय जिनमंदिरों का दर्शन किया। यह सारा उल्लेख 'श्री आबूतीर्थ स्तवन'^४ में प्राप्त होता है। 'शत्रुञ्जय आदिनाथ भास'^५ के अनुसार कवि ने वि० सं० १६५८ में पुनः शत्रुञ्जय तीर्थ के दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया। चैत्रपूर्णिमा का इस तीर्थ में एक विशेष महत्त्व है। अतः कवि ने यह दिन यहीं पर व्यतीत किया। 'चौबीसी'^६ की रचना वि०सं० १६५८, विजयादशमी को पूर्ण हुई। इसका अभिप्राय यह है कि वर्षावास कवि ने अहमदाबाद में सम्पन्न किया। 'अष्टापदस्तवन'^७ में वे यह उल्लेख भी करते हैं कि इसी वर्ष मनजी शाह ने यहाँ अष्टापद तीर्थ की रचना कराई। यहाँ से इन्होंने पाटण की ओर विहार किया होगा, क्योंकि नरसिंह भट्ट प्रणीत 'श्रवण-भूषण' ग्रन्थ की कवि के हाथ की लिखी पाण्डुलिपि प्राप्त होती है,^८ जिसमें वि० सं० १६५९, चैत्र पूर्णिमा के दिन आपने पाटण में इस ग्रन्थ को लिखा है, ऐसा संकेत प्राप्त होता है।

'शाम्बप्रद्युम्न-चौपाई' के आधार पर कवि पाटण से खंभात आए थे और यहीं चातुर्मास व्यतीत करते हुए उन्होंने इस ग्रन्थ को वि० सं० १६५९, विजयादशमी को पूर्ण किया था।^९ 'नागौर मण्डन पार्श्वनाथ स्तवनम्'^{१०} में उपलब्ध उल्लेखानुसार वे वि० सं० १६६१, चैत्रवदि पंचमी को नागौर गये थे। वि० सं० १६६२ में विभिन्न स्थलों में पादभ्रमण

१. द्रष्टव्य — वही, पृष्ठ ३६५-३६८
२. मंगलवाद, प्रशस्ति (अप्रकाशित)
३. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १४६-१५३
४. वही, पृष्ठ ७७-७८
५. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ६८-७०
६. वही, पृष्ठ ३-१४
७. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ६१-६२
८. मोतीचन्द खजांची, बीकानेर के संग्रह में उपलब्ध
९. द्रष्टव्य — शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई, ढाल २१, छन्द ४ (अप्रकाशित)
१०. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १८०-१८१

एवं अहिंसाप्रचार करते हुए वे सांगानेर पहुँचे। 'दान-शील-तप-भावना-संवाद'^१ नामक रचना इस तथ्य को प्रकट करती है। वि० सं० १६६२ में ही कवि ने घंघाणी तीर्थ की ओर पाद-प्रयाण किया। 'श्रीघंघाणी तीर्थ स्तवन'^२ के निर्देशानुसार ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को दूधेला सरोवर के निकटस्थ खोखर के पृष्ठ भाग की खुदाई करते समय एक भूमिगृह निकला, जिसमें जैन और शिव की पैसठ भव्य प्रतिमाएं प्राप्त हुईं, जिसका दर्शन उन्होंने माघमास में किया। यहाँ उन्हें अन्य अनेक प्राचीन कलाकृतियाँ और पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्रियाँ देखने को मिली थीं।

वि० सं० १६६३, कार्तिक शुक्ला दशमी को बीकानेर में 'रूपकमाला' नामक भाषा-काव्य पर आपने चूर्ण बनाई। इससे यह निश्चित हो जाता है कि कवि वि० सं० १६६३ में बीकानेर गये थे और वहीं पर चातुर्मास बिताया था। भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में उपर्युक्त चूर्ण की कवि-लिखित प्रति प्राप्त होती है। यह प्रति वि० सं० १६६४, चैत्र पूर्णिमा को 'चाटसू' नगर में पूर्ण लिखी गई। चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई^३ में प्राप्त संकेतों के आधार पर कवि ने चाटसू से आगरा की ओर उग्र विहार किया। यह चातुर्मास आगरा में ही हुआ था। इस तथ्य की पुष्टि एक और गीत करता है, वह है — आगरा मंडन श्री विमलनाथ-भास।^४ तत्पश्चात् वि० सं० १६६५, चैत्र शुक्ला दशमी को अमरसर (शेखावटी) में रचित 'चातुर्मासिक व्याख्यान पद्धति'^५ नामक कृति प्राप्त होती है। अमरसर में ही निर्मित 'अमरसर मंडन शीतल-जिनस्तवनम्'^६ नामक रचना से भी यह बात स्पष्ट होती है कि कवि पद-यात्रा करते हुए अमरसर आए और वहाँ से वि० सं० १६६६ में वीरमपुर पहुँचे, जहाँ उन्होंने 'कालकाचार्य-कथा'^७ की रचना की थी। 'ज्ञान-पंचमी बृहत्स्तवनम्'^८ नामक रचना भी इसी स्थान पर ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को लिखी गई।

महोपाध्याय समयसुन्दर का सिन्धी भाषा पर अच्छा अधिकार था और उन्होंने सिन्धी में अनेक रचनाओं का प्रणयन भी किया था। उन रचनाओं से ज्ञात होता है कि कवि ने देश के अन्य प्रदेशों का पर्यटन करने के साथ-साथ सिन्ध-प्रान्त में भी पदयात्राएँ की थीं। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सिन्ध-प्रान्त में इनका विचरण दो-तीन वर्ष माना जा सकता है।

१. वही, पृष्ठ ५८३-५९३

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ २३२-२३५

३. आनंदकाव्यमहोदधि, मौक्तिक ७, चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई (४-९-३), पृष्ठ १४७

४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १०२-१०३

५. द्रष्टव्य — चातुर्मासिक व्याख्यान पद्धति, प्रशस्ति (अप्रकाशित)

६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ९७-१००

७. द्रष्टव्य — कालिकाचार्य-कथासंग्रह, कालिकाचार्य-कथा, प्रशस्ति

८. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ २३६-२३९

'पौषध-विधि-स्तवन'^१ से विदित होता है कि कविवर वि० सं० १६६७ में सिन्ध प्रदेश में गए थे और उन्होंने मार्गशीर्ष, शुक्ल पक्ष दशमी को मरोट नगर में उपर्युक्त रचना निर्मित की। मरोट से वे उच्च नगर आए और वहाँ 'श्रावकाराधना'^२ नामक कृति का प्रणयन किया। इस प्रान्त के विविध अंचलों में घूमते हुए वे वि० सं० १६६७ में मुलतान पहुँचे। इसी नगर में रचित 'सती मृगावती-चरित्र चौपाई'^३ कृति साहित्य-संसार को प्राप्त हुई। चैत्र कृष्ण दशमी को यहीं पर लिखित 'निरियावली सूत्र' की पाण्डुलिपि यति चुन्नीलाल के संग्रहालय में विद्यमान है। इसी स्थल पर लिखित एक और काव्य-रचना उपलब्ध हुई है 'कर्मछत्तीसी'। इसमें उल्लिखित समय के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने माघ शुक्ला षष्ठी तक मुलतान में ही वास किया।

वि० सं० १६६९ में कवि सिद्धपुर (सीतपुर) गये। वहाँ होने वाली भयंकर हिंसा को उन्होंने रोकने का अथक प्रयास किया। जैनधर्म प्रारम्भ से ही अहिंसा का प्रबल प्रसारक रहा है। जैन आचार्य और मुनिगण हिंसा को समाप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। अनेक जैनाचार्यों ने राजाओं को प्रभावित कर अमारि-घोषणा करवाई और इस प्रकार प्राणियों को अभयदान दिया। कवि समयसुन्दर के दादागुरु आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने भी अकबर जैसे मुस्लिम सम्राट को भी अहिंसा के लिए प्रेरित किया और जीव-वध संबंधी अनेक सनदें प्राप्त कीं तथा अमारि-घोषणाएँ करवाईं। विवेच्य कवि भी इसी परिवेश में रहे थे और उनके मन में भी अहिंसा की उत्कट भावना थी। यही कारण है कि हमारे विवेच्य कवि ने भी हिंसा का प्रबल विरोध किया और मखनूम मुहम्मद शेख काजी को उपदेश देकर सिन्ध प्रान्त में गो-जाति की रक्षा करवाई तथा पंचनदी के जलचर जीवों की हिंसा बन्द कराई। अन्य जीवों के लिए भी इन्होंने अमारि-पटह बजवाकर विमल कीर्ति प्राप्त की। यह पुष्ट प्रमाण उत्तरवर्ती कवियों के उल्लेखों से ज्ञात होता है।^४ सिद्धपुर में ही कवि ने अपनी 'पुण्यछत्तीसी'^५ नामक कृति लिखी थी।

सिन्ध प्रान्त में ही घटित कवि के जीवन की एक घटना जैन समाज में बहुत प्रसिद्ध है। सिन्ध प्रदेश में विचरण करते समय एक बार वे श्रावक-संघ सहित 'उच्चनगर'

१. वही, पृष्ठ ५९४-६००

२. द्रष्टव्य — श्रावकाराधना, प्रशस्ति (अप्रकाशित)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५२६-५३३

४. (क) नलदवदंती-रास, परिशिष्ट ई; कवि राजसोम कृत समयसुन्दर गीतम् पृष्ठ १३२

(ख) वही, कवि देवीदास कृत समयसुन्दर गीतम्, पृष्ठ १३५

(ग) वही, वादीहर्षनन्दनकृत समयसुन्दरगीतम्, पृष्ठ १३८

(घ) हर्षनन्दन कृत ऋषिमण्डल-टीका, प्रशस्ति (११)

५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५३३-५४०

जाते समय मार्ग में आई हुई 'पंचनदी' को पार करने के लिए नौका में बैठे। नाविक ने नौका खेना प्रारम्भ किया। जब नौका नदी के मध्य पहुँची, तब अचानक वर्षा शुरू हो गई और भयंकर तूफान आ गया। नौका इधर-उधर डगमगाने लगी। मस्तूल टूट गया। सभी को अपने सिर पर मृत्यु नृत्य करती हुई दिखाई देने लगी। हाहाकार के सिवाय अन्य कोई उद्यम करने को नहीं बचा।

ऐसी विपदा में समयसुन्दर ने अपने एकमात्र इष्ट — जिनकुशलसूरि का निश्चल भाव से ध्यान किया। वे ध्यान-साधना में पूर्ण मग्न हो, उनकी आराधना में तल्लीन हो गये। फलस्वरूप इष्ट देवात्मा ने वहाँ पहुँचकर संकट दूर किया। कवि स्वयं इस चमत्कारपूर्ण घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं —

आयौ आयौ जी समरंता दादौ आयौ।

संकट देख सेवक कुं सद्गुरु देराउर तें धायो जी ॥ १ ॥

दादा वरसे मेह नै रात अंधारी, वाय पिण सबलौ वायौ।

पंच नदी हम बइठे बेड़ी, दरिये हो चित्त डरायौ जी ॥ २ ॥

दादा उच्छ भणी पहुँचावण आयो, खरतर संघ सवायो।

समयसुन्दर कहे कुशल कुशल गुरु, परमानन्द सुख पायौ जी ॥ ३ ॥^१

जिनकुशलसूरि के प्रति कवि की अटूट श्रद्धा थी। इसी कारण रास-चौपाई आदि कृतियों में भी इनके प्रति भक्ति प्रकट हुई है।

सिन्ध प्रदेश से कविवर मारवाड़ आदि क्षेत्रों में होते हुए गुजरात प्रान्त में पहुँचे। 'नववाड़शील-गीतम्'^२ रचना के अनुसार वे वि० सं० १६७० में अहमदाबाद आते हैं और वहीं पर वर्षावास करते हैं। वर्षाकाल में ही इनके प्रगुरु का देहावसान हो जाता है। सुदूर होने के कारण कवि उनके अंतिम दर्शन नहीं कर पाते हैं। इस बात का उन्हें अति दुःख होता है। अपने आन्तरिक भावों को वे 'आलीजा-गीतम्'^३ नामक दो गीतों में व्यक्त करके उनके महान् उपकारों का स्मरण करते हैं तथा गीत के माध्यम से ही उन्हें श्रद्धा के पुण्य समर्पित करते हैं।

अहमदाबाद में चातुर्मास समाप्त होने पर कवि ने राजस्थान की ओर प्रयाण किया। 'अनुयोग-द्वार' एवं 'प्रश्नव्याकरण' नामक ग्रन्थों की पुष्पिका में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वि० सं० १६७१ का चातुर्मास कवि ने बीकानेर में किया था और ये दोनों ग्रन्थ उनके विद्वान् शिष्य जयकीर्ति को उन्होंने पठनार्थ दिये। इसके पश्चात् कवि लवेरा (जोधपुर) गये होंगे, क्योंकि गणि राजसोम ने अपने गुरु-गीत 'महोपाध्याय समयसुन्दर

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दादा श्री जिनकुशलसूरि गीतम्, पृष्ठ ३५०-३५१

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ४५८-४५९

३. वही, पृष्ठ ३७४-३७८

गीतम्' में उल्लेख किया है कि लवेरा शहर में इन्हें 'उपाध्याय' पद प्रदान किया गया। यद्यपि उस गीत में उन्होंने सं० समय की सूचना नहीं दी है, किन्तु 'अनुयोगद्वार' (१६७१) की पुष्पिका में 'वाचक' तथा ऋषिमण्डलवृत्ति (१६७२) की पुष्पिका (प्रशस्ति) में उपाध्याय पद का उल्लेख होने से इसी अवधि के मध्य वे लवेरा शहर गये होंगे और उन्हें 'उपाध्याय' पद से अलंकृत किया गया होगा।

उत्कट साहित्य-साधना हेतु कविवर्य विहार करते हुए वि० सं० १६७२ में मेड़ता आए। वहाँ पर उन्होंने चार वर्ष तक निरन्तर साहित्य-साधना की। 'समाचारी-शतक', 'विशेष-शतक', 'प्रियमेलक-चौपाई', 'पुण्यसार-चौपाई', 'गाथासहस्री', 'नलदवदन्ती-रास'^१, 'विचार-शतक' आदि कवि की प्रमुख कृतियाँ इसी चार वर्षों की अवधि में रची गईं। 'श्री राणकपुर आदिजिन स्तवन'^२ के आधार पर विदित होता है कि कवि सं० १६७२ में वर्षावास समाप्त करके १०४४ स्तम्भों के अद्वितीय जिनमंदिर का दर्शन करने के लिए राणकपुर भी गये, परन्तु वापस मेड़ता आ गये थे।

जालोर में प्रतिष्ठापित श्री जिनकुशलसूरि की चरण पादुकाओं में अंकित अभिलेख से ज्ञात होता है कि कवि ने ही वि० सं० १६७५ में उन चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा करवाई थी।

राजस्थान के रेगिस्तानी प्रदेशों में पदयात्रा करते हुए वे वि० सं० १६७७ में अपनी जन्मभूमि सांचौर पहुँचे। यहीं उन्होंने चातुर्मास किया और 'सीताराम चौपाई'^३ जैसी विशिष्ट भाषा-कृति का प्रणयन किया। 'सांचोर-तीर्थ महावीर जिनस्तवनम्'^४ से बोध होता है कि कवि चातुर्मास के पश्चात् भी वहीं रहे। इस काल में उन्होंने 'निरयावली-सूत्र' का बीजक लिखा, जो यति नेमिचन्द्र, बाड़मेर के संग्रह में है। वि० सं० १६७८ में कवि ने आबू तीर्थ का दर्शन किया। 'श्री आबू आदीश्वर भास'^५ से इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है। वि० सं० १६७९, भाद्रपद कृष्ण एकादशी को कवि का पालनपुर में लिखा 'पट्टावली-पत्र' अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। 'पट्टावली-पत्र' में प्राप्त उल्लेखों के अनुसार उन्होंने यह चातुर्मास पालनपुर में किया था।

वल्कलचीरी-चौपाई^६, मौनएकादशी-स्तवन^७, गणधरवसही आदि जिन स्तवन^८

१. नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३२
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ८२-८३
३. सादूल रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर से प्रकाशित
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ २०५-२०६
५. वही, पृष्ठ ७८-८०
६. वल्कलचीरी-चौपाई, (१०-५)
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ २४०-२४१
८. वही, पृष्ठ ८६-८९

से स्पष्ट होता है कि उनका वि० सं० १६८१ का चातुर्मास जैसलमेर में हुआ था। इसी वर्ष वे लौद्रवा तीर्थ के दर्शनार्थ गए। 'लौद्रवपुर सहस्रफणा पार्श्वस्तवनम्'^१ में ऐसा निर्देश है कि वे कार्तिक शुक्ला १५ को लौद्रवा पहुँचे थे। वि० सं० १६८२, श्रावण वदि में रचित 'शत्रुञ्जय-रास'^२ कृति से प्रतीत होता है कि वे लौद्रवा से ही संघपति थाहरु शाह द्वारा निकाले गये शत्रुञ्जय तीर्थ संघ में सम्मिलित हुए। वहाँ से उन्होंने नागौर की ओर पदयात्रा की और वहीं पर इस रास का निर्माण किया। 'वस्तुपाल-तेजपाल-रास'^३ नामक रचना से विदित होता है कि इसी वर्ष वे तिवरी गये। 'षडावश्यक-बालावबोध' के अनुसार वि० सं० १६८३ में कवि पुनः जैसलमेर गए थे। इसी स्थान और इसी वर्ष में इनके रचे हुए 'बीकानेर चौबीसटा चिन्तामणि आदिनाथ-स्तवन'^४ तथा 'श्रावक बारह व्रत कुलक'^५ — ये अष्टक उपलब्ध हैं।

'सन्तोष छत्तीसी'^६ के आधार पर स्पष्ट होता है कि वि० सं० १६८४ का चातुर्मास कवि ने लूणकरणसर में किया था। यहाँ के जैन समाज में परस्पर संगठन का अभाव था। उनके मनोमैल को स्वच्छ करने के लिए कवि ने 'सन्तोष-छत्तीसी' नामधेयक रचना बनाकर प्रवचन के रूप में सुनायी, जिससे समाज में शान्ति और प्रेम स्थापित हो गया। यहीं इन्होंने 'दुरियर-स्तोत्र-वृत्ति' की रचना की। इसके अतिरिक्त इस वर्ष की साहित्यिक सेवाओं में कल्पसूत्र पर कल्पलता नामक टीका का प्रारम्भीकरण, दीक्षा-प्रतिष्ठा-शुद्धि, विशेष-संग्रह, विशंवाद-शतक, बारह व्रतरास आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। वि० सं० १६८५ में वे रिणी पहुँचे। 'यति-आराधना' और कल्पसूत्र की कल्पलता-टीका यहीं पर पूरी की।

महोपाध्याय समयसुन्दर अपनी पद-यात्राओं को तीर्थयात्रा एवं धर्मप्रचार आदि का माध्यम बनाकर सफल कर रहे थे। वि० सं० १६८७ में वे पदयात्राएँ करते हुए पाटण पहुँचे; 'जयतिहुअण-वृत्ति'^७ और 'भक्तामर-स्तोत्र-सुबोधिका-वृत्ति'^८ इस बात की निर्णायक है। पाटण से उन्होंने अहमदाबाद की ओर विहार किया। ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर वि० सं० १६८७ में गुजरात-प्रान्त में भीषण दुष्काल पड़ा था। इसका आँखों देखा सच्चा

१. वही, पृष्ठ १५३-१५४
२. वही, पृष्ठ ५७५-५८३
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ८३-८५
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ४६५-४६७
५. वही, पृष्ठ ४६५-४६७
६. वही, पृष्ठ ५४०-५४४
७. जयतिहुअण-वृत्ति, प्रशस्ति (१)
८. भक्तामर-सुबोधिका-वृत्ति, प्रशस्ति, पृष्ठ ९७-९८

हाल कवि ने विशेषशतक की प्रशस्ति में, चम्पक-श्रेष्ठि-चौपाई^१ में संक्षिप्त और 'सत्यासिया दुष्काल-छत्तीसी'^२ में विस्तृत रूप में वर्णित किया है, जिसका पठन रोम-रोम में कम्पन उत्पन्न कर देता है। ऐसा अनुभव होता है जैसे इस दुष्काल में हम भी भुक्त-भोगी हैं।

'नवतत्त्ववृत्ति'^३ से जानकारी मिलती है कि वि० सं० १६८८ का वर्षावास कवि ने अहमदाबाद में समाप्त किया। 'स्थुलिभद्र-सञ्ज्ञाय'^४ नामक रचना कवि ने वि० सं० १६८९ में अहमदाबाद में ही रची थी। इसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने दूसरा वर्षायोग भी वहीं पर व्यतीत किया। वि० सं० १६९० में वे खंभात गए। सरस्वती की अनुकम्पा से उन्होंने 'प्रस्ताव-सवैया-छत्तीसी'^५ और 'खरतरगच्छ-पट्टावली'^६ की रचना की। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर परिज्ञात होता है कि कवि ने आगामी चातुर्मास खंभात के समीप खारवापाड़ा नामक स्थान में किया था। वहाँ उन्होंने 'आहार सैंतालीस दोस-सञ्ज्ञाय'^७ तथा 'दशवैकालिक-सूत्र-वृत्ति'^८ का निर्माण किया। वहाँ पर 'थावच्चासुत-ऋषि-चौपाई'^९ की रचना की, जो इनकी कवित्वशक्ति की प्रौढ़ता का उदाहरण है। वि० सं० १६९२ में भी ये खंभात में रहे और वैशाख माह में रघुवंश महाकाव्य पर 'अर्थलापनिका-वृत्ति'^{१०} बनाई। 'विहरमान वीसी स्तवना'^{११} के अनुसार वि० सं० १६९३ में कविवर विचरण करते हुए अहमदाबाद पहुँचे। वर्षावास यहीं पर व्यतीत किया, ऐसा संकेत उक्त रचना से प्राप्त होता है।

कविवर पदयात्री थे। वायु की भांति अप्रतिबद्ध विहारी बनकर पदयात्राएँ करते ही जा रहे थे। इन पद-यात्राओं का अन्तिम पड़ाव कौन-सा है, ज्ञात नहीं। उनकी कृतियों को ध्यानपूर्वक देखने से जानकारी प्राप्त होती है कि जब तक उनमें शारीरिक बल था, तब तक उन्होंने दीर्घ पद-यात्राएँ कीं। वे जिधर जाते, उधर ही उनका गन्तव्य-स्थल रहता था —

१. समयसुन्दर-रास-पंचक, चम्पक-श्रेष्ठि-चौपाई, पृष्ठ ९७-९८
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५०१-५१५
३. नवतत्त्ववृत्ति, प्रशस्ति (१)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ३०४-३०७
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५१५-५२५
६. अप्रकाशित
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि
८. दशवैकालिक-सूत्रवृत्ति, पृष्ठ ११८
९. थावच्चासुत-ऋषि-चौपाई (२-१०-२०)
१०. रघुवंश-वृत्ति, प्रशस्ति (७-९)
११. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ३९

मंजिल-वंजिल पूछे कौन, चलो जहाँ तक रस्ता जाए।

घाट का पत्थर घाट लगे, बहता पानी बहता जाए॥^१

कवि पद-यात्राएँ करते हुए देश के लगभग हर नगर और हर कस्बे में गए थे। 'जिनचन्द्रसूरि-गीतम्' से ज्ञात होता है कि वे वि० सं० १६९४ में जालौर पहुँचे थे। 'क्षुल्लककुमार-चौपाई'^२ में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि यह वर्षायोग कवि ने जालौर में सम्पूर्ण किया था। 'वृत्तरत्नाकरवृत्ति'^३ भी इसी वर्ष रची गई थी। वि० सं० १६९५ में 'चंपक-श्रेष्ठि-चौपाई'^४ बनाई और 'सप्तस्मरण' पर 'सुखबोधिका-वृत्ति'^५ लिखी। 'गौतमपृच्छा-चौपाई'^६ की रचना के उल्लेखानुसार इसी वर्ष वे पालनपुर के निकट 'आकेठ' ग्राम भी गए। यहाँ से प्रह्लादनपुर आकर 'कल्याणमंदिरवृत्ति'^७ की रचना की। 'दंडक वृत्ति'^८ और 'धनदत्त चौपाई' कृतियों से विदित होता है कि वे वि० सं० १६९६ में अहमदाबाद गये।

कवि पद-यात्राएँ करते हुए अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। यदि उनका जन्म सं० १६१० में हुआ मानते हैं, तो इस समय कवि की उम्र लगभग ८६ वर्ष की हो गयी थी। वृद्धावस्था एवं तज्जन्य अशक्ति के कारण पद-यात्राएँ करते रहना उनके लिए असम्भव हो गया था। अतः कवि ने अब अपनी पद-यात्राओं को स्थगित कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविवर समयसुन्दर पक्षी की भांति उन्मुक्त विहारी थे। उन्होंने भारत के विभिन्न अंचलों का भ्रमण किया। पूर्व में कालक्रम के आधार पर हमने जिन-जिन पद-यात्राओं का उल्लेख किया है, वह सब कवि की कृतियों के आधार पर किया है। कतिपय कृतियाँ इस प्रकार की भी हैं, जिनमें नगर का नामोल्लेख तो है, परन्तु समय का निर्देश न होने से उसका विवरण नहीं दिया जा सका। अन्ततः सभी रचनाओं का पर्यवेक्षण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने निम्नलिखित प्रमुख स्थानों की पद-यात्राएँ की —

पंजाब : लाहौर, सरसपुर, फिरोजपुर, कसूर आदि।

उत्तर प्रदेश : उग्रसेनपुर, आगरा, बीबीपुर, अकबरपुर, सिकन्दरपुर आदि।

१. उद्धृत — सुनहरा राजस्थान, वर्ष १, अंक १८, पृष्ठ ५
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५६४-५७५
३. वृत्तरत्नाकरवृत्ति, प्रशस्ति (२)
४. समयसुन्दर-रास-पंचक, पृष्ठ १०१
५. सप्तस्मरण-वृत्ति, पृष्ठ ५१
६. गौतमपृच्छा-चौपाई (१.५-६)
७. कल्याणमंदिर-वृत्ति, प्रशस्ति
८. दंडक-वृत्ति, प्रशस्ति (३)

- सौराष्ट्र** : शत्रुञ्जय, सौरीपुर, नागद्रह, नवानगर, गिरनार आदि।
- राजस्थान** : जैसलमेर, अमरसर, लौद्रवा, वीरमपुर, सांगानेर, चाटसू, तिमरी, मंडोवर, बीकानेर, नाल, रिणी, डीडवाना, जालौर, नागौर, लवेरा, मेड़ता, मेड़तारोड (फलवर्द्धि पार्श्वनाथ), नाकोड़ा, सेत्रावा, वरकाणा, बिलाड़ा, सांचोर, घंघाणी, नडुलाइ, आबू, अचलगढ़, देलवाड़ा, राणकपुर, नलोल, जीरावला, चंदवारि, लूणकरणसर आदि।
- सिन्ध** : मुलतान, देरावर, उच्चनगर, सिद्धपुर, मरोठ आदि।
- गुजरात** : पालनपुर, खंभात, पुरिमताल, आंकेट, ईडर, पाटण, भड़कुल, तारंगा, देवता, शंखेश्वर, सैरीसर, भोडुआ, कलिकुंड, गौड़ी पार्श्वनाथ, कंसारी, त्रंबावती, अजाहरा, मंगलोर, अहमदाबाद आदि।

इसके अतिरिक्त श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने कवि द्वारा रचित 'तीर्थमाला-स्तवन' में निर्दिष्ट सम्प्रेत शिखर, राजगृह, क्षत्रियकुण्ड, पावापुरी, चम्पानगरी आदि स्थलों में पाद-भ्रमण करने का अनुमान किया है^१, वह उपयुक्त नहीं है। कारण, उपर्युक्त सर्व क्षेत्र तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। कविवर समयसुन्दर जिस-जिस तीर्थ का दर्शन करते हैं, वहाँ मुक्त हृदय से भक्ति करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने जिन-जिन तीर्थों की यात्राएँ कीं, वहाँ वे सर्वत्र ही स्वतन्त्र रूप से नव-नवीन स्तवन बनाकर भाव-अर्चन किया करते थे। अतः यह शक्य नहीं हो सकता है कि कवि इन महान् तीर्थों की यात्रा करने जाएँ और स्वतन्त्र स्तवन न बनाएँ। कवि ने स्तवन-प्रसंग में इन तीर्थों का उल्लेख मात्र किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ये तीर्थ-स्थान प्रसिद्ध होने से एवं उनकी महनीयता से प्रभावित होकर स्तव रूप में उन्हें नमस्कार मात्र ही किया है।

१४. अभाव तथा संघर्ष

१४.१ परवशता — यह एक प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य यौवन-अवस्था और प्रौढ़ अवस्था में स्वयं के ज्ञान-बल, सत्ता-बल एवं प्रभाव बल के आधार पर स्वाधीन होकर जीवन-यापन करता है, लेकिन वही वृद्ध-अवस्था में संतानों से पराधीन बन जाता है। महोपाध्याय समयसुन्दर भी प्रकृति के इस सिद्धान्त से अप्रभावित नहीं रहे। वादी हर्षनन्दन कवि के यशस्वी विद्वान् शिष्य थे। उस समय खरतरगच्छ के गणनायक जिनराजसूरि थे तथा आचार्य जिनसागरसूरि थे। विक्रम संवत् १६८६ में वादी हर्षनन्दन के कारण उक्त दोनों आचार्यों के प्रगाढ़ मैत्री-सम्बन्ध में मनोमालिन्य आ गया। यद्यपि कवि इस मनोमालिन्य को समाप्त करने में समर्थ थे, लेकिन अपने शिष्य हर्षनन्दन के हठाग्रह के आगे वे विवश हो गये और उन्हें शिष्य की इच्छानुसार चलने को बाधित होना पड़ा। यहीं से खरतरगच्छ में एक नई शाखा 'आचार्य-शाखा' बनी।

१. जैनसाहित्य-संशोधक, अंक ३, कविवर समयसुन्दर, पृष्ठ १८

१४.२ दयनीय वृद्धावस्था — कवि का जीवन दीक्षा से प्रौढ़ावस्था पर्यन्त अति शान्तिमय और सुखमय रहा था। कवि के बयालीस शिष्य थे, ऐसी जनश्रुति है। उनमें से कई तो स्वयं समर्थ, बहुश्रुत एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्हें उत्तम श्रेणी का प्रशिक्षण दिलाने के लिए कवि ने असीम परिश्रम और अपना सर्वस्व त्याग किया था। ज्ञान के साथ गच्छनायकों से कह-कह कर इन्हें पदवियों से सम्मानित भी करवाया था। वे ही शिष्य कवि को ढलती आयु में परित्याग करके चले गये। जीवनभर कवि स्वयं स्वावलम्बी रहे, परन्तु जब वृद्धावस्था में उन्हें वैयावृत्य (सेवा) की आवश्यकता हुई, तब शिष्य ही छोड़ गये। जो सान्निध्य में रहे थे, वे भी कवि के हृदय की व्यथा से अनभिज्ञ थे। दुःख के समय होने वाली विकलताओं से कवि का अन्तस् द्रवित हो उठा। वे उन साधुओं को, जिनके शिष्य परिवार नहीं हैं, सम्बोधित करते हुए कहते हैं —

चेला तर्हीं तउ म करउ चिन्ता दीसइ घणै चले पणि दुक्ख।

संतान करिंमि हुआ शिष्य बहुला, पणि समयसुन्दर न पायउ सुक्ख॥

केइ मुया गया पणि केइ केइ जुया रहइ परदेश।

पासि रहइ ते पीड न जाणइ, कहियउ घणउ तउ थायउ किलेस॥^१

वृद्धावस्था के कष्टों या दुःखों में शिष्यों में सेवा-भावना का अभाव देखकर निराश एवं हतोत्साह होकर कवि समयसुन्दर अनिच्छापूर्वक भी अपनी मर्मव्यथा को 'गुरुदुःखित-वचनम्' आदि उद्गीथों में व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं — अत्यन्त क्लेश एवं दुःख उठाकर तथा अपवाद-मार्ग का सेवन करके भी मैंने जिस शिष्य-समुदाय को एकत्रित किया, यदि वह गुरु की भक्ति-सेवा नहीं करता, तो ऐसे निरर्थक शिष्यों से क्या प्रयोजन है? मैंने आत्म-प्रवचना करके अपने शिष्यों का उसी प्रकार पालन-पोषण किया, जिस प्रकार माता-पिता पुत्र का पालन-पोषण करते हैं। मैंने सभी श्रेय कर्मों का परित्याग करके, दुःख उठाकर भी यत्नपूर्वक शिष्यों को अध्ययन कराया। शिष्यों को अपनाते समय मोहवश समाज के उपालम्भ भी सहन किये और उन्हें मोक्षमार्ग पर अग्रसर करने का सतत् प्रयास किया। उन्हें गीतार्थ बनाया। तर्क, व्याकरण, काव्य प्रभृति विद्याओं में उन्हें पारंगत किया, किन्तु इतने पर भी यदि शिष्य गुरुभक्त नहीं हैं, तो ऐसे शिष्य निरर्थक हैं।

कवि का कथन है कि यद्यपि मेरे शिष्यों ने आगम-निगम के सिद्धान्तों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अच्छे वक्ता के रूप में सर्वत्र यश अर्जित कर लिया है, जैन-जैनेतर समाज में वे माननीय हो गये हैं; लेकिन वे गुरु की आज्ञाओं का अनुसरण नहीं करते हैं, तो ऐसे यशस्वी शिष्य भी गुरु के लिए अनुपयोगी और निरर्थक ही हैं।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, गुरु दुःखित वचनम्, (१.२) पृष्ठ ४२०

जो शिष्य लोकलज्जा की भी परवाह नहीं करते, ऐसी परिस्थिति में अपना कृत कर्म-फल समझ कर ही मुझे आत्मतोष धारण करना चाहिए।^१

११.३ दुष्काल का सामना — प्रकृति सदय होकर हमें मुक्त हाथ से धन-धान्यादि देती है। जब तक प्रकृति सदय है, तभी तक हमारी सम्पन्नता है। हमारा अस्तित्व ही प्रकृति की कृपा पर निर्भर है। महोपाध्याय समयसुन्दर के समय में गुजरात प्रदेश को प्रकृति के एक भारी प्रकोप का सामना करना पड़ा। दुष्काल इस प्रकोप का ही तो अपर नाम है। इस बुरे वक्त की मार कवि पर भी बहुत अधिक पड़ी। इस अकाल ने कवि के जीवन में एक अजीब मोड़ ला दिया। उनके जीवन को करुण और दयनीय बना दिया। कविवर विचलित हो उठे।

यह अकाल गोसाईं तुलसीदास के गोलोकवास के सिर्फ सात वर्ष बाद हुआ था। विक्रम संवत् १६८७ का यह दुष्काल अन्य दुष्कालों से ज्यादा भयंकर था। समयसुन्दर के पूर्व भी वीर संवत् ९८० में बारह वर्ष का भीषण दुष्काल पड़ा था, जिसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि इस अकाल में बहुत सारे साधुओं का नाश हुआ और बहुश्रुतों का विच्छेद हुआ।^२ समयसुन्दर ने वि० सं० १६८७ के दुष्काल का आंखों देखा हाल वर्णित किया है। समसामयिक एवं भुक्तभोगी होने के कारण इस दुष्काल सम्बन्धित रचनाएँ अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कवि ने इस अकाल का बड़ा ही हृदय-द्रावक और जीवन्त वर्णन किया है।^३

प्राणि-जगत् में अन्न ही मुख्य है। अन्न ही मनुष्यों का प्राण है और अन्न में ही सब प्रतिष्ठित हैं। दुर्भिक्ष में अन्न का अभाव हो गया। अन्न के बिना मनुष्य कैसे जी सकता है? सारे प्रदेश में त्राहि-त्राहि मच गई। इस अन्न को प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति भिखारी बना हुआ था। पेट की भूख को शांत करने के लिए सभी ने अपनी प्रतिष्ठा और आदर्शों को एक किनारे रख दिया। जो धनवान् व्यक्ति थे, वे भी केवल शालितूष (भूसी) की रोटी बना-बनाकर खाते हैं। कविवर समयसुन्दर स्वयं कहते हैं-

अथ पा न लहे अन्न भला नर थया भिखारी,
मूकी दीधउ मान, पेट पिण भरइ न भारी।
पमाडियाना पांन, केइ वगरौ नइं कांटी,
खावे खेजड़ छोड, शालितूस सबला बांटी ॥
अन्नकण चुणइ के अइं ठि में, पीयइ अइंठि पुसली भरी ॥^४

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, गुरु दुःखितवचनम्, पृष्ठ ४१७-४१९

२. समाचारी-शतक

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ७

४. सत्यासिया-दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी (८)

अन्नदान प्राप्त करने के लिए सभी ने अपने पारस्परिक सम्बन्ध तोड़ दिए। पति को भी पत्नी उतनी प्रिय नहीं रही, जितना प्रिय उसे अन्न हो गया था। अनेक मनुष्य तो अपने घर आदि का त्याग करके अन्य राज्यों में चले गये —

मांटी मुंको माणस घणा, मुक्या बइरै पणि माटी,
बेटे मुक्या बाप, चतुर देतां जे चांटी।
भाई मुकी भइण, भइणि पिण मुक्या भाइ।
अधिको व्हालो अन्न, गइ सहु कुटुम्ब सगाइ।
घरबार मुंकी माणस घणा, परदेशइ गया पाधरा।
समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, तेही न राख्या आधरा।^१

उस समय की गुर्जरभूमि युद्धभूमि बन गयी थी। दुर्भिक्ष-योद्धा के सम्मुख सभी पराजित हो गये। उसने बड़ी ही क्रूरता से गुजरात के नागरिकों का सफाया किया था। मृतक इतने अधिक हो गये कि उनका कोई अन्त्येष्टि-संस्कार करने वाला नहीं था। अतः चारों ओर मृतकों के शरीरों से दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध फैली हुई थी। शायद इस दृश्य से यमराज बहुत प्रसन्न हुआ होगा —

मूआ घणा मनष्य, रांक गलिए रडवडिया,
सोजो वल्यउ शरीर, पछइ पाज मांहे पडिया,
कालइ कवण वलाइ, कुण उपाडय किंहा काठी,
ताणी नाख्या तेह, मांडि थइ सगली माठी।
दुरगंधि दसो दिसि उछली, मडा पड्या दीसइ मुआ।
समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, किण घरइ न पड्या कुकुआ॥^२

इस अकाल ने कितने ही मूर्धन्य और गीतार्थ आचार्यों को भी अपना कौर बनाया था। इसलिए कवि ने इस दुर्भिक्ष को भयंकर हत्यारा कहा है —

सिरदार घणेरा संहर्या, गीतारथ गिणती नहीं।
समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, तुं हतियारउ सालो सही॥^३

दुष्कालग्रस्त हर मानव दोहरे संघर्षों से गुजर रहा था - एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य संघर्षों के कारण उसका जीवन अशान्त और अपराधपूर्ण था, तो आन्तरिक संघर्षों के कारण उसका मानस तनावयुक्त/विक्षुब्ध था। उदरपूर्ति के अलावा उसके मानस में न तो आत्मकल्याण का भाव था और न ही परदुःख-कातरता का भाव। जो देव, गुरु, एवं धर्म के प्रति श्रद्धा रखते थे और उनके परमपुजारी बने हुए थे, वे भी उनसे विमुख हो

१. वही (९)

२. सत्यासिया-दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी (१७)

३. वही (१८)

गये। देवालय श्मशानवत् शून्यालय बन गये थे। धर्म-प्रवचन आचार्यों के पास ही रह गये थे और प्रतिक्रमण-सूत्र पुस्तकों में ही। कविवर स्पष्ट कहते हैं —

पडिकमणउ पोसाल, करण को श्रावक नावइ,
 देहरा सगला दीठ, गीत गंधर्व न गावइ,
 शिष्य भणइ नहीं शास्त्र, मुख भूखइ मचकोडइ,
 गुरुवंदण गइ रीति, छती प्रीत मानस छोडइ।
 वखाण खाण माठा पड्या, गच्छ चौरासी एही गति,
 समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, काइ दीधी तई ए कुमति ॥^१
 देव न पूजै देहरे रे, पडिकमण नहीं पोसाल।
 सिथल थया श्रावक सहू रे, जती पड्या जंजाल ॥^२

समयसुन्दर कहते हैं कि जो श्रमणोपासक-श्रावक अपने श्रमणों को पुनः-पुनः निमंत्रण देकर आहारचर्या के लिए बुलाते थे और आहार-दान देने के पश्चात् ही स्वयं भोजन ग्रहण करते थे, वे आज दर्शन भी नहीं देते हैं। उनके श्रद्धाभाव समाप्त हो गये हैं। इसलिए सभी सम्प्रदायों के साधुओं की अवस्था भोजन प्राप्त न होने से बड़ी ही दयनीय बन गयी है —

जतीयां नै देई जीमता रे, ऊभा रहता आडि।
 ते तउ भाव तिहां रह्वा रे, जीमता जडै किमाडि ॥
 दान न छै के दीपता रे, सहू बैठा सत छांडि।
 भीख न छइ को भावसुं रे, छै तो दुःख दिखाडि ॥^३

और भी कहा है —

घर तेडी घणी वार, भगवान ना पात्रा भरता,
 भागा ते सहू भाव, निपट थया वहिरण निरता,
 जिमता जडइ किमाण, कहै सवार छै केई,
 घइ फेरा दस पाँच, जती निठ लायइ लेई ॥^४

कवि ने एक और सत्य प्रकट किया है कि जिन साधुओं को शिष्य बनाने की जितनी भूख थी, उन्होंने इस दुर्भिक्ष में उतना ही अधिक लाभ उठाया था। सद्गृहस्थों की अनिच्छा होते हुए भी अनेक अनाथ बच्चों को प्रव्रजित कर उन्होंने अपनी जमात बढ़ाई थी —

१ वही (१५)

२. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई, (६.१२)

३. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई, (६.१०-११)

४. सत्यासिया-दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी (१४)

लाधउ जतीए लाग, मूंडी नइं मांहइ लीधा ।

हुंती जितरी हुंस, तीए तितराहिज कीधा ॥^१

बारह वर्ष के इस भयंकर दुर्भिक्ष में देश के अनेक धर्मानुरागी धनी व्यक्तियों ने मुक्त हाथ से अकाल-पीड़ितों की सहायता की। उनकी कवि ने भारी अनुमोदना की है। कवि के उल्लेखानुसार शान्तिदास, सागर, कुंवरजी, करमसी, रतन, वछराज, ऊदो, जीवउ सुखीयो, वीरजी, मनजी केशव, सूरजी शाह, जिनसागर, हाथी शाह (शाह लटूको), सादुलट्टककउ, प्रतापसी, वर्द्धमान, तिलोकसी भाई, प्रतापसी साह, सामलदास, जयतारणित, श्री माली, थिरादरे आदि अनेक पुरुषों ने रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि का अकाल-पीड़ितों को अनुपम दान देकर आत्मौपम्य का विस्तार और पुण्य का उपार्जन किया था।

भीषण अकाल पड़ने के कारण ललितप्रभसूरि, शालिवाडीयउसूरि, जसवंतसूरि, केसवसूरि आदि अनेक आचार्य मृत्यु को प्राप्त हो गये; परन्तु कविवर अकाल से सतत संघर्ष करते रहे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने शास्त्र, परिधान और पात्र तक का भी विक्रय कर करके इस अकाल का सामना किया। यह दशा उस समय सर्वसाधारण की थी। अतः समयसुन्दर ने भी शिष्यों के मोह में अकरणीय कार्य किये, किन्तु वे ही शिष्य कवि को छोड़कर दूर चले गये। दुष्काल, वृद्धपन एवं शिष्यों द्वारा उपेक्षा या त्याग — इन तीनों से समयसुन्दर विचलित हो उठे। वे स्पष्ट कहते हैं —

चेले कीधी चाल, पूज्य परिग्रह परहउ छांडउ ।

पुस्तक, पाना बेचि, जिम तिम अम्हनइं जीवाडउ ।

वस्त्र, पात्र बेचि करी, केतौक तो काल काढीयउ ॥^२

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि के जीवन के अन्तिम क्षण अनेक संघर्षों से सन्नस्त रहे। एक ओर पराधीनता, दूसरी ओर दयनीय वृद्धावस्था और तीसरी ओर दुष्काल का सामना — इन तीनों का असह्य सामना कवि को अन्तिम जीवन में करना पड़ा था।

१५. क्रियोद्धार

क्रियोद्धार का अभिप्राय है — 'आचार-संस्कार'। जिस प्रकार भाषा में किसी प्रकार की असंगति, भद्दापन आदि दूर करके उसे शिष्ट और सुन्दर रूप देने पर भाषा का संस्कार होता है, उसी प्रकार आचरण आदि का परिष्करण तथा संशोधन करना क्रियोद्धार कहलाता है। मनुष्य परिस्थिति या परिवेश के कारण अपने जीवन-मूल्यों एवं शास्त्र-मर्यादानुकूल आचरण से पतित हो जाता है। जब वह अपने आदर्श के प्रति निष्ठा को सुदृढ़ बनाते हुए पुनः आगमानुकूल आचरण करने का निश्चय करता है, तो यही क्रियोद्धार होता

१. वही (१०)

२. सत्यासिया-दुष्काल-वर्णन-छतीसी (१३)

है। इस तरह पतित जीवन का पुनः संस्कार या परिशोधन कर आचरण को निर्मल बनाना ही क्रियोद्धार कहा जाता है।

दुष्काल से मुक्त होने पर महोपाध्याय समयसुन्दर यह अनुभव करते हैं कि हमने आगमिक कथन से विपरीत आचरण किया है। अतः हमें साधु-जीवन के उच्च मूल्यों के आदर्शों को पुनः स्वीकार करना चाहिये।^१ इसी उद्देश्य से कवि ने क्रियोद्धार करने का सोचा। परवर्ती कवियों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि समयसुन्दर ने वि० सं० १६९१ में यह 'क्रियोद्धार' किया था।^२

१६. व्यक्तित्व

महोपाध्याय समयसुन्दर के आदि से अन्त तक की लगभग सभी घटनाओं का वर्णन हमने उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके जीवन-चरित्र को एक समीक्षक दृष्टि से देखने पर उनके व्यक्तित्व की गरिमा हमें प्रभावित किये बिना नहीं रहती है। कविवर समयसुन्दर भव्य पुरुष थे। उनकी भव्यता आध्यात्मिकता और विद्वता से समन्वित थी। अतः वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आज उनका कृतित्व ही उनके व्यक्तित्व की स्तुति करने का माध्यम है। समयसुन्दर के महान् व्यक्तित्व के बारे में डॉ० सत्यनारायण स्वामी ने लिखा है कि काव्य की निरवच्छिन्न पीयूषधारा से अभिषिक्त होने के कारण महाकवि की कृतियाँ महान् हैं, पर उनसे भी अधिक महान् है उनका भव्य व्यक्तित्व। उनके व्यक्तित्व का प्रत्येक पार्श्व सर्वांग सुन्दर है।^३ कवि की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे स्वभाव से सरल, विरक्त, निरभिमानी, विवेकवान्, परम श्रद्धालु, अध्ययनशील, प्रतिभापुंज, क्रान्तिकारी, साम्प्रदायिक समभावी, लोकप्रिय प्रवचनकार एवं जनकवि थे।

यहाँ हम उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर समयसुन्दर के व्यक्तित्व के कतिपय महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा करेंगे।

१६.१ ज्ञान-गाम्भीर्य — समयसुन्दर प्रज्ञा-पुरुष थे। उनकी बुद्धि अध्ययन, अभ्यास, निरीक्षण आदि के द्वारा परिष्कृत, विकसित एवं संस्कृत थी। उनमें अनुभव, पांडित्य तथा विचारशीलता का प्रकाशमान् सम्मिश्रण था। इसीलिए वे सभी बातों, तत्त्वों या विषयों का वास्तविक रूप शीघ्र और सहज में समझ लेते थे। 'प्रज्ञा प्रकर्षः प्राग्वाटे'— यह उक्ति भी

१. सकलचन्द्र गुरुसान्निधि कीधी, सत्यासियइ तन थयउ ज्ञानं।

समयसुन्दर कहइ हिवहूँ करिस्युं, उत्कृष्टी करणी भ्रमध्यान ॥

— प्रस्ताव सवैया-छत्तीसी (३६)

२. कीधो क्रिया उद्धार संवत साले हो, इक्काणु समे।

— नलदवदन्ती-रास, परिशिष्ट ई; राजसोमकृत महोपाध्याय समयसुन्दर गीतम्, पृष्ठ १३३

३. महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ ४७

उनकी उत्कर्ष, प्रज्ञाशीलता का परिचय देती है। उन्हें जैनसंघ द्वारा प्रदत्त गणि, वाचक/वाचनाचार्य, उपाध्याय, महोपाध्याय प्रभृति उपाधियाँ भी उनकी ज्ञान-गरिमा एवं प्रज्ञा-प्रकर्षता को उजागर करती हैं।

समयसुन्दर के समग्र साहित्य का सम्यक् अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उनका ज्ञान बहुविध था। सम्भवतः एक भी विषय ऐसा नहीं, जो उनसे अस्पृष्य रहा हो। एक व्यक्तित्व में इतने विस्तृत ज्ञान की अवतारणा वास्तव में विलक्षण और आश्चर्यजनक बात है। व्याकरण, साहित्य, भाषा-शास्त्र, छन्द, न्याय, ज्योतिष, विधि-विधान, सिद्धान्त, इतिहास, आगम इत्यादि विविध विषयों का उन्हें विपुल ज्ञान था। वे शास्त्र-सिद्धान्तों के तो ज्ञाता थे ही, साथ ही साथ उन्हें लोक व्यवहारिक ज्ञान भी था। डा० सत्यनारायण स्वामी लिखते हैं, 'यदि यह कहा जाय कि महाकवि (समयसुन्दर) की कृतियों में वर्णित उनकी लघुता मात्र कवि-प्रथा का पालन ही थी, तो यह अत्युक्ति न होगी। वस्तुतः वे विद्वान् मनीषी थे। उनका ज्ञान-परिसर अति विशाल था। 'लोके-वेदे च' सर्वत्र उनकी समान गति थी। शास्त्रीयज्ञान के अतिरिक्त महाकवि व्यावहारिक और प्रातिभ ज्ञान के प्रकाण्ड पं० (पण्डित) थे।^१

समयसुन्दर के ज्ञानगाम्भीर्य को हम उन्हीं के कृतित्व के आधार पर प्रकट करेंगे। उन्हें शास्त्रीय और व्यावहारिक - दोनों प्रकार का ज्ञान था। अतः हम दोनों पर प्रकाश डालेंगे।

१६.१.१ शास्त्रीय ज्ञान- समयसुन्दर का शास्त्रीयज्ञान गहनतम था। जैन शास्त्रों और उनके सिद्धान्तों का उन्हें गहराई से ज्ञान था। 'विसंवाद-शतक' में उन्होंने जैन शास्त्रों में प्राप्त विविध असंगतियों का वर्णन किया है। विशेष-संग्रह, विचार-शतक, फुटकर प्रश्नोत्तर, प्रश्नोत्तर-सार-संग्रह और विशेष-शतक आदि कृतियों द्वारा भी उनके सैद्धान्तिक ज्ञान का गाम्भीर्य प्रकट होता है। आगमों और उससे इतर जैन शास्त्रों में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो पूर्वापरविरोधी एवं तर्क से असंगतिपूर्ण जैसे लगते हैं। समयसुन्दर ने ऐसे प्रसंगों का अपनी प्रज्ञा-प्रकर्षता के बल पर सम्यक् समाधान प्रस्तुत करते हुए सभी पूर्वापरविरोधी व्यक्तियों में तर्कसिद्ध सामंजस्य स्थापित किया। वस्तुतः ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य कोई विशिष्ट सिद्धान्तविद् ही कर सकता है।

इसी तरह 'समाचारी-शतक' एवं 'सन्देह-दोलावली-पर्याय' द्वारा उनका विधि-विधान सम्बन्धी ज्ञान-गाम्भीर्य प्रकट होता है। 'मंगलवाद' नामक ग्रन्थ उनके न्यायशास्त्रीय ज्ञान पर अच्छा प्रकाश डालता है। समयसुन्दर ज्योतिषवेत्ता भी थे। कल्पसूत्र की कल्पलता-टीका, गाथा-सहस्री और विशेष-शतक में प्राप्त ज्योतिष-सम्बन्धी सूक्ष्मतम तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'दीक्षा-प्रतिष्ठा-शुद्धि' तो पूर्णरूपेण ज्योतिष से सम्बन्धित है।

१. महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ ५०

समयसुन्दर को व्याकरण-विषयक गहनतम ज्ञान था। 'अष्टलक्ष्मी' नामक अपनी कृति में उन्होंने जो अनेकार्थ किये हैं, वे सभी प्रायः व्याकरण-सम्बन्धी नियमों पर आधारित हैं। उनके द्वारा विवेचित वैयाकरण ग्रन्थ - सारस्वत वृत्ति, सारस्वत-रहस्य, लिंगानुशासन-अवचूर्णि, अनिट्कारिका, सारस्वतीय-शब्द-रूपावली और वेत्थपदविवेचना — उनके विशिष्ट वैयाकरण ज्ञान के द्योतक हैं। उनके साहित्य में प्राप्त उल्लेखों से विदित होता है कि उन्होंने पाणिनीय व्याकरण, सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन, कलापव्याकरण, सारस्वत-व्याकरण, विष्णुवार्तिक आदि वैयाकरण ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

समयसुन्दर एक शब्द के अनेक अर्थ करने में सिद्धहस्त थे। एक शब्द के विविध प्रकार से अनेकार्थ प्रकट करना उनकी अपनी विशेषता थी। इस सम्बन्ध में उनकी अनेकार्थी कृतियों में 'अष्टलक्ष्मी' का नाम उल्लेखनीय है। यह उनके प्रखर पाण्डित्य की प्रतिनिधि कृति है। इसमें उन्होंने 'राजा नो ददते सौख्यम्' — इन आठ अक्षरों के दस लाख से अधिक अर्थ प्रस्तुत कर विद्वत्-समाज को चमत्कृत कर दिया। प्रस्तुत ग्रन्थ अखिल विश्व में एक विलक्षण रत्न माना जाता है। समयसुन्दर ने इस ग्रन्थ के प्रणयन से पूर्व अनेक कोषों का भी गठन किया है। उन्होंने इस कृति में निम्नलिखित कोषों का उल्लेख किया है —

अभिधान चिन्तामणि-नाममाला कोष, धनंजय-नाममाला, हेमचन्द्राचार्य कृत अनेकार्थ-संग्रह, तिलकानेकार्थ, अमर-एकाक्षरी-नाममाला, विश्वशम्भु-एकाक्षरी-नाममाला, सुधाकलश-एकाक्षरी-नाममाला, वररुचि-एकाक्षरी-निघंटु-नाममाला, जय सुन्दरसूरि कृत एकाक्षरी-नाममाला आदि।

इसी तरह समयसुन्दर साहित्य और काव्यशास्त्रों के भी ज्ञाता थे। छन्दों और अलंकारों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। 'भावशतक' के अलावा अन्य सभी कृतियों से उक्त बात का संकेत मिलता है। हारबन्ध, शृंगाटकबन्ध आदि दुष्कर छन्दों को भी उन्होंने व्यवहृत किया है।

समयसुन्दर संगीत-शास्त्रज्ञ भी थे। उन्होंने लगभग ७० रागों और ३०० देशियों का प्रयोग किया है।

समयसुन्दर की ज्ञानगरिमा को उजागर करने वाली एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है — विविध भाषाओं का ज्ञान। वे संस्कृत, प्राकृत, प्राचीन हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी आदि भाषाओं में प्रवीण थे। उन्होंने भाषा-शास्त्र से सम्बन्धित 'रूपकमाला' नामक ग्रन्थ पर एक सुन्दर व्याख्या भी लिखी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसुन्दर का शास्त्रीय ज्ञान बहुआयामी एवं विपुल था।

१६.१.२ व्यावहारिक ज्ञान — समयसुन्दर के साहित्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अपेक्षित व्यावहारिक ज्ञान था। उन्होंने भारत के विविध अंचलों में भ्रमण किया था। लोक-दर्शन करने के कारण उनका व्यावहारिक ज्ञान उच्चतर हो गया था। उनके उपदेशपरक साहित्य में उनके व्यावहारिक ज्ञान का सहजतः दर्शन होता है। मुनि होते हुए भी उन्होंने कुछेक ऐसी सूक्ष्म बातों का भी अंकन किया है, जो उनके लोक या व्यवहार-ज्ञान पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, गर्भवती स्त्री के लक्षणों के प्रति कवि का कथन —

गर्भलिंग परगट थया, पांडु गाल प्रकार ।
थण मुखि श्याम पणो थयो, गुरु नितंब गति मंद ।
नयन सनेहाला थया, मुखि अमृत रस बिंद ॥^१

कवि ने एक व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत किया है —

संगत तेसुं कीजिये, जल सरिखा हुआ जेह;
आवटणुं आपणि सहै, दूध न दाज्जण देय ॥^२

इस प्रकार हम पाते हैं कि समयसुन्दर के ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। उनके साहित्य में शास्त्रीय और व्यावहारिक — इन दोनों प्रकार के ज्ञान की स्थिति से धार्मिकता और भौतिकता का सम्मिश्रण एकनिष्ठ-सा प्रतीत होता है। उनकी आस्थाओं, आदर्शों तथा विचारों को हम आगामी अध्यायों में विश्लेषित करेंगे।

१६.२ भक्ति-प्रवणता — ज्ञान, भक्ति और कर्म — ये तीन साधना के मुख्य मार्ग हैं। समयसुन्दर केवल ज्ञानी ही नहीं थे, अपितु भक्त एवं कर्मशील भी थे। ज्ञान और भक्ति में अविनाभावी सम्बन्ध है। इसीलिए जैनधर्म ज्ञान-प्रधान होते हुए भी भक्ति की उपेक्षा नहीं करता है। जैन धर्म में ज्ञान के साथ श्रद्धान् होना नितान्त अनिवार्य है और आदर्श पुरुषों के प्रति होने वाली श्रद्धा ही भक्ति है। हेमचन्द्राचार्य ने भी भक्ति को श्रद्धा ही कहा है।^३ इसीलिए सम्भवतः कोई जैनाचार्य ऐसा नहीं, जिसने भगवान के चरणों में भक्ति से ओतप्रोत स्तुति-स्तोत्रों के सुमन न चढ़ाये हों।

समयसुन्दर का हृदय श्रद्धा और भक्ति से अभिभूत था। सभी आदर्शों और आदर्श पुरुषों के प्रति उनकी परम श्रद्धा और भक्ति-भावना थी। वे ज्ञानी तो थे ही, साथ ही भक्ति-भावना का समावेश हो जाने से उनके अन्तर्व्यक्तित्व का सौन्दर्य और भी निखर उठा। अपनी इस भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने विविध तीर्थ-यात्राएँ कीं। जिन तीर्थों में वे गए, वहाँ के तीर्थनायक के चरणों में उन्होंने उन्मुक्त भावपूर्ण स्तवनों के पुष्प भी अर्पित किये।

१. सीताराम-चौपाई (८, ३. १-२)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिजिनस्तवनम्, पृष्ठ ११४-१५

३. आचार्य हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण (२.१५९)

तीर्थ-स्थलों में कवि का मन-मयूर नाच उठता था। विमलगिरि (शत्रुंजय) तीर्थ के प्रति वे विशेष मोहित थे। प्रस्तुत है निम्नलिखित पंक्तियों में इस तीर्थ के प्रति भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचाती हुई उनकी व्यक्त अन्तर्भावनाएँ —

क्यों न भये हम मोर विमलगिरि, क्यों न भये हम मोर ॥
 क्यों न भये हम शीतल पानी, सींचत तरुवर छोर ।
 अहनिश जिनजी के अंग पखालत, तोड़त करम कठोर ॥
 क्यों न भये हम बावन चंदन, और केसर की छोर ।
 क्यों न भये हम मोगरा मालती, रहते जिनजी के मौर ॥
 क्यों न भये हम मृदंग झालरिया, करत मधुर ध्वनि धोर ।
 जिनजी के आगल नृत्य सुहावत, पावत शिवपुर ठौर ॥^१

समयसुन्दर की भक्ति-भावना यद्यपि सभी जिनेन्द्रों के प्रति थी, किन्तु ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर और सीमन्धर-स्वामी तो उनके हृदय-मंदिर में प्रतिष्ठापित ही थे। वे अपने को द्विज-मीत (सुदामा) बताकर भगवान् महावीर से याचना करते हैं —

ए महावीर मो कछु देहि दानं, हूं द्विज-मीत तूं दाता प्रधानं ।^२

जब कवि के हृदय से भक्ति-स्तोत्र फूटता है, तो वे कहीं पर पंख न होने के कारण अपने आराध्य तक न पहुँच सकने की शिकायत करते हैं और अपनी विवशता दर्शाते हैं, तो कहीं स्वयं न पहुँच सकने की वेदना व्यक्त करते हुए परमात्मा को स्वप्न में दर्शन देने की प्रार्थना करते हैं और कहीं चन्द्र आदि के द्वारा अपना भीतरी सन्देश प्रेषित करते हैं। इसी सम्बन्ध में प्रस्तुत है, सीमन्धर स्वामी के प्रति उनके उद्गार —

चांदलिया संदेसड़ो जी, कहजे सीमन्धर स्वाम ।
 भरतक्षेत्र ना मानवी जी, नित उठ करइ रे प्रणाम ॥
 राय ने व्हाला घोड़ला जी, वेपारी ने व्हाला छै दाम ।
 अम्ह ने व्हाला सीमंधर स्वामी, जिम सीता ने राम ॥
 नहीं मांगूं प्रभु राज-ऋद्धि जी, नहीं मांगूं ग्रन्थ-भंडार ।
 हूं मांगूं प्रभू एतलो जी, तुम पासे अवतार ॥
 देव न दीधी पांखड़ी जी, किम करि आवुं हजूर ।
 मुजरौ म्हारौ मानजो जी, प्रह उगमते सूर ॥^३

समयसुन्दर की दर्शनाभीप्सा एवं आत्मोद्धार की उत्कण्ठा अति तीव्र थी। कुछ पंक्तियां और प्रस्तुत हैं, जिनसे उनके आन्तरिक व्यक्तित्व एवं भक्ति का बोध होता है—

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, विमलाचल मण्डन आदि-जिनस्तवन, पृष्ठ ७७
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, चौबीसी, वीर-जिनस्तवन, पृष्ठ १४
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री सीमंधरजिनस्तवन, (२, ६-९), पृष्ठ ४६

वीर सुणउ मोरी वीनती, कर जोड़ी हो कहूँ मननी बात ।
 बालक नी परि वीनवुं, मोरा सामी हो तुम त्रिभुवन तात ॥
 तुम दरिसण विन हुं भम्यउ, भव माहि हो सामी समुद्र मझार ।
 दुख अनंता मइं सह्या, ते कहितां हो किम आवइ पार ॥
 पर उपगारी तूं प्रभु, दुःख भंजइ हो जग दीन दयाल ।
 तिण तोरउ चरणें हूँ आवियउ, सामी मुझ नई हो निज नयण निहाल ॥
 अपराधी पिण ऊधर्या, तंइ कीधी हो करुणा मोरा साम ।
 हूँ तो परम भक्त ताहरउ, तिण तारउ हो नवि ढील नो काम ॥
 सूधउ संजम नवि पलइ, नहिं तेहवउ हो मुज दरसण नाण ।
 पण आधार छइ एतलउ, एक तोरउ हो धरुं निश्चल ध्यान ॥
 मेह महीतल वरसतउ, नवि जोवइ हो सम विसमी ठाम ।
 गिरुया सहिजे गुण करइ, सामी सारउ हो मोरा वांछित काम ॥
 तुम नामइं सुख संपदा, तुम नामइं हो दुःख जावइ दूर ।
 तुम नामइं वंछित फलइ, तुम नामइं हो मुझ आणंद पूर ॥^१

जैनधर्म में भक्ति-भावना के आधार पर तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध स्वीकार किया गया है। भक्तकवि समयसुन्दर इसीलिए भावविह्वल होकर भक्ति की तन्मयता में हर जन्म में प्रभु-भक्ति चाहते हैं —

तुम दरसण हो मुझ आणंद पूर कि, जिम जगि चंद चकोरड़ा ।
 तुम दरसण हो मुझ मन उछरंग कि, मेह आगम जिम मोरड़ा ॥
 तुम नामइ हो मारा पाप पुलाइ कि, जिम दिन उगइ चोरड़ा ।
 तुम नामइ हो सुख संपति थाय कि, मन वंछित फलइ मोरड़ा ॥
 हूँ मांगू हो हिव अविहड़ प्रेम कि, नित-नित करुय निहोरड़ा ।
 मुझ देज्यो हो सामी भव-भव सेव कि, चरण न छोडूं तोहरा ॥^२

× × ×

तूं गति तूं मति तूं धणी जी, तूं साहिब तूं देव ।

आण धरुं सिर ताहरी जी, भव-भव ताहरी सेव ॥^३

समयसुन्दर ने भगवद् स्वरूप को तो मुख्यतः भक्ति का आधार स्वीकार किया ही है, साथ ही साथ बाल्यक्रीड़ा को भी भक्ति का एक अंग माना है। इस सम्बन्ध में कुछ पद्य अवलोकनीय हैं —

१. वही, महावीर-जिन-विज्ञप्ति-स्तवन (१-४, १६-१८), पृष्ठ २०२-४
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री अमरसर-मंडन-शीतलनाथ-बृहत्स्तवन, पृष्ठ ९९-१००
३. वही, आलोचनागर्भित श्री शत्रुंजयमण्डन आदिनाथ स्तवन पृष्ठ ७३

मिठ्ठा बे मेवा तैं कुं देवा, आउ इकट्टे जेमण जेमां ।
 लावां खूब चमेल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥
 कसबी चीरा पै बांधूं तेरे, पहिरण चोला मोहन मेरे ।
 कमर पिछेवड़ा लाल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥
 काने केवटिया पैरे कड़िया, हाथे बंगा जवहर जड़िया ।
 गल मोतियन की माल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥
 बांगा लाटू चकैरी चंगी, अजब उस्तादां बहिकर रंगी ।
 आंगण असाड़े खेल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥
 नयन वे तैंडे कज्जल पावां, मन भावडदां तिलक लगावां ।
 रूढ़ड़ा कैदे कोल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥
 आवो मेरे बेटा दूध पिलावां, वही बेड़ा गोदी में सुख पावां ।
 मन्न असाड़ा बोल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥^१

अनुराग को भक्ति की उत्तम मनोदशा माना जाता है । समयसुन्दर भी जीवन के अनुराग-पक्ष को सर्वोत्तम ढंग से स्वीकार करते हैं । उन्होंने राजीमति के द्वारा नेमिनाथ के प्रति अपने अनुराग को ३५ गीतों में प्रकट किया है ।^२ इन गीतों में सूरदास एवं मीरा की भक्ति-शैली के दर्शन होते हैं । 'सूरदास प्रभु', 'मीरा के प्रभु' की भांति 'समयसुन्दर प्रभु' के प्रयोग भी मिलते हैं ।^३

कवि ने अपनी आराधना में लोकमान्य सभी भगवत् रूपों एवं नामों को शालीनता के साथ समाहित किया है । उनका कहना है कि यद्यपि लोग भेद-भाव के कारण उस परम परमात्मा को अलग-अलग नामों से सम्बोधित करते हैं, लेकिन वास्तव में उन सबका उसमें अन्तर्भाव हो जाता है —

एक तुंही तुंही, नाम जुदा मूहि मूहि ।
 बाबा आदिम तुंही तुंही, अनादि मते तुंही तुंही ।
 परब्रह्म ते तुंही तुंही, पुरुषोत्तम ते तुंही तुंही ।
 ईसर देव ते तुंही तुंही, परमेसर ते तुंही तुंही ।
 राम नाम ते तुंही तुंही, वही नाम ते तुंही तुंही ।
 सांई पण ते तुंही तुंही, गोसांइ ते तुंही तुंही ।
 बिल्ला इल्ला तुंही तुंही, आप एकल्ल तुंही तुंही ।
 जती जोगी ते तुंही तुंही भुगत भोगी ते तुंही तुंही ।

१. वही, सिन्धीभाषामय श्री आदिजिनस्तवनम्, पृष्ठ ९१

२. द्रष्टव्य — वही, पृष्ठ ११०-१४२

३. द्रष्टव्य — वही, नेमिनाथ सवैया (१८), पृष्ठ १३७

निरकार ते तुंही तुंही, साकार पणि ते तुंही तुंही ।
 निरंजण ते तुंही तुंही, दुख भंजण ते तुंही तुंही ।
 अलख गति ते तुंही तुंही, अकल मति ते तुंही तुंही ।
 एक रूपी ते तुंही तुंही, बहुय रूपी ते तुंही तुंही ।
 घट-घट भेदी तुंही तुंही, अंतरजामी तुंही तुंही ।
 जगतव्यापी तुंही तुंही, तेज प्रतापी तुंही तुंही ।
 पापीया दूरि ते तुंही तुंही, धरमी हजुरी ते तुंही तुंही ।
 अंतर्जामी तुंही तुंही, सहसनामी तुंही तुंही ।
 एक अरिहंत तुंही तुंही, समयसुन्दर तुंही तुंही ।^१

परन्तु एक गीत में कवि ने यह स्पष्ट किया है कि उसके आराध्य मात्र जिनेन्द्र ही हैं। उसने हरि, हर, राम की उपेक्षा कर केवल उन्हीं से मुक्ति की याचना की है —
 वीनति एक करुं मोरा स्वाम, द्यो मोहि मुगतिपुरी को धाम ।
 किसके हरि हर किसके राम, समयसुन्दर कहे जिन गुण ग्राम ॥^२

और भी —

हरि हरादिक देव तणी घणी, भगति कीधी मुक्ति गमन भणी ।
 नवि फलइ जिम जल सिंचावियउ, उखर खेत्रइ ओदन वावियउ ॥^३

समयसुन्दर ने अपने आराध्य के स्वरूप-निरूपण का प्रयास किया है, लेकिन साथ में उन्होंने यह भी कहा है कि उसके स्वरूप को या तो प्रभु ही जानता है या फिर कोई योगीन्द्र —

अलख अगोचर तू परमेसर, अजर अमर तू अरिहंत जी ।
 अकल अचल अकलंक अतुल-बल, केवलज्ञान निरखंत जी ॥
 निराकार निरंजन निरुपम, ज्योतिरूप निरखंत जी ।
 तेरा सरूप तूही प्रभु जाणइ, के जोगीन्द्र लहंत जी ॥^४

कारण, वास्तविकता तो यह है —

प्रभु तेरे गुण अनन्त अपार ।
 सहस रसना करत सुरगुरु, कहत न आवे पार ॥
 कोण अम्बर गिणै तारा, मेरु गिरी को भार ।
 चरम सागर लहरि माल, करत कोण विचार ॥

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री परमेश्वर-भेद-गीतम्, पृष्ठ ४४४

२. वही, चौबीसी, कुन्धुजिनस्तवन, पृष्ठ ११

३. वही, श्री पार्श्वजिन दृष्टान्तमय लघु स्तवन, पृष्ठ २०१

४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, चौबीसी धर्मजिनस्तवन, पृष्ठ १०

भगति गुण लवलेश भाखुं, सुविधि जिन सुखकार ।

समयसुन्दर कहत हमकुं, स्वामी तुम आधार ॥^१

समयसुन्दर ने न केवल जिनेन्द्र के प्रति ही भक्ति-भाव प्रकट किये हैं, अपितु गुरुजनों एवं आचार्यों के प्रति भी उनके मन में अगाध भक्ति एवं श्रद्धा थी। अपने गुरुओं को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने स्वतन्त्र गीतों की रचना भी की। जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंहसूरि, जिनराजसूरि आदि के प्रति कवि की अटूट आस्था विभिन्न गीतों में व्यंजित हुई है। वे कहते हैं —

मुझ मन मोह्यो रे गुरुजी, तुम्ह गुणे जिम बाबीहड़उ मेहो जी ।

मधुकर मोह्यो रे सुन्दर मालती, चन्द चकोर सनेहो जी ॥

मान सरोवर मोह्यो हंसलउ, कोयल जिम सहकारो जी ॥

गुरु चरणे रंग लागउ माहरउ, जेहवउ चोल मजीठो जी ।

दूर थकी पिण नवि वीसरइ, वचन अमीरस मीठो जी ॥

सकल सोभागी सह गुरु राजयिउ, श्री जिनसिंधसूरिसो जी,

समयसुन्दर कहइ गुरु-गुण गावतां, पूजइ मनइ जगीसो जी ॥^२

कवि ने अपने गुरु के दर्शन, नाम-जाप, वंदन, ध्यान आदि सभी को सुख प्रदायक कहा है —

गुरु के दरस अखियां मोहि तरसइ ।

नाम जपत रसना सुख पावत, सुजस सुणत ही श्रवण सरसई ॥

प्रणमत होत सफल सहगुरु कुं, ध्यान धरत मेरउ चितु हरसइ ।

सुगुरु वंदण कुं चलत ही चरण युग, पतियां लिखत ही कर फरसइ ॥^३

× × ×

जिण दीठां मन ऊलसइ रे, नयणे अमिय झरंति ।

ते गुरुणा गुण गांवता रे, वंछित काज सरंति ॥^४

ठीक कबीर आदि के समान ही इन्होंने भी गुरु के महत्त्व का विवेचन किया है —

गुरु दीवउ गुरु चन्द्रमा रे, गुरु देखावइ बाट ।

गुरु उपगारी गुरु बड़ा रे, गुरु उतारइ घाट ॥^५

१. वही, सुविधि जिनस्तवन, पृष्ठ ७

२. वही, चौमासा-गीतम्, पृष्ठ ३८७-३८८

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ३९७-३९८

४. वही, श्री जिनचन्द्रसूरि चन्द्राउला गीतम्, पृष्ठ ३६९

५. वही, श्री जिनसिंहसूरि-गीतानि, पृष्ठ ३८७

कविवर गुरु के अन्तः और बाह्य — दोनों पक्षों की ललितता पर भाव-विभोर है —

ललित वयण गुरु ललित नयण गुरु, ललित रयण गुरु ललित मती री।

ललित करण गुरु ललित वयण गुरु, ललित चरण गुरु ललित गती री।

ललित पूरित गुरु ललित सूरति गुरु, ललित मूरति गुरु ललित जती री।

ललितवयराग गुरु ललित सोभाग गुरु, ललित पराग गुरु ललित व्रती री ॥^१

समयसुन्दर अपने ज्ञानदाताओं के प्रति भी नतमस्तक थे —

हूँ बलिहारी जाऊं तेहनी, जे गुरु गुरणी गुणवंत।

जिन मुझ ज्ञान-लोचन दिया, ए उपगार महंत ॥^२

इसी तरह साधु, साध्वी-सती, माता-पिता, देवी, ज्ञान आदि के प्रति भी कवि की श्रद्धापूर्ण भक्ति थी। देवियों में उनकी मुख्यतः विद्या-देवी सरस्वती के प्रति भक्ति थी। अधिक विस्तार में न जाते हुए यहाँ केवल एक ही उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें उक्त सभी के प्रति भक्ति-भाव व्यक्त किया गया है —

सिद्धारथ ससि कुलतिलो, महावीर भगवंत।

वर्तमान तीर्थ धणी, प्रणमो श्री अरिहंत ॥

तस गणधर गौतम नमो, लब्धि तणा भंडार।

कामधेनु सुरतरुमणी, चारू नाम विचार।

वीणा पुस्तक धारणी, समरं सरसुत माय।

मुख नै पंडित करै, कालिदास कहिवाय ॥

प्रणमो गुरु माता पिता, ज्ञान दृष्टि दातार।

कीडी थी कुंजर करे, ए मोटो उपगार ॥^३

इस तरह हम देखते हैं कि कवि का व्यक्तित्व भक्ति से सराबोर था। ज्ञान के साथ भक्ति-श्रद्धा होना उनके शालीन व्यक्तित्व का परिचायक है। ज्ञानसहित भक्ति होने के कारण वह अन्ध-भक्ति नहीं थी। इसलिए वे व्यवहार-जगत् में जनप्रिय बने और अन्तरजगत् में उनकी आत्मा दिव्य तेज से आलोकित हुई। इस प्रकार ज्ञान और विद्वत्ता जहाँ उनके बाह्य व्यक्तित्व को उजागर करती है, वहीं भक्ति उनके आन्तरिक व्यक्तित्व को।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ४००-४०१

२. वही, परप्रशंसा गीतम्, पृष्ठ ४७४

३. चार प्रत्येक बुद्ध-चौपाई, खण्ड १, ढाल १ से पूर्व दूहा १-४

१६.३ 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवधारणा से अभिभूतता

लोकमंगल की साधना भारतीय नैतिक चिन्तन का मूलभूत साध्य है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना में लोकमंगल की साधना निहित है। इसी भावना से अहिंसा की अवधारणा का विकास होता है और वह अपने विधायक रूप में करुणा और सेवा बन जाती है। व्यक्ति मात्र स्वयं हिंसा करने तक ही सीमित नहीं रहता है, अपितु वह प्राणियों के रक्षण का दायित्व उठाता है और इसलिए हिंसक प्रवृत्तियों का विरोध भी करता है। अहिंसा, करुणा एवं सेवा के ये आदर्श जैन, बौद्ध तथा वैदिक परम्पराओं में समान रूप से स्वीकृत रहे हैं। बौद्ध-दर्शन के दस शीलों में अहिंसा को प्रथम स्थान प्राप्त है। गीता में अहिंसा को भगवान् का ही भाव कहा गया है।^१ महाभारत में अहिंसा को परमधर्म माना गया है।^२ जैनधर्म में अहिंसा को भगवती बताया है।^३ इस तरह समस्त भारतीय शास्त्रों में अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, परन्तु यहाँ जैन-परम्परा के विषय में विशेष यह कि इसकी सम्पूर्ण आचार-विधि अहिंसा की ही धुरी पर घूमती है। जैन आचार-दर्शन का अहिंसा ही प्राण-तत्त्व है।

महाकवि समयसुन्दर ने भी अहिंसा का पर्याप्त प्रसार किया तथा अनेक प्रान्तों में जीव-हिंसाएँ बन्द करवाईं। राजाओं एवं राज्य-अधिकारियों को भी अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर जैन-धर्म एवं अहिंसा का प्रचार और प्रसार किया। वादी हर्षनन्दन ने उल्लेख किया है कि कवि के उपदेश से प्रभावित हो, अकबर ने समग्र गुजरात प्रदेश में अमारिपटह (अभय-घोषणा) बजवाया।^४ अकबर जैसे राजाओं से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उपदेश देना और अपनी विचारधाराओं का उन्हें अनुयायी या समर्थक बनाना समयसुन्दर की प्रौढ़ प्रतिभा का परिचायक है। कवि ने सिन्धु राज्य में मखनूम मुहम्मद शेख काजी को अपने प्रवचन से प्रभावित कर समस्त सिन्धु-प्रदेश में गायों, पञ्चनदी के जलचर जीवों और

१. गीता (१०. ५-७)

२. महाभारत (शान्ति पर्व, २४५.११)

३. प्रश्नव्याकरणसूत्र (२.१)

४. अमारिपटहा यैस्तु, साहिपत्रप्रमाणतः। दापयांचक्रिरे सर्व-गुर्जराधरणी-तले ॥

— ऋषिमण्डल-टीका, प्रशस्ति (१०)

अन्य साधारण जीवों की रक्षार्थ अमारि की उद्घोषणा करवाई थी।^१ जैसलमेर (राजस्थान) में भी वहाँ के अधिपति रावल भीमजी को प्रतिबोध देकर हिंसा बन्द करवायी थी।^२ इस तरह हम देखते हैं कि समयसुन्दर अहिंसा की सद्भावना से ओतप्रोत थे। वे सर्वभूतों को आत्मवत् ही मानते थे। वे स्पष्ट कहते हैं —

मुझ वइर नहीं छई केह सुं, सहु सुं छई मैत्री भावोजी।^३

१६.४ साम्प्रदायिक औदार्य

कविवर समयसुन्दर का जन्म और दीक्षा — दोनों ही श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में हुई थी। उन्होंने स्वयं अपने को श्वेताम्बर सम्प्रदाय की एक शाखा खरतरगच्छ का अनुयायी बतलाया है। अष्टलक्षी प्रशस्ति में कवि ने खरतरगच्छ के आद्याचार्य श्री वर्द्धमानसूरि के प्रगुरु से अपनी परम्परा सिद्ध की है। कवि की गुरुवंश-परम्परा का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

कवि ने खरतरगच्छ के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रकट की है और अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर इस तथ्य की पुष्टि की है। कवि ने तो यहाँ तक लिखा है कि गुरुगच्छ के प्रति स्नेह रखना, उत्तम कुल का आचार है।^४ गच्छाचार-प्रकीर्णक में भी कहा गया है कि जो गच्छ सन्मार्ग पर चल रहा है, उसका सम्यक् प्रकार अवलोकन कर संयत मुनि आजीवन उसी में रहे।^५ इस प्रकार गच्छ या शाखा से सम्बन्धित होना बुरा नहीं है।

१. (क) सिद्धपुर मांहे शेख मुहम्मद मोटो हो, जिण प्रतिबोध्यो।
सिन्धु देश मांहे विशेष गायां छोड़ावी हो, तुरके मारती ॥
— नलदवदंतीरास, परिशिष्ट ई; कवि राजसोमकृत समयसुन्दरगीतम्, पृष्ठ १३२
- (ख) शीतपुर मांहे जिण समझावियउ, मखनूम महमद सेखोजी।
जीवदया पड़ह फेरवियो, राखी चिहुं खण्ड रेखोजी ॥
— वही, कवि देवीदास कृत समयसुन्दर गीतम्, पृष्ठ १३५
- (ग) सिन्धु विहारे लाभ लियो घणो रे, रंजी मखनूम सेख।
पांचे नदियां जीवदया भरी रे, वलि धेनु विशेष।
— वही, वादी हर्षनन्दनकृत समयसुन्दरगीतम्, पृष्ठ १३८
- (घ) श्री उच्चनगरे शेष, श्री मखतूम-जिहानीयाम्।
प्रतिबोध्यं गवां घातो, वारितस्तारितात्मभिः ॥
— हर्षनन्दन कृत ऋषिमण्डल टीका, प्रशस्ति ११
- (ङ) मखतूमजिहानीयां, म्लेच्छगुरु-प्रबोधकाः।
सिन्धी गोमरणभय, त्रातारः पापहर्तारः ॥ — वही (१४)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५३३-५४०
३. वही, चौरासी लक्षजीवयोनिक्षामणागीतम् (३), पृष्ठ ४८४
४. गुरुगच्छ ना रागी घणुं, उत्तम घर नो आचारो रे। — सीताराम-चौपाई (९.७.२१)
५. गच्छायार-पइणाय (७)

वस्तुतः बुराई तभी पनपती है, जब साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण दूसरे गच्छ या परम्पराओं के प्रति उदारता नहीं रहती है। अनुदार दृष्टि ही साम्प्रदायिकता के विष का कारण बनती है। संकुचित दृष्टिकोण ही साम्प्रदायिकता आदि को जन्म देता है। यदि इससे छुटकारा नहीं पाया जाय, तो यह मनुष्य को बन्धन और संकीर्णता में डाल देगा और मनुष्य को जीवन के महत्त्वपूर्ण पाथेयों से विमुख कर देगा।

यद्यपि समयसुन्दर खरतरगच्छ के अनुयायी थे, तथापि वे साम्प्रदायिकता के संकुचित पाश में बँधे हुए नहीं थे। उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि वे साम्प्रदायिकता से ऊपर उठे हुए एक निःस्पृह साधक और कवि थे। वे सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सम्प्रदायवाद के जाल से पूर्णतः मुक्त थे। समयकालीन अन्य गच्छों और सम्प्रदायों के प्रति भी उनके सम्बन्ध मधुर थे।

१६.४.१ तपागच्छ से पारस्परिक सम्बन्ध— तपागच्छ, जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्रमुख शाखा है। जगच्चन्द्रसूरि इस गच्छ के आद्याचार्य हैं। उन्होंने उग्र तप किया। इस तप के कारण मेवाड़-नृपति राणा ने विक्रम संवत् १२८५ में उन्हें तपा-विरुद प्रदान किया। तब से इनकी परम्परा तपागच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई।^१ इसी परम्परा में कवि के समकालीन आचार्य हीरविजयसूरि हुए। आपका जन्म पालनपुर में वि० सं० १५८३ में तथा दीक्षा वि० सं० १५९६ में पाटण में हुई। वि० सं० १६०७ में सिरौही में उन्हें आचार्य-पद प्रदान किया गया। आप प्रखर विद्वान् होने के साथ त्यागी मुनि थे। आपने अनेक जिनबिम्बों की प्रतिष्ठाएँ कीं। सम्राट अकबर जैसे मान्य सम्राट भी आपके बुद्धिबल और चारित्रिक-विशेषताओं से प्रभावित थे। कवि समयसुन्दर ने आपको जिनशासन का दैदीप्य नक्षत्र बताया है और अपने खरतरगच्छ के नायक के समान ही उनको महत्त्व दिया है। कवि अपने को धन्य-धन्य समझता है कि ऐसे युगप्रधान भट्टारक की सौभाग्यवश प्राप्ति हुई है। सम्प्रदाय-भेद होते हुए भी कवि में गुणग्राहकता का तत्त्व निहित है। कवि कहता है —

भट्टारक तीन भये बड़भागी ।

जिण दीपायउ श्री जिनशासन, सबल पडूर सोभागी ॥

खरतर श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वर, तथा हीरविजय वैरागी ।

विधि पक्ष धरममूरतिसूरीसर, मोटो गुण महात्यागी ॥

मत कोउ गर्व करउ गच्छनायक, पुण्यदशा हम जागी ।

समयसुन्दर कहइ तत्त्वविचारउ, भरम जाय जिम भागी ॥^२

१. द्रष्टव्य — श्री पट्टावली पराग-संग्रह (द्वितीय परिच्छेद); तपागच्छ पट्टावली सूत्र, पृष्ठ १४५-१४६

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भट्टारक-गीत पृष्ठ ३५७

१६.४.२ पार्श्वचन्द्रगच्छ से पारस्परिक सम्बन्ध — यह वस्तुतः तपागच्छा की ही एक प्रमुख शाखा है। इस गच्छ के प्रवर्तक आचार्य पार्श्वचन्द्रसूरि के वंश में आचार्य विमलचन्द्रसूरि के शिष्य-रत्न पुंजा ऋषि हुए, जो ज्ञानी और महान् त्यागी थे। नवीन कर्मों का आगमन न हो, इसलिए वे अति संयमित रहते थे और पूर्वबद्ध कर्मों को विनष्ट करने हेतु उग्र तपस्या करते थे। कवि के उल्लेखानुसार आपका जन्म गुजरात-प्रदेश के 'रातिज' ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम कडुआ पटेल गोरा था और माता का नाम धनबाई था। आपने अहमदाबाद जनपद में वि० सं० १६७० में दीक्षा ग्रहण की थी। तभी से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र और सम्यक् तप का उत्कृष्ट पालन करते हुए मोक्षमार्ग पर चल रहे थे। यद्यपि पुंजाऋषि आयु, ज्ञान-प्रतिभा एवं दीक्षा में कवि समयसुन्दर की अपेक्षा छोटे ही थे, तथापि समयसुन्दर आपके तप-त्याग से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने साम्प्रदायिक बेड़ियों को तोड़ते हुए मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा और अनुमोदना की। कवि इन्हें जहाज की उपमा देते हुए कहते हैं कि पुंजा ऋषि स्वयं संसार-समुद्र से पार हो रहा है, साथ ही साथ दूसरों को भी विश्व-परिभ्रमण से मुक्त कर रहा है —

श्री पार्श्वचन्द्र ना गच्छ मांहे, ए पुंजो ऋषि आज ।

आप तरै नै तारिवै, जिम बड़ सफरी जहाज ॥^१

कवि पुंजा ऋषि की श्लाघनीय तपस्या का गुणगान करते हुए चित्त में एक अलौकिक आह्लाद की अनुभूति करते हैं तथा अपनी जिह्वा और जन्म को सार्थक बताते हैं। वे स्वयं लिखते हैं —

ऋषि पुंजो अति रूड़ो होवइ, जिनशासन मांहे शोभ चढ़ावइ ।

तेहना गुण गातां मन मांहइ, आनन्द उपजै अति उछाहइ ।

जीभ पवित्र हुवै जस भणतां, श्रवण पवित्र थाये सांभलतां ।

ऋषि पुंजे तप कीधो ते कहूं, सांभलजो सहु कोई रे ।

आज नइ कालै करइ कुण एहेवा, पणि अनुमोदन थाई रे ॥^२

इस तपकर्ता के मंगल दर्शन और उन्हें उत्तम वंदन करने से कवि के हृदय में अति आनन्द मिलता है —

आज तो तपसी एहवो, पुंजाऋषि सरीखो न दीसइ रे ।

तेहनै वांदता बिहरावता, हरखै कवि हियडो हींसइ रे ॥^३

कवि समयसुन्दर के हृदय में गच्छवाद नहीं था। उनकी प्रकृति मानवीय थी। वे छिद्रान्वेषण और निन्दा से दूर रहते थे। उनके समसामयिक उपाध्याय धर्मसागर हुए,

१. वही, पुंजारत्न-रास, पृष्ठ ५५५

२. वही, पृष्ठ ५५६

३. वही, पृष्ठ ५५८

जिन्होंने समयसुन्दर के गच्छ पर अनेक आक्षेप लगाये; परन्तु समयसुन्दर की विशाल हृदयता तथा उदारता ने उनमें भी गुण ही देखे।

१६.४.३ दिगम्बरों से पारस्परिक सम्बन्ध — श्वेताम्बर तथा दिगम्बर — ये दो जैन धर्म के प्रधान सम्प्रदाय हैं। दोनों में कुछ विवादास्पद विषय भी हैं, लेकिन कवि भावुकता और औदार्य के कारण दिगम्बर तीर्थों, मन्दिरों, मुनियों के प्रति भी वैसी ही श्रद्धा-भक्ति रखते थे, जैसी श्वेताम्बर तीर्थों, मन्दिरों, मुनियों के प्रति। कवि के यात्रा-संस्मरण-गीतों में ऐसे भी गीत हैं, जिनसे यह विदित होता है कि कवि ने दिगम्बरों के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों की भी यात्रा एवं सश्रद्धा भाव-अर्चना की थी। जैसे —

चन्द्रपुरी अवतार, लक्ष्मणा माता मल्हार,
चन्द्रमा लांछन सार, उरु अभिराम में।
वदन पुनिमचन्द, वचन शीतलचन्द,
महासेन नृपचन्द, नवविधि नाम में।
तेज करइ झिब-झिब, फटित रतनबिंब,
सांघो है.....दिगम्बर धाम में।
समयसुन्दर हम तीरथ कहइ उत्तम,
चन्द्रप्रभ भेट्यौ हम, चांदवारि गाम में ॥^१

कवि की साम्प्रदायिक उदारता, भावुकता और गुणग्राहकता कवि के उत्तम व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। अतः वे गच्छातीत ही नहीं, सम्प्रदायातीत भी थे।

१६:५ आचारनिष्ठ

आचरण और व्यवहार का वह रूप जो कुछ शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं, सिद्धान्तों आदि के आधार पर स्थित होता है तथा धर्म-शास्त्र के अनुसार जिसका पालन आवश्यक समझा जाता है, आचार है। धर्म-शास्त्रों में बतलाए हुए आचार (क्रियाओं) का अच्छी तरह और नियमित रूप से पालन करने वाला आचार-निष्ठ कहलाता है। कविप्रवर समयसुन्दर स्वयं तो आचार-निष्ठ थे ही, साथ ही अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को भी आचार-निष्ठ बनने के लिए निरन्तर प्रेरणा देते रहते थे। क्योंकि कवि आचारयुक्त ज्ञान को ही अधिक महत्त्व देते थे। उनका वचन है —

किरिया सहित जो न्यान, हुवइ तो अति परधान।
सोनउ नइ सुहत ए, संख दूधइ भरयउ ए ॥^२

आवश्यक-निर्युक्ति में इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि जिस प्रकार चन्दन का भार उठानेवाला गधा केवल भार ढोने वाला है, उसे चन्दन की सुगन्ध का कोई

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, चौबीस जिन सवैया, पृष्ठ १५

२. वही, श्री ज्ञानपंचमी बृहत्स्तवनम्, पृष्ठ २३६

पता नहीं चलता, उसी प्रकार आचार-शून्य ज्ञानी केवल ज्ञान का भार ढोता है, उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। कवि ने क्रियाहीन ज्ञान को विकलांग की उपमा देते हुए उसे निरर्थक कहा है —

पांगलउ ज्ञान किस्यउ कामरउ, ज्ञान सहित क्रिया आदरउ ।
 समयसुन्दर दइ उपदेश चारउ, मुगति तणउ मारग पाधरउ ।^१
 इसी गीत में कतिपय प्रेरक पंक्तियाँ आचार-निष्ठ बनने के लिए प्रेरणा देती हैं —
 क्रिया करउ, चेला किया करउ, क्रिया करउ जिम तुम्ह निस्तरउ ॥
 पड़िलेहउ उपग्रण पातरउ, जयणा सुं काजउ ऊधरउ ।
 पड़िकमता पाठ सुध उचरउ, सहु अधिकारग मा सांभरउ ।
 काउसग करता मन पांतरउ, चार आंगुल पग नउ आंतरउ ।
 परमाद नइ आलस परिहरउ, तिरिय निगोद पडण थी डरउ ।
 क्रियावंत दीसइ फूटरउ, क्रिया उपाय किस्यउ कामरउ ।^२

कवि ने ज्ञान की उपासना के साथ-साथ आचार का भी निष्ठापूर्वक पालन किया। दुष्काल की परिस्थिति में हुई चारित्रिक स्खलनाओं को वे लिखित रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि मैंने काल के प्रभाव में आकर अनाचीर्ण कार्य किए हैं। अपनी गलती को गलती रूप मानना और उसके लिए अन्तरात्मा से पश्चाताप करना उनके आत्म प्रवंचना से रहित आचार में सत्य-निष्ठ होने का प्रबल प्रमाण है। इसीलिए कवि ने क्रियोद्धार करके स्वयं अपनी आचारनिष्ठता का परिचय दिया।

१६.६ साहित्य-सेवा — कवि जैन श्रमण थे। जैन श्रमण के कारण आत्म-कल्याण तथा मोक्ष-प्राप्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था, तथापि वे आत्मोद्धार में जितने सजग थे, उतने ही साहित्य-सेवा में भी। उनकी सभी गद्यात्मक और पद्यात्मक रचनाएँ वस्तुतः ज्ञान-राशि का एक विशाल भण्डार हैं, जो न केवल मनुष्य को एक नवीन दृष्टि देता है, अपितु उसे जीवन-सम्बन्धी सत्यों का परिज्ञान कराता है। उनकी साहित्य-सृष्टि काव्य-कला की दृष्टि से अनुपम है। रसिकजन उसका आस्वादन कर विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं।

कवि समयसुन्दर के साहित्य में उदात्त भावनाओं एवं गूढ़ विषयों का सुन्दर रूप से व्यवस्थित विवेचन हुआ है। कवि भी साहित्य-सेवा महान् है। कवि की शताधिक कृतियाँ और सहस्राधिक फुटरक पद उपलब्ध हैं। वे कलम के धनी थे। उनकी लेखनी से ही उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, प्रज्ञा-प्रकर्षता तथा उनके पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है। उन्होंने साहित्य-सेवा के द्वारा अनेक मौलिक रचनाएँ और टीकाएँ लिखकर मध्यकालीन साहित्य को समृद्ध किया है। कवि की अपरिमित एवं अनुपमेय साहित्य-

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, क्रिया-प्रेरणा-गीतम्, पृष्ठ ४३८

२. वही, क्रिया-प्रेरणा-गीतम्, पृष्ठ ४३७-४३८

सेवा के लिए महोपाध्याय विनयसागर का अभिमत है कि कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के पश्चात् प्रत्येक विषयों में मौलिक सर्जनकार एवं टीकाकार के रूप में विपुल साहित्य का निर्माता अन्य कोई शायद ही हुआ है।^१

कवि ने संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती, सिन्धी आदि विविध भाषाओं में अनेक कृतियों का सर्जन किया है। उनकी साहित्य-सृष्टि में व्याकरण, काव्यलक्षण, टीका, न्याय, छन्द, सिद्धान्तचर्चा, ज्योतिष, शास्त्र-चर्चा, संवाद, रास-चौपाई, इतिहास, प्रबन्ध, काव्य, बालावबोध, अनेकार्थ साहित्य, स्तवन, चौबीसी-छतीसी, गीत प्रभृति समस्त काव्यांग उपलब्ध होते हैं। उनकी कृतियों का विस्तृत विवेचन हम अगले अध्याय में करने जा रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कवि एक बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे, जिन्हें अपने युग में एक प्रखर वक्ता, साहित्यकार और निष्ठावान् साधक के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उनके व्यक्तित्व की महत्ता इसी से सिद्ध हो जाती है कि उनके समसामयिक कविराज ऋषभदास ने वि० सं० १६७० में रचित 'कुमार-पाल-रास' में समयसुन्दर की ख्याति को स्पष्ट हुए कहा है —

सुसाधु हंस समयोसुरचन्द, शीतलवचन जिम शारदचन्द ।

ए कवि मोटा बुद्धि विशाल ते आगलि हूँ मूरख बाल ॥

१७. अन्तिम जीवन एवं समाधि-मरण

देश के विविध क्षेत्रों का पर्यटन करते हुए कवि समयसुन्दर वि० सं० १६८६ में अहमदाबाद पहुँचे, ऐसा दण्डकवृत्ति और धनदत्त-चौपाई के आधार पर ज्ञात होता है। ऐरवत क्षेत्र के चौबीस अरिहन्त तीर्थङ्करों के गीत^२ और साधु-वन्दना में प्राप्त उल्लेखों के अनुसार वि० सं० १६९७ में भी वे अहमदाबाद ही रहे। इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला एकादशी को नाथा संखवाल की पत्नी धन्नादे ने परिग्रह-परिमाण व्रत अंगीकार किया था। कवि की हस्तलिखित पाण्डुलिपि में उपर्युक्त घटना का निम्नलिखित उल्लेख मिलता है —

सं० १६९७ वर्षे फागुण सुदि ११ गुरुवारे श्री अहमदाबाद नगरे श्री खरतरगच्छे भट्टारक श्रीजिनसागरसूरि-विजयराज्ये संखवाल गोत्रे सं० नाथा भार्या सुश्राविका पुण्यप्रभाविका श्रा० धन्नादे सा० करमसी महोपाध्याय श्री समयसुन्दर पार्श्वेइच्छा-परिमाण कीधा। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु ॥^३

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ १

२. वही, पृष्ठ २९

३. धन्नादे व्रत-ग्रहण (पत्र १-२), (अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में प्रति उपलब्ध)

‘आलोचना-छत्तीसी’^१ तथा ‘पुंजारल ऋषि रास’^२ से भी यही संकेत प्राप्त होता है कि कवि वि०सं० १६९८ में भी अहमदाबाद में ही स्थिर रहे। कवि की रचनाओं में ‘तीर्थभास-छत्तीसी’ तथा ‘केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध’ आदि रचनाएँ भी कवि ने वि० सं० १६९९ में अहमदाबाद में ही रची थीं। वि० सं० १७०० में उन्होंने ‘द्रौपदी-चौपाई’ की रचना की थी। इन सर्व कृतियों से विदित होता है कि वृद्धावस्था में कवि ने अपना शेष जीवन अहमदाबाद में ही व्यतीत किया था। कवि का स्वर्गवास भी अहमदाबाद में हाजा पटेल की पोल के खरतरगच्छ उपाश्रय में हुआ था। कवि राजसोम इनकी मृत्यु का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

अणसण करी अणगार, संवत सत्तर हो सय बीड़ोतरे।

अहमदाबाद मझार, परलोक पहुंता हो चैत सुदि तेरसे।^३

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि कवि ने मृत्यु से पूर्व संलेखना-व्रत ग्रहण किया था। जैन-परम्परा के अनुसार मृत्यु को सन्निकट जानकर शरीर के प्रति ममत्व का त्यागकर देह-पोषण के प्रयत्नों को छोड़ देना तथा अनशन-व्रत पूर्वक निष्कामभाव से मृत्यु का वरण कर लेना — संलेखना-व्रत कहा जाता है। देह-भाव से ऊपर उठकर देहातीत अवस्था में पहुँचना तथा विकारों से मुक्त होने का प्रयत्न करना संथारा या संलेखना है। उत्तराध्ययन में मृत्यु के दो रूप वर्णित हैं— (१) सकाम-मरण अर्थात् स्वेच्छामरण या निर्भयतापूर्वक मृत्युवरण और (२) अकाम-मरण अर्थात् अनिच्छापूर्वक या भयपूर्वक मृत्यु से ग्रसित होना। पहले को पण्डितमरण या समाधिमरण कहा जाता है और दूसरे को बाल (अज्ञानी) मरण अथवा असमाधिमरण।^४ प्राणों का विसर्जन संलेखना में भी किया जाता है और आत्महत्या में भी। अन्तर इतना ही है कि आत्म-हत्या क्षणिक-आवेश में की जाती है, जबकि संखेलना में समाधिपूर्वक स्व-स्वरूप में स्थित होते हुए निष्काम भाव से देह का विसर्जन किया जाता है। इसीलिए डा० सागरमल जैन के अनुसार स्वेच्छा-मरण तो मृत्यु की वह कला है, जिसमें न केवल जीवन ही सार्थक होता है वरन् मरण भी सार्थक हो जाता है। वस्तुतः समाधि-मरण का व्रत हमारे आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए ही ग्रहण किया जाता है और इसलिये पूर्णतः नैतिक भी है^५। कवि राजसोम के उल्लेखानुसार वि० सं० १७०३ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को कवि का लगभग नब्बे वर्ष की आयु में समाधि-मरण हुआ।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५४७

२. वही, पृष्ठ ५५८

३. नलदवदंती रास, परिशिष्ट ई, पृष्ठ १३४

४. द्रष्टव्य — उत्तराध्ययन (५.२-३)

५. जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ४४५

जैन समाज की सामान्यतया यह प्रथा रही है कि जिस स्थान पर किसी प्रतिष्ठित श्रमण का स्वर्गारोहण होता है, वहां श्रमणोपासकों द्वारा उनका स्मारक बनाया जाता है अथवा चरण-चिह्न स्थापित किये जाते हैं, किन्तु कवि के भक्तों ने अहमदाबाद में उनका स्मारक बनाया हो अथवा उनके चरण-चिह्न स्थापित किये हों, ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिल पाये हैं। बीकानेर के निकटवर्ती नाल क्षेत्र में कवि का जो चरण-चिह्न स्थापित है, उसका उल्लेख तो वादी हर्षनन्दन ने भी किया है।^१ जैसलमेर में भी कवि का चरण-प्रतीक जैन उपाश्रय/मंदिर में प्रतिष्ठापित है। लेखक ने स्वयं इन दोनों चरण-चिह्नों के दर्शन किये हैं।

१८. शिष्य-परिवार

कविप्रवर समयसुन्दर एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में ओजस्विता के साथ प्रखर वैदुष्य भी था। उन्होंने देश के अनेक अंचलों में भ्रमण किया तथा उपदेश भी दिये। कवि का व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि जो उनके निकट आता था, वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता था। मण्डोवर, मेड़ता आदि के अधिपति भी आपके आत्मबल, बुद्धि-बल, तपोबल और चारित्र-बल से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। इनके अतिरिक्त कवि की प्रतिभा का जिन राज्याधिपतियों पर प्रभाव रहा, उनका संकेत हम पूर्व में कर आए हैं। कतिपय व्यक्ति ऐसे भी थे, जिन्होंने कवि से भगवती प्रव्रज्या अंगीकार की और उनके प्रति पूर्ण समर्पित हो गये। वे व्यक्ति कवि के शिष्य थे।

यद्यपि कवि ने अपने एक गीत में अपने आराध्य-गुरु जिनकुशलसूरि से दो शिष्यों की याचना की है —

दादा जी दीजइ दो चेला।

एक भणइ, एक करइ वैयावच्च, सेवक होत सोहेला ॥

किन्तु एक गीत में उन्होंने अपनी आत्म-पीड़ा व्यक्ति की है। उसमें यह संकेत मिलता है कि उनके बहुत से शिष्य थे —

चेला नहीं तउ म करउ चिन्ता, दीसइ घणे चले पण दुक्ख।

संतान करंमि हुआ शिष्य बहुला, पणि समयसुन्दर न पायउ सुक्ख।

केई मुया गया पणि केई, केई जूया रहइ परदेश।

पासि रहइ ते पीड़ न जाणई, कहियइ घणउ तउ थायइ किलेस।

श्री अगरचन्द नाहटा एवं श्री भँवरलाल नाहटा का कथन है कि एक प्राचीन-पत्र के अनुसार इनके शिष्यों की संख्या बयालीस थी;^२ परन्तु के बयालीस शिष्य कौन थे, उनका नामोल्लेख नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में कवि के साहित्य में निर्दिष्ट शिष्य-प्रशिष्यों के नामों के आधार पर ही उनके शिष्य-वर्ग का प्रस्तुतिकरण समीचीन होगा। प्राप्त

१. श्रीसमयसुन्दराणां गडालये पादुके वन्दे। — उत्तराध्ययनसूत्र टीका (प्रारम्भ में)

२. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५१

साक्ष्यों के आधार पर उनके शिष्यों की पुष्ट जानकारी उपलब्ध होती है —

१८.१ हर्षनन्दन — ये 'हर्षनन्दन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने जैनधर्म के प्रचार में प्रबल पुरुषार्थ किया और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर जैन-साहित्य का गौरव बढ़ाया। इनकी कृतियों में ऋषिमण्डल-टीका, मध्याह्न व्याख्यान-पद्धति, उत्तराध्ययन-सूत्र-वृत्ति तथा स्थानांगवृत्तितगत गाथावृत्ति आदि उल्लेखनीय हैं। आदिनाथ-व्याख्यान, पार्श्वनेमि-चरित्र, ऋषिमण्डल-बालावबोध, आचार-दिनकर-लेखन-प्रशस्ति, उद्यम-कर्म-संवाद आदि भी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

कवि समयसुन्दर ने वादी हर्षनन्दन का अभिनन्दन किया है —

प्रक्रिया हेमभाष्यादि-पाठकैश्च विशोधिता ।

हर्षनन्दनवादीन्द्रैः, चिन्तामणि विशारदै ॥^१

हर्षनन्दन ने महोपाध्याय समयसुन्दर प्रणीत कल्पलता, समाचारी-शतक, सप्तस्मरण-टीका और द्रौपदी-चौपाई की रचना में सहयोग भी दिया था।

वादी हर्षनन्दन के जयकीर्ति जैसे ज्योतिष-विशारद और दयाविजय जैसे बहुश्रुत विद्वान् शिष्य थे। जयकीर्ति ने पृथ्वीराजवेलि-बालावबोध, षडावश्यक बालावबोध आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया था। जयकीर्ति के शिष्य राजसोम और प्रशिष्य समयनिधान ने भी पर्याप्त साहित्य लिखा है।

१८.२ सहजविमल — इनके सन्दर्भ में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। ये कवि के शिष्य थे। कवि ने इनके और मेघविजय गणि — दोनों के लिए नवतत्त्व-टीका, रघुवंश-टीका एवं जयतिहुअण-स्तोत्र-टीका बनाई थीं।

१८.३ मेघविजय — ये साधनानिष्ठ साधु थे। गुरु के प्रति भी पूर्ण श्रद्धा रखते थे। फलस्वरूप इन्होंने दुर्भिक्षकाल में भी अपने गुरु का साथ नहीं छोड़ा। प्रतिकूल स्थितियों में गुरु का साथ न छोड़ना, यह इनकी आचार और विचार-निष्ठता की द्योतक हैं। इसीलिए कवि समयसुन्दर ने उन्हें साधुवाद दिया है —

मुनि मेघविजय-शिष्यो, गुरुभक्तो नित्यपार्श्ववर्ती च ।

तस्मै पाठनपूर्व, दत्ता प्रतिरेषा पठतु मुद्रा ॥^२

मेघविजय के हर्षकुशल जैसे प्रखर वैदुष्य शिष्य थे। हर्षकुशल ने बीसी आदि रचनाओं के अतिरिक्त कवि की रचनाओं में भी संशोधन आदि की सहायता दी थी, जिसका निर्देश कवि ने स्वयं किया है —

वाचक हर्षनन्दन वलि, हर्षकुशलइ सानिधि कीधइ रे ।

लिखण सोधन सहाय थकी, तिण तुरत पूरी करी दीधी रे ॥^३

१. कल्पलता, प्रशस्ति (१२)

२. विशेषशतक, प्रशस्ति (६)

३. द्रौपदी-चौपाई (३.७.६)

हर्षकुशल के शिष्य हर्षसागर तथा प्रशिष्य ज्ञानतिलक एवं पुण्यतिलक भी समर्थ साहित्यकार हुए हैं। ज्ञानतिलक के शिष्य विनयचन्द्र अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख कवि थे।

१८.४ मेघकीर्ति — इनकी रचित एक भी कृति उपलब्ध नहीं है। इनकी शिष्य-परम्परा में ही आलमचन्द्र जैसे असाधारण कवि हुए और कस्तूरचन्द्र तथा कीर्त्तिसागर भी प्रखर विद्वान् हुए हैं।

१८.५ महिमासमुद्र — आप कवि के प्रिय शिष्य थे। आपके लिए ही कवि ने वि० सं० १६६७ में उच्च नगर में 'श्रावकाराधना' ग्रन्थ लिखा था। आपके शिष्यों में धर्मसिंह द्वारा रचित 'थावच्चा-चौपाई' विशेष वर्णनीय है। इनके पौत्रशिष्य विद्याविजय भी उद्भट पण्डित थे। आलीजा-गीतम् आदि इन्हीं के द्वारा प्रणीत हैं।

कवि समयसुन्दर के अन्य शिष्यों में सुमतिकीर्त्ति, माईदास आदि का उल्लेख भी प्रशस्तियों में उपलब्ध होता है। कवि के समान ही कवि का शिष्य-परिवार भी असाधारण प्रतिभाधारक, प्रखर विद्वान्, समर्थ साहित्य-सर्जक और साधना-प्रिय था। कवि की शिष्य-संतति के बारे में नाहटा-बन्धु लिखते हैं कि इनका शिष्य-परिवार खूब विस्तृत होकर फूला-फला। उसमें सैकड़ों साधु-यति हुए, जिनमें कई अच्छे गुणी व्यक्ति थे।^१ महोपाध्याय विनयसागर ने कवि के शिष्य परिवार की एक तालिका बनाई है, जो पृष्ठ ६९-७० पर द्रष्टव्य है।

यद्यपि तालिका में निर्दिष्ट शिष्य-परम्परा कवि से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त है, लेकिन यह भी सम्पूर्ण नहीं कही जा सकती है। यह तालिका केवल प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर ही विनयसागरजी ने बनाई है। वे लिखते हैं कि अनुमानतः आपके शिष्य-प्रशिष्यादि की संख्या विपुल ही थी, कौन-कौन और किस-किस नाम के शिष्य थे, उल्लेख नहीं मिलता। कतिपय ग्रन्थों के आधार पर बनाई गई इस तालिका से कवि की शिष्य-परम्परा का कुछ आभास ही हमें होता है।^२

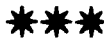
समयसुन्दर की शिष्य-परम्परा को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि वह यतियों की परम्परा है। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि समयसुन्दर स्वयं यति थे या मुनि। यदि हम गम्भीरतापूर्वक इस प्रश्न पर विचार करें, तो हमें दोनों ही प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हो जाते हैं। शिष्य-परम्परा का यति होना, शास्त्र आदि का विक्रय करना, गुरु-धन की चर्चा और क्रियोद्धार — ये सब तथ्य उन्हें यति-परम्परा के निकट बैठाते हैं, किन्तु इसके विपरीत उनके द्वारा 'गद्दी' का उल्लेख न होना, मुनि की भांति विहारी होना,

१. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५२

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ३६

शिष्यों को आचारनिष्ठ बनने के लिए प्रेरणा देना, उनका स्वयं का अपने को मुनि कहना^१ तथा उनके समकालीन कवियों द्वारा भी मुनि या साधु के रूप में उल्लेख किया जाना,^२ उनके निकटम शिष्यों के लिए भी मुनि शब्द का प्रयोग^३ आदि इस बात को स्पष्ट करते हैं कि वे यति न होकर मुनि थे, साधु थे। पुनः जो क्रियोद्धार और गुरु-धन की बात उनके यति-पक्ष में होने की कही जाती है, उसे एकदम उनके यति होने का सबल प्रमाण नहीं माना जा सकता। कभी-कभी मुनि भी अपनी वृद्धावस्था में क्रियोद्धार करते हुए देखे गये हैं। क्रियोद्धार केवल इसी बात का सूचक है कि साधक अपनी साधना के प्रति सजग है और अपने पूर्व जीवन में हुईं स्खलना के लिए क्रियोद्धार करता है। इसी प्रकार श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज में मुनि-परम्परा में भी गुरु-धन होने की बात पायी जाती है।

समयसुन्दर द्वारा जो शास्त्र एवं पात्र के विक्रय की बात कही गई है, वह अकाल के कारण अपवाद की स्थिति मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त समयसुन्दर ने स्वयं अपने नाम के साथ अथवा अपनी गुरु-परम्परा या शिष्यों के लिए यति शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया है। अतः इन सब आधारों पर हम समयसुन्दर को मुनि कह सकते हैं, किन्तु समयसुन्दर की परवर्ती शिष्य-परम्परा यति की थी, यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है। शिष्य-परम्परा की तालिका में जो अन्तिम नाम हैं, वे सब यति के हैं।



१. समयसुन्दर मुनि हम भणइ...।

— समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, वैराग्य-सज्जाय, पृष्ठ ४४८

२. सुसाधु हंस समयोसुरचन्द्र.....।

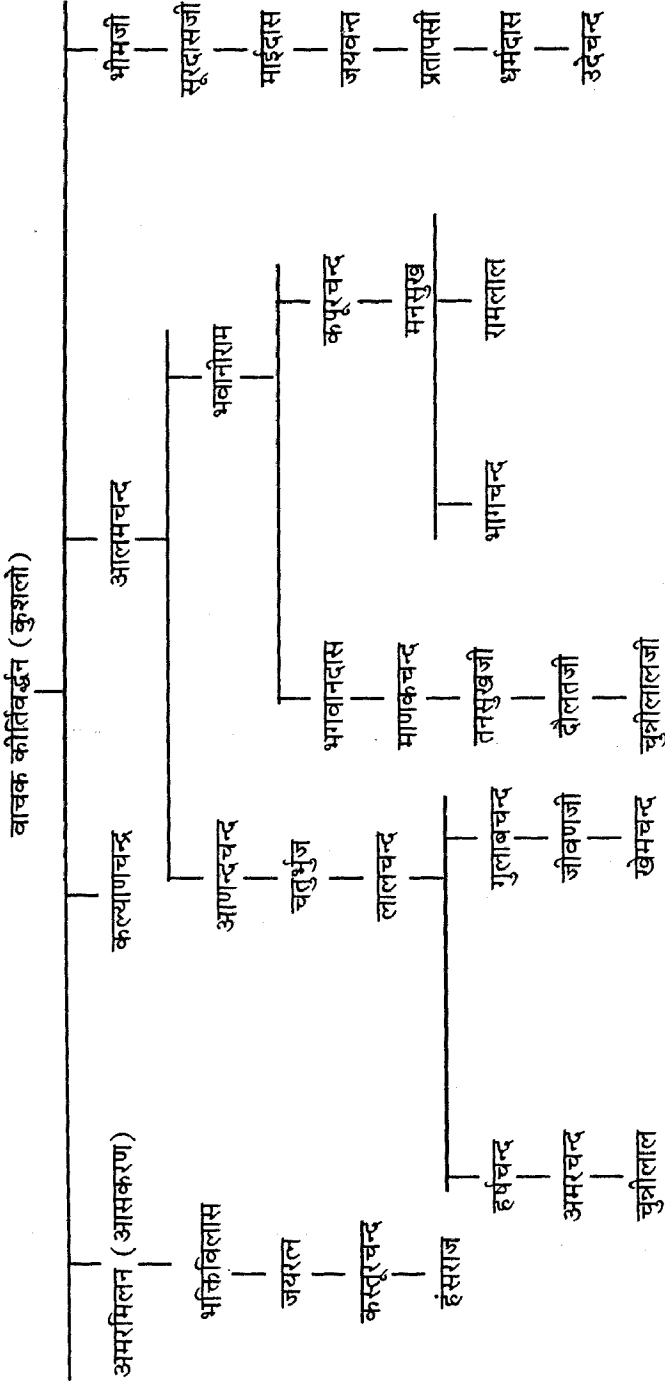
— ऋषभदास, कुमारपाल-रास (सं० १६७०)

३. (क) मुनिसहजविमल-पण्डितमेघविजयशिष्य-पठनार्थम्।

— जयतिहुअण - वृत्ति, प्रशस्ति (३)

(ख) मुनिमेघविजयशिष्यो गुरुभक्तो नित्यपार्श्ववर्ती च।

— विशेषशतक, प्रशस्ति (६)



द्वितीय अध्याय

समयसुन्दर की रचनाएँ

मध्यकालीन भारतीय-साहित्य को महोपाध्याय समयसुन्दर की महत्त्वपूर्ण देन है। वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि विविध भाषाओं के वेत्ता थे। उन्होंने गद्य और पद्य — इन दोनों में रचना की है। उनकी रचनाएँ विविध विधाओं से सम्बद्ध होने के कारण बहुविध हैं। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में समयसुन्दर जैसे रचनाकार कम ही हैं, जिनकी इतने अधिक विविध विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ उपलब्ध होती हों।

समयसुन्दर के समग्र साहित्य के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि उनका साहित्य आध्यात्मिक, पाण्डित्यपूर्ण और जनरुचि के अनुकूल — इन तीनों स्तरों पर उपलब्ध है। उनके साहित्य में दर्शन है, इतिहास है, भक्ति है, काव्य-कौशल है। सचमुच, उनका साहित्य बहुविध एवं बहुगुण-सम्पन्न है।

समयसुन्दर ने एक ओर कालिदास तथा केशवदास की तरह अपनी रचनाओं में पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है, तो दूसरी ओर भक्त बनकर कवयित्री मीराबाई की भाँति भावपूर्ण रचनाएँ कीं। तीसरी ओर उन्होंने एक उपदेशक बनकर सहृदय जनसामान्य को धार्मिकता तथा नैतिकता की प्रेरणा दी है।

महोपाध्याय समयसुन्दर की रचनाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम छः भागों में विभाजित कर सकते हैं —

- | | |
|--------------------------|----------------------|
| 1. मौलिक संस्कृत रचनाएँ | 2. संस्कृत टीकाएँ |
| 3. संग्रह-ग्रन्थ | 4. भाषा-कृतियाँ |
| 5. बालावबोध या भाषा-टीका | 6. प्रकीर्णक रचनाएँ। |

उपर्युक्त शीर्षकान्तर्गत समयसुन्दर के सम्पूर्ण साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन निम्नानुसार है —

१. मौलिक संस्कृत रचनाएँ

महोपाध्याय समयसुन्दर संस्कृत-जगत् में विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। इन्होंने प्रचुर संस्कृत-साहित्य का सर्जन किया। इनकी कतिपय रचनाएँ तो सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं विश्वजनीन रही हैं। संस्कृत-रचनाओं में उनकी 'अष्टलक्षी' नामक कृति संसार के सम्पूर्ण साहित्य में बेजोड़ एवं अनुपम है। इसी तरह उनका शतक-साहित्य भी अपने-आप में उच्च कोटि का है। संक्षेप में, समयसुन्दर की मौलिक संस्कृत रचनाएँ इस प्रकार हैं —

१.१ भावशतक

१.२ अष्टलक्षी

- | | |
|-----------------------------|-------------------------------|
| १.३ मंगलवाद | १.४ चातुर्मासिक व्याख्यान |
| १.५ कालकाचार्य-कथा | १.६ श्रावकाराधना |
| १.७ समाचारी-शतक | १.८ विशेष-शतक |
| १.९ विचार-शतक | १.१० विशेष-संग्रह |
| १.११ दीक्षाप्रतिष्ठा-शुद्धि | १.१२ विसंवाद-शतक |
| १.१३ खरतरगच्छ-पट्टावली | १.१४ कथाकोश |
| १.१५ सारस्वत-व्याकरण-रहस्य | १.१६ फुटकर प्रश्नोत्तर |
| १.१७ प्रश्नोत्तर-सार-संग्रह | १.१८ द्रौपदी-संहरण |
| १.१९ सारस्वतीय शब्द-रूपावली | १.२० तृणाष्टकम् |
| १.२१ रजाष्टकम् | १.२२ उद्गच्छसूर्यबिम्बाष्टकम् |
| १.२३ समस्याष्टकम् | |

१.१ भावशतक

प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रन्थकार की प्रथम उपलब्ध कृति है। यह ग्रन्थ काव्य-शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ है। इसमें उत्तम काव्य, जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक आकर्षक होता है, का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना-काल ग्रन्थकार ने इस प्रकार दिया है —

शशिसागररसभूतलसंवति, विहितं च भावशतकमिदम्।

इसमें उल्लिखित 'सागर' को यदि ४ संख्या का प्रतीक माना जाये, तो यह ग्रन्थ सं० १६४१ में और यदि 'सागर' को ७ का प्रतीक माना जाय, तो सं० १६७१ में यह ग्रन्थ गुम्फित हुआ था; किन्तु सभी विद्वानों ने इसे सं० १६४१ में रचित माना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई पुस्तकालय, अहमदाबाद में उपलब्ध है। सम्प्रति, यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१.२ अष्टलक्षी

संस्कृत भाषा में जहाँ एक ओर एक ही शब्द के अनेक पर्याय शब्द हैं, वहाँ कतिपय ऐसे शब्द भी हैं, जो अनेकार्थक होते हैं। संस्कृत भाषा के इस वैशिष्ट्य को सर्वप्रथम जैन-आचार्यों, मुनियों ने प्रयुक्त किया। पांचवीं-छठी शताब्दी से जैन-कवियों ने अनेकार्थक काव्य-रचना प्रारम्भ कर दिया था। पन्द्रहवीं से बीसवीं शताब्दी तक इस क्षेत्र में जैनकवियों ने प्रचुर कार्य किया है। इस दिशा में सम्प्रति पर्यन्त लिखित रचनाओं में यदि किसी रचना का नाम गौरव के साथ लिया जाए, तो वह प्रस्तुत कृति है। इसके बारे में डॉ० गुलाबचन्द चौधरी ने लिखा है कि महोपाध्याय समयसुन्दर कृत 'अष्टलक्षी' भारतीय काव्य-साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का अद्वितीय रत्न है।^१

१. जैनसाहित्य का वृहद् इतिहास, पृष्ठ ५२३

यह कृति कवि समयसुन्दर की विद्वत्तापूर्ण कृतियों में प्रमुख मानी जाती है। इसकी रचना के सम्बन्ध में भी एक विशिष्ट घटना का उल्लेख प्राप्त होता है। उपाध्याय रूपचन्द्र (रत्नविजय) द्वारा लिखे गये एक पत्र के अनुसार किसी विद्वान् ने बादशाह अकबर की विद्वत्सभा में 'एगस्स सुत्तस्स अणंतो अत्थो' अर्थात् एक सूत्र के अनन्त अर्थ होते हैं — इस जैनागमिक उक्ति को उद्धृत कर जैनियों की खिल्ली उड़ाई। यह बात महोपाध्याय समयसुन्दर को बुरी लगी। इसके प्रत्युत्तर में ही उन्होंने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया, ताकि जैनागमिक उक्ति की सत्यता एवं सार्थकता को प्रमाणित किया जा सके। अतः इस ग्रन्थ में कवि का प्रशस्त पाण्डित्य ही प्रदर्शित हुआ है।

सम्राट् अकबर ने वि० सं० १६४९ में काश्मीर-विजयके लिए प्रयाण कर प्रथम दिन अर्थात् वि० सं० १६४९, श्रावण शुक्ला १३ को राजा श्री रामदास की वाटिका में निवास किया। वहाँ कवि ने अनेक सामन्तों और विद्वानों की सभा के मध्य इस ग्रन्थ को सुनाकर अपने धर्म-ग्रन्थों के वाक्य की सत्यता को प्रमाणित किया। समयसुन्दर का कथन है कि इस ग्रन्थ को सुनकर सम्राट् अकबर अत्यन्त चमत्कृत हुआ और उसने मुक्तकण्ठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की। राजा ने यह कहते हुए ग्रन्थ को लेखक के हाथों में दिया कि इसका सर्वत्र प्रचार-प्रसार हो। उपर्युक्त वृत्तान्त को समयसुन्दर ने स्वयं इस प्रकार लिखा है —

संवति १६४२ प्रमिते श्रावणशुक्ला १३ दिनसन्ध्यायां 'कश्मीर' देश-विजय मुद्दिश्य श्री रामदासवाटिकायां कृत प्रथमप्रयाणेन श्रीअकबरपातिसाहिना जलाल (लुदी) दीनेन अभिजातसाहिजातश्रीसिलेमसुरत्राणसामन्तमण्डलिकराजिविराजितराजसभायाम् अनेकविधवैयाकरणतार्किकविद्वत्तमभट्टसमक्षम् अस्मद्गुरुवरान् युगप्रधानखरतरभट्टारक-श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरान् आचार्यश्रीजिनसिंहसूरिप्रमुखकृतमुखसुमुखशिष्यव्रातसपरिकरान् असमानसन्मानबहुमानदानपूर्व समाहूय अयमष्ट-लक्षार्थी-ग्रन्थो मत्पार्श्वद् वाचयांचक्रेऽवक्रेण चेतसा। ततस्तदर्थं श्रवणसमुत्पन्नप्रभूतनूतनप्रमोदातिरेकेण संजातचित्तचमत्कारेण बहुप्रकारेण श्रीसाहिना बहुप्रशंसापूर्व पठतां पाट्यतां सर्वत्र विस्तार्यतांसिद्धिरस्तु इत्युक्त्वा च स्वहस्तेन गृहीत्वा एतत् पुस्तकं ममहस्ते दत्त्वा प्रमाणीकृतोऽयं ग्रन्थः।^१

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ वि०सं० १६४९, श्रावण शुक्ला १३ के पूर्व ही पूर्ण हो गया था। वैसे कवि ने ग्रन्थ-समाप्ति की तिथि का उल्लेख ग्रन्थ के अन्त में निम्नांकित रूप में किया है--

श्री विक्रमनृपवर्षात् समये रसजलधि रागसोम (१६४६) मिते।

कवि ने इस ग्रन्थ का नाम 'अष्टलक्ष्मी' के अतिरिक्त 'अर्थ-रत्नावली' भी रखा है। आज साहित्य-जगत् में ये दोनों ही नाम प्रचलित हैं। इस ग्रन्थ का कलेवर काफी

१. अनेकार्थ-रत्नमञ्जूषा, पृष्ठ ६५

विशाल है। कवि ने इस ग्रन्थ में केवल 'राजा-नो-द-द-ते-सौ-ख्य-म्' (राजा नो ददते सौख्यम्) — इन आठ अक्षरों के १०,२२,४०७ (दस लाख, बाईस हजार, चार सौ सात) अर्थ करके एक अद्वितीय अनेकार्थ कोश बनाया है। साहित्य-सागर में यह ग्रन्थ एक अद्वितीय मुक्तासम्पुटवत् है। मूलतः कवि ने दस लाख से अधिक ही अर्थ किये थे, लेकिन बाद में उन्होंने असम्भव या योजनाविरुद्ध अर्थों को निकाल कर कुल आठ लाख अर्थ ही ग्रन्थबद्ध किये, जिसका उन्होंने 'अष्टलक्षी' नाम रखा।

भारतीय साहित्य में अनेक अनेकार्थी कृतियाँ मिलती हैं। जैन आम्नाय में भी समय-समय पर अनेकार्थी साहित्य लिखा जाता रहा है। लगभग ३० कृतियों का उल्लेख तो हीरालाल रसिकदास कापड़िया ने भी किया है,^१ लेकिन इतने छोटे वाक्य के हजार से अधिक अर्थ समयसुन्दर को छोड़कर अन्य किसी विद्वान् ने नहीं किये हैं। कतिपय अनेकार्थ-कोषों का उल्लेख कवि ने भी किया है, जिससे ज्ञात होता है कि कवि ने अपना कोश बनाने से पूर्व उन कोषों का भी अध्ययन किया होगा। वे हैं —

अभिधान चिन्तामणि नाममाला-कोष, धनंजय-नाममाला, हेमचन्द्राचार्य कृत अनेकार्थसंग्रह, तिलकानेकार्थ, अमर एकाक्षरी-नाममाला, विश्वम्भू एकाक्षरी-नाममाला, सुधा-कलश-एकाक्षरी-नाममाला, वररुचि निघंटु-नाममाला आदि।

कवि ने अष्टलक्षी ग्रंथ के अतिरिक्त अनेकार्थी गीतों और स्तोत्रों की रचना की है, जिनका विवरण हम आगे प्रस्तुत करेंगे।

यह अभूतपूर्व ग्रंथ प्रो० हीरालाल र० कापड़िया के सम्पादकत्व में पाठान्तर-सन्दर्भ-सहित श्रेष्ठि देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, मुम्बई की ओर से मुद्रित हुआ है।

१.३ मंगलवाद

प्रस्तुत ग्रन्थ न्यायशास्त्र से सम्बन्धित है। इसमें मंगल के प्रयोजन के विषय में विस्तृत विचार किया गया है। न्यायशास्त्र में मंगल के प्रयोजन के विषय में दो मत हैं — १. मंगल से ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति होती है, २. मंगल से ग्रन्थ-निर्माण में सम्भावित विघ्नों का विनाश होता है। प्रथम पक्ष के अनुसार ग्रन्थ-समाप्ति मंगल का मुख्य फल और विघ्न-विनाश गौण फल है। द्वितीय मत के अनुसार विघ्न-विनाश ही मंगल का एकमात्र फल है। समाप्ति के साथ मंगल का कोई कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मंगल-संबंधी उक्त दोनों मतों का सविस्तार निरूपण करते हुए मंगल के तीन प्रकारों — शारीरिक, वाचिक और मानसिक का वर्णन किया गया है। इसी सन्दर्भ में केशव मिश्र की 'तर्कभाषा' में मंगल का उल्लेख न होने पर भी ग्रंथकार द्वारा मानसिक रूप में मंगल किये जाने का समर्थन किया गया है।

१. द्रष्टव्य — अनेकार्थ-रत्न-मंजूषा, प्रस्तावना, पृष्ठ ९-१२

यद्यपि 'मंगलवाद' नव्यन्याय का विषय है और इसका विवेचन भी पारिभाषिक भाषा में ही अन्य ग्रन्थों में किया गया है, किन्तु प्रस्तुत ग्रंथकार ने सामान्य जनता के लाभ की दृष्टि से इस दुरूह विषय को सरल भाषा में प्रस्तुत कर लोकोपकार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६५३, आषाढ़ शुक्ला १० को इला-दुर्ग में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। ग्रन्थकार ने यह ग्रन्थ अपने शिष्य पं० हर्षकुशल के अध्ययन के लिए निबद्ध किया था। जैसा कि ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है —

कृता लिखिता च संवत् १६५३ वर्षे आषाढ़ सुदि १० दिने श्रीइलादुर्गे चातुर्मासस्थितेन श्रीयुगप्रधान-श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यमुख्यपण्डितसकलचन्द्रगणिस्तच्छिष्य वा० समयसुन्दरगणिना पं० हर्षनन्दनमुनि-कृते ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१.४ चातुर्मासिक व्याख्यान

प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना-काल वि० सं० १६६५, चैत्र शुक्ला १० और रचना-स्थान अमरसर है। ग्रन्थकार स्वयं उक्त तथ्य को सूचित करते हैं —

श्रीमद्विक्रमसंवति, बाणरसभ्रमरचरणशशिसंख्ये।

श्रीअमरसरसि-नगरे, चैत्रदशाम्बां च शुक्लायाम् ॥

इस ग्रन्थ में सामायिक, आवश्यक (प्रतिक्रमण), पौषध, देवार्चन, स्नात्रविलेपन, ब्रह्म-क्रिया (ब्रह्मचर्य), दान और तप — इन नौ विषयों का सविस्तार विवेचन और विश्लेषण किया गया है। ग्रन्थकार ने इन सभी विषयों की सुन्दर व्याख्या की है। इनके भेद-प्रभेद, स्वरूप, फल आदि का भी प्रतिपादन किया गया है। अन्त में विषय की स्पष्टता एवं शीघ्रबोधगम्यता के लिए तत्-तद्विषयक एक-एक दृष्टान्त भी दिये गये हैं। समयसुन्दर ने केवल एक पद्य में ही लगभग सभी चातुर्मासिक कृत्यों का संक्षिप्त विवरण दे दिया है —

सामायिकावश्यक-पौषधानि, देवार्चन-स्नात्रविलेपानि।

ब्रह्मक्रियादानतपोमुखानि, भव्याश्चतुर्मासिकमंडनानि ॥

इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; पूरणचन्द नाहर संग्रहालय, कोलकाता; जैन श्वे० पंचायती बड़ा मंदिर, वाराणसी आदि अनेक ज्ञान-भण्डारों से प्राप्त हुई हैं। केवल अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से इसकी ७ प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। नाहटा-बन्धुओं के अनुसार यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है^१, किन्तु हमें न तो इसकी प्रकाशित प्रति प्राप्त हो सकी है और न ही इसके प्रकाशक के बारे में कोई उल्लेखनीय जानकारी मिल सकी है।

१. द्रष्टव्य — सीताराम - चौपाई, पृष्ठ ५३

१.५ कालकाचार्य-कथा

जैन कथा-साहित्य में प्रभावक आचार्यों पर लिखी गई रचनाओं में 'कालकाचार्य' की कथा अत्यधिक प्रसिद्ध रही है। कालकाचार्य के जीवनवृत्त में अनेक क्रान्तिकारी घटनाएँ घटित हुईं। उन घटनाओं ने जैन समाज को इतना अधिक प्रभावित किया कि अनेक जैनाचार्यों ने स्थान-स्थान पर उन घटनाओं का उल्लेख किया^१ और उन पर स्वतन्त्र कृतियाँ निबद्ध कीं। कालकाचार्य पर लिखित कृतियों में ३० कृतियाँ तो अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं।^२ विदेशी-विद्वानों को भी कालक की कथा इतनी अधिक पसन्द आई कि उन्होंने तो प्राकृत-संस्कृत में लिखित कुछेक कालिक-कथाओं का अंग्रेजी में भाषान्तर करके प्रकाशित किया है।^३

कविवर समयसुन्दर कृत 'कालकाचार्य-कथा' भी जैन समाज में काफी लोकप्रिय रही है और कालक-कथा-साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखती है। इस कृति की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, जैन भवन, कोलकाता आदि अनेक ग्रन्थ-संग्रहालयों में एवं हमारे संग्रह में भी उपलब्ध है। कुछेक प्रतियाँ तो सचित्र भी उपलब्ध होती हैं।

प्रस्तुत कृति वि० सं० १६६६ में राउल तेजसी के राज्य में वीरमपुर नगर में रची गई। लेखक ने कथान्त में इसका निर्देश किया है —

श्रीमद्विक्रमसंवति रसर्तृशृङ्गारसख्यकेसहसि ।

श्रीवीरमपुरनगरे, राउलनृपतेजसी-राज्ये ॥

सम्पूर्ण कथा ४४१ श्लोक-परिमाण है। कथा गद्य में है।

कथा के प्रारम्भ में कथाकार ने यह उल्लेख किया है कि आज तक तीन कालकाचार्य हुए हैं। प्रथम कालकाचार्य वीर निर्वाण संवत् ३७६ में हुए थे। इनका उपनाम श्यामाचार्य था। इन्होंने 'प्रज्ञापना-सूत्र' की रचना की और ब्राह्मणरूपधारी सौधर्मेन्द्र के सम्मुख निगोद का विवेचन किया था। कुछेक विद्वान् इन्हें वीर निर्वाण संवत् ३२० अथवा ३२५ में भी हुआ मानते हैं। द्वितीय कालकाचार्य वीरनिर्वाण के ४५३ वर्ष पश्चात् हुए। ये सरस्वती के भाई, राजा गर्दभिल्ल के विजेता और बलभद्र-भानुमित्र के मामा थे। तृतीय कालकाचार्य वी० नि० सं० ९९३ अर्थात् वि० सं० ५२३ में हुए थे। इन्होंने महावीर

१. द्रष्टव्य — (क) वृहत्कल्पसूत्र, विभाग १, पत्र ७३-७४

(ख) व्यवहार -चूर्ण,दसम उददेशक,

(ग) आवश्यक-सूत्र,पूर्वभाग, पृष्ठ ४९५-९६

२. द्रष्टव्य — श्री कालिकाचार्य - कथा-संग्रह, कुंवरजी हीरजी छेड़ा, नलिया (कच्छ) से प्रकाशित।

३. द्रष्टव्य — कालककथा,संपादक -ब्राउन और प्रकाशक-फ्रिअर गैलेरी ऑफ आर्ट, वाशिंगटन।

युग से परम्परागत भाद्रपद शुक्ल ५ को सम्पन्न होने वाले पर्युषण (संवत्सरी) पर्व को भाद्रपद शुक्ला ४ को मनाया।

उपर्युक्त तीनों कालकाचार्यों में सामान्यतया द्वितीय तथा तृतीय कालक की कथा ही विश्रुत है, परन्तु लेखक ने अपनी कृति में तीनों ही कालक-कथाओं का विवरण दिया है, जो कि इस प्रकार है —

(१)

इसी भरतक्षेत्र में धारावास नामक एक नगर था। वहाँ वज्रसिंह नामक राजा राज्य करता था। सुरसुन्दरी उसकी पट्टराज्ञी थी। एक बार उसने शुभस्वण सूचित एक पुत्र को जन्म दिया, जो कालककुमार के नाम से विश्रुत हुआ। वह शैशवकाल में ही सभी कलाओं एवं विद्याओं में पारंगत हो गया।

एकदा उस नगर में आचार्य गुणाकरसूरि पधारे। कालक उनका प्रवचन सुनकर संसार से विरक्त हो गया। उसने बड़ी कठिनाई से माता-पिता आदि अभिभावकों से प्रव्रजित होने की स्वीकृति प्राप्त की। कालक और उसकी बहिन सरस्वती ने भी दीक्षा ले ली। मुनि कालक क्रमशः गीतार्थ बने और आचार्य-पद प्राप्त किया।

कालकाचार्य एक बार उज्जयिनी नगरी गये। वहाँ के राजा गर्दभिल्ल ने नगर-मध्य से गमन करती हुई दो साध्वियों को देखा। राजा, साध्वी सरस्वती पर मुग्ध हो गया। वह उसे पाना चाहता था। वयस्क साध्वी ने उसका विरोध किया, लेकिन उसने अश्व पृष्ठ बैठे हुए ही सरस्वती को पकड़ा और महलों में भाग गया।

जब कालक के पास यह समाचार पहुँचा, तो वे कतिपय शिष्यों-सहित राजा के पास गये। उन्होंने एवं संघ ने राजा को यह दुष्कर्म न करने के लिए निवेदन किया और उसे समझाया, परन्तु कामुक के लिए उपदेश व्यर्थ होता है। अन्त में कालक ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं अपने सामर्थ्य से गर्दभिल्ल को शिक्षा न दूँ और बहिन को इससे मुक्त न करा दूँ, तो मुझे दुर्गति प्राप्त हो। कालक उन्मत्त होकर पागल-सा प्रलाप करते हुए नगर में फिरने लगे। सूरि को ऐसी अवस्था में देखकर सारी प्रजा और मन्त्री इत्यादि अधिकारी-गण राजा के पास गये और कहा कि हे राजन! इस तपस्विनी को छोड़ दीजिये, इससे आपका बड़ा अपयश हो रहा है; किन्तु राजा पर इनकी बात का भी प्रभाव नहीं पड़ा। कालक ने जब यह जाना कि राजा ने सामन्तों की बात भी नहीं मानी, तो उन्होंने खिन्न होकर वहाँ से प्रयाण कर दिया और वे अनवरत चलते हुए शक-कूल में जा पहुँचे। वहाँ जो सामन्त थे, वह 'साहि' या 'साखी' कहलाते थे। जब कालकसूरि साहि के देश में पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि राजकुमार की गेंद एक कूप में गिर गई और उसे निकालने में सभी लड़के असमर्थ हैं। कालक धनुर्विद्या में प्रवीण तो थे ही, उन्होंने गेंद निकाल ली। साहि-पुत्र ने महल में जाकर यह अद्भुत बात बताई, तो साहि ने कालकसूरि को बुलाया।

इस प्रकार कालक साहिपुत्र के द्वारा दरबार में पहुँच गये। (ऐसी ही घटना महाभारत, परिशिष्ट, पर्व सर्ग ८ में भी वर्णित है।)

कालक ने साहि को अपने वश में कर लिया। एक बार साहानुसाहि या साखीराज का एक दूत आया और उसने एक पत्र दिया, जिसे पढ़कर साहि का शरीर काला पड़ गया। कालक द्वारा कारण पूछने पर साहि बोला कि यह हमारे स्वामी की रुष्टता का प्रतीक है। हमारा स्वामी जिससे रुष्ट होता है, उसके पास उसी के नाम की मुद्रावाली कटार भेजता है, जिससे उसे आत्महत्या करनी पड़ती है। यदि उसकी इस आज्ञा का पालन न किया जाय, तो वह उसके सारे परिवार को नष्ट कर डालता है। तब सूरि ने पूछा — क्या वह तुम्हारे से ही रूठा है या किसी और से भी? साहि बोला— भगवन्! मेरे अतिरिक्त ९५ अन्य राजाओं से भी, क्योंकि '९६' का अंक इस कटार पर दिखाई देता है। सूरि ने समाधान खोजते हुए बताया कि यदि ऐसी बात है, तो तुम आत्मघात मत करो और अपने दूत भेजकर ९५ ही राजाओं को कहला दो कि हम हिन्दुक को चलेंगे; वहाँ गर्दभिल्ल राजा को जीतकर, वहाँ शासन करेंगे।

९६ राजा दल-बल सहित एकत्रित हुए और सभी हिन्दुक देश की ओर रवाना हुए। सुराष्ट्रदेश में पहुँचे, तब तक वर्षाकाल आ गया। मार्ग दुर्गम होने से वे वहीं ठहर गए। वर्षावास में सभी राजाओं का धन-धान्यादि समाप्त हो गया, तो कालक ने शासनदेव की स्तुति की और उनसे प्राप्त वासक्षेप को उन्होंने ईंटों पर डाल दिया। ईंटें स्वर्णमयी हो गईं, जिससे राजाओं को सारी ऋद्धि-समृद्धि पुनः प्राप्त हो गई।

समस्त लोग मालवदेश पहुँचे और उज्जयनी पर चढ़ाई कर दी। परस्पर युद्ध हुआ और गर्दभिल्ल की सेना तितर-बितर हो गई। कालक को यह ज्ञात था कि आज कृष्णाष्टमी है, अतः गर्दभिल्ल गर्दभी-विद्या का स्मरण करेगा। सूरि ने सैनिकों से अट्टालिकाओं पर दिखाया कि कहीं कोई गर्दभी तो दृष्टिगत नहीं हो रही है? सैनिकों ने गर्दभी होने की बात बतायी, तो कालक ने सभी राजाओं को निर्देश दिया कि तुम मात्र १०८ शब्दवेधियों को मेरे पास छोड़कर यहाँ से पाँच कोश दूर चले जाओ। कालक ने शब्दवेधियों को आदेश दिया कि वह गर्दभी कुछ शब्दोच्चारण करने के लिए जैसे ही अपना मुख खोले, उसका मुख एक साथ तीरों से बींध डालना। यही हुआ, गर्दभी कुछ बोल न सकी और व्यथा के मारे वह अपनी शक्ति भी सम्भाल न सकी और वहाँ से भागने लगी। गर्दभिल्ल पर कुपित हो जाने से उसने उस पर विष्ठा कर दी। गर्दभी-विद्या के अभाव में गर्दभिल्ल की शक्ति भी नष्टप्राय हो गयी।

अन्त में गर्दभिल्ल को पकड़ लिया गया। कालक ने उसे धिक्कारा और पुनः प्रतिबोध दिया, परन्तु कूर्मकाय पर किये गये प्रहार निरर्थक होते हैं, तथापि कालक के हृदय में करुणा जागृत हो गयी। उन्होंने उसे मुक्त कर दिया तथा शीघ्र ही यह देश छोड़कर

चले जाने को कहा ताकि शत्रुजन उसे मृत्युदण्ड न दे सकें।

अन्य साहिजनों ने सूरि के पर्युपासक साहि को साहानुसाहि बना दिया और सभी सुखपूर्वक रहने लगे। ये शककूल से आए थे, अतः ये “शक” कहलाए। इस प्रकार शक-शासकों का वंश चला।

कालक ने साध्वी सरस्वती को फिर से संयम में लगाया और स्वयं ने भी आलोचना-प्रतिक्रमण करके अपने गण का भार सम्भाला।

(२)

भृगुकच्छ नगर के राजा बलमित्र-भानुमित्र, जो कि कालक के भानजे थे, ने कालक को भृगुकच्छ आने के लिए साग्रह निमन्त्रण भेजा। कालक साहि से विदा लेकर भृगुकच्छ पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत हुआ। राजा अन्य मतों की उपेक्षा करके मात्र जैनधर्म को ही श्रेष्ठ मानता था। तदर्थ राजा पुरोहित ने कालक से शास्त्रार्थ किया, पर वह पराजित हो गया। उसने एक चाल चलते हुए श्रावकों और राजा को कहा कि ये महान गुरु हैं, इन्हें केवल मिष्टान्न-पान आदि ही गौचरी में देवें। श्रावकों ने वैसा ही किया। अन्त में कालक ने भृगुकच्छ को संक्लेशयुक्त स्थल जानकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। कथाकार कहता है कि बलभानु ने स्वजनों की अनुमति बिना ही कालक से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, जिससे भानुमित्र आदि कालक से रुष्ट हो गये। शेष सम्बन्ध पूर्ववत् है।

(३)

प्रमादग्रस्त हुए शिष्यों को कालक ने क्रिया आदि करने के लिए बहुत प्रेरणा दी, लेकिन उसमें कोई अन्तर न पड़ा। अतः एक दिन कालक ने उन्हें छोड़ दिया और शय्यातर को सम्पूर्ण बात समझाकर स्वयं अपने प्रशिष्य सागरचन्द्र के पास स्वर्णपुर नगर में चले गये। सागरचन्द्र व्याख्यान दे रहे थे, वे उन्हें पहचान न पाये। व्याख्यान समाप्ति पर सागरचन्द्र ने अहं से पूछा कि मेरा व्याख्यान कैसा लगा? यदि कोई संदेह हुआ हो, तो कहो। कालक ने धर्म-अधर्म की अनेकान्तवाद के आधार पर युक्तिसंगत समीक्षा की, जिसे सुनकर सागरचन्द्र आश्चर्यचकित हो गया।

उधर प्रमादी शिष्यों ने गुरु-वियोग हो जाने से दुःख किया। उन्होंने शय्यातर से गुरु के बारे में पूछा। उसने उन्हें उनके प्रमाद, अविनय आदि दुर्गुणयुक्त होने के कारण फटकारा। जब शिष्यों ने कहा कि अब हम साधु-आचरण करेंगे, तो उसने कालक के स्वर्णपुर में गमन करने बात बता दी। शिष्य वहाँ पहुँचे। उनसे जब ज्ञात हुआ कि पूर्व आए वृद्ध साधु ही कालक हैं, तो सागर ने उनसे क्षमा मांगी।

(४)

किसी अवसर पर सीमन्धर स्वामी ने इन्द्र को निगोद का स्वरूप बनाया, तो उसने पूछा कि भरत क्षेत्र में भी कोई निगोद-विचार को जानता है? भगवान् ने कालकाचार्य

का नाम प्रस्तुत किया। इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर आया। कालक ने निगोद पर सूक्ष्म विचार कहे। इन्द्र ने कालक का विशेष ज्ञान देखने के लिए अपनी आयु पूछी। कालक ने जब उसकी आयु सागरोपमों में देखी, तो उन्होंने इन्द्र को पहचान लिया। इन्द्र ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और चला गया। उधर से कालक के शिष्य गौचरी लेकर वापस उपाश्रय आये, तो उन्हें अद्भुत आलोक दृष्टिगोचर हुआ। शिष्यों के पूछने पर कालक ने आद्यन्त बात बताई।

जीवन के अन्त में उन्होंने संलेखना-व्रत ग्रहण किया और समाधिपूर्वक मरकर देवलोक प्राप्त किया।

कथाकार ने इस कृति में अनेक स्थानों पर ग्रन्थ-सूक्त, सुभाषित-वचनों, उद्धरणों आदि का प्रयोग किया है। कथा में लावण्य लाने के लिए उन्होंने कहीं-कहीं तत्कालीन हिन्दी में भी वाक्य-रचना की है। कथाकार की गद्यशैली कहीं-कहीं तो पद्यशैली-सी प्रतीत होती है। कथा का शब्द-विन्यास ही उसे साहित्यिक कोटि तक ले जाने में सहायक सिद्ध होता है।

प्रस्तुत कथा 'कालिकाचार्य-कथा-संग्रह' से संग्रहीत है, जिसके सम्पादक हैं- अम्बालाल प्रेमचन्द शाह और प्रकाशक हैं कुंवरजी हीरजी छेड़ा, नलिया (कच्छ)।

समयसुन्दर की इस कथा का प्राचीन राजस्थानी में भाषानुवाद भी हुआ है, जिसकी पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त हुई है। उस पाण्डुलिपि के अन्त में प्राप्त उल्लेखानुसार यह अनुवादित रचना जिनलाभसूरि के समय में पण्डित गिरधर ने सोजित नगर में लिखी थी।

१.६ श्रावकाराधना

जैन धर्म में श्रावक-धर्म एवं श्रमण-धर्म — दोनों का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत कृति का वर्ण्य-विषय श्रावक-धर्म से सम्बन्धित है। इस कृति में लेखक ने श्रावक के करणीय कर्तव्यों को पाँच अधिकारों में विवेचित किया है। पाँच अधिकार निम्नलिखित हैं —

१. सम्यक्त्व-शुद्धिः, २. अष्टादशपापस्थानकपरिहारः, ३. चतुरशीतिलक्षजीवयोनिक्षामणम्, ४. दुष्कृत-गर्हा एवं ५. सुकृत-अनुमोदना।

१. सम्यक्त्व-शुद्धि — इसमें देव, गुरु और धर्म का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि इन तीनों पर अटूट श्रद्धा रखना ही सम्यक्त्व शुद्धि है।

२. अष्टादश-पापस्थानक-परिहार — प्रस्तुत प्रकरण में अठारह पापस्थानों के नाम, स्वरूप आदि बताते हुए उन पापों के परिहार का निर्देश किया गया है। अठारह पाप ये हैं — १. प्राणातिपात, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२. कलह, १३. अभ्याख्यान, १४. पैशुन्य,

१५. रति-अरति, १६. परपरिवाद, १७. मायामृषावाद और १८. मिथ्यात्व-शल्य ।

लेखक ने प्रथम पांच पापों को पांच आश्रव कहा है । तत्पश्चात् वाले चार पापों को चार कषाय और राग एवं द्वेष को बन्धन कहा है । शेष पापों को किसी के अन्तर्गत न रखकर स्वतन्त्र नाम दिये गये हैं ।

३. चतुरशीतिजीवयोनिक्षामणम्— इस अधिकार में चौरासी लाख जीवयोनियों में रहने वाले जीवों के प्रति हुई विराधना या अपराधों के लिए क्षमा-याचना करने का मुख्यतः निर्देश किया गया है । महोपाध्याय समयसुन्दर ने इन चौरासी लाख जीवयोनियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजसूकाय, सात लाख वायु-काय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पति-काय, चौदह लाख साधारण-वनस्पति-काय, दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और चौदह लाख मनुष्य = चौरासी लाख जीवयोनि ।

लेखक ने इनके अतिरिक्त इन योनियों में आने वाले जीवों का भी विस्तृत उल्लेख किया है । उन जीवों के आयुष्य, स्थिति, देह-परिमाण और योनि-परिमाण का भी वर्णन किया है ।

४. दुष्कृत-गर्हा — प्रस्तुत अधिकार में स्वधर्म का खण्डन, परधर्म का मण्डन, आरम्भ-समारम्भ और पंच अणुव्रत एवं श्रावकधर्म के बारह व्रत के खण्डन से लगे दोषों का विवरण देते हुए यह बताया है कि इनकी गर्हा करनी चाहिये ।

५. सुकृत-अनुमोदना — इसमें श्रावक धर्म के बारह-व्रत, तीर्थ-यात्रा, पुस्तक-लेखन, जिनमन्दिर-निर्माण-जीर्णोद्धार, पौषध, दान, शील, तप, चतुर्विध संघ वैयावृत्य आदि सुकृतों का वर्णन करते हुए उनकी अनुमोदना करने का विधान किया गया है ।

इस तरह हम देखते हैं कि समयसुन्दर ने श्रावक-धर्म का सुन्दर एवं नवीन विवेचन किया है । श्रावक-जीवन की उपरोक्त भूमिकाएँ उसका विकास करने वाली हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ गद्यबद्ध है । इसकी संस्कृत भाषा अत्यन्त सरल है । शब्दावली आद्यन्त सरलतम होने से शीघ्रबोधगम्य है । समयसुन्दर ने यह ग्रन्थ महिमासमुद्र नामक अपने शिष्य के आग्रह से निबद्ध किया था । इसका रचना-काल वि० सं० १६६७ और रचना-स्थान उच्च-नगर है । ग्रन्थान्त में लिखा है —

उच्चाभिधान नगरे..... ।

महिमासमुद्र-शिष्याग्रहेण मुनिषड्रसचन्द्रवर्षे ॥

श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; श्री जिनकुशलसूरि ज्ञान भण्डार, रामघाट, वाराणसी आदि ज्ञान भण्डारों में प्रस्तुत ग्रन्थ की कई पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं ।

१.७ समाचारी-शतक

प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वद्ग्रन्थ समयसुन्दर ने आचार-सम्बन्धी २०० विवादास्पद प्रश्नों का समाधान करते हुए खरतरगच्छ की परम्परा की आगम-सम्मतता सिद्ध की है। लेखक के पहले भी समय-समय पर खरतरगच्छ के आचार्यों ने ऐसे ग्रन्थ लिखे थे। इन ग्रन्थों में मणिधारी जिनचन्द्रसूरि रचित 'पदव्यवस्था कुलक', आचार्य जिनप्रभसूरि रचित 'विधि-प्रपा', रुद्रपल्लीय आचार्य वर्द्धमानसूरि रचित 'आचार-दिनकर' आदि उल्लेखनीय हैं। इन सब ग्रन्थों के होते हुए भी लेखक ने अन्य गच्छावलम्बियों द्वारा खरतरगच्छ पर किये जाने वाले सामयिक आक्षेपों का समाधान इस कृति में किया है। लेखक के अनुसार ऐसे गच्छावलम्बियों में तपागच्छ के उपाध्याय धर्मसागर प्रमुख थे। यद्यपि लेखक ने इस ग्रन्थ में अपने गच्छ पर किये जाने वाले आक्षेपों का प्रत्युत्तर दिया है, फिर भी उन्होंने किसी पर भी प्रत्याक्षेप नहीं किया है। उन्होंने शंकाओं के समाधान के सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ कहने की अपेक्षा अपनी मान्यता को पुष्ट करने वाले आगमिक प्रमाण देने का प्रयत्न अधिक किया है। आगमिक अथवा अन्य प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाण प्रस्तुत करने के पश्चात् भी अन्त में यह निर्देश दिया है कि विशेष सत्य तो केवली-गम्य है। इससे उनकी उदार दृष्टि का ही परिचय प्राप्त होता है।

इस ग्रन्थ की रचना कब हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यह ग्रन्थ श्री जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार-फण्ड, मुम्बई (जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार, सूरत) से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में आद्यन्त कहीं भी ग्रन्थ के रचना-काल का निर्देश नहीं किया गया है, किन्तु महोपाध्याय विनयसागर ने प्रस्तुत ग्रन्थ के रचना-काल का निर्देश ग्रन्थकार द्वारा लिखित निम्नलिखित पंक्तियों में किया है —

प्रारम्भं किल सिंधुदेशविषये श्री सिद्धपुर्यामिदं ।

मूलत्राणपुरे क्रियाद्विरचितं वर्षत्रयात् प्राग्मया ॥

× × ×

सम्पूर्णं विदधेपुरे सुखकरे श्री मेडतानामके ।

श्री मद्द्विक्रमसंवति द्वि-मुनिषट्-प्रालेयरोचिमिते ॥^१

उपर्युक्त उद्धरण से प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रारम्भ वि० सं० १६६९ में सिद्धपुरी में हुआ और वर्षत्रय पश्चात् वि० सं० १६७२ में मेडता में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

मोहनलाल द० देसाई ने भी अपने निबन्ध में उक्त रचना-काल का ही उल्लेख किया है^२, किन्तु इसकी प्रकाशित प्रति में उपर्युक्त श्लोक नहीं है। सम्भवतः जिस पाण्डुलिपि के आधार पर यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमें उक्त पद्य लिखना छूट गया होगा।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५३

२. आनंद-काव्य-महोदधि, मौक्तिक ७, कविवर समयसुन्दर, पृष्ठ ३०

यह ग्रन्थ पांच प्रकाशों में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में ३७ अधिकार, द्वितीय प्रकाश में ११ अधिकार, तृतीय प्रकाश में १३ अधिकार, चतुर्थ प्रकाश में २८ अधिकार और पंचम प्रकाश में ११ अधिकार हैं। इस प्रकार इसमें कुल १०० अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार की विषय-वस्तु भिन्न-भिन्न है। आगे हम क्रमशः उनका विवरण प्रस्तुत करेंगे।

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में १० श्लोकों में प्रारम्भिक मंगल करते हुए ग्रन्थ का पुरोवाक् लिखा है, जिसमें उन्होंने ग्रन्थ का सामान्य परिचय दिया है। खरतरगच्छ पर किये गये विविध आक्षेपों का निराकरण करना ही ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन बताया गया है। संक्षेप में ग्रन्थ के प्रत्येक अधिकार का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है —

प्रथम प्रकाश

पहला अधिकार — 'सामायिक-व्रत' ग्रहण करते समय खरतरगच्छ में पहले 'सामायिक-प्रतिज्ञा-सूत्र' बोलते हैं और पश्चात् 'ईर्यापथिकी' प्रतिक्रमण करते हैं; जबकि कतिपय अन्य गच्छों में पहले 'ईर्यापथिकी' प्रतिक्रमण करते हैं और पश्चात् सामायिक-प्रतिज्ञा-सूत्र का उच्चारण करते हैं। ग्रन्थकार ने अपने गच्छ की प्रथम सामायिक-प्रतिज्ञा-सूत्र का उच्चारण करने सम्बन्धी मान्यता को आगम-सम्मत सिद्ध किया है।

दूसरा अधिकार — खरतरगच्छ में पर्व दिवसों में ही पौषध-व्रत करने की जो परम्परा है, वह किस सीमा तक शास्त्र-सम्मत है, उसे इस अधिकार में प्रमाणित किया है।

तीसरा अधिकार — खरतरगच्छ में भगवान् महावीर के षट्कल्याणक माने जाते हैं, जबकि अन्य कुछ गच्छों में पाँच कल्याणक माने जाते हैं। ग्रन्थकार ने प्रस्तुत अधिकार में महावीर के षट्कल्याणक की खरतरगच्छीय अवधारणा को आगम-सम्मत सिद्ध किया है। इसमें च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष — इन पाँच कल्याणकों के अतिरिक्त गर्भ संक्रमण नामक छठा कल्याणक भी माना जाता है।

चौथा अधिकार — यह अधिकार ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। तपागच्छ के उपाध्याय धर्मसागर ने 'कुमतिकन्दकुदाल' (प्रवचन-परीक्षा) नामक ग्रन्थ बनाकर खरतरगच्छ पर अनेक आक्षेप किये। उन आक्षेपों में प्रमुख हैं — खरतरगच्छ की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं हुई है, अपितु जिनदत्तसूरि से हुई है; अभयदेवसूरि खरतरगच्छ के नहीं थे, आदि।

वि० सं० १६१७ कार्तिक शुक्ला ७ को पाटण में एक संगीति नियोजित की गई, जिसमें सभी गच्छों के आचार्यों ने भाग लिया। इस संगीति में उपाध्याय धर्मसागर को पुनः-पुनः निमन्त्रण देने पर भी वे नहीं आए। अतः संगीति में उ० धर्मसागर को उत्सूत्रवादी घोषित किया गया और खरतरगच्छ पर लगाये गये आरोपों का निराकरण किया गया। अभयदेवसूरि खरतरगच्छ में हुए — यह प्रमाणित हुआ।

संगीति में दिये गये प्रमाण-पत्र की नकल एवं उसमें लिये गये निर्णयों को भी ग्रन्थकार ने प्रस्तुत अधिकार में दिया है। उस मतपत्र में उक्त विवाद के अतिरिक्त संगीति में आमन्त्रित एवं उपस्थित गच्छाचार्यों, विद्वत्मुनियों और प्रमुख पण्डितों का भी नामोल्लेख है।

पाँचवाँ अधिकार — इस अधिकार में 'आयरिय-उवज्जाए' नामक सूत्र का पठन गृहस्थों को ही करना चाहिए, मुनियों को नहीं, पर सप्रमाण प्रकाश डाला गया है।

छठा अधिकार — साधु के साथ साध्वी का विहार वर्जनीय है, इस तथ्य को आगमिक उद्धरण देकर स्पष्ट एवं पुष्ट किया गया है।

सातवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में अधिक दिन तक भीगे हुए द्विदल, गेहूँ आदि के बने हुए अचित्त पदार्थ मुनि के लिए ग्राह्य हैं, या नहीं — इस प्रश्न की चर्चा करते हुए इन पदार्थों की ग्राह्यता संबंधी खरतरगच्छीय अवधारणा को आगम-सम्मत सिद्ध किया है।

आठवाँ अधिकार — इस प्रकरण में लेखक ने चतुर्दशी तिथि के टूटने पर पाक्षिक प्रतिक्रमण पौर्णमासी को करना ही आगम-सम्मत है— ऐसा सिद्ध किया है।

नोवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में किस प्रकार का जल मुनि के लिए ग्राह्य है — इस संबंध में विचार करते हुए यह बताया है कि सभी प्रकार का प्रासुक जल मुनि के लिए ग्राह्य है।

दसवाँ अधिकार — इसमें आचाम्त (आयम्बिल-तप) में उपचित अर्थात् पक्व अन्न एवं प्रासुक जल के अतिरिक्त अन्य सभी खाद्य-पेय पदार्थों को त्याज्य बताया गया है।

ग्यारहवाँ अधिकार — अपक्व दूध में द्विदल पदार्थ को ग्रहण करना उचित नहीं है— इस बात को प्रस्तुत अधिकार में आगमोद्धरणों से प्रमाणित किया गया है।

बारहवाँ अधिकार — इस प्रकरण में मूंग आदि के समान संगर आदि भी द्विदल हैं या नहीं, इस प्रश्न की चर्चा की गई है और प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए उनके द्विदलत्व को सिद्ध किया गया है।

तेरहवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में प्रत्याख्यान लेते समय में पेय पदार्थ संबंधी 'पाणस्स लेवेण वाअलेवेण वा' आदि छः आगार (अपवाद) संबंधी पाठ का उच्चारण किसे करना चाहिये और किसे नहीं करना चाहिए— इसकी चर्चा करते हुए यह सिद्ध किया है कि इस आगार-संबंधी पाठ का उच्चारण मात्र मुनियों को करना चाहिये, गृहस्थों को नहीं; क्योंकि गृहस्थ के लिए इन अपवादों का सेवन उचित नहीं है।

चौदहवाँ अधिकार — सामान्यतया आगमों में द्रौपदी आदि के जिन प्रतिमा-पूजा संबंधी उल्लेख उपलब्ध होते हैं, फिर क्या कारण है कि खरतरगच्छ में श्राविकाओं को मूल प्रतिमा की पूजा का निषेध किया गया है। ग्रन्थकार ने इस समस्या की चर्चा करते हुए यह बताया है कि खरतरगच्छ में भी मात्र तरुण स्त्रियों के लिए पूजा का निषेध किया गया है, बाल अथवा वृद्ध स्त्रियों के लिये नहीं। तरुण स्त्रियों के लिए भी केवल चन्दनादि पूजा का निषेध

है, क्योंकि उसमें स्पर्श होता है, धूप आदि अन्य पूजाओं का निषेध उसके लिए नहीं है। यह निषेध भी जिनदत्तसूरि ने मूल प्रतिमा की सातिशयता की रक्षा की दृष्टि से ही किया है।

पन्द्रहवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में इस बात की पुष्टि की गई है कि वर्तमानकाल में शारीरिक सामर्थ्य, साहस आदि की अल्पता के कारण श्रावकों को ग्यारह प्रतिमाओं के धारण करने का निषेध है, क्योंकि ग्यारह प्रतिमाधारक पर उपसर्ग एवं परीषह आने की पूर्ण सम्भावना होती है।

सोलहवाँ अधिकार — इसमें एक साथ अधिक उपवास के प्रत्याख्यान का निषेध किया गया है तथा इस तथ्य को आगम एवं पूर्वाचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों के प्रमाण से सिद्ध किया गया है कि एक से ज्यादा उपवास करने के स्थान पर प्रतिदिन एक-एक उपवास का प्रत्याख्यान करवाना चाहिये।

सत्रहवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में 'करेमि भन्ते' सूत्र अर्थात् सामायिक-प्रतिज्ञा सूत्र को तीन बार बोलना शास्त्र-सम्मत प्रमाणित किया गया है।

अठारहवाँ अधिकार — इस प्रकरण में श्रावक के लिए रजोहरण या चरवला रखना आवश्यक नहीं है— इस बात की पुष्टि की गई है। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट किया गया है कि श्रावक को वंदन, कायोत्सर्ग आदि करते समय उसे केवल प्रमार्जन आदि के लिए अपने चरणों के पास रजोहरण या चरवला रखना चाहिये।

उन्नीसवाँ अधिकार — विवेच्य अधिकार में पौषध की रात्रि के अन्तिम मुहूर्त्त में पुनः सामायिक ग्रहण करना आवश्यक बताया गया है और इसके लिए शास्त्रीय प्रमाण एवं तर्क प्रस्तुत किए हैं।

बीसवाँ अधिकार — तपागच्छादि में प्रतिलेखना के समय 'बहुपडिपुत्रा पोरिसी' सूत्र उच्चरित होता है, किन्तु खरतरगच्छ में 'उग्घाडा पोरिसी'। कवि ने खरतरगच्छ की मान्यता को आगम-सम्मत सिद्ध किया है।

इक्कीसवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में शिशु-जन्म, मरण इत्यादि प्रसंगों में सूतक मानने संबंधी अवधारणा को पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थों के आधार पर पुष्ट करते हुए यह बताया गया है कि जिन गृहों में सूतक हो, वहाँ श्रमण को प्रत्येक प्रकार के सूतक के लिए निर्दिष्ट दिनों तक भिक्षादिक ग्रहण नहीं करना चाहिए।

बाईसवाँ अधिकार — अन्य गच्छों के श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र के अन्त में खड़े होकर 'तस्स धम्मस्स केवलपन्नतस्स'— इस पाठ के उच्चारण करने की परम्परा है, किन्तु खरतरगच्छ में यह परम्परा नहीं है। लेखक ने उक्त पाठ के उच्चारण के स्थान पर खरतर-परम्परानुसार उसके अर्थ का अन्तस् में चिन्तन करना ही शास्त्रसम्मत बताया है।

तेईसवाँ अधिकार — जैनों में पर्युषण-पर्व प्रमुख पर्व माना जाता है। यह पर्व किस दिन मनाया जाये, इस प्रश्न को लेकर आन्तरिक विवाद है। प्रस्तुत प्रकरण में समयसुन्दर ने

आषाढ पौर्णमासी से पचास दिन पश्चात् पर्युषण/संवत्सरी प्रतिक्रमण करने के मत का समर्थन किया है और यह बताया है कि दो श्रावण हों, तो द्वितीय श्रावण के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी और यदि दो भाद्रपद हों, तो प्रथम भाद्रपद की शुक्ला चतुर्थी को पर्युषण/संवत्सरी करना चाहिए।

चौबीसवाँ अधिकार — पर्युषण-पर्व में 'कल्पसूत्र' का वाचन किया जाता है। खरतरगच्छ में देश, समय तथा परिस्थिति के अनुसार नव, ग्यारह या तेरह वाचनाओं में विभाजित करके 'कल्पसूत्र' का वाचन होता है, जबकि तपागच्छादि में नव वाचनाओं में ही इसे समाप्त किया जाता है। लेखक ने प्रस्तुत अधिकार में उक्त तथ्य की चर्चा करते हुए अपनी मान्यता को सप्रमाण शास्त्र-सम्मत बताया है।

पच्चीसवाँ अधिकार — खरतरगच्छ के अनुसार उपधान-तप के अतिरिक्त पौषध-व्रत में मात्र जल ही ग्रहण कर सकते हैं, भोजन नहीं; किन्तु तपागच्छ आदि अन्य गच्छों की मान्यतानुसार पौषध-व्रत में भोजन ग्रहण किया जा सकता है— इस प्रकरण में इस मतभेद की चर्चा करते हुए ग्रन्थकार ने अपने गच्छ की परम्परा को शास्त्रीय सिद्ध किया है।

छब्बीसवाँ अधिकार — इस प्रकरण में शास्त्र-सम्मत से यह प्रमाणित किया गया है कि जिन प्रतिमा की 'अंजनशलाका' केवल आचार्य ही करा सकते हैं, सामान्य मुनि नहीं।

सत्ताईसवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में आगमिक उद्धरण देकर यह बताया गया है कि चतुर्दशी तिथि के क्षय होने पर पौषध आदि धर्मकृत्य पौर्णमासी को करना चाहिये।

अट्ठाईसवाँ अधिकार — इस प्रकरण में तिथि की वृद्धि होने पर उस तिथि में किये जाने वाले धार्मिक कार्य प्रथम तिथि में करने का निर्देश दिया है। इस बात की पुष्टि के लिये लेखक ने विविध ग्रन्थों के प्रमाण भी दिये हैं।

उन्तीसवाँ अधिकार — तपागच्छ के अनुयायी भोजन-ग्रहण करके भी पौषध-व्रत स्वीकार कर लेते हैं और खरतरगच्छ के अनुयायी ऐसा नहीं करते। इस प्रकरण में भोजन करके पौषध ग्रहण करना शास्त्रीय दृष्टि से अनुचित बताया गया है।

तीसवाँ अधिकार — सामान्यतया खरतरगच्छ में कल्याणक-तिथि अथवा पर्व-तिथियों में ही पौषध ग्रहण करने का विधान है, अन्य तिथियों में पौषध करने का निषेध किया गया है; तथापि उपधान-तप के समय तो श्रावक प्रतिदिन पौषध करते हैं। अतः प्रश्न यह उठता है कि जब अन्य तिथियों में पौषध का निषेध किया गया है तब उपधान-तप के समय ऐसा क्यों किया जाता है? इसके उत्तर में ग्रन्थकार में इसमें यह बताया है कि गीतार्थ मुनियों ने उपधान-तप के समय सर्वतिथियों में पौषध करने का विधान किया है और इसी आधार पर उपधान में सर्वतिथियों में पौषध किया जाता है।

इकतीसवाँ अधिकार — इसमें खरतरगच्छ में 'सामायिक' ग्रहण करते समय 'स्वाध्याय' निमित्त आठ बार नवकार मन्त्र उच्चारित किया जाता है, परन्तु यह बात आगमों में

उल्लिखित है अथवा नहीं— इस पर विचार करते हुए इसे आगमों में उल्लिखित न मानकर, गुरु-परम्परा प्राप्त ही बताया है।

बत्तीसवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में 'पडिलेहन' (प्रतिलेखन) क्रिया में वस्त्रों एवं कम्बल की प्रतिलेखना के नियम बताते हुए प्राभातिक प्रतिलेखन-क्रिया करते समय पहले कम्बल तत्पश्चात् अन्य वस्त्रों का प्रतिलेखन करना तथा संध्याकालिक प्रतिलेखन करते समय पहले वस्त्रों का और बाद में कम्बल का प्रतिलेखन करना शास्त्र-सम्मत बताया गया है।

तैंतीसवाँ अधिकार — सामायिक व्रत अंगीकार करते समय व्रतोच्चारण में सुबह 'बैसणो संदिसाहूँ, वैसणो ठाऊँ' बोलकर बाद में 'सज्जाय संदिसाहूँ', 'सज्जाय करूँ' इत्यादि सूत्र बोलते हैं, जबकि सायंकाल में पहले 'सज्जाय.....', पश्चात् 'वैसणौ' के सूत्र बोले जाते हैं। प्रस्तुत अधिकार में लेखक ने इसे शास्त्र-सम्मत कहा है।

चौत्तीसवाँ अधिकार — इस प्रकरण में ग्रन्थकार ने यह बताया है कि यद्यपि सामयिक व्रत में वस्त्रादि धारण करने का आगमों में उल्लेख नहीं है, तथापि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर वस्त्र धारण किए जाते हैं।

पैंतीसवाँ अधिकार — प्रतिक्रमण करते समय प्रतिक्रमण के स्थापनावसर पर खरतरगच्छ में 'वन्दन' निमित्त चार 'खमासमणा' दिये जाते हैं और अन्य गच्छों में पाँच। लेखक ने प्रस्तुत अधिकार में खरतरगच्छ की मान्यता को शास्त्र-सम्मत सिद्ध किया है।

छत्तीसवाँ अधिकार — इस प्रकरण में दो कार्तिक मास होने पर प्रथम कार्तिक मास में चातुर्मासिक प्रकरण करने को शास्त्रोक्त सिद्ध किया गया है।

सैंतीसवाँ अधिकार — इस अधिकार में कच्चे दूध, दही आदि के साथ द्विदल पदार्थों (चना, मोठ आदि)को ग्रहण करने का आगमिक आधारों पर निषेध किया गया है।

ग्रन्थकार यहाँ अपने प्रगुरु एवं गुरु के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए 'प्रथम प्रकाश' समाप्त करता है।

द्वितीय प्रकाश

अड़तीसवाँ अधिकार— इस अधिकार में जैनागमों की संख्या-निर्धारण पर चर्चा करते हुए यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि ११ अंग, १२ उपांग, ११ प्रकीर्णक, ६ छेद, ४ मूल, नन्दी और अनुयोगद्वारा — इस प्रकार आगमों की संख्या ४५ है।

उनतालीसवाँ अधिकार— जिनप्रतिमा एवं उनकी पूजा का जिन शास्त्रों में उल्लेख उपलब्ध होता है, इनका इस प्रकरण में निर्देश किया गया है।

चालीसवाँ अधिकार— इस अधिकार का प्रतिपाद्य विषय है— ज्ञानादि-गुण-रहित जिनप्रतिमा भी साक्षात् जिन के समान ही होती है। ग्रन्थकार ने इसे शास्त्रों के उद्धरणों और प्रमाणों से पृष्ट किया है।

इकतालीसवाँ अधिकार— इस प्रकरण में इस बात को सिद्ध किया गया है कि जो फल साक्षात् जिनेश्वर की अर्चना करने से प्राप्त होता है, वही फल जिनमूर्ति की अर्चना करने से प्राप्त होता है।

बयालीसवाँ अधिकार — जिन प्रतिमा की पूजा करने से षट्काय की हिंसा होती है। उदाहरणार्थ— प्रतिमा-निर्माण के समय सचित पाषाण के छेदन से पृथ्वीकाय की, जल-अभिषेक के अप्काय की, दीपोज्वलन से अग्निकाय की, शंखवादन से वायुकाय की, कुसुम अर्पित करने से वनस्पतिकाय की और प्रज्वलित दीप में पतंगा गिरने से त्रसकाय की हिंसा होती है। विवेच्य अधिकार में उपर्युक्त प्रश्नों का सम्यक् निराकरण किया गया है।

तैंतालीसवाँ अधिकार — जिनमूर्ति पूजा का फल जिन-जिन आगमों में या ग्रंथों में वर्णित है, उनके तत् तत् सन्दर्भों का इस प्रकरण में विनियोजन किया गया है।

चवालीसवाँ अधिकार — देवलोक में सूर्याभ आदि देवों द्वारा जो जिनप्रतिमा की पूजा की जाती है, वह पुण्य-कर्म है या पापकर्म — इस प्रश्न का समाधान करते हुए उसे पुण्यकर्म बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार में एक अन्य प्रश्न उपस्थित किया गया है कि जब सूर्याभ आदि सम्यक्त्वी देव जिन-पूजार्थ अपने विमान से बाहर जाते हैं, तब कदाचित् विमान में मिथ्यात्वी देव भी शेष रहते होंगे— ऐसी स्थिति में क्या जिनप्रतिमा अपूज्य रहती है? इसके प्रत्युत्तर में ग्रन्थकर्त्ता बताते हैं कि वे मिथ्यात्वी देव भी उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार सम्यक्त्वी ग्रामाधीश के अभाव में अन्य ग्रामवासी।

पैंतालीसवाँ अधिकार — खरतरगच्छ में आगम-व्याख्या करने से पूर्व प्रत्येक आगम के लिए पृथक्-पृथक् योग किया जाता है, जबकि कतिपय अन्य गच्छों में यह मान्यता नहीं है। प्रस्तुत अधिकार में लेखक ने खरतरगच्छ की मान्यता को शास्त्रसम्मत सिद्ध किया है।

छियालीसवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में मूर्तिपूजक-परम्परा में साधु-साध्वियों में दण्ड रखने की जो परम्परा है, उसके आगमिक प्रमाण दिये गये हैं।

सैंतालीसवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में जो लोग पैंतालीस आगमों को स्वीकार नहीं करते हैं, उनसे विविध प्रश्न किये गये हैं, जैसे— चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, ओधा आदि का प्रमाण किस आधार पर निर्धारित करते हैं? साधु पुस्तक आदि की रक्षा किस आधार पर करते हैं? पात्रों पर लेपन करने का आधार क्या है? जल कितने काल तक प्रासुक रहता है? आदि-आदि। और यह पूछा गया है कि वे जिन क्रियाओं को करते हैं, उनका उनके द्वारा मान्य बत्तीस आगमों में कहीं उल्लेख नहीं है, फिर वे उन क्रियाओं को किस आधार पर करते हैं? यदि वे उन क्रियाओं को अन्य आगमिक ग्रन्थों के आधार पर करते हैं, तो उन्हें उन आगम ग्रन्थों को भी स्वीकार करना चाहिये। प्रस्तुत प्रकरण मुख्यतः स्थानकवासी मान्यताओं से संबंधित है। स्थानकवासी समाज की ऐसी अनेक मान्यताएँ

हैं, जो उनके द्वारा मान्य आगमों में वर्णित नहीं है। उनका आधार मुख्यतया अन्य आगमिक ग्रन्थ ही हैं। लेखक ने उनकी मान्यताओं का विस्तृत विवरण देकर यह बताने का प्रयास किया है कि जिन आधारों पर वे इन मान्यताओं को स्वीकार करते हैं, उनके आधारभूत ग्रन्थों को अस्वीकार करना उनके लिए उचित नहीं है।

अड़तालीसवाँ अधिकार — जिन ग्रन्थों में जिनप्रतिमा-पूजा-फल प्रतिपादित किया गया है, उनका इस अधिकार में सविस्तार उल्लेख किया गया है।

तृतीय प्रकाश

उनचासवाँ अधिकार — इसमें श्रावकों के लिए प्रतिक्रमण, वन्दन आदि में मुख्यवस्त्रिका के प्रयोग का विधान जिन ग्रन्थों में निर्दिष्ट है, उनके उद्धरण दिये गये हैं।

पचासवाँ अधिकार — 'खामणा' के समय द्वितीय वन्दन में 'खामेमि खामासमणों' इस पाठ का उच्चारण करने की तीन परम्पराएँ हैं— एक परम्परा के अनुसार यह पाठ आचार्य के चरणों में सिर रखकर किया जाता है, दूसरी परम्परा में खड़े होकर किया जाता है और तीसरी परम्परानुसार यह पाठ बैठे हुए या अर्धावनतकाय होकर कहा जाता है। ग्रन्थकार ने इन परम्पराओं पर विचार करते हुए तीनों के ही प्राचीन आधारों का संकेत किया है।

इक्यावनवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में श्रमण को आहार-ग्रहणार्थ जिन कुलों में जाने की अनुज्ञा है और जिन कुलों में जाने का निषेध है, उनका सप्रमाण उल्लेख किया गया है।

बावनवाँ अधिकार — 'नवकार मन्त्र' की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त शब्दों को खरतरगच्छ में 'हवइ मंगलं' के रूप में पढ़ा जाता है, जबकि अन्य गच्छों में 'होई मंगलं'। लेखक ने अपनी मान्यता को विस्तृत प्रमाण देकर शास्त्र-सम्मत सिद्ध किया है।

तिरेपनवाँ अधिकार — इस प्रकरण में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वस्तुओं में जिन वस्तुओं का समावेश हो सकता है, उनका सप्रमाण निरूपण किया गया है।

चौपनवाँ अधिकार — शृंगाटक (सिंघाड़ा) को कतिपय गच्छों में अभक्ष एवं अनन्तकाय माना जाता है। समयसुन्दर ने इसकी सत्यता और असत्यता पर विचार करते हुए उसे अभक्ष्य तथा अनन्तकाय नहीं माना है।

पचपनवाँ अधिकार— प्रस्तुत अधिकार में लवण, हरिताल, मनःशिला, पीप्पली, खर्जूर, द्राक्षा, हरीतकी, पत्र, पुष्प, फल आदि प्रासुक हैं अथवा नहीं— इस बात पर विचार करते हुए यह सिद्ध किया है कि उपर्युक्त पदार्थ अचित्त होने पर प्रासुक हैं तथा ग्राहक हैं, किन्तु सचित्त होने पर नहीं।

छप्पनवाँ अधिकार — इसमें विविध चूर्णों के ग्राह्यत्व और अग्राह्यत्व, सचित्तत्व एवं अचित्तत्व के संबंध में सप्रमाण विचार किया गया है।

सत्तावनवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में प्रासुक अचित्त जल कितने कालान्तर सचित्त

हो जाता है, इसकी चर्चा करते हुए ग्रन्थकर्ता ने आगमिक प्रमाण देकर यह बताया है कि ग्रीष्मकाल में पांच प्रहर, शीतकाल में चार प्रहर एवं वर्षाकाल में तीन प्रहर पश्चात् अचित्त जल सचित्त हो जाता है।

अट्टावनवाँ अधिकार — इस अधिकार में जर्गरी, घृष्टि, तक्र, करम्बक, ओदन, दधि, पक्वान्न इत्यादि कितने प्रहर तक ग्राह्य हैं और कितने प्रहरानन्तर अग्राह्य हैं— इस पर विचार करते हुए कवि ने यह लिखा है कि जर्गरी १२ प्रहर; घृष्टि, तक्र, करम्बक २० प्रहर; ओदन २४ प्रहर तथा दही १६ प्रहर पश्चात् अग्रग्राह्य हो जाता है। लेखक ने उक्त तथ्य की पुष्टि के लिए शास्त्रों के प्रमाण दिए हैं।

उनसठवाँ अधिकार — दैवसिक प्रतिक्रमण तथा रात्रिक प्रतिक्रमण अपवाद-स्थिति में कब से कब तक कर सकते हैं- इस प्रश्न के उत्तर में यह स्पष्ट किया गया है कि दैवसिक प्रतिक्रमण दिन के तृतीय प्रहर से अर्द्धरात्रि तक कर सकते हैं और रात्रिक प्रतिक्रमण अर्द्धरात्रि से दिन के मध्याह्न तक।

साठवाँ अधिकार — जैन शास्त्रों में पंचमी पर्व का उल्लेख जिन स्थानों पर उपलब्ध होता है, उनका इस अधिकार में उद्धरण सहित निर्देश किया गया है।

इकसठवाँ अधिकार— शिष्य द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर कि पर्युषण पर्व मनाने के लिए आगम-आज्ञा भाद्रपद शुक्ला ५ है, तब भी खरतरगच्छ में भाद्रपद शुक्ला ४ को पर्युषण पर्व क्यों मनाया जाता है? इसका उत्तर देते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि यद्यपि यह बात सत्य है, तथापि श्री कालिकाचार्य द्वारा पर्युषण पर्व भाद्रपद शुक्ला ४ को सम्पन्न किया गया, वही परम्परा अधुना पर्यन्त चली आ रही है। कालिकाचार्य द्वारा प्रवर्तित पर्युषण पर्व की तिथि आदि से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटना का विस्तृत विवरण 'कालिकाचार्य-कथा' के परिचयान्तर्गत हम दे आए हैं, उसका पुनः उल्लेख करना मात्र पिष्टपेषण होगा।

यहाँ तृतीय प्रकाश का समापन होता है।

चतुर्थ प्रकाश

बासठवाँ अधिकार — इसमें जिनवल्लभसूरि रचित 'समाचारी' का वर्णन किया गया है।

तिरेसठवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में अनायतन चैत्य की पूजा और स्त्री द्वारा मन्दिर के मूलनायक की पूजा का निषेध जिस पदोद्धाटककुलक (जिनदत्तसूरि कृत) में निर्दिष्ट है, उसका आद्यन्त प्ररूपण किया गया है।

चाँसठवाँ अधिकार — इस प्रकरण में जिनपतिसूरि द्वारा ६९ पद्यों में विरचित 'समाचारी' का विवरण दिया गया है।

पैंसठवाँ अधिकार — पूर्वाधिकार में वर्णित 'समाचारी' के अतिरिक्त 'शिक्षारूप' एक अन्य समाचारी का प्रस्तुत अधिकार में वर्णन किया गया है।

छियासठवाँ अधिकार — इस अधिकार में यह बताया गया है कि पाक्षिक प्रतिक्रमण में

क्षमापना के समय आन्तरणी नाम छन्दना-दोष^१ नहीं होता है। इसका उल्लेख जिनपतिसूरि कृत 'समाचारी' में तथा जिनप्रभसूरि कृत 'विधि-प्रपा' में है।

सड़सठवाँ अधिकार — प्रतिक्रमण में 'राइय' तथा 'देवसिय' कब कहा जाता है— इसका समाधान करते हुए ग्रन्थकार ने प्रस्तुत प्रकरण में लिखा है कि रात्रि के प्रथम प्रहर तक 'देवसिय' एवं पूर्वाह्न के प्रथम प्रहर तक 'राइय' कहा जाता है।

अरसठवाँ अधिकार — इस प्रकरण में श्रावकों को एक परत वाली मुखवस्त्रिका पर 'वन्दना' देना शास्त्र-सम्मत बताया गया है।

उनहत्तरवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में युगप्रधान, गच्छाधिपति, सामान्य आचार्य, वाचनाचार्य, महत्तरा, प्रवर्तिनी आदि विशिष्ट पदधारी मुनियों एवं साध्वियों का नगर-प्रवेश जिस ढंग से होता है, उसका निदर्शन है।

सत्तरवाँ अधिकार — इसमें 'सिद्धान्तानुयोग' के विसर्जन की विधि का विवरण दिया गया है।

इकहत्तरवाँ अधिकार — इस प्रकरण में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में भुवन देवता का कायोत्सर्ग करना चाहिये अथवा नहीं — इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक ने दोनों के पक्ष के संबंध में उपलब्ध प्रमाण दिए हैं तथा अपनी ओर से कोई एकपक्षीय निष्कर्ष नहीं दिया है।

बहत्तरवाँ अधिकार — इसमें 'पाक्षिक-सूत्र' के पठन एवं श्रवण से पूर्व की जानेवाली क्रिया का वर्णन किया गया है।

तिहत्तरवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में जिनप्रभसूरि कृत 'विधि-प्रपा' नामक ग्रन्थ में उल्लिखित 'केश-लुंचन' से पूर्व की जाने वाली विधि निर्दिष्ट है।

चौहत्तरवाँ अधिकार — इसमें श्रावक द्वारा प्रतिक्रमण में जिन अतिचारों का चिन्तन किया जाता है, उनका निर्देश है।

पचहत्तरवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में श्रमण द्वारा 'गौचरी' (आहार-चर्या) में घृत गिर जाने पर प्रायश्चित्त रूप की जाने वाली क्रिया का विवरण है।

छिहत्तरवाँ अधिकार — इसमें पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण के अन्तर्गत छौंक आने पर तद्दोष-निवारणार्थ की जाने वाली विधि निर्दिष्ट है।

सतहत्तरवाँ अधिकार — इस अधिकार में प्रतिक्रमण के मध्य श्रावकों के सामने से बिल्ली के गमन पर की जाने वाली विधि का उल्लेख है।

१. अपने उपभोग के निमित्त लाये गये भिक्षादि पदार्थों के लिए अपने सभी साथी-साधुओं को आमंत्रित न करना अर्थात् अकेला चुपचाप उनका उपभोग करना छंदना-दोष है।

अठत्तरवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में सामायिक-व्रत ग्रहण करते समय दिये जाने वाले तेरह 'खमासमणा' का निर्देश है।

उन्नासीवाँ अधिकार — इस अधिकार में असज्झाय (अस्वाध्याय) कब और कितने काल तक रहता है, उसकी सविस्तार चर्चा की गई है।

अस्सीवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में चैत्र पौर्णमासी के दिन शत्रुंजय तीर्थ पर मध्याह्न काल में जो पुण्डरीक-देव-वन्दन किया जाता है, उसकी विधि दी गयी है।

इक्यासीवाँ अधिकार — इसमें गुरु-स्तूप-प्रतिमादि को जिस विधि से प्रतिष्ठापित किया जाता है, उसका प्ररूपण किया गया है।

बयासीवाँ अधिकार — इस अधिकार में जिनबिंब के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके पूजन के स्नात्र, विलेपन आदि इक्कीस प्रकारों का वर्णन किया गया है।

तिरासीवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में 'कल्पत्रेप'^१ की विधि का विवरण दिया गया है।

चौरासीवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में खरतरगच्छीय प्रतिक्रमण की विधि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पिचयासीवाँ अधिकार — इसमें पौषध-विधि का विस्तारपूर्वक निदर्शन है।

छियासीवाँ अधिकार — इस अधिकार में जैन भगवती दीक्षा प्रदान करने की सम्पूर्ण विधि निर्दिष्ट है।

सत्यासीवाँ अधिकार — इसमें उपधारन-तप की विधि वर्णित है।

अट्टासीवाँ अधिकार — इस प्रकरण में निर्विकृति (निवि तप) नामक तप में जिन पदार्थों का उपभोग वर्जित है, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

उनयासीवाँ अधिकार — इसमें साध्वी द्वारा 'कल्पसूत्र' आदि स्वतः वांचन करने के विधान को शास्त्रोक्त सिद्ध किया गया है।

यहाँ चतुर्थ प्रकाश सम्पूर्ण होता है।

पंचम प्रकाश

नब्बेवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में रात्रिक एवं दैवसिक प्रतिक्रमण के षडावश्यक की आद्यन्त व्यवस्था का वर्णन किया गया है।

इक्यानवेवाँ अधिकार — इसमें 'बीस स्थानक-तप' की विधि लिखी गई है।

बानवेवाँ अधिकार — भोजन के समय जो वंदन किया जाता है, वह भोजन के पूर्व किया जाता है या पश्चात् — इस प्रश्न के सम्बन्ध में लेखक ने विधि आगमिक आधारों पर यह

१. 'कल्पत्रेप' एक विशिष्ट प्रकार की साधना है, जो योगसाधना के लिए आवश्यक मानी गयी है। इस विधि का विस्तृत विवेचन जिनप्रभसूरि कृत 'विधिमार्गप्रपा' (पृष्ठ ६२) में मिलता है।

प्रतिपादित किया है कि यह वन्दन भोजन के पश्चात् किया जाता है।

तिरानवेवाँ अधिकार — इसमें चैत्र और आश्विन माह के द्वितीय पक्ष की द्वितीया को 'अस्वाध्याय' के निवारणार्थ जो क्रिया की जाती है, उसकी विधि प्रदत्त है।

चौरानवेवाँ अधिकार — प्रस्तुत अधिकार में द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी एवं चतुर्दशी रूप पंच पर्व-तिथियों में किये जाने वाले तपादि का सप्रमाण विवरण दिया गया है।

पिचानवेवाँ अधिकार — इसमें प्रातःकालीन प्रतिक्रमण को कहाँ समाप्त करना चाहिये, इस पर विचार करते हुए बताया है कि जब 'आचार्य-मिश्र' आदि तीन 'खमासमणा' देते हैं, तब रात्रिक प्रतिक्रमण सम्पूर्ण हो जाता है।

छियानवेवाँ अधिकार — प्रस्तुत प्रकरण में साधु को उत्सर्ग रूप में एक वस्त्र, अपवाद रूप में तीन वस्त्र और अत्यन्त अपवाद में सात वस्त्र रखना आगम-सम्मत बताया है और सामायिक में श्रावक को उत्सर्ग रूप में एक वस्त्र एवं अपवाद रूप में तीन वस्त्र और श्राविका को उत्सर्ग रूप में एक वस्त्र तथा अपवाद रूप में छः वस्त्र रखना आगम-आज्ञा मानी है।

सत्तानवेवाँ अधिकार — इस अधिकार में यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि स्थापना किसकी होती है, गुरु की या अर्हत् की? यदि वह स्थापना गुरु की मानी जाये, तो उसके सम्मुख 'शक्रस्तव' का पाठ करना उचित नहीं होगा और यदि वह अर्हत् की स्थापना मानी जाये, तो फिर यह कहकर कि 'गुरु विहरम्मि अठवणा' उसका स्थापना करना उचित नहीं होगा। लेखक ने इस सन्दर्भ में विस्तृत विचार करते हुए यह बताया है कि 'स्थापना' पंच परमेष्ठी की होती है। अतः उसमें सभी का समावेश हो जाता है।

अट्टानवेवाँ अधिकार — इस प्रकरण में 'प्रतिक्रमण' में श्रुतदेवता की स्तुति करना सिद्धान्त है, या परम्परा— यह प्रश्न उठाया गया है। ग्रन्थकार ने इसे परम्परा ही माना है।

निन्यानवेवाँ अधिकार — खरतरगच्छीय साधु-साध्वी मिट्टी के घट में जल-ग्रहण करते हैं, उसमें जीवोत्पत्ति होती है या नहीं—ग्रन्थकर्ता ने इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए प्रस्तुत अधिकार में यह बताया है कि मिट्टी के घट में जल लेने से जीवोत्पत्ति नहीं होती है।

सौवाँ अधिकार — इसमें संघ पर आए उपद्रव आदि के निवारण के लिए 'शान्ति' की विधि दी गई है।

१.८ विशेष-शतक

इस ग्रन्थ के 'विशेषशतक' इस नाम से आपाततः ऐसा प्रतीत होता है कि मूल ग्रन्थ में १०० पद्य हैं, किन्तु ग्रन्थ के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इसमें ग्रन्थकार ने केवल शिष्य द्वारा उठाये गये १०० प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। इसमें अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों तथा अपेक्षित विवरणों द्वारा उन प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास किया गया है। यत्र-

तत्र ग्रन्थान्तर के क्लिष्ट उद्धरणों की ग्रन्थकार ने स्वयं व्याख्या कर उन्हें सुबोध बनाने की चेष्टा की है, जिससे पाठक को सरलता से विषय का बोध हो सके।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक आगमिक ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि समयसुन्दर का आगमिक ज्ञान अत्यन्त व्यापक और उत्कृष्ट था।

इस ग्रन्थ की रचना मेड़ता नगर में वि० सं० १६७२, पौष कृष्णा १० को की गई थी। ऐसा ग्रन्थकार ने स्वयं ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति में लिखा है—

विक्रमसंवति लोचनमुनिदर्शन-कुमुदबान्धवप्रमिते।

श्रीपार्श्वजन्मदिवसे पुरे श्रीमेडतानगरे ॥

इसके अतिरिक्त प्रशस्ति-पद्यों से यह स्पष्ट है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई थी, उस समय देश में घोर दुर्भिक्ष और महामारी का भयंकर प्रकोप था। लोग प्राण बचाने और जीविकोपार्जन के लिए देश छोड़कर इधर-उधर भाग रहे थे। महार्घता अपनी चरम सीमा पर थी। समाज में मान-सम्मान का कोई प्रश्न नहीं रह गया था। इस प्रकार अत्यन्त विषम परिस्थिति में भी इस ग्रन्थ के निर्माण से ग्रन्थकार का विलक्षण धैर्य और साहित्य-सेवा की उत्कट भावना सिद्ध होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन १०० पत्रों का आगमिक उद्धरणों द्वारा सम्यक् समाधान किया गया है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) इसमें 'वसुदेव हिण्डी' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि श्रीकृष्ण तृतीय पृथ्वी का आयुष्य पूर्णकर एक मनुष्य-भव और एक देव-भव करके चतुर्थ भव में 'अमम' नाम के तीर्थङ्कर होंगे।

(२) इस प्रकरण में क्षायिक सम्यक्त्व के दो विभाग किये गये हैं— शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व और अशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व।

(३) प्रस्तुत प्रकरण में देवताओं के एक नाटक का काल-प्रमाण ४००० वर्ष बताया गया है। ग्रन्थकार ने इस तथ्य की पुष्टि के लिए 'श्रीपार्श्वनाथदशगणधरसम्बन्ध' ग्रन्थ का उद्धरण दिया है।

(४) इसमें हेमचन्द्राचार्य कृत 'महावीरचरित्रम्' के आधार पर यह कहा गया है कि जामालि १५ भव करने के पश्चात् मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

(५) प्रस्तुत अधिकार में तिलकसूरि-रचित 'योग-विधिसूत्र' के अनुसार यह बताया गया है कि ज्ञान-पंचमी तप का उपवास विस्मृति आदि के कारण पंचमी को न कर सकने पर उसके आगामी दिन उपवास करने से पंचमी-व्रत भंग नहीं होता है।

(६) इस प्रकरण में यह सिद्ध किया गया है कि अनशन के समय साधु के लिए रात्रि में दीपक का प्रकाश करना उचित है। इसकी पुष्टि के लिए ग्रन्थकार ने हरिभद्रसूरि कृत 'आवश्यक बृहद्वृत्ति' का प्रमाण दिया है।

(७) प्रस्तुत प्रकरण में तालवृत्त आदि के पंखे से प्राप्त हवा को अचित्त स्वीकार किया गया है।

(८) इस संदर्भ में यह बताया गया है कि पूर्व में 'ज्ञाताधर्म कथा' में पुनरुक्त २०० करोड़ कथाएँ और अपुनरुक्त ४६ करोड़, ५० लाख कथाएँ थीं।

(९) इस प्रकरण में हेमाचार्य विरचित 'श्रेणिक-चरितम्' के अनुसार राजा चेटक की सात पुत्रियों का विवाह किन-किन पुरुषों के साथ हुआ था, इसका निर्णय किया गया है।

(१०) इसमें हेमाचार्य के 'नेमिचरित्र' का प्रमाण देते हुए यह उल्लिखित किया गया है कि इन्द्र की आज्ञा से जो द्वारिका नगरी बनाई गई थी, वह वस्तुतः नवीन न होकर समुद्र से आवृत्त नगरी को ही उद्घाटित किया गया था।

(११) प्रस्तुत अधिकार में उक्त ग्रन्थ के अनुसार यह बताया गया है कि समुद्रविजय के सोलह पुत्र थे।

(१२) इस प्रकरण में 'समवायांगसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि जम्बूद्वीप में अधिकाधिक चार तीर्थङ्कर उत्पन्न हो सकते हैं।

(१३) 'सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि' — इस पाठ में यद्यपि 'सिरसा' एवं 'मत्थएण वंदामि' अव्युत्पन्न शब्द हैं, अतः पुनरुक्ति दोष नहीं है।

(१४) प्रस्तुत सन्दर्भ में 'प्रवचनसारोद्धार' के अनुसार यह कहा गया है कि रचना की अपेक्षा से 'पूर्व' पहले और आचारांग आदि अंग-सूत्र बाद के हैं, किन्तु स्थापना की दृष्टि से आचारांग आदि अंग-सूत्रों का स्थान पहले है और 'पूर्व' का बाद में।

(१५) इसमें 'आचारांग-सूत्र' के आधार पर यह बताया गया है कि साधु को शीत से पीड़ित देखकर यदि कोई श्रावक अनुकम्पा करके उनके पास अग्नि जलाकर उन्हें उष्णता देता है, तो उसे पुण्यकर्म का बन्धन ही होता है।^१

(१६) प्रस्तुत अधिकार में 'आचारांगसूत्र' का प्रमाण देते हुए यह बताया है कि स्थविरकल्पी श्रमण वस्त्र धोते हैं।^२

(१७) इसमें विकलेन्द्रिय प्राणियों में रुधिर होने की बात कही गई है। ग्रन्थकार ने 'स्थानांग-सूत्र' का प्रमाण दिया है।

(१८) इस प्रकरण में यह कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि से रचित ग्रन्थों का भी अध्ययन यदि सम्यग्दृष्टि से किया जाए, तो उससे अध्येता की कोई हानि नहीं होती। ग्रन्थकार ने

१. यद्यपि आचारांग के मूल में पुण्य-बंध का कोई उल्लेख नहीं है, उसमें तो यह बताया गया है कि श्रावक द्वारा अग्नि आदि प्रज्वलित करने पर साधु कह दे कि यह मेरे लिए सेवनीय नहीं है।

२. यहाँ लेखक ने आचारांग के मूल निषेधवाचक अर्थ को जिनकल्पी के संबंध में घटित करके अपनी कल्पना से ही स्थविरकल्पी के संबंध में विधिपरक अर्थ लगा दिया है।

प्रमाण के लिए 'नन्दीसूत्र' और 'आवश्यक बृहद्वृत्ति' के उद्धरण दिए हैं।

(१९) इसमें 'सूत्रकृतांग-सूत्र' आदि ग्रन्थों के उद्धरण देकर यह बताया गया है कि यौग्लिकों (युगलियों) का सामान्य आयुर्ध्व ३ पत्न्योपम होता है, किन्तु अपवादवश अन्तर्मुहूर्त भी हो सकता है।

(२०) इस सन्दर्भ में जिनकुशलसूरि रचित 'चैत्यवन्दन-कुलक' के आधार पर यह कहा गया है कि पाक्षिक, पर्युषण आदि पर्वों में अनायतन चैत्य में भी अर्हद्बिम्ब को वन्दनार्थ जाना उचित है।

(२१) प्रस्तुत अधिकार में 'आवश्यक बृहद्वृत्ति' का प्रमाण देते हुए लिखा गया है कि तीर्थङ्कर चतुर्थ प्रहर में भी 'देशना' देते हैं।

(२२) इस प्रकरण में भी उपर्युक्त ग्रन्थ का ही प्रमाण देते हुए स्पष्ट किया गया है कि साधुओं के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी अनुकम्पा-पूर्वक दान देना दोषयुक्त नहीं है, किन्तु उन्हें धर्मबुद्धि से दिया गया दान अवश्य ही दोषयुक्त है।

(२३) इस अधिकार में 'प्रवचनसारोद्धारबृहद्वृत्ति' के आधार पर यह कहा गया है कि जो पार्श्वस्थ आंशिक रूप में भी श्रमणत्व का पालन करते हैं, उन्हें नमन अवश्य करना चाहिये।

(२४) इसमें 'संदेहदोलावली बृहद्वृत्ति' के आधार पर यह बताया है कि साधु द्वारा लाया हुआ प्रासुक जल जब कुछ समय बाद गलित हो जाता है, तो उसे उसी गृह में लौटा दे, जहाँ से उसे लाया हो और उस गृहस्थ को चाहिये कि उस जल को जिस जलाशय से लाया हो, उसी में विसर्जन कर दे।

(२५) इस प्रकरण में भी उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए सिद्ध किया गया है कि दिगम्बर-मन्दिर अनायतन होने से अवन्द्य है।

(२६) इसमें 'आवश्यक बृहद्वृत्ति' के आधार पर यह विवेचन किया गया है कि तीर्थङ्कर प्रातःकाल सम्पूर्ण 'पौरुषी' में धर्म का प्रतिपादन करते हैं।

(२७) प्रस्तुत प्रकरण में 'भगवतीसूत्रवृत्ति' का प्रमाण देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि श्रावक मनसा-वाचा-कर्मणा— इन तीनों योगों से और कृत, कारित, अनुमोदित — इन तीनों कारणों से सामान्यतया प्रत्याख्यान नहीं करता है, किन्तु विशेष प्रसंगों में जैसे — काकमांस-भक्षण, राज-अन्तःपुर का सेवन आदि का नवकोटि से प्रत्याख्यान कर सकता है।

(२८) इसमें 'ज्ञाताधर्मकथासूत्र' के अनुसार यह कहा गया है कि तीर्थङ्कर दीक्षा-ग्रहण करने से पूर्व १ वर्ष तक प्रातःकाल स दो प्रहर तक दान देते हैं।

(२९) इस सन्दर्भ में 'ओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि रात्रि में भी मुनि विहार कर सकता है।

(३०) प्रस्तुत प्रकरण में भी पूर्वोक्त ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए निर्देश किया गया है कि मुनि को सामान्यतया दिन में नहीं सोना चाहिए, किन्तु यात्रा से परिश्रान्त एवं रुग्णादि होने पर दिन में सोना वर्जनीय नहीं है।

(३१) इस प्रकरण में 'पुष्पिका' नामक उपांग के आधार पर पूर्वभव का विवेचन किया है।

(३२) इसमें हरिभद्रसूरि कृत 'देशवैकालिकसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह कहा गया है कि यद्यपि साधु को सामान्यतः द्रव्य-संग्रह नहीं करना चाहिये, तथापि शिष्यादि के अध्ययन आदि के निमित्त द्रव्य रखे, तो अनुचित नहीं है।

(३३) प्रस्तुत प्रकरण में देवेन्द्रसूरि कृत 'श्राद्धदिन-कृत्यसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह कहा गया है कि श्रावक जिन-पूजा करने के लिए प्रासुक जल से स्नान करे, यदि वह उपलब्ध न हो तो अप्रासुक जल से भी स्नान कर सकता है, किन्तु वस्त्र सर्वदा श्वेत ही पहनना चाहिये।

(३४) इसमें उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए यह सिद्ध किया है कि पिरोई हुई पुष्पमाला से जिन-प्रतिमा-पूजन किया जा सकता है।

(३५) प्रस्तुत अधिकार में देवेन्द्रसूरिकृत 'श्राद्धदिन-कृत्यसूत्रवृत्ति' के अनुसार यह बताया गया है कि जिनमंदिर में कार्य करने की अपेक्षा सामायिक करना अधिक श्रेयस्कर है।

(३६) प्रस्तुत प्रकरण में 'विचारसारबृहद्वृत्ति' ग्रन्थ के आधार पर यह कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि तामलि तापस को अनशन द्वारा अन्तिम समय में साधु के दर्शन से सम्यक्त्व अर्जित हुआ।

(३७) इस प्रकरण में भी उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए यह निर्देश किया गया है कि जीव के बत्तीस भेद होते हैं।

(३८) इसमें जिनप्रभसूरि कृत 'ग्रहपूजाविधि' के आधार पर यह विवेचन किया गया है कि रात्रि में लवण और जल का उत्तारण वाम दिशा से दक्षिण दिशा की ओर करना चाहिए।

(३९) इस सन्दर्भ में 'बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति' इत्यादि अनेक ग्रन्थों के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि मुनि को पुस्तकें संग्रह करने का आगमिक निषेध है, परन्तु अपवाद रूप में पाँच प्रकार की पुस्तकें ग्रहण कर सकता है।

(४०) इसमें 'उपासकदशांग' के आधार पर वह बताया है कि श्रावक को सामायिक करते समय अंगूठी आदि आभूषण अपने पास में उतारकर रख देना चाहिये।

(४१) प्रस्तुत प्रकरण में लब्धि-अपर्याप्त और करण-अपर्याप्त जीवों का सप्रमाण अन्तर स्पष्ट किया गया है और यह बताया गया है कि लब्धि-अपर्याप्त वे हैं जो अपनी योनि के अनुरूप शरीर- इन्द्रिय आदि की क्षमता को प्राप्त नहीं करते हैं, जबकि करण-अपर्याप्त

वे हैं, जिनकी अपनी योनि के अनुरूप इन्द्रिय, शरीर आदि होते हुए भी उनका उपयोग नहीं कर पाते हैं।

(४२) इस प्रकरण में 'स्थानांगसूत्र' के आधार पर भूकम्प के हेतु का विवरण देते हुए यह बताया गया है कि पूर्व पृथ्वी के भूकम्प का कारण तो घनवात आदि का प्रकम्पन है; आंशिक रूप से भूकम्प के अनेक कारण बताये गये हैं, जैसे— रत्नप्रभा-पृथ्वी के पुद्गलों का विचलन होना अथवा नागकुमार स्वर्णकुमार आदि अथवा महोरग नामक व्यन्तर-विशेष का वैक्रिय-शरीर करना इत्यादि।

(४३) इस अधिकार में यह प्रश्न उठाया गया है कि प्रथम मेखला पर मेरु-पर्वत ५०० योजन विस्तीर्ण है और उसमें इतना ही विस्तीर्ण नन्दनवन है। उस नन्दनवन में १००० योजन विस्तीर्ण बलकूट है, तो ५०० योजन विस्तीर्ण नन्दनवन में १००० योजन विस्तीर्ण बलकूट कैसे समाहित हो सकता है? इस समस्या का समाधान 'बृहत्क्षेत्र-समाससूत्र' के आधार पर करते हुए यह बताया गया है कि बलकूट ५०० योजन नन्दनवन में और ५०० योजन उसके बाहर आकाश में विस्तीर्ण है।

(४४) प्रस्तुत प्रकरण में यह कहा गया है कि उन्मग्न-सलिला और निमग्न-सलिला नाम की दो नदियों का उद्गम वैताढ्य-पर्वत की भित्ति से होता है और अन्त में दोनों सिन्धुनदी में प्रविष्ट हो जाती हैं। इनका उल्लेख मलयगिरि कृत 'बृहत्क्षेत्र-समास-सूत्रवृत्ति' में हुआ है।

(४५) प्रस्तुत अधिकार में 'श्रीबृहत्क्षेत्रसमाससूत्रवृत्ति' के अनुसार लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हाथी-दांत का अग्रभाग असिधारा के समान नुकीला होता है, सुई के समान नहीं।

(४६) इस सन्दर्भ में मलयगिरि द्वारा स्वरचित 'बृहत्क्षेत्रसमाससूत्रवृत्ति' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि शीता और शीतोदा नामधेयक दो नदियों की धाराएँ लवणसमुद्र में अत्यन्त वेग से गिरकर 'दकसीमा' उपनामक आवास पवत से टकराकर वापस लौट जाती हैं।

(४७) प्रस्तुत विचार में यह उल्लिखित है कि — १. आदित्यसंवत्सर, २. ऋतुसंवत्सर, ३. चन्द्रसंवत्सर, ४. नक्षत्रसंवत्सर एवं ५. अभिवर्द्धित संवत्सर का विस्तृत उल्लेख हमें 'श्रीज्योतिष्करणसूत्र' और उसकी वृत्ति आदि में उपलब्ध होता है। कृतिकार ने इस प्रकरण में उक्त संवत्सरों का विस्तारपूर्वक विवेचन भी किया है।

(४८) इस अधिकार में विविध ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए यह प्रमाणित किया गया है कि केवली के मन का प्रयोजन अनुत्तर देवादि द्वारा लोकालोक स्वरूप के विषय में किये जाने वाले प्रश्नों का निराकरण करने के लिए है।

(४९) इसमें यह लिखा गया है कि सौधर्म, ईशान आदि देवों की कामाभिलाषा को जानकर देवियाँ उसे पूर्ण करती हैं। दिव्यप्रभाव अथवा स्वभाव से देवों के शुक्रपुद्गल

देवियों के शरीर में परिणित होते हैं। इससे देवियों में जो अंगस्फुरणादि लक्षण प्रकट होते हैं, उन्हीं से देवियों को देवों की कामाभिलाषा का ज्ञान होता है। उक्त बात की प्रमाणपुष्टि के लिए 'प्रवचनसारोद्धारवृत्ति' का उल्लेख किया गया है।

(५०) इस प्रकरण में साधु द्वारा याचित बिडलवण आदि की परिष्ठापना-विधि का सप्रमाण निरूपण किया गया है।

(५१) भगवान् ऋषभदेव का समवशरण १२ योजन होता है; फिर नेमि जिन तक दो-दो गाऊ कम होता हुआ पार्श्वनाथ का समवशरण पांच और महावीर स्वामी का चार कोश का होता है—

बारस जोयणमुसभे समसरणं च नेमिजिण जाव ।

दो दो गाऊ ऊणं पासे पण कोश चउ वीरे ॥

प्रस्तुत गाथा और इसकी विषय वस्तु के शास्त्र-सम्मत न होने से इसे प्रस्तुत प्रकरण में अप्रमाण माना गया है।

(५२) इसमें 'अनुयोगद्वारसूत्रवृत्ति' के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि मुक्ताफल अपने मूल स्थान से जुड़े रहने पर सचित्त और उससे विच्छिन्न हो जाने पर प्रासुक हो जाते हैं।

(५३) प्रस्तुत अधिकार में वीरऋषि कृत 'श्रीपिण्डनिर्युक्तिलघुटीका' के आधार पर यह कहा गया है कि भेड़ी और ऊँटनी का दूध अभक्ष्य है।

(५४) इस प्रकरण में 'ओघ-निर्युक्ति' के आधार पर यह बताया गया है कि अचित्त वनस्पति की भी यतना होती है।

(५५) इसमें इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि साधु-साध्वी या सामायिक-पौषह आदि में स्थित श्रावक-श्राविका पर विद्युत-दीप आदि का प्रकाश गिरता है, तो उसे ईर्यापथिक-प्रतिक्रमण होता है।

(५६) प्रस्तुत 'विचार' में बताया गया है कि महारौरुद्रध्यान से उपगत व्यक्ति पुनः-पुनः नरक प्राप्त करता है और गर्भज तन्दुल मत्स्य के रूप में जन्म लेकर पुनः एक मुहूर्त्त के भीतर ही मरकर नरकलोक चला जाता है। उपर्युक्त तथ्य का उल्लेख 'जीवाभिगमसूत्र' और उसकी वृत्ति में निर्दिष्ट है।

(५७) प्रस्तुत सन्दर्भ में 'जीवाभिगमसूत्र' की मलयगिरि-टीका के आधार पर क्षुल्लक-भव के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है और यह बताया गया है कि एक मुहूर्त्त में ६५५३६ क्षुल्लक-भव होते हैं। इस बात को चूर्णि के आधार पर भी सिद्ध किया गया है। इस प्रकरण में इस बात पर विचार किया गया है कि एक क्षुल्लक-भव में कितने श्वासोश्वास होते हैं? इसके उत्तर में यह सिद्ध किया गया है कि श्वासोश्वास में २५६ अवलिकाएँ होती हैं। एक मुहूर्त्त में १,६७,७७,२१६ अवलिकाएँ मानी गई हैं।

(५८) इस प्रकरण में यह स्पष्ट किया गया है कि मोहनीय-कर्म की अधिकतम स्थिति ७० कोटानुकोटि सागरोपम है। जब यह स्थिति एक सागरोपम से भी कम रह जाती है, तब सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। अतः प्रश्न उठता है, देशविरति चारित्र-लाभ कब होता है? इस संदर्भ में समयसुन्दर ने विविध आगमों के आधार पर विचार करते हुए यह बताया है कि सम्यक्त्व-लाभ के पश्चात् मोहनीय कर्म की ९ पल्योपम की स्थिति का क्षय होने पर व्रत-प्राप्ति होती है।

(५९) प्रस्तुत प्रसंग में यह बताया गया है कि एक बादर पर्याप्त जीव के आश्रित असंख्यात् बादर अपर्याप्त जीव उत्पन्न होते हैं।

(६०) इस अधिकार में 'भगवतीवृत्ति' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि भविष्यत् तीर्थङ्कर नरक में सामान्य जीवों की भाँति अशुभवर्ण, दुरभिगन्ध आदि के विपरीत शुभवर्ण, सुगन्धि आदि का उपभोग करते हैं।

(६१) प्रस्तुत प्रकरण में 'श्रीभगवतीसूत्र' और उसकी वृत्ति के अनुसार यह कहा गया है कि कुछेक भुवनपतिदेव व्यन्तरदेवों से भी अल्प ऋद्धिवाले होते हैं।

(६२) प्रस्तुत अधिकार में यह बताया गया है कि विग्रह-गति में जीव तीन समय तक और मतान्तर से चार समय तक अनाहारक रहता है। प्रमाण के लिए भगवतीसूत्र, प्रवचनसारोद्धार, संग्रहणीसूत्रवृत्ति आदि के उद्धरण दिये गए हैं। ग्रन्थकार ने जीवों की विग्रहगति का विचार करते हुए अन्त में दो-तीन और चार समय के अनाहारकत्वसूचक तीन यन्त्र भी दिये हैं।

(६३) इसमें लिखा गया है कि कल्याणमंदिरस्तोत्रकर्ता सिद्धसेन दिवाकर 'विद्याधर गच्छ' के थे। लेखक ने यह बात 'सिंहासनद्वारिंशिका' के आधार पर सिद्ध की है।

(६४) प्रस्तुत अधिकार में लेखक ने लोक में जो श्रावण, भाद्रव आदि बारह मास एवं प्रथमा, द्वितीया आदि पन्द्रह तिथियाँ प्रचलित हैं, उनके जैनधर्म में क्या नाम हैं- उनका उल्लेख किया है, जैसे— श्रावण को अभिनन्दन, भाद्रपद को प्रतिष्ठा, आश्विन को विजय आदि और प्रथमा को पूर्वांग, द्वितीया को सिद्धसेन, तृतीया को मनोहर आदि।

(६५) प्रस्तुत प्रकरण में 'श्रीबृहत्कल्प' के आधार पर यह वर्णित किया गया है कि अति विशुद्ध जीव को क्षायोपशमिक और मन्द विशुद्ध जीव को औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

(६६) इस प्रकरण में 'बृहत्कल्प' के आधार पर सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्दर्शन के भेद का स्पष्टीकरण किया गया है।

(६७) इसमें प्रज्ञापनासूत्र आदि ग्रन्थों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया गया है कि स्त्री-वेद का जघन्य काल १ समय है, लेकिन उत्कृष्ट काल विविध ग्रन्थों में विविध प्रकार से उल्लेखित है— (१) ११० पल्योपम पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक, (२) १८

पल्योपम पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक, (३) १४ पल्योपम पूर्वकोटि पृथकत्व, (४) १०० पल्योपम पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक, (५) १ पल्योपम पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक। इसके अतिरिक्त पुरुषवेद के काल का भी उल्लेख किया गया है — जघन्य १ समय और उत्कृष्टकाल १० हजार वर्ष है। इसके अतिरिक्त लेखक ने नपुंसकवेद के काल का सांख्यवहारिक एवं पारमार्थिक दृष्टि से भी विचार किया है।

(६८) इस प्रकरण में 'प्रवचनसारोद्धारवृत्ति' के आधार पर बताया गया है कि योनि और कुल में स्पष्ट भेद है। योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं, जबकि एक योनि के जीवों के वर्ण आदि के आधार पर अनेक कुल हो सकते हैं।

(६९) प्रस्तुत अधिकार में यह बताया गया है कि पूर्वदिशा की ओर मुख करके खड़े होने पर मेरु सदैव उत्तर की ओर दिखाई देता है।

(७०) इसमें कोटिशिला के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस शिला पर करोड़ों मुनियों के सिद्ध होने से इसे कोटिशिला कहा जाता है। नव वासुदेव इस शिला को अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक ऊँचा उठाते हैं, उसका वर्णन भी प्रस्तुत अधिकार में किया गया है।

(७१) इस संदर्भ में सिद्धों के देहमान की चर्चा की गई है। आगम में सिद्धों की जघन्य अवगहना सात रत्नी (अरत्नि-कनिष्ठा अंगुली तक का माप) और अधिकतम ५०० धनुष कही गई है; जबकि कुर्मापुत्र की शरीर-अवगहना मात्र दो हस्त थी एवं मरुदेवी की ५०० से अधिक थी और ये दोनों भी सिद्ध हुए थे। अतः स्वाभाविक रूप से सिद्ध अवस्था में भी इनकी अवगहना यही होगी और इस आधार पर आगम में प्रतिपादित सिद्धों की अवगहना से अन्तर होगा। इस समस्या का समाधान करते हुए ग्रन्थकार ने बताया है कि आगम में सिद्धों की जो जघन्य और उत्कृष्ट अवगहना बताई गई है, वह तीर्थङ्करों की अपेक्षा से है। अतः इससे आगम की मान्यता में कोई विरोध नहीं आता है।

(७२) इस प्रकरण में बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम में परस्पर भेद बतलाया गया है। शारीरिक शक्ति को बल, शरीर में निहित चेतन तत्त्व की शक्ति को वीर्य, मनुष्य में किसी कठिन कार्य करने के अभिमान को पुरुषकार और उस कठिन कार्य के सम्पादन को पराक्रम कहते हैं।

(७३) इसमें 'सूर्यप्रज्ञप्ति' का प्रमाण देते हुए यह बताया गया है कि लवण-समुद्र में स्थित १६ हजार योजन प्रमाण शिखा होने पर भी सूर्य, चन्द्र की गतियों में कोई व्याघात उत्पन्न नहीं होता।

(७४) इसमें 'बृहत्कल्प' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि चौदह पूर्वधारी साधु मिथ्यात्वी नहीं हो सकता।

(७५) प्रस्तुत अधिकार में यह बताया गया है कि प्राचीन ग्रन्थों में तीन अष्टाहिनक

महोत्सवों का वर्णन उपलब्ध होता है। इस संदर्भ में लेखक ने 'वसुदेव-हिण्डी' और 'शान्तिनाथचरित्र' ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

(७६) प्रस्तुत संदर्भ में दिगम्बर-सम्मत इस मान्यता का निराकरण किया गया है कि स्त्री को मुक्ति नहीं मिल सकती है।

(७७) इस अधिकार में 'कुत्रिकापण' शब्द का अर्थ बताया गया है— 'कु' का अर्थ है आधार-स्थान और 'त्रिक' का अर्थ है तीन अर्थात् स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, और पाताल-लोक। जहाँ इन तीनों लोक की अर्थात् सभी प्रकार की वस्तुओं का विनिमय होता है, उसे 'कुत्रिकापण' (कु+त्रिक+आपण) सम्बोधित किया जाता है।

(७८) इस प्रकरण में यह बताया गया है कि मरुदेवी निगोद से निकलकर, मनुष्यलोक में जन्म प्राप्त कर, उसी भव में सिद्ध हुई— इसका उल्लेख 'बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति' में उपलब्ध होता है।

(७९) इसमें हरिभद्र कृत 'आवश्यकबृहद्वृत्ति' के अनुसार यह बताया गया है कि ज्ञान, दर्शन और चरित्र के अभाव में जो मात्र वेश से साधु हैं, उन्हें व्यवहार से साधु ही कहा जायेगा।

(८०) इस प्रकरण में जीव के अभव्य, सिद्ध, भव्य एवं जातिभव्य — इन चार भेदों का उल्लेख करते हुए तरुणप्रभसूरि-रचित बालावबोध के आधार पर जातिभव्य जीव के लक्षण बताये हैं।

(८१) इसमें स्पष्ट किया गया है कि आगमानुसार भगवान् महावीर की तपस्या एवं पारणों का काल कुल मिलाकर १२ वर्ष और १३ पक्ष माना जाता है, जबकि महावीर ने मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी को दीक्षा ग्रहण की थी और उन्हें वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस आधार पर उनकी तपस्या और केवल-ज्ञान का काल १२ वर्ष और ११ पक्ष ही होता है, जबकि उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार १२ वर्ष और १३ पक्ष होना चाहिये। इस प्रकार दो पक्ष न्यूनता दिखाई देती है। इसके साथ ही साथ चन्द्रगणना के अनुसार प्रतिवर्ष ६ दिन कम होते हैं। अतः सम्पूर्ण साढ़े बारह वर्षों में पाँच पक्ष और कम हो जाते हैं। इस प्रकार ३ मास और १ पक्ष कम हो जाता है, किन्तु सूर्य वर्ष के हिसाब से पाँच वर्षों में दो मास की वृद्धि होती है। इस प्रकार साढ़े बारह वर्षों में लगभग ५ मास की वृद्धि होती है। अतः डेढ़ मास या तीन पक्ष अवशिष्ट रहते हैं। संभवतः यह काल उनका बेला, तेला आदि अन्य तपस्याओं का रहा होगा, जिसे गणना में गृहीत नहीं किया होगा। अतएव इससे आगमिक कथन में कोई बाधा नहीं आती है।

(८२) इसमें मलयगिरि विरचित 'पिण्डनिर्युक्ति' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि पृथ्वी आदि पंचकाय एक निश्चित सीमा के बाहर ले जाने के बाद अचित्त हो जाते हैं। लेखक ने इसका सविस्तार विवेचन किया है।

(८३) इस प्रकरण में विविध ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन और त्वक्— इन पाँच इन्द्रियों के क्रमशः शब्द, रूप, गन्ध, रस, और स्पर्श— ये पाँच विषय बताये हैं। जो इन्द्रिय जितनी दूरी तक अपने विषय का ग्रहण करती है, उसका भी लेखक ने उल्लेख किया है।

(८४) प्रस्तुत प्रकरण में तिलकाचार्य कृत 'आवश्यक-वृत्ति' के आधार पर यह सिद्ध किया है कि कुणाल-नगरी के विनाश करने वाले दोनों साधु उस समय १५ दिनों तक हुई मूसलाधार वृष्टि से नहीं मरे, बल्कि उसके तीन वर्ष बाद मरकर दुर्गति को प्राप्त हुए।

(८५) इसमें यह कहा गया है कि साधुओं को और पौषध करने वाले श्रावकों को जिन छः पदों का पाठ करना होता है, उसका आधार तरुणप्रभसूरि कृत 'षडावश्यक बालावबोध' है।

(८६) प्रस्तुत अधिकार में यह बताया गया है कि यद्यपि कटिसूत्र (कटि-दवरक) साधुओं के लिए विहित १४ उपकरणों में नहीं आता है, तथापि परम्परा से इसका बन्धन प्रचलित है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि खरतरगच्छ के श्रमणलोग दवरक का उपयोग इसलिए नहीं करते हैं, क्योंकि आर्यसुहस्तिसूरि की परम्परा में यह प्रथा नहीं थी।

(८७) इस प्रकरण में 'ज्ञाणंतरिया वट्टमाणस्स केवलवरणाणदंसणे समुपने'— इस पद्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए शुक्ल-ध्यान के चार भेदों का वर्णन किया गया है।

(८८) इसमें वनस्पतिकाय के अठारह भेदों का नामोल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि ये भेद शैवशास्त्र में प्राप्त होते हैं, जैन में नहीं।

(८९) प्रस्तुत प्रकरण में नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी के शरीर के परिमाण में अपने पति के परिमाण से २५ धनुष कम होने का कारण स्त्री के शरीर का संकुचित होना बताया गया है।

(९०) इस प्रकरण में 'न दुक्करं वारणपासमोयणं गयस्स मत्तस्स वणम्मि रायं'— इस पद्य का यह शुद्ध पाठ — 'न दुक्करं बानरं.....रायं' को प्रस्तुत करते हुए पुनरुक्ति-दोष का निराकरण किया गया है।

(९१) प्रस्तुत प्रकरण में मिथ्यात्व को गुणस्थान क्यों कहा जाता है, इस समस्या पर विचार किया गया है तथा यह बताया है कि मिथ्यात्व-दशा में भी जीव में अक्षर का अनन्तवाँ भाग— इतना ज्ञान अवश्य रहता है। अतः वह जड़ से श्रेष्ठ होता है और इसीलिए उसे गुणस्थान कहा गया है।

(९२) प्रस्तुत अधिकार में 'श्री आचारांगसूत्र' के आधार पर यह कहा गया है कि भगवान् महावीर दीक्षानन्तर छद्मस्थावस्था में दो बार बोले थे।

(९३) इस अधिकार में यह बताया गया है कि गीतार्थ मुनि अपवाद में अशुद्ध, सचित्त और आधाकर्मादि दोष से युक्त आहार ग्रहण कर सकते हैं।

(९४) प्रस्तुत प्रकरण में 'श्रीआचारांग' सूत्र और 'निशीथचूर्ण' के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि कच्ची और शस्त्र से अनुपहत कालीमिर्च, पिप्पली, अदरक आदि ग्राह्य नहीं है।

(९५) इस प्रकरण में यह बताया है कि साधुओं द्वारा ग्राह्य एवं अग्राह्य वस्त्रों का उल्लेख 'आचारांगसूत्र' में उपलब्ध है।

(९६) प्रस्तुत अधिकार में यह बताया गया है कि 'कल्पसूत्र' में साधुओं के लिए मद्य, मांस, मक्खन आदि के ग्रहण करने के सन्दर्भ में जो उल्लेख मिलता है, वह आपत्तिकाल के लिए ही है, सामान्य रूप से नहीं। लेखक ने इस बात की पुष्टि के लिए आचारांग आदि ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(९७) इस प्रकरण में 'स्थानांगसूत्र' के आधार पर यह कहा गया है कि शय्यातर गृह से आहार, उपधि आदि ग्रहण नहीं किया जा सकता, किन्तु तृणादिक बाह्य वस्तु ग्रहण कर सकते हैं।

(९८) इस प्रकरण में 'आचारांगसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह बताया गया है कि लोकोपकारक कूप, तालाब आदि को खोदने का साधुजन न किसी को उपदेश दें और न ही उसका निषेध करें।

(९९) इस अधिकार में यह लिखा है कि साधु द्वारा प्रासुक ग्रहण करने का उल्लेख 'आचारांग' में है।

(१००) प्रस्तुत प्रकरण में लेखक ने 'आचारांग' के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि भिक्षु गच्छ के बाहर मलिन वस्त्र न धोए, किन्तु उसके भीतर प्रासुक उदक आदि से धुला भी सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपियाँ श्री कुशलचन्द्रसूरिज्ञान भंडार, रामघाट, वाराणसी; श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर आदि ज्ञान भंडारों में उपलब्ध हैं। मुनि श्री सुखसागरजी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन करके लखमीचंद वेद-मोहता, आगरा द्वारा प्रकाशित करवाया है।

१.९ विचार-शतक

'विचार-शतक' में जैनधर्म-दर्शन से संबंधित १०० प्रश्नों या समस्याओं का सम्यक् समाधान जैनागमों एवं परवर्ती आचार्यों के प्रमाणभूत ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। प्रत्येक कथन की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण दिये गये हैं। ग्रन्थ में पारिभाषित शब्दावली का बाहुल्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल १०० प्रकरण हैं, जिनमें मुख्यतः १०० प्रश्न उपस्थित किये गये हैं; किन्तु किसी-किसी प्रकरण में एक से अधिक प्रश्न भी हैं। ग्रन्थान्त में प्रशस्ति भी है। उसमें प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १६७४

और रचना-स्थल मेड़ता नगर है, जैसा कि ग्रंथकार ने स्वयं लिखा है—

स्वच्छे खरतरगच्छे विजयिनि जिनसिंहसूरिगुरुराजे ।

वेदमुनिदर्शनेन्दु प्रमितेऽब्दे मेडतानगरे ॥

प्रस्तुत ग्रंथ के विचारों (प्रकरणों) का वर्ण्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार है—

पहला विचार — इसमें 'नन्दीसूत्रवृत्ति' आदि ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए यह बताया गया है कि अवधिज्ञानी अधिक से अधिक अलोक पर्यन्त देख सकता है और कम से कम त्रिसमाहारक सूक्ष्मपनकजीव की अवगाहना को देख सकता है ।

दूसरा विचार — इसमें 'स्थानांगसूत्रवृत्ति' के अनुसार यह कहा गया है कि व्यवहार पाँच प्रकार के होते हैं— १. आगमव्यवहार, २. श्रुतव्यवहार, ३. आज्ञाव्यवहार, ४. धारणाव्यवहार और ५. जीतव्यवहार । ग्रन्थकार ने उक्त व्यवहार भेद के उपभेदों का भी प्रस्तुत विचार में विस्तृत विवेचन किया है ।

तीसरा विचार — इसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि सूत्र छः प्रकार के होते हैं— १. उत्सर्ग-सूत्र, २. अपवाद-सूत्र, ३. उत्सर्गापवादसूत्र, ४. अपवादोत्सर्गसूत्र, ५. उत्सर्गोत्सर्गसूत्र एवं ६. अपवादापवादसूत्र । प्रमाण के लिए 'निशीथ-चूर्णि' आदि ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं ।

चौथा विचार — इसमें मुनि के गोचरी हेतु गमनागमन में हुए दोषों की आलोचना करने की विधि का वर्णन किया गया है । इस विधि का उल्लेख 'दशवैकालिकसूत्रवृत्ति' में हुआ है ।

पाँचवाँ विचार — इसमें जिन मंदिर से सम्बन्धित चौरासी आशातनाओं का विस्तृत निरूपण किया गया है । प्रमाण के लिए 'प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति' का उल्लेख किया गया है ।

छठा विचार — इसमें यह कहा गया है कि साधु के द्वारा पंच अवग्रहयुक्त याचना करने का उल्लेख 'आचारांगसूत्र' में है ।

सातवाँ विचार — इसमें श्रमण के गोचरी-क्रिया में होने वाले ४७ दोषों का सविस्तार वर्णन किया गया है । उसके लिए ग्रन्थकार ने 'आचारांग नियुक्ति' का प्रमाण दिया है ।

आठवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि वर्तमान में निश्चय की अपेक्षा व्यवहार बलवान है, क्योंकि वर्तमान में साधु को व्यवहारतः वंदन किया जाता है तथा व्यवहार में केवली भी छद्मस्थ को वंदन करता है ।

नवाँ विचार — इसमें 'आवश्यकसूत्रवृत्ति' आदि के आधार पर यह बताया गया है कि ज्ञानावरण आदि काष्ठ-कर्मा की उत्कृष्ट स्थिति होने पर भी जीव सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह ग्रन्थियों का भेदन नहीं कर सकता है ।

दसवाँ विचार — इसमें हरिभद्र कृत 'आवश्यकवृत्ति' के आधार पर यह बताया गया है

कि वर्तमान काल में जो व्यक्ति साधुवेषधारी हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पदविहार करते हैं, भाषा-विनय आदि में प्रवीण हैं, उन्हें मुनि मानकर वंदन करना चाहिए।

ग्यारहवाँ विचार — इसमें 'आवश्यकबृहद्वृत्ति' आदि के आधार पर यह कहा गया है कि मुनि को उसके माता-पिता, ज्येष्ठ भाई आदि लोकगर्हा आदि के कारण वंदन न करे।

बारहवाँ विचार — इसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि सम्मूर्छिम मनुष्य मल, मूत्र, वीर्य, स्त्री-पुरुष-संयोग आदि चौदह स्थानों में उत्पन्न हो सकते हैं।

तेरहवाँ विचार — इसमें 'सयणासन्न काले' इस गाथा की विस्तृत व्याख्या की गई है।

चौदहवाँ विचार — इसमें यह बतलाया गया है कि मुनि को छह कारणों से आहार ग्रहण करना चाहिये — १. वेदना अर्थात् क्षुधा की शान्ति के लिए, २. वैयावृत्य अर्थात् आचार्यादि की सेवा के लिए, ३. ईर्यापथ अर्थात् मार्ग में गमनागमन की निर्दोष प्रवृत्ति के लिए, ४. संयम अर्थात् मुनिधर्म की रक्षा के लिए, ५. प्राणप्रत्यय अर्थात् जीवन-रक्षा के लिए और ६. धर्मचिन्ता अर्थात् स्वाध्याय आदि के लिए।

पन्द्रहवाँ विचार — इसमें जिनप्रभसूरि रचित ग्रन्थ के आधार पर गृहप्रतिमा-पूजन की विधि बतायी गई है।

सोलहवाँ विचार — इसमें गृह आदि में विलम्बित जिन-बिम्ब (संभवतः चल-प्रतिमा) की पूजा की विधि का वर्णन किया है।

सतरहवाँ विचार — इसमें 'योगशास्त्रसूत्रवृत्ति' के आधार पर यह बताया गया है कि रात्रि-भोजन का त्याग करने वाले व्यक्ति को कम से कम १ मुहूर्त्तपूर्व भोजन ग्रहण कर लेना चाहिए। यदि इस अवधि के पश्चात् वह भोजन करता है, तो उसे रात्रिभोजन का दोष लगता है।

अठारहवाँ विचार — इसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि रात्रि में भोजन करते समय मक्खी आदि जीवों की हिंसा नहीं होती है, अतः रात्रि भोजन अनुचित नहीं है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए 'सार्द्धदिनकृत्य' आदि विविध ग्रन्थों के आधार पर बताया गया है कि रात्रि में भोजन करना अनुचित है, क्योंकि रात्रि में कुन्थु, पिप्पली आदि अनेक जीवों की हिंसा की सम्भावना है।

उन्नीसवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि मैथुनारूढ़ स्त्री-पुरुष नव लक्ष द्वीन्द्रिय, नवलक्ष गर्भज पंचेन्द्रिय एवं असंख्यात् सम्मूर्छिम-पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करते हैं।

बीसवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि दोनों जंघाओं तक पानी लगे, वह 'लेप' तथा उससे ऊपर पानी लगने को 'ऊपरी लेप' कहते हैं।

इक्कीसवाँ विचार — इसमें जैन मान्यतानुसार दोनों सूर्यों की मेरु-पर्वत की परिक्रमा के क्रम का उल्लेख किया गया है।

बाईसवाँ विचार — इसमें आसीविष जीवों का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि इनके

दो भेद होते हैं— १. जातितः और २. कर्मतः। ग्रन्थकार ने इनके भेदोपभेदों का भी विवेचन किया है।

तेईसवाँ विचार — इसमें 'निशीथ-भाष्य' के आधार पर यह कहा गया है कि मुनि केवल स्त्रियों की सभा में प्रवचन नहीं दे सकता है।

चौबीसवाँ विचार — इस प्रकरण में वैमानिक देवों को जिन सुखों की उपलब्धि होती है, उनका सविस्तार निर्देश किया गया है।

पच्चीसवाँ विचार — इसमें अनुयोग के चार भेद बताए गए हैं— १. धर्मकथानुयोग, २. गणितानुयोग, ३. द्रव्यानुयोग और, ४. चरणकरणानुयोग। इन चार अनुयोगों में निम्नलिखित आगमों का समावेश होता है— प्रथम में ज्ञाताधर्म कथा आदि, द्वितीय में सूर्यप्रज्ञप्ति आदि, तृतीय में पूर्व-साहित्य और चतुर्थ में आचारांग आदि। इसकी पुष्टि के लिए ग्रन्थकार ने 'विचारसार' आदि ग्रन्थों का प्रमाण दिया है।

छब्बीसवाँ विचार — इसमें निम्नांकित चार प्रकार के आभरणों का उल्लेख किया गया है— १. ग्रन्थिम, २. वेष्टिम, ३. पूरिम, ४. संघातिम।

सत्ताईसवाँ विचार — इसमें जिन-शासन में होने वाले अष्टप्रभावक व्यक्तियों के नाम एवं उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। वे आठ पुरुष इस प्रकार हैं— १. प्रवचन-कुशल, २. धर्मकथा करने वाला, ३. वादी, ४. निमित्तशास्त्र का ज्ञाता, ५. तपस्वी, ६. विद्यासिद्ध, ७. ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी और ८. कवि (क्रान्तदर्शी)।

अट्ठाईसवाँ विचार — इसमें मुनि की दस समाचारियों का विवेचन किया गया है। वे इस प्रकार हैं— १. आवश्यकीय, २. नैषेधिक, ३. आपृच्छना, ४. प्रतिपृच्छना, ५. छन्दना, ६. इच्छाकार, ७. मिथ्याकार, ८. प्रतिश्रुत-तथ्यकार, ९. गुरुपूजा-अभ्युत्थान और १०. उपसम्पदा।

उन्तीसवाँ विचार — इसमें निम्नलिखित अष्ट माताओं के नाम बताये गये हैं— १. ब्राह्मी, २. महेश्वरी, ३. चैन्द्री, ४. वाराही, ५. वैदर्भी, ६. मताकौमारी, ७. चर्ममुण्डा, ८. कालसंघर्षणी।

तीसवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि कलियुग का मान ३२ हजार, द्वापर युग का मान २८ लाख, त्रेतायुग का मान ४२ लाख ९६ हजार और कृतयुग का मान ५७ लाख २८ हजार वर्ष है।

इकतीसवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि घृतादि के स्थापना का काल एक देश पूर्व कोटि है।

बत्तीसवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि गच्छवासी साधुओं के आहार के विषय में 'पश्चात् कर्मदोष' नहीं होता है।

तैंतीसवाँ विचार — इसमें भाषा के चार भेद बताते हुए कहा गया है कि विशेष कारणों

पर साधु मृषा भी बोल सकता है।

चौंतीसवाँ विचार — इसमें साधु सूई आदि श्रावकों से कैसे लेवे एवं देव— इस विधि का सप्रमाण वर्णन किया गया है।

पैंतीसवाँ विचार — इसमें चौदह गुणस्थानों का अतिविस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अधिकार में गुणस्थानों से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों को भी उठाया गया है और उनका उचित समाधान किया है।

छत्तीसवाँ विचार — इसमें 'आचारांग' और 'प्रज्ञापना सूत्र' के आधार पर यह बताया है कि वनस्पति का जो बीज वृक्ष से संयुक्त होता है, उसमें जीव होता है और जब वह बीज सूख जाता है, तब उसमें जीव नहीं रहता है। साथ ही प्रस्तुत प्रकरण में बीज सूख जाने पर उसको पुनः सजीव करने की विधि भी बतलाई गई है।

सैंतीसवाँ विचार — इसमें 'आचारांग सूत्र' का प्रमाण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि वनस्पति में भी मनुष्य की तरह निम्न धर्म होते हैं— जन्म, वृद्धि, सचितता, म्लानता, आहारक, अनित्यता और अशाश्वतता।

अड़तीसवाँ विचार — इसमें औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय-मिश्र, आहारक, आहारक-मिश्र और कर्मण— इन सात योगों के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

उनतालीसवाँ विचार — इसमें 'बृहत्कल्पभाष्य' के आधार पर स्थविरकल्पी और जिनकल्पी मुनियों का प्रतिलेखन-काल बताया गया है।

चालीसवाँ विचार — इसमें कर्म-प्रकृतियों की शुभ और अशुभ दृष्टि से तथा प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, और प्रदेशबन्ध के कर्ता के तीव्र और मन्द भावों के आधार पर भेदोपभेद किये गये हैं। इसमें इक्षु-रस का दृष्टान्त भी दिया गया है।

इकतालीसवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि पुद्गल, औदारिक, वैक्रिय, तेजस्, भाषा, आनापान, मन और कर्म — इन सात प्रकारों से आत्मा परिणमित होती है। इसके अतिरिक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से तथा बादर और सूक्ष्म के आधार पर सभी पुद्गलों के भेदानुभेद भी उल्लिखित हैं।

बयालीसवाँ विचार — इसमें 'खीइसाहवीयगमण.....' इस गाथा का अर्थ बताया गया है।

तियालीसवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि भरत ऐरावत क्षेत्र में जघन्यतः १० तीर्थङ्कर हो सकते हैं।

चौवालीसवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि स्फटिक और मणि की तरह आत्मा और कर्म का संयोग भिन्न-भिन्न है, अतः मोक्ष-प्राप्ति संभव है।

पैंतालीसवाँ विचार — इसमें जैनमतानुसार परमाणु का लक्षण बताया गया है।

छियालीसवाँ विचार — इसमें शुक्लपाक्षिक तथा कृष्णपाक्षिक जीवों के लक्षण बताये

गये हैं।

सैंतालीसवाँ विचार — इसमें लेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, पद्म और शुक्ल— इन छः भेदों के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

अड़तालीसवाँ विचार — इसमें 'स्थानांग सूत्र' के आधार पर यह बताया गया है कि मुनि पूर्व दिशा और उत्तर दिशा की ओर ही दीक्षा, प्रतिक्रमणादि कार्य करते हैं।

उनचासवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि लोकान्तिक देवों को सातवें या आठवें भव में मोक्ष-पद अवश्य प्राप्त होता है।

पचासवाँ विचार — इसमें यह बताया गया है कि शक्रेन्द्र के अपर नाम सोम, यम, वरुण, वैश्रमण भी हैं। यही नाम लोकपाल के भी हैं।

इक्कावनवाँ विचार — इसमें सिद्ध किया गया है कि जम्बुद्वीप-प्रज्ञप्ति छठा उपांग है।

बावनवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि मुनि के रजोहरण के ऊपरी भाग में डोरी तीन बार आवेष्टित की जाती है।

तिरेपनवाँ विचार — इसमें वर्णन किया गया है कि साधु श्रावक के प्रातिहार्य के कारण औपग्रहिक वस्तु ग्रहण कर सकता है।

चौपनवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि जिस प्रकार सायंकालीन प्रतिक्रमण में चारित्र, दर्शन और ज्ञान का क्रमशः अनुक्रम से प्रतिक्रमण किया जाता है, उसी प्रकार प्रातःकालीन प्रतिक्रमण में भी इसी अनुक्रम से किया जाता है।

पचपनवाँ विचार — इसमें सूर्य अपने आगे-पीछे और ऊपर-नीचे कितने क्षेत्र को ताप प्रदान करता है, इस सम्बन्ध में सप्रमाण विचार किया गया है।

छप्पनवाँ विचार — इसमें सात अभव्यों का विवरण दिया गया है।

सत्तावनवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि कुछ साधुओं के अनाचारी होने पर भी वर्तमान में साधु-सत्ता विद्यमान है।

अट्ठावनवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि जिन-पूजा का अपलाप करने वाले व्यन्तर देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उन्हें तीर्थों का उच्छेदक कहा गया है।

उनसठवाँ विचार — इसमें २८ लब्धियों के नाम बताए गए हैं।

साठवाँ विचार — इसमें इस बात की सविस्तार चर्चा की गई है कि प्रत्येकबुद्ध ४५ हैं।

इकसठवाँ विचार — इसमें 'महानिशीथ सूत्र' के आधार पर जो व्यक्ति जिन-दीक्षा ग्रहण करने के योग्य नहीं है, उनका उल्लेख किया गया है; जैसे— कोढी, इन्द्रियहीन आदि।

बासठवाँ विचार — इसमें 'षडावश्यक-बालावबोध' के आधार पर बताया गया है कि उसी अतिभुक्तक मुनि ने नदी में पात्र तिराया था, जो गौतम स्वामी को अंगुली पकड़कर अपने घर ले गया था।

तिरसठवाँ विचार — इसमें द्वादशावर्त-वन्दन की विधि बताई गई है।

चौसठवाँ विचार — इसमें कहा गया है कि 'जिन' शब्द का प्रयोग न केवल केवली के लिए अपितु छद्मस्थ वीतराग के लिए भी किया जा सकता है।

पैंसठवाँ अधिकार — इसमें बताया गया है कि साधु ग्राम में एक दिन और नगर में पाँच दिन रह सकता है — यह नियम प्रतिमा-प्रतिपन्न भिक्षु के लिए है।

छियासठवाँ विचार — इसमें 'प्रश्रव्याकरण-संवरद्वार' के आधार पर बताया गया है कि लवंग एक फल होता है।

सड़सठवाँ विचार — इसमें 'आचारांगसूत्रवृत्ति' के आधार पर बताया गया है कि जातिस्मरणवान् संख्यात भव तक देख सकता है।

अड़सठवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि जिस तालाब आदि में मनुष्य, पशु आदि स्नान कर लेते हैं, वह पानी मिश्र-जल हो जाता है।

उनहत्तरवाँ विचार — इसमें कहा गया है कि महा अटवी के मार्ग में आहार प्राप्त न होने पर साधु सत्तु, मोदक आदि पास में रखकर उनका परिभोग कर सकता है।

सत्तरवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि संघाचार्यों आदि का जो वैरी होता है, उसकी मुनि हत्या तक भी कर सकता है।

एकहत्तरवाँ विचार — इसमें 'जीवाभिगमवृत्ति' के आधार पर यह कहा गया है कि विजय आदि विमान में उत्पन्न जीव जघन्यतः एक भव और उत्कृष्टतः चौबीस भवों के पश्चात् मनुष्य-भव प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

बहत्तरवाँ विचार — इसमें 'जीवाभिगमलघुवृत्ति' के अनुसार बताया गया है कि देव, नारक, यौगलिक (युगलिया) और मनुष्य के उत्पत्ति-काल में अपर्याप्त होने पर उन्हें उपक्रम आयुष्य का बन्ध होता है।

तिहत्तरवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि यदि साधु के तिविहार उपवास हो, तो भी वह अन्य साधुओं की बची हुई गोचरी का परिष्ठापन कर सकता है।

चौहत्तरवाँ विचार — इसमें 'आवश्यकसूत्रवृत्ति' आदि ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए बताया गया है कि मुनि गजसुकुमार ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की थी, उसी दिन उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया था।

पचहत्तरवाँ विचार — इसमें रत्नप्रभा आदि नरकों में कितने भाग में नारक जीव रहते हैं तथा कितने भाग में व्यंतर जीव रहते हैं और कितना भाग खाली रहता है— इसका विचार किया गया है।

छिहत्तरवाँ विचार — इसमें 'बृहत्संग्रहणीसूत्र' के अनुसार सिद्ध किया गया है कि पल्पोपम के तीन भेद होते हैं — १. उद्धार, २. अद्ध और ३. खित्त।

सतहत्तरवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि संसार में देवर, पुत्र भाई, पिता, माता आदि कुल अठारह रिश्ते सम्बन्ध होते हैं।

अठहत्तरवाँ विचार — इसमें उन्तीस अंकों तक की संख्या का किस प्रकार प्रयोग होता है या उसकी आनयन-पद्धति क्या है— इस पर विचार किया गया है।

उत्तरीसीवाँ विचार — इसमें 'प्रतिक्रमणसूत्रवृत्ति' आदि ग्रन्थों के आधार पर बताया गया है कि व्यवहार की रक्षा के लिए पार्श्वस्थ (शिथिलाचारी) साधुओं को आहार-दान करने में दोष नहीं है।

अस्सीवाँ विचार — प्राप्त पाण्डुलिपि में प्रस्तुत विचार अनुपलब्ध है।

इक्यासीवाँ विचार — इसमें 'पिण्डविशुद्धिबृहत्त्वृत्ति' में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर बताया गया है कि मुनि गर्भवती स्त्री के हाथ से आठ मास तक भिक्षा ग्रहण कर सकता है।

बयासीवाँ विचार — इसमें कहा गया है कि अग्रपिण्डदोष का वर्णन 'पिण्डविशुद्धि सूत्रवृत्ति' में प्रतिपादित है। ग्रन्थकार ने अग्रपिण्डदोष का विवेचन भी किया है।

तिरासीवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि जिन-प्रतिमा की पूजा के समय चौरासी आशातनाओं में जो मुकुट किरीट शिरोमौली उतारने का उल्लेख है, उसका क्या अर्थ है, क्योंकि कड़वा-मतवाले पगड़ी का अर्थ मौली नहीं समझते हैं। समयसुन्दर भी यह मानते हैं कि पगड़ी उतारना आवश्यक नहीं है।

चौरासीवाँ विचार — इसमें 'दशवैकालिक-टीका' के आधार पर बताया गया है कि राजीमती ने नेमिनाथ से १०० वर्ष पूर्व ही मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

पिचासीवाँ विचार — इसमें 'प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति' के आधार पर बताया गया है कि साधु क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति को अपनी भिक्षा में लाया हुआ आहार दे सकता है।

छियासीवाँ विचार — इसमें 'प्रवचनसारोद्धार' नामक ग्रन्थ के आधार पर बताया गया है कि मुनि कंटक आदि से रक्षा करने के लिए चर्म से निर्मित उपानह (जूता, चप्पल आदि) को छोड़कर अन्य वस्त्रों आदि से बनाये गये उपानह को धारण कर सकता है।

सतयासीवाँ विचार — इसमें 'स्थानांगसूत्र' का प्रमाण देते हुए कहा है कि स्त्री पुरुष के साथ सम्भोग न करते हुए भी गर्भ धारण कर सकती है।

अट्ठासीवाँ विचार — इसमें 'भगवतीसूत्र' के आधार पर बताया गया है कि लोक में अजीव के ११ भेद होते हैं तथा अलोक में १ भेद होता है।

उनयासीवाँ विचार — इसमें 'जीवाभिगमसूत्रवृत्ति' आदि ग्रन्थों के आधार पर बताया गया है कि रत्नप्रभापृथ्वी आदि द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत है।

नब्बेवाँ विचार — प्राप्त पाण्डुलिपि में प्रस्तुत विचार अनुपलब्ध है।

इक्यानबेवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि नरक में भी साता वेदनीय कर्म का उदय होता है। जिस समय तीर्थङ्कर आदि महापुरुषों के जीव का पृथ्वी पर जन्म-कल्याण आदि होता है, उस समय नारकी जीवों को साता वेदनीय का अनुभव होता है।

बानबेवाँ विचार — इसमें कहा गया है कि जैनसिद्धान्त में भी ग्रह, नक्षत्र, मुहूर्त आदि मान्य हैं।

तिरानबेवाँ विचार — इसमें 'भत्तेपाणे सयणासत्रे'— इस गाथा का अर्थ बतलाया गया है।

चौरानबेवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि प्रभताकालीन प्रतिक्रमण सूर्योदय के समय करना चाहिये।

पिचानबेवाँ विचार — इसमें इस बात का वर्णन किया गया है कि जिस समय मुनि वस्त्र-पात्रादि का प्रतिलेखन करता है, उस समय उत्कटुक आसन में बैठता है।

छियानबेवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि मांस में अनन्त संमूर्च्छिन जीव उत्पन्न होते हैं।

सत्तानबेवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि जिन-प्रतिमा-पूजन आदि के समय पृथिवी, तेजस, आदि के जीव आदि अनुमोदना करते हैं, तो उसका आगामी भव में फल अन्नश्य प्राप्त होता है।

अट्टानबेवाँ विचार — इसमें असत्य भाषा के १० और असत्यमृषा भाषा के १२ भेदों का सविस्तार विवेचन किया गया है।

नितानबेवाँ विचार — इसमें 'आवश्यक चूर्णि' के तृतीय अध्ययन के आधार पर बताया गया है कि रात्रिप्रतिक्रमण का काल सुबह १२ बजे तक है और दैवसिक प्रतिक्रमण का काल रात्रि के १२ बजे तक है।

सौवाँ विचार — इसमें बताया गया है कि भव्य जीव की भवस्थिति नियत और अनियत—दोनों प्रकार की होती है।

ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ संवत् १६७४ में मेड़ता नगर में लिखा गया था —

वेदमुनिदर्शनेन्दुः प्रमितेब्देमेडतानगरे ।^१

प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्रीकुशलसूरि-ज्ञानभण्डार, वाराणसी से उपलब्ध हुई है तथा यह ग्रन्थ अधुना पर्यन्त अप्रकाशित है।

१.१० विशेष संग्रह

प्रस्तुत ग्रन्थ संग्रह की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के विशिष्ट ग्रन्थ बहुत कम लिखे हुए दिखाई पड़ते हैं। ग्रन्थकार समयसुन्दर ने अनेक सूत्र, सिद्धान्त, भाष्य, प्रकरण, ग्रन्थादि का गहन अध्ययन करके उनमें पायी जानेवाली विशेषताओं का इस कृति में अपूर्व संग्रह किया है। ग्रन्थकार ग्रन्थारम्भ में स्वयं इस बात को सूचित करते हैं —

१. विचारशतक, प्रशस्ति (१)

संवीक्ष्य सूत्रसिद्धान्तभाष्यप्रकरणादिकम् ।

विशेषसंग्रहं वक्ष्ये स्वपरस्मृतिहेतवे ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रंथकार ने जिन ग्रन्थों में समान्यतया प्रचलित एवं प्रसिद्ध बातों के अतिरिक्त कुछ विशेष बातों का उल्लेख हुआ है, उनका विवेचन एवं संकलन किया है। ग्रन्थकार ने उल्लिखित तथ्यों के ग्रन्थों, उनकी पत्र-संख्या, अध्याय या २९०५, गाथा, स्थान आदि का भी उल्लेख किया है। विशेष स्पष्टीकरण के लिए एक-दो उदाहरण अवलोक्य हैं —

१. ग्रामपरासरो विप्रो राजनियुक्तो ग्रामे राज्ञः क्षेत्राणिखेटयन् । भक्तागमेपि निर्घृणो नामुंचत् । राजक्षेत्रं वापयित्वा श्रांत्रैः क्षुतृषाक्रांतैः षट्ढलशतनियुक्तषट्हालिक-शतैर्द्वादशभिवृषभशतैश्च । आयाते भक्ते वेलाऽतिक्रमे बलात्स्वक्षेत्रे । एकैकां सीतामदापयत् । अन्तरायं कर्माऽर्जित्वा । अनालोच्य मृत्वा भवं भ्रांत्वा । अकामनिर्जरया द्वारवत्यां कृष्णहरेर्दण्डणापत्न्यांढणसुतोऽभूत् । स यौवनेधर्मनेमैः श्रुत्वा प्रव्रज्यबहुश्रुतोभूः । अन्यदातदंतरायकर्मोदीर्णमित्यादि ॥ श्री उत्तराध्ययनावचूर्णो द्वितीयाध्ययने अलाभपरीषहाधिकारे । अत्र षट्ढलशतानि १ भव भ्रान्त्वा २ बहुश्रुतोभूः ३ अन्यदा ४ इतिस्थानचतुष्टयेविशेषः ॥ २ ॥

२. उत्तराध्ययनानि निर्वाणकाले श्री वीरेणाकानि चित्सूत्रतः कानिचिदर्थतः । उक्तानि । इति श्री उत्तराध्ययनावचूर्णो प्रथमाध्ययनव्याख्या प्रारम्भे । अत्र श्रीवीरेण निर्वाणकाले उक्तानीति विशेषः ॥ ३ ॥

३. इदं च परीषहाध्ययनं अष्टमपूर्वं मध्यगतमभूत् यतः । कम्मप्पवायपुव्वे सत्तरसेहूमं मिजं सुत्तं । सनयंसउदाहरण । तं चेव इहं पिन्नायव्वं ॥ १ ॥ इतिनिर्युक्तैः । अस्याध्ययनस्यकर्मप्रवादानामाष्टकमपूर्वसप्तदशप्राभृतात् सुधर्मस्वामिना जम्बूप्रतिकथनाच्चेति द्वितीयाध्ययने अभूजिणागाथा व्याख्याने । इति श्री उत्तराध्ययनेद्वितीयाध्ययने । अत्र द्वितीयाध्ययनं । अष्टमपूर्वगतमितिविशेषः ॥ ४ ॥

जैन साहित्य-शोधस्त्रातकों के लिए प्रस्तुत ग्रंथ बहुत ही लाभदायक है। यह ग्रन्थ अनेक बिशेषताओं को अपने में समाविष्ट किये हुए है। इसमें कुछ १६० प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण में विशेषताओं की चर्चा की गई है। ग्रन्थान्त में प्रशस्ति भी प्रदत्त है।

समयसुन्दर ने वि० सं० १६८५ के फाल्गुन मास में लूणकर्णसर में शिष्यहितार्थ यह रचना लिखी थी —

तैः शिष्यादिहितार्थं, ग्रन्थोयंग्राथितः प्रयत्नेन ।

नाम्नाविशेषसंग्रह, इषुवसुशृंगार-मितवर्षे ॥३ ॥

...गं श्रीमति लूणकर्णसरसि श्रीसंघदीप्तोदये ।

ग्रन्थोयंपरिपूर्णतामलभत श्री फाल्गुनेमासि च ॥४ ॥

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर पंचायती बड़ा मंदिर, वाराणसी से प्राप्त हुई है। पाण्डुलिपि पूर्ण सुरक्षित है। ग्रन्थ प्रकाशन योग्य है।

१.११ दीक्षा-प्रतिष्ठा-शुद्धि

इस ग्रंथ में जैन साधुओं के लिये दीक्षा और प्रतिष्ठा से संबंधित मुहूर्त, तिथि आदि ज्योतिषशास्त्रीय विषयों का गूढ़ विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माण में ग्रन्थकार ने अपने पौत्र-शिष्य ज्योतिषशास्त्र-निष्णात वाचक जयकीर्ति से सहायता ली थी। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६८५ में लूणकर्णसर नामक स्थान पर हुई थी। ग्रन्थकार ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है —

श्री लूणकर्णसरसि, स्मरशर-वसु षडुडुपति-वर्षे।

ज्योतिः शास्त्रविचक्षण-वाचक-जयकीर्तिदत्त-साहाय्येः।

श्री समयसुन्दरोपाध्यायैः सन्दर्भितो ग्रन्थः॥^१

१.१२ विसंवादशतक

प्रस्तुत शतक की विषय-वस्तु असंगत, असम्बद्ध और विरोधात्मक विषयों से सम्बन्धित है। जिन आगमों तथा शास्त्रों में परस्पर विसंवादित बातें प्राप्त होती हैं, उनका नामोल्लेख करते हुए विसंवादित बातों को प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थकार ने अपनी ओर से उन विसंवादों का स्पष्टीकरण नहीं किया है। वे अनेक स्थानों पर इस बात का अवश्य उल्लेख करते हैं कि इन विसंवादों में सत्य क्या है, यह केवलज्ञानी ही जानते हैं।

समयसुन्दर ने प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल १०० विसंवादित विषयों का विनियोजन किया है। यद्यपि प्राप्त प्रति में १०२ विसंवादपूर्ण तथ्यों का निरूपण है, किन्तु समयसुन्दर ने १०० विसंवादपूर्ण तथ्यों की ही चर्चा ही है। कारण, १०० विसंवादपूर्ण तथ्यों के पश्चात् प्रशस्ति दी गई है और उसके बाद पुनः २ नये विसंवादपूर्ण तथ्यों की चर्चा की गई है। हमें लगता है कि उनके परवर्ती काल में किसी ने अन्त में दो अन्य विसंवादपूर्ण तथ्यों को और जोड़ा है।

प्रस्तुत शतक का रचना काल वि० सं० १६८५ एवं रचना-स्थल अनुलिखित है। इस शतक की हस्तलिखित पाण्डुलिपि श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त हुई है। प्राप्त पाण्डुलिपि सं० १८८९ में लिखित है। सम्प्रति, वह सुपाद्य नहीं है एवं अशुद्ध भी है। अतः इस शतक के प्रत्येक प्रकरण के वर्ण्य विषय का यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता। जितना पढ़ा जा सका, उसी के आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाला है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१.१३ खरतरगच्छ-पट्टावली

यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें समयसुन्दर ने भगवान् महावीर के शिष्य

१. दीक्षा-प्रतिष्ठा-शुद्धि, प्रशस्ति (१-२)

गणधर गौतम से लेकर अपने समसामयिक गच्छाधिपति पर्यन्त की गुर्वावली प्रदान की है। कवि ने अपनी परम्परा के सभी आचार्यों का जीवन-वृत्त इसमें निबद्ध किया है, जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रथम अध्याय के 'गुरु-परम्परा' उपशीर्षक में कर आए हैं। अतः इस परिप्रेक्ष्य में पुनः लिखना पिष्टपेषण ही होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन वि० सं० १६९० में खम्भात में हुआ था। ग्रन्थकार स्वयं ग्रन्थान्त में लिखते हैं —

इमं गुर्वावलीग्रन्थं गणिः समयसुन्दरः।

नमोनिधिरसेन्द्रवदे स्तंभतीर्थपुरेऽकरोत् ॥

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित पाण्डुलिपि स्व० पूरणचन्द नाहर, कोलकाता के ज्ञान भण्डार में है, जिसकी नकल हमारे पास भी है, लेकिन पाण्डुलिपि का अन्तिम पृष्ठ उपलब्ध न होने के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ के परिमाण, रचना-निर्माण के प्रेरक आदि का उल्लेख करना शक्य नहीं है। डा० सत्यनारायण स्वामी ने प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में भी उपलब्ध होने की सूचना दी है।^१ यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१.१४ कथाकोष

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि हमें किसी भी ग्रन्थालय से उपलब्ध नहीं हुई है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर 'कथाकोश' की ग्रन्थकार द्वारा स्वयं लिखित अपूर्ण प्रति महोपाध्याय विनयसागर के पास उपलब्ध है और पूर्ण प्रति जिनऋद्धिसूरि संग्रह, बीकानेर में है।^२

वस्तुतः समयसुन्दर के कथाकोश दो प्रकार के मिलते हैं, जिनमें एक मौलिक है, तथा दूसरा संग्रहीत। उपर्युक्त प्रतियाँ इन दोनों कोशों में से किसकी हैं, अज्ञात है। उक्त दोनों कथाकोशों के सम्बन्ध में नाहटा-बन्धु लिखते हैं, महोपाध्याय विनयसागर जी ने कवि का परिचय देते हुए कथाकोश की पूरी प्रति नहीं मिलने का उल्लेख किया है। इसकी कई प्रतियाँ हमें प्राप्त हुई हैं, जिनमें से एक तो कवि की स्वयं लिखित है, पर भिन्न-भिन्न प्रतियों के मिलाने से ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि ने दो तरह के कथाकोश बनाये हैं। एक में अन्य विद्वानों के ग्रन्थों से कथाएँ उद्धृत व संग्रहीत की गई हैं और दूसरे में उन्होंने स्वयं बहुत-सी कथाएँ लिखी हैं। इनमें से पहले प्रकार की एक प्रति नाहर जी के संग्रह में मिली है और दूसरी की एक प्रति स्व० जिनऋद्धिसूरिजी के संग्रह में से प्राप्त हुई है। इसमें १६७ कथाएँ हैं, पर कवि के अन्य ग्रन्थों की भांति इसमें प्रशस्ति नहीं मिलने से सम्भव है कुछ और भी कथाएँ लिखनी रह गई हों या प्रशस्ति नहीं लिखी गई हो।

१. महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ ६३

२. द्रष्टव्य — सीताराम चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५३

‘कथापत्राणि’ नामक कवि के स्वयं लिखित फुटकर पत्रों की एक प्रति मिली है, जिसके १३७ या १५५ पत्र (दोनों हाशियों पर दो संख्यांक) थे। इसमें ११४ कथाएँ हैं और ग्रन्थ-परिमाण करीब ६००० श्लोक का लिखा है। अन्त में कवि ने स्वयं लिखा है कि —

‘सं० १६९५ वर्षे चैत्रसुदि पंचमीदिने श्री जालोर-नगरे लिखितं श्री समयसुन्दर उपाध्यायैः। इयं कथाकोशप्रति मयि जीवति मदधीना, पश्चात् पं० हर्षकुशलमुनेः प्रदत्तास्ति। वाच्यामाना चिरं विजयताम्।’^१

महोपाध्याय विनयसागर ने कथाकोश का रचना-काल इस प्रकार बताया है —

ऋतु-वसु-रस-शशि-वर्षे, विनिर्मितो विजयतां चिरं ग्रन्थः।^२

उक्त उल्लेख से स्पष्ट होता है कि कथाकोश का निर्माण वि० सं० १६६८ में हुआ था, किन्तु यह कहना कठिन है कि यह संवत् समयसुन्दर द्वारा लिखित कथाकोश का है अथवा संग्रहीत कथाकोश का।

१.१५ सारस्वत-व्याकरण-रहस्य

प्रस्तुत कृति ‘सारस्वत-व्याकरण’ के सूत्रों के आधार पर निर्मित एक सार-संग्रहात्मक रचना है। प्रारम्भ और अन्त के पद्यों से ऐसा प्रकट होता है कि इसमें इन्होंने सम्पूर्ण सारस्वत-व्याकरण के सारभूत तथ्यों को संकलित कर उसके मर्म को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उपलब्ध कृति में धातुओं के दस कालों के रूपों (लकारों) का संग्रह ही प्राप्त होता है। धातु-रूपों के सन्दर्भ में ग्रन्थकार ने सकर्मक-अकर्मक आदि भेदों के निरूपण के साथ-साथ कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के धातु-रूपों का भी निर्देश किया है। संज्ञावाचक शब्दों के रूपों (सुब्रन्त) के बारे में कहीं कोई चर्चा नहीं की गई है। मात्र धातु-रूपों के उदाहरण के प्रसंग में कुछ संज्ञा-शब्दों के रूप निर्दिष्ट हैं, किन्तु उनकी व्युत्पत्ति का कोई दिग्दर्शन नहीं है।

सम्भव है कि संज्ञा (नाम) शब्दों से सम्बद्ध रहस्य भी इन्होंने लिखा हो, किन्तु वर्तमान में वह उपलब्ध नहीं है।

इस कृति के रचना-काल, रचना-स्थल इत्यादि के बारे में लेखक ने कोई संकेत नहीं दिया है। इस कृति की हस्तलिखित प्रति श्री जिनहरिविहार, पालीताना (गुजरात) से प्राप्त हुई है। यह अप्रकाशित कृति है।

१.१६ फुटकर प्रश्नोत्तर

प्रस्तुत ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है। नाहटा-बन्धुओं को प्रस्तुत ग्रन्थ की सूची का अन्तिम पत्र ही प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर यह ज्ञात होता है कि समयसुन्दर ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। सूची के अन्तिम पत्र से स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में २८७

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, वक्तव्य, पृष्ठ २७

२. द्रष्टव्य — वही, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५४

प्रश्नोत्तर होने चाहियें। प्राप्त पत्र में ग्रन्थ के रचना-काल आदि का निर्देश नहीं है।

१.१७ प्रश्नोत्तर सार-संग्रह

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति नाहटा-बन्धुओं के उल्लेखानुसार हंस विजय लाइब्रेरी, बड़ौदा में प्राप्त है,^१ किन्तु अथक प्रयास करने पर भी यह ग्रन्थ हमें प्राप्त नहीं हो सका।

महोपाध्याय विनयसागर के अनुसार 'यह ग्रन्थ नामस्वरूप प्रश्नोत्तर रूप न होकर स्वयं संगृहीत शास्त्रालापकरूप है।'^२

१.१८ द्रौपदी-संहरण

प्रस्तुत ग्रन्थ के बारे में किसी विद्वान् ने कोई जानकारी नहीं दी है। विविध प्रयासों के पश्चात् अन्ततः मुद्रण-कार्य होते समय सूचना प्राप्त हुई कि प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई ग्रन्थालय, अहमदाबाद में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि में कुल २१ पत्र हैं। प्राप्त संकेतों से यह कृति परिमाण में बृहत् होनी चाहिये। विशेष विवरण पाण्डुलिपि के अवलोकन के पश्चात् ही प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रयास करने पर यदि पाण्डुलिपि मिल गई, तो हम इस कृति पर अध्ययन करने की अभिलाषा रखते हैं।

१.१९ सारस्वतीय शब्द रूपावली

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि हमें प्राप्त नहीं हुई है। महोपाध्याय विनयसागर के उल्लेखानुसार इस ग्रन्थ की समयसुन्दर-लिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है,^३ किन्तु खोज कराने पर प्रति ग्रन्थालय में प्राप्त नहीं हुई। अस्तु।

ग्रन्थ के नाम से ऐसा लगता है कि इसमें सारस्वत-व्याकरण की शब्द-रूपावली का वर्णन अथवा विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ समयसुन्दर द्वारा ही लिखित है, इसकी प्रामाणिकता एवं अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में कुछ पुष्ट प्रभाव मिलते हैं। महोपाध्याय विनयसागर द्वारा निर्मित समयसुन्दर की रचनाओं की सूची में प्रस्तुत ग्रन्थ का नामोल्लेख है,^४ किन्तु नाहटा-बन्धुओं ने समयसुन्दर की रचनाओं की तालिका में इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है,^५ जबकि नाहटा-बन्धुओं ने महोपाध्याय विनयसागर के पश्चात् सूची प्रकाशित की है। दूसरे में इस ग्रन्थ की प्रति उन्हीं के ग्रन्थालय में उपलब्ध हो और वे उसे किसी अन्य विद्वान् द्वारा उल्लिखित करने के बाद भी अपनी सूची में स्थान न दें, यह बात असम्भव-सी लगती है; तथापि

१. समयसुन्दर-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५३

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५४

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५१

४. वही, पृष्ठ ५१

५. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५३

महोपाध्याय विनयसागर ने 'सारस्वत-वृत्ति' की प्रामाणिकता बताने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ का जो उद्धरण लिया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि समयसुन्दर ने 'सारस्वतीय शब्दरूपावली' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था —

सारस्वतस्य रूपाणि, पूर्वं वृत्तेरलीलिखत् ।

स्तम्भतीर्थे मधौ मासे, गणि-समयसुन्दरः ॥^१

विशेष पुष्टि तो मूल पाण्डुलिपि देखने पर ही की जा सकती है ।

१.२० तृणाष्टकम्

प्रस्तुत अष्टक का रचना-काल अनिर्दिष्ट है । इसमें तृण की विभिन्न प्रकार की लोकोपयोगिता को ध्यान में रखकर उसकी प्रशंसा की है और उसका माहात्म्य बताया है । उदाहरण स्वरूप —

कृते पंचामृते भोज्ये ताम्बूले भक्षिते तृण ।

वक्त्रशुद्धिकरन्तत्त्वं वरांगस्थिति तन्महत् ॥५ ॥

तृणशक्तिरहोदर्भ-तृणझाटेन मन्त्रतः ।

दुष्टस्फोटकभूतादिदोषा यांति यतः क्षयम् ॥७ ॥

छाया सद्मोपरिस्थस्त्वं दंतस्थं युधि जीवनम् ।

गो-जग्ध-मसि-दुग्धं तदुपकारि महत् तृण ॥८ ॥

यह अष्टक 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में संग्रहीत है ।

१.२१ रजाष्टकम्

इसमें रज की आत्म-कथा निबद्ध है । इसमें कवि ने रज को क्षमाशील, बच्चों के शृंगार का साधन, वशीकरण का साधन, अनायास सुलभ इत्यादि गुणों से युक्त माना है; जैसे —

सर्वसहा प्रश्रुतित्त्वात्मर्घमानं पदैरधः ।

न कुप्यसि कदापि त्वं रजस्ते क्षातिरुत्तमा ॥४ ॥

रथ्यासु रममाणानां शिशूनां पांसुशालिनाम् ।

धूले त्वं स महर्ध्यापि शृङ्गारादतिरिच्यसे ॥७ ॥

प्रस्तुत अष्टक में ८ पद्य हैं । इसका रचना-समय अज्ञात है । यह अष्टक 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में मुद्रित है ।

१.२२ उद्गच्छसूर्यबिम्बाष्टकम्

प्रस्तुत अष्टक में उदीयमान सूर्यमण्डल का कवि ने विविध कल्पनाओं द्वारा रोचक वर्णन किया है । कवि की जिस कल्पना में प्राची दिशा कभी एक कामिनी है, जिसके विशाल ललाट पर सूर्य तिलक के समान है; कभी हाथ में लाल गेंद लिए एक

१. उद्धृत — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५०

कन्या है, जिससे अरुण रूप बालक झटके से उस गेंद को पश्चिम दिया रूप कन्या की ओर उछाल रहा है।

प्रस्तुत अष्टक का रचना-काल अनिर्दिष्ट है। अष्टक 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

१.२३ समस्याष्टकम्

विवेच्य रचना में कवि ने 'शतचन्द्रनभस्तलम्' — इस समस्या की विविध उपमाओं और कल्पनाओं द्वारा पूर्ति की है। यद्यपि अष्टक नाम से यह स्पष्ट होता है कि इसमें आठ पद्य रहे होंगे, किन्तु मुद्रित प्रतियों में पद्यों की संख्या ९ है और अन्तिम १०वाँ पद्य उपसंहार रूप है। स्वयं कवि लिखित प्रति में इसी समस्या की पूर्ति पर ६ पद्य और थे, किन्तु अब उनमें से ३ पद्य प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत रचना का रचना-काल अज्ञात है। यह रचना समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि में संकलित है।

उपर्युक्त संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त फुटकर संस्कृत-साहित्य भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। यह साहित्य मुख्यतः तीर्थङ्करों, गुरुओं आदि की स्तुति से सम्बन्धित है। ऐसे संस्कृत-साहित्य का परिचय हम 'प्रकीर्णक-रचनाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत आगे प्रस्तुत करेंगे।

२. संस्कृत-टीकाएँ

मूल ग्रन्थ के रहस्योद्घाटन के लिए उस पर टीकात्मक या व्याख्यात्मक साहित्य का निर्माण करना भारतीय ग्रन्थकारों की बहुत प्राचीन परम्परा है। इस प्रकार के साहित्य से दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं। व्याख्याकार को अपनी लेखनी से ग्रन्थकार के अभीष्ट अर्थ का विश्लेषण करने में असीम आत्मोल्लास होता है तथा कहीं-कहीं उसे अपनी मान्यता प्रस्तुत करने का अवसर भी मिलता है। दूसरी ओर पाठक को ग्रन्थ के गूढार्थ तक पहुँचने के लिए अनावश्यक श्रम नहीं करना पड़ता। इस प्रकार व्याख्याकार का परिश्रम स्व-पर — उभय के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। व्याख्याकार की आत्मतुष्टि के साथ ही साथ जिज्ञासुओं की तृष्णा भी शान्त होती है। इसी पवित्र भावना से भारतीय व्याख्या-ग्रंथों का निर्माण हुआ है। जैन व्याख्याकारों के हृदय भी इसी भावना से भावित रहे हैं।^१

महोपाध्याय समयसुन्दर का व्याख्यात्मक साहित्य-जगत् में सम्मान्य स्थान है। उनकी व्याख्यापरक प्रतिभा विलक्षण थी। उनका व्याख्यात्मक साहित्य भी विपुल है। उनकी व्याख्या-शैली बहुत सरल एवं शीघ्रबोधगम्य है। किसी भी विषय का जितने विस्तार से विचार होना चाहिए, वह उनमें विद्यमान है। पारिभाषिक शब्दों के गूढार्थों को

१. द्रष्टव्य — जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ७

प्रकट रूप में प्रस्तुत करने में समयसुन्दर दक्ष थे। उन्होंने मूल ग्रन्थ के विषयों का विस्तृत विवेचन तो किया ही है, साथ ही साथ उन्हें नये-नये हेतुओं द्वारा पुष्ट भी किया है। जनहित की दृष्टि से उन्होंने लोकभाषा में भी सरल एवं सुबोध व्याख्यान-ग्रन्थ लिखे हैं। संस्कृत-टीकाओं के लिए उन्होंने विभिन्न नामों का प्रयोग किया है; यथा— टीका, वृत्ति, टिप्पण, विवेचन, व्याख्या, दीपिका, अवचूरि, पर्याय, चूर्ण आदि।

समयसुन्दर ने न केवल जैन साहित्य पर टीकाएँ लिखीं, अपितु जैनेतर साहित्य पर भी अनेक टीकाएँ लिखी हैं। उनके प्राप्त सम्पूर्ण टीका-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उन्होंने आगम-साहित्य, तदाश्रित प्रकरण-साहित्य, स्तोत्र-साहित्य एवं अन्य साहित्य, जिनका सम्बन्ध जैनेतर साहित्य से है, पर मुख्यतः टीकाएँ लिखी हैं। उनका उपलब्ध सम्पूर्ण टीका-साहित्य निम्नानुसार है —

- | | |
|--------------------------------|-----------------------------|
| २.१ ऋषिमण्डल-टिप्पण | २.२ रूपकमाला-वृत्ति |
| २.३ दुरियरसमीरस्तोत्र-वृत्ति | २.४ वेरथय-वृत्ति |
| २.५ कल्पलता | २.६ जयतिहुअण-वृत्ति |
| २.७ चत्तारिपरमंगाणि-व्याख्या | २.८ भक्तामर-सुबोधिका वृत्ति |
| २.९ नवतत्त्व-वृत्ति | २.१० दशवैकालिक-वृत्ति |
| २.११ रघुवंश-वृत्ति | २.१२ सन्देहदोलावली - पर्याय |
| २.१३ वृत्तरत्नाकर-वृत्ति | २.१४ सप्तस्मरणस्तव-वृत्ति |
| २.१५ कल्याणमन्दिर-वृत्ति | २.१६ दंडक-प्रकरण-वृत्ति |
| २.१७ वाग्भटालंकार-टीका | २.१८ कुमारसम्भव-वृत्ति |
| २.१९ सारस्वत-वृत्ति | २.२० विमलस्तुति-वृत्ति |
| २.२१ मेघदूत-प्रथम श्लोक वृत्ति | २.२२ माघ-काव्य वृत्ति |
| २.२३ लिंगानुशासन-चूर्ण | २.२४ अनिट्कारिका |
| २.२५ मेघदूत-वृत्ति | |

२.१ ऋषिमण्डल-टिप्पण

‘ऋषिमण्डल’ एक स्तोत्र है, जिसमें आदर्श पुरुषों की भावभीनी स्तुति की गई है। ऋषिमण्डल-स्तोत्र के नाम से अनेक जैन विद्वानों ने रचनाएँ लिखी हैं, जिनमें धर्मघोषसूरि, प्रभचन्द्र आदि कुल ५ विद्वानों की रचनाएँ उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत वृत्ति की मूल प्रति हमें कहीं भी प्राप्त न होने से यह नहीं कहा जा सकता कि समयसुन्दर ने कौन से ऋषिमण्डल-स्तोत्र की रचना की थी। नाहटा-बन्धुओं एवं महोपाध्याय विनयसागर के उल्लेखानुसार प्रस्तुत वृत्ति का रचनाकाल वि० सं० १६६२, आश्विन मास है और रचना-स्थान संग्रामपुर है।^१ किन्तु यह वृत्ति किस ग्रन्थालय में

१. द्रष्टव्य — (क) सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५५

(ख) समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५५

उपलब्ध है, इसकी सूचना किसी भी विद्वान् ने नहीं दी है। यद्यपि हमने इस वृत्ति को अनेक जैन ज्ञान-भण्डारों में खोजवाई, लेकिन उपलब्ध नहीं हो सकी। अतः इस वृत्ति के सम्बन्ध में कोई विशेष तथ्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। महोपाध्याय समयसुन्दर के विद्वान् शिष्य हर्षनन्दन की ऋषिमण्डल टीका के बारे में तो जानकारी प्राप्त होती है, जो ४२००० श्लोक-परिमाण है।^१

१.२ रूपक-माला-वृत्ति

रूपकमाला नामक कृति तीन प्रकार की मिलती हैं— १. उपाध्याय पुण्यनन्दन कृत, २. पार्श्वचन्द्रसूरि कृत और ३. अज्ञात लेखक कृत। महोपाध्याय समयसुन्दर ने उपाध्याय पुण्यनन्दन कृत रूपकमाला पर वृत्ति लिखी है। रूपकमाला का सम्बन्ध भाषाशास्त्र एवं भाषाविज्ञान से है। समयसुन्दर ने प्रस्तुत वृत्ति में रूपकमाला ग्रन्थ के गूढ़ शब्दों की सूक्ष्म व्याख्या की है और अनेक महत्त्वपूर्ण बातों को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। वृत्ति की भाषा अत्यन्त स्पष्ट एवं सरल है और शैली सुबोध है। रूपकमाला पर यही एक वृत्ति है। भाषाशास्त्रियों के लिए यह वृत्ति बहु-उपयोगी है।

प्रस्तुत वृत्ति का परिमाण वृत्तिकार ने नहीं दिया है। इसकी रचना वि० सं० १६६३, कार्तिक शुक्ला १० को हुई थी, जैसा कि वृत्ति के अन्त में निर्दिष्ट है —

संवति गुणरसदर्शनसोमप्रमिते च विक्रमद्रुद्धे ।

कार्तिक शुक्ल-दशम्यां विनिर्मिता स्व-पर शिष्यकृते ॥^२

इस वृत्ति की पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। वृत्ति का प्रकाशन नहीं हुआ है।

१.३ दुरियरसमीरस्तोत्र-वृत्ति

‘दुरियरसमीरस्तोत्र-वृत्ति’ की रचना वि० सं० १६८४ में लूणकर्णसर नामक नगर में हुई थी। प्रस्तुत कृति में की गई व्याख्या से स्पष्ट होता है कि दुरियर-समीरस्तोत्र एक स्तुतिपरक रचना है। इसके कर्ता हैं, जिनवल्लभसूरि। इस स्तोत्र में भगवान् महावीर की जीवनी के कतिपय अंशों का उल्लेख करते हुए उनके आदर्श गुणों की हृदयहारी स्तुति गई है। मूल कृति मात्र ४४ गाथाओं में निबद्ध है, जो कि प्राकृत-भाषा में है।

समयसुन्दर ने इस वृत्ति को शिष्यों के पठनार्थ अति सरल, किन्तु प्रांजल भाषा में गुम्फित किया है। शैली खण्डान्वय है। विषय का विस्तृत विवेचन होने से ‘वृत्ति’ मूल कृति से कई गुनी वृहत् बन गई है।

प्रस्तुत वृत्ति जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत से प्रकाशित है।

१. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ ६०

२. रूपकमालावृत्ति, प्रशस्ति (४)

२.४ वेरथय-वृत्ति

प्रस्तुत कृति का नाम नाहटा-बन्धुओं ने वेरथयवृत्ति-विवेचन^१ बताया है और महोपाध्याय विनयसागर ने 'वेदथपद विवेचना'^२ वस्तुतः दोनों एक ही नाम हैं। प्रथम नाम प्राकृत में है और द्वितीय संस्कृत में।

इस वृत्ति की पाण्डुलिपि हमें प्राप्त नहीं हुई। नाहटा-बन्धुओं ने यह तो सूचित किया है कि इस वृत्ति की समयसुन्दर द्वारा स्वहस्त-लिखित प्रति प्राप्त होती है, जो दो पत्रों में है; परन्तु यह प्रति किस ज्ञान-भण्डार में है, इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। महोपाध्याय विनयसागर के संकेतानुसार इस कृति की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है^३, किन्तु खोज करवाने पर प्रति ग्रन्थालय में नहीं पायी गई।

प्रस्तुत वृत्ति की रचना विक्रम नगर में संवत् १६८४ में हुई थी, जैसा कि वृत्ति के अन्त में लिखा है —

सं० १६८४ वर्षे अक्षयतृतीयां श्रीविक्रमनगरे श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायैर्व्यलेखि ॥^४

२.५ कल्पलता

'कल्पलता' श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वारा प्रणीत 'कल्पसूत्र' ग्रन्थ पर लिखी गई एक बृहद् टीका है। यद्यपि 'कल्पसूत्र' एक स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि यह दशाश्रुतस्कन्ध नामक छेदसूत्र का 'पञ्जोसवणाकप्प' (पर्युषणा कल्प) नाम का आठवाँ अध्ययन मात्र है।^५ पर्युषण-पर्व में इसका प्रतिवर्ष वांचन होने से यह ग्रन्थ जैन धर्म के आगमिक ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हो गया है और प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इसकी महत्ता आज भी सर्वोपरि है।

इस 'कल्पसूत्र' की समय-समय पर लिखित अनेक टीकाएँ, बालावबोध व्याख्याएँ, अवचूरियाँ, अन्तर्वाच्य या स्तवक संज्ञक और अनुवाद आदि प्राप्त होते हैं। इनमें से लगभग ९० टीकादि ग्रन्थों का नामोल्लेख महोपाध्याय विनयसागर ने किया है,^६ जिनमें जिनप्रभसूरि कृत् 'संदेहविषौषधि', धर्मसागर कृत् 'कल्पकिरणावली', विनयविजय कृत् 'कल्पसुबोधिका', लक्ष्मीवल्लभ कृत् 'कल्पद्रुमकलिका-टीका', समयसुन्दर कृत् 'कल्पलता', श्रुतसागर कृत् 'कौमुदी' आदि उल्लेखनीय हैं। कवि ने 'कल्पलता' टीका की रचना करने के उद्देश्य का उल्लेख करते हुए लिखा है —

१. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५५
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५१
३. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५५
४. उद्धृत — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५१
५. द्रष्टव्य — कल्पसूत्र प्रास्ताविक, मुनि पुण्यविजय, पृष्ठ ८-९
६. द्रष्टव्य — कल्पसूत्र, भूमिका

वक्ष्येहं कल्पसूत्रस्य, व्याख्यानि नव स्फुटम् ।
सुगमानि सुबोधानि, नानाग्रन्थानुसारतः ।
न सूत्र नावचूरिश्च, न वृत्तिर्नान्यपत्रकम् ।
ग्राह्यं व्याख्यानवेलायां, पुस्तकेस्मिन् पुरः (कर) स्थिते ॥^१

अर्थात् मैं 'कल्पसूत्र' के नव व्याख्यानों का अनेक ग्रन्थों का अनुसरण करते हुए स्पष्ट, सुगम और सुबोध रूप में विवेचन करता हूँ; जिससे यदि व्याख्यान के समय यह पुस्तक हाथ में हो, तो न तो सूत्र की, अवचूरि की, न वृत्ति की या न ही अन्य किसी पत्र-पत्रों की जरूरत पड़ती है। आगे कवि कहता है —

सभासमक्षं व्याख्यानं, कल्पसूत्रस्य दुष्करम् ।
केषांचिदल्पबुद्धीनां, बहूपायप्रलोकनात् ॥
कृत्वा तदनुकम्पां तां, मया कल्पलता कृता ।
सुगमा तत एतस्यां, एकस्यामेव कथ्यताम् ॥^२

अर्थात् कितने ही अल्पबुद्धिवालों को अनेक उपाय करने के पश्चात् भी सभासमक्ष 'कल्पसूत्र' व्याख्यान करना दुष्कर है, इसलिए उन पर अनुकम्पा करके यह 'सुगम' 'कल्पलता' मैंने रची है।

डा० मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने निबन्ध में उल्लेख किया है कि डा० जेकॉबी के कथनानुसार यह जिनप्रभ मुनि रचित 'संदेहविषौषधि' नाम की टीका का मात्र संक्षिप्त सार है;^३ परन्तु कवि ने स्वयं इस प्रकार का उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। अतः यह कहना युक्तिसंगत नहीं है।

अब इस वृत्ति के रचना-काल के सम्बन्ध में प्रश्नचिह्न होता है। यद्यपि महोपाध्याय विनयसागर के अनुसार इसकी रचना वि० सं० १६६९ में सम्पन्न हुई,^४ डा० मोहनलाल मेहता ने भी इसी संवत् का उल्लेख किया है,^५ लेकिन 'कल्पलता' में स्पष्ट रूप से कहीं भी रचना-काल व्यक्त नहीं हुआ है। कवि ने टीका के अन्त में प्रशस्ति में लिखा है कि मैंने श्री जिनराजसूरि के राज्य में और जिनसागरसूरि के यौवनराज्य में उनकी कृपा से यह टीका सम्पूर्ण की है —

१. कल्पलता, ग्रन्थारम्भ (२-३)
२. कल्पलता, प्रशस्ति (१५-१६)
३. जैनसाहित्य-संशोधक, अङ्क ३, खण्ड २, पृष्ठ २२
४. कम्पसुत्तं, भूमिका
५. जैन साहित्य का इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ५५

राजन्ते जिनराजसूरि गुरुवस्ते साम्प्रतं भूतले ।
 युवराजजिनसागरसूरिवरे विजयिनि प्रकृति सौम्ये ।
 तद्गुरुणां प्रसादेन मया कल्पलता कृता ।^१

जिनराजसूरि को गच्छनायक-पद वि० सं० १६७४ में प्रदान किया गया था और जिनसागरसूरि वि० सं० १६७४ से वि० सं० १६८४ तक युवराज के रूप में जिनराजसूरि के आज्ञाधीन रहे। अतः यह टीका वि० सं० १६७४ से १६८४ के बीच ही रची गई। इसके अतिरिक्त एक अन्य और संकेत प्राप्त होता है, जो हमें 'कल्पलता' टीका के रचना-काल को स्पष्ट करने में बहुत सहायक होता है। वह है —

लूणकर्णसरे ग्रामे, प्रारब्धा कर्तुमादरात् ।

वर्षमध्ये कृता पूर्णा, मया चैसा रिणीपुरे ॥^२

अर्थात् लूणकर्णसर ग्राम में प्रारम्भ की और एक वर्ष में रिणीनगर में पूर्ण की।

'दुरियरसमीरवृत्ति' और 'सन्तोष-छतीसी' से ज्ञात होता है कि कवि वि० सं० १६८४ में रिणीनगर थे और 'यति-आराधना' से विदित होता है कि कवि वि० सं० १६८५ में रिणीनगर में विद्यमान थे। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि कवि ने 'कल्पलता' का प्रणयन वि० सं० १६८४ से ८५ में मध्यवर्तीकाल में ही किया था। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने भी उपर्युक्त मत से ही कुछ सम्बन्धित विचार लिखे हैं।^३

इस ग्रन्थ का नामकरण 'कल्पलता' इसलिए किया गया है, क्योंकि इससे जो भी इच्छाएँ रखते हों, वह सब इस 'कल्पलता' में उपलब्ध हो जाएँगी। यह सूत्र प्राकृत-गद्य में आबद्ध है। कवि ने उसकी टीका संस्कृत में की है। मूल ग्रन्थ में सूत्रों की अङ्क-संख्या २९१ है और अनुष्टुप श्लोक-परिमाण से पद्य-संख्या १२१५ अथवा १२१६ है। प्रस्तुत वृत्ति का ग्रन्थमान ७७०० श्लोक प्रमाण है। इस सूत्र में तीन वाचनाएँ अर्थात् अधिकार हैं— १. जिनचरित्र, २. स्थविरावली तथा ३. साधु-समाचारी।

'जिनचरित्र' में पश्चानुपूर्वी से भगवान् महावीर, पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), २० तीर्थङ्करों का अन्तरकाल और ऋषभदेव प्रभु के जीवनवृत्त का वर्णन हुआ है। विशेष रूप से इनमें चार अर्हतों के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान और निर्वाण रूप पांच कल्याणकों, उनके साधु-साध्वी परिवार का एवं अन्तकृद्भूमि का आलेखन किया गया है। भगवान् महावीर पर व्यापक रूप से विवेचन हुआ है। महावीरस्वामी के चरित्र में गर्भापहार, चौदह स्वप्न, अट्टणशाला, स्वप्नफल, जन्मोत्सव, दीक्षोत्सव, चातुर्मास तथा निर्वाण का विवेचन हुआ है। अन्य तीर्थङ्करों का जीवन-वृत्त संक्षेप में दिया गया है।

१. कल्पलता, प्रशस्ति, १९-२१, पृष्ठ २८२

२. कल्पलता, प्रशस्ति (१७) पृष्ठ २८२

३. द्रष्टव्य — कल्पलता, भूमिका पृष्ठ १४-१५

‘स्थविरावली’ में महावीर की पट्ट-परम्परा में उनके गणधरों से लेकर श्री देवर्धिगणि पर्यन्त जो-जो प्रभावशाली आचार्य हुए हैं, उनका गोत्रादि सहित नाम निर्देश करके उनका स्मरण किया गया है। इसके अलावा प्रमुख-प्रमुख पट्टधरों के शिष्यों, उनसे निःसृत कुल, गण तथा शाखाओं आदि का उल्लेख भी किया गया है।

‘साधु-समाचारी’ में वर्षावास में स्थित श्रमण-साधुओं और श्रमणी-साध्वियों के आचार-नियमों का उत्सर्ग और अपवाद-सहित वृत्तिकार ने २८ समाचारियों के रूप में वर्णन किया है।

वृत्तिकार ने उपर्युक्त तीन अधिकारों को नौ व्याख्यानों में विभक्त किया है— १. पंचपरमेष्टि-नमस्कार, २. महावीरस्वामी के च्यवन और गर्भापहार-कल्याणक, ३. महावीरस्वामी की माता के चौदह स्वप्न, ४. महावीर स्वामी का जन्म-कल्याणक, ५. महावीरस्वामी के दीक्षा, केवल ज्ञान और निर्वाण-कल्याणक ६. पार्श्वनाथ एवं नेमिनाथ के पाँच कल्याणक, ७. अन्तरकाल और ऋषभदेव के पाँच कल्याणक, ८. स्थविरावली और ९. पर्युषण में साधु-समाचारी।

इस सूत्र की १२वीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी के मध्य की हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ आज भी देश के अनेक शास्त्र-भण्डारों में मिलती हैं। इसीलिए महोपाध्याय विनयसागर का मत है कि इस सूत्र पर जितना साहित्य लिखा गया है, उतना विपुल साहित्य किसी भी आगम-ग्रन्थ पर प्राप्त नहीं होता है।^१

समयसुन्दर कृत ‘कल्पलता’ वृत्ति अत्यधिक विस्तृत है। फलस्वरूप मूल ग्रन्थ रूपी मंदिर का टीका रूपी कलश अधिक बड़ा बन गया है। इसका प्रकाशन श्री जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार-फण्ड, सूरत से हुआ है।

२.६ जयतिहुअण-वृत्ति

प्रस्तुत कृति जयतिहुअण-स्तोत्र पर लिखित एक वृहत् वृत्ति है। जयतिहुअण-स्तोत्र के रचनाकार नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरि हैं। मूल रचना में मात्र ३० पद्य हैं, किन्तु वृत्ति अत्यन्त विस्तृत है। इस वृत्ति की रचना अणहिलपत्तन (पाटण) में वि० सं० १६८७ में हुई थी। वृत्तिकार ने अपने शिष्य मुनि सहजविमल एवं पण्डित मेघविजय के पठनार्थ इस वृत्ति का निर्माण किया था—

अणहिलपत्तननगरे, संवति मुन्यऽष्ट शृंगारे ।

मुनिसहजविमल-पण्डित-मेघविजय-शिष्यपठनार्थम् ॥^२

१. कप्पसुत्तं, भूमिका, पृष्ठ ७

२. जयतिहुअण-वृत्ति, प्रशस्ति (१-२)

यद्यपि महोपाध्याय विनयसागर ने इस वृत्ति का रचना काल सं० १६८५ उल्लिखित किया है^१, किन्तु वृत्तिकार द्वारा प्रयुक्त 'मुनि' शब्द ७ की संख्या का वाचक है, न कि ६ का। अतः इसका रचना-काल वि० सं० १६८७ है।

प्रस्तुत वृत्ति में समयसुन्दर ने प्रारम्भ में आद्य-मंगल करते हुए स्तोत्र-रचनाकार का कुछ परिचय एवं स्तोत्र-रचना का प्रयोजन बताया है, फिर स्तोत्र की विस्तृत व्याख्या की है। वृत्ति के अन्त में प्रशस्ति भी की गई है।

वृत्तिकार इस स्तोत्र की रचना का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं कि एक बार अभयदेवसूरि व्याधिग्रस्त एवं जर्जरित हो गये। अनशन करने का विचार करने पर शासनदेवी ने कहा कि सेढनदी के पार्श्ववर्ती खोखरा पलाश के नीचे भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। आपकी स्तवना से वह जिनप्रतिमा प्रकट होगी। उस प्रतिमा के स्नात्रजल से आपकी सम्पूर्ण व्याधि नष्ट हो जाएगी। शासनदेवी के संकेतित स्थान पर वे गये और उन्होंने प्रस्तुत स्तोत्र रचकर पार्श्वप्रभु की स्तुति की। फलतः प्रतिमा का वैभव खण्डहरों से प्रकट हो गया। यह स्थान आज भी 'स्तम्भनपुरतीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध है और यह स्तोत्र खरतरगच्छानुयायी प्रतिदिन प्रतिक्रमण में बोलते हैं। समयसुन्दर के अनुसार यह स्तोत्र महाप्रभाविक एवं महाचमत्कारिक है।

प्रस्तुत वृत्ति जिनदत्तसूरिज्ञानभण्डार, सूरत से प्रकाशित है।

२.७ चत्वारि परमंगाणि-व्याख्या

प्रस्तुत कृति की पाण्डुलिपि नाहटा-बन्धुओं के संकेतानुसार अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है,^२ किन्तु गवेषणा करने पर पाण्डुलिपि ग्रन्थालय में उपलब्ध नहीं पाई गई। लीमड़ी के ज्ञान भंडार में 'चत्वारि परमंगाणिगाथा व्याख्यान' नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि उपलब्ध है, किन्तु ग्रन्थकार का नाम आदि उसमें अनिर्दिष्ट है। सम्भव है कि वह पाण्डुलिपि प्रस्तुत कृति की हो। 'चत्वारि परमंगाणि' का संस्कृत रूप 'चत्वारि परमंगाणि' होता है; परन्तु अन्य पाण्डुलिपि के प्राप्त हुए बिना न तो इस बात की पुष्टि की जा सकती है और न ही अन्य कोई उल्लेखनीय जानकारी दी जा सकती है।

महोपाध्याय विनयसागर के उल्लेखानुसार प्रस्तुत व्याख्या-ग्रन्थ का निर्माण संवत् १६८७, फाल्गुन शुक्ल ८ को श्रीपत्तन (पाटण) में पूर्ण हुआ था। उन्होंने 'चत्वारि परमंगाणि-व्याख्या' ग्रन्थ से एक पद्य भी उद्धृत किया है, जिसमें कृति का रचना-काल आदि उल्लिखित है —

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५५

२. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५५

‘नवीन शिष्यस्य पूर्वं अकृत व्याख्यानस्य हितकृते।
संवत् १६८७ फा० शु० ८ दिने श्रीपत्तने।’

२.८ भक्तामर-सुबोधिका-वृत्ति

‘भक्तामर-स्तोत्र’ बहुत ही प्रभावक स्तोत्र माना जाता है। यह स्तोत्र वस्तुतः मानतुंगाचार्य कृत प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभ की स्तुति है। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर — दोनों आम्नाय के अनुयायियों द्वारा इस स्तोत्र का नित्य पाठ करना, इसके चमत्कारिक माहात्म्य का प्रमाण है।

प्रस्तुत स्तोत्र की रचना के समय मूल में ४८ पद्य थे, परन्तु भक्तों के द्वारा जब इसका दुरुपयोग होने लग गया, तो उनमें से उन ४ पद्यों को प्रचलन से हटा दिया गया, जिसके कारण देवताओं को प्रकट होना पड़ता था। तदर्थ महोपाध्याय समयसुन्दर ने ४४ पद्यों की ही सुबोधगम्य वृत्ति लिखी है।

भक्तामर-स्तोत्र पर समयसुन्दर के अलावा अनेक विद्वानों ने वृत्ति-टीका आदि लिखी है, जिनमें गुणसुन्दर (सं० १४२६), कनककुशल (सं० १६५२), अमरप्रभ, शांतिसूरि, गणिमेघविजय, ब्रह्मरायमल्ल (सं० १६६७), रत्नचन्द्र, मेरुसुन्दर, गणिन्द्ररत्न, पद्मविजय, देवसुन्दर, उपाध्याय शांतिचन्द्र, चन्द्रकीर्तिसूरि, कीर्तिगणि, गुणाकरसूरि, गणिहरितिलक, क्षेमदेव, शुभवर्धन, लक्ष्मीकीर्ति आदि द्वारा रचित वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं।^१

‘भक्तामर-सुबोधिका-वृत्ति’ की रचना वि० सं० १६८७ में पत्तन-नगर में हुई थी। वृत्तिकार ने लिखा है —

पत्तने नगरे सप्तवसु शृंगारसंवति।

वृत्ति के प्रारम्भ में भक्तामरस्तोत्र के प्रणयन का प्रयोजन बताया गया है। वृत्तिकार लिखते हैं कि उज्जयनी नगरी में वृद्ध भोजराज की सभा में चौदह विद्याप्रवीण, षट्शास्त्र-ज्ञाता, देव-सान्निध्यसम्पन्न एवं गर्विष्ठ अनेक पण्डित रहते थे।

एक दिन मयूर नामक पण्डित ने अपनी पुत्री तथा पण्डित दामाद बाण को परस्पर झगड़ते हुए देखकर उनकी हँसी उड़ाई। पुत्री ने क्रोधवश मयूर को कुष्ठी होने का श्राप दे दिया। मयूर ने सौ श्लोकों में सूर्य की उपासना कर उनसे अपना रोग दूर करवा लिया। अतः मयूर विश्रुत हुआ। बाण ने ईर्ष्यावश अपने हाथ-पैर काटकर चण्डी देवी को प्रसन्न किया। चण्डी ने उसके नये हाथ-पैर कर दिये। इससे उसकी भी प्रसिद्धि हुई।

एक दिन वृद्ध भोजराज ने श्रावकों से पूछा कि क्या आपके जैनियों में कोई मयूर/बाण जैसे विद्यासम्पन्न हैं। उन्होंने कहा - आचार्य मानतुङ्गसूरि आपके वचनानुकूल हैं। राजा के निमन्त्रण पर मानतुङ्गसूरि राज्य-सभा में गए। राजा ने इनकी वक्तृत्व-विद्या

१. उद्धृत — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५४

२. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ २८८-८९

देखने के लिए अपने पण्डितों से शास्त्रार्थ करने को कहा। मानतुङ्गाचार्य ने उनके साथ जगत-कर्तृत्व सम्बन्धी वाद चलाकर विजय प्राप्त की। राजा ने उनसे मयूर आदि जैसी दिव्य विद्या दिखाने को कहा।

राजा ने आचार्यश्री को तालेयुक्त ४८ बेड़ियाँ पहनाई और सात तालेयुक्त कमरे में उन्हें बन्द कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने प्रस्तुत स्तोत्र की रचना करनी प्रारम्भ की। एक-एक पद्य की रचना के साथ एक-एक बेड़ी टूटती गई। अन्त में द्वार के ताले भी स्वतः खुल गए। प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर राजा ने उनका अत्यधिक अभिनन्दन किया।

आज यह स्तोत्र जैनियों के नित्य-कर्म की एक कड़ी है। प्रस्तुत कृति इस स्तोत्र की संक्षिप्त किन्तु स्पष्टार्थ वृत्ति है। इसमें वृत्तिकार ने पदार्थ का समास-विग्रह करते हुए उसे सरल-भाषा में स्पष्ट किया है, जिससे संस्कृत का सामान्य ज्ञान रखने वाले पाठकों के लिये भी यह स्तोत्र सुबोध हो गया है। कहीं-कहीं वृत्तिकार ने कुछ विलक्षणता भी प्रकट की है। उदाहरणार्थ — प्रथम पद्य की वृत्ति में पदार्थ में निहित चार अतिशयों — १. पूजातिशय, २. अपाय-अपगमातिशय, ३. ज्ञानातिशय और ४. वचनातिशय— को वृत्तिकार ने स्पष्ट कर दिया है, जिससे पद्य में अतिशयों का नाम-निर्देश न होने पर भी अध्येता को स्तोत्रकार द्वारा संकेतित अतिशयों का बोध हो जाता है।

प्रस्तुत वृत्ति में यत्र-तत्र शब्दों के अनेक अर्थ भी दिये गये हैं। जैसे — ग्यारहवें पद्य में आए 'शान्त-रागरुचिभिः' शब्द के दो अर्थ वृत्तिकार ने प्रस्तुत किये हैं —

१. जिनकी राग में कोई रुचि न रह गई हो या जिनकी राग में रुचि समाप्त हो गई हो,
२. 'शान्त' नामक नवम् रस की भावना में जिनकी रुचि हो।

इस तरह स्पष्ट है कि यह वृत्ति केवल स्तोत्र के शब्दार्थ को समझने के लिए ही नहीं, अपितु इसमें निहित गूढ़ आशयों को स्पष्ट करने के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

'भक्तामर-सुबोधिका-वृत्ति' की हस्तलिखित प्रतिलिपि श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर एवं श्री जिनहरि-विहार, पालीताणा (गुजरात) से प्राप्त हुई है। बीकानेर वाली प्रति सुवाच्य नहीं है, जबकि पालीताणा की प्रति आद्यन्त सुपाद्य एवं सुरक्षित है।

२. ९ नवतत्त्व-वृत्ति

यह शब्दार्थ-वृत्ति रूप कृति है। वृत्ति में प्राप्त उल्लेखों से विदित होता है कि मूल ग्रन्थ आगमों के आधार पर रचित है। इसमें मुख्यतः तात्त्विक चर्चा है। तत्त्व-सम्बद्ध सामग्री, जो आगमों में इधर-उधर बिखरी हुई है, का इस कृति में सुसंकलित और सुव्यवस्थित रूप उपलब्ध है। आगमों में आने वाले गहन तात्त्विक विषयों में प्रवेश करने के लिये यह कृति प्रवेशद्वार के समान है।

समयसुन्दर ने अपनी वृत्ति में मूल कृति के शब्दों का ही अर्थ स्पष्ट किया है। समयसुन्दर के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी नवतत्त्व-प्रकरण पर व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं,

जिनमें कुलमण्डन, साधुरत्न, माणिक्यशेखर, परमानन्दसूरि, रत्नचन्द्र, सोमसुन्दरसूरि हर्षवर्धन, गणि मानविजय, रत्नपाल आदि के व्याख्या-ग्रन्थ उपलब्ध हैं।^१

प्रस्तुत वृत्ति शब्दार्थ-प्रधान होते हुए भी अत्यन्त स्पष्ट एवं मूल कृति के रहस्य की उद्घाटिका है। इस कृति में मुख्यतः जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष — इन नव तत्त्वों का सारगर्भित स्वरूप बताया गया है। वृत्तिकार ने लिखा है कि उन्होंने यह अहमदाबाद की हाजापटेल पोल में वि. सं. १६८८ के कार्तिक मास में निबद्ध की थी। उन्हीं के शब्दों में —

संवत्सुगजरसशिमिते च दुर्भिक्ष कार्तिक-मासे ।

अहमदाबादे नगरे पटेल हाजाभिध प्रोल्यां ॥

प्रस्तुत वृत्ति की पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से उपलब्ध हुई है।

२.१० दशवैकालिक-वृत्ति

‘दशवैकालिक-सूत्र’ एक जैन आगम-ग्रन्थ है। आगमिक ग्रन्थों में ‘दशवैकालिक’ सर्वाधिक प्रचलित और सर्वाधिक व्यवहृत ग्रन्थ है। निशीथचूर्णि, उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति आदि ग्रन्थों के कर्त्ता/व्याख्याकारों ने अनेक स्थानों पर अपने-अपने मत की पुष्टि के लिए इस ग्रन्थ को उद्धृत किया है। तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक, धवला, जयधवला आदि ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख और विवरण उपलब्ध होता है।

कवि समयसुन्दर ने ‘दशवैकालिक-वृत्ति’ के अन्त में उपसंहार के रूप में इस ग्रन्थ का परिचय देते हुए लिखा है कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के कर्त्ता आचार्य शय्यंभव हैं। वे श्रुतकेवली थे। उन्होंने अपने मनक नाम के पुत्र-शिष्य के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था, जो ‘चम्पा’ नगर में वीर संवत् ७२ के लगभग हुआ था। कवि ने ग्रन्थ-निर्माण के प्रयोजन की कथा भी लिखी है। यह ग्रन्थ विकाल में रचा गया, इसलिए इसका नाम दशवैकालिक रखा गया। श्रुतकेवली शय्यंभव ने विभिन्न पूर्वों से इसका निर्युहण किया — ऐसी मान्यता है।^२ कवि ने भी इसी बात को ग्रन्थ के अन्त में पुष्ट किया है।

पूर्वाचार्यों ने इस सूत्र पर निर्युक्ति, भाष्य, टीका, दीपिका, वृत्ति, चूर्णि अवचूरि आदि अनेक व्याख्या-ग्रन्थ लिखे हैं। हरि दामोदर वेलनकर ने ‘दशवैकालिक सूत्र’ पर लिखे गये व्याख्या-ग्रन्थों में से प्राप्त २२ ग्रन्थों की सूची दी है।^३ महोपाध्याय समयसुन्दर का प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थ भी व्याख्या-ग्रन्थ है, जिसमें उन्होंने रचना का प्रयोजन, नामकरण, अध्ययनों के नाम, उनके विषय, ग्रन्थ की प्रामाणिकता, उपादेयता, मुख्य रूप से सूत्र के शब्दार्थ इत्यादि का बहुत ही मनोरम वर्णन-विवेचन किया है।

१. द्रष्टव्य — जैनसाहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ४, पृष्ठ १८२

२. द्रष्टव्य — दशवैकालिक-निर्युक्ति, गाथा १६-१७

३. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ १६९-७१

मूल ग्रन्थ प्राकृत-भाषा में है और पद्य-बहुल है, कहीं-कहीं गद्य भी है। कवि ने उसकी व्याख्या संस्कृत गद्य में की है। वृत्ति मुख्यतः शब्दार्थ-प्रधान है। वृत्तिकार ने इस वृत्ति का नाम 'दशवैकालिक-दीपिका' भी रखा है। इसकी भाषा सरल एवं शैली सुबोध है। प्रारम्भ में वृत्तिकार ने स्तम्भनाधीश (पार्श्वनाथ) को नमस्कार किया है तथा दशवैकालिक सूत्र का शब्दार्थ लिखने का संकल्प किया है—

स्तम्भनाधीशमानन्य, गणिः समयसुन्दरः।

दशवैकालिके सूत्रे शब्दार्थं लिखति स्फुटम् ॥

'दशवैकालिक सूत्र' में दस अध्ययन हैं। कवि ने अपनी 'वृत्ति' में अध्ययनों के नाम, श्लोक-संख्या, वर्ण्य-विषय, उसकी व्याख्या आदि इस प्रकार दिये हैं —

प्रथम अध्ययन का नाम 'दुमपुष्पिका — द्रुमपुष्पिका' है। इसमें मात्र ५ श्लोक हैं। कवि ने इस अध्ययन की व्याख्या करते हुए कहा है कि इसमें धर्म की प्रशंसा एवं मधुकरी-वृत्ति का वर्णन किया गया है। वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में इसी की व्याख्या की है।

द्वितीय अध्ययन 'सामण्यपुव्वयं - श्रामण्यपूर्वक' संज्ञक है। इसमें कुल ११ श्लोक हैं। इस अध्ययन में जिस बात के बिना श्रामण्य या श्रमणत्व नहीं होता, उसकी चर्चा होने से इसका नाम 'सामण्यपुव्वयं' रखा गया है। संक्षेप में इसमें संयम में धृति का उपदेश है। समयसुन्दर ने अपनी टीका में इन्हीं बातों को स्पष्ट किया है। अन्तिम गाथाओं की व्याख्या करते हुए कवि ने मुनि रथनेमि और महासती राजिमती के कथा-प्रसंग का भी उल्लेख किया है एवं मुनि के विकार को नष्ट करने के लिए प्रदत्त उपदेश का रुचिर विवेचन किया है।

तृतीय अध्ययन 'खुडुयायार-कहा — क्षुल्लकाचार-कथा' के नाम से निर्दिष्ट है। यह अध्ययन १५ श्लोकों में आबद्ध है। इसमें आचार और अनाचार में विवेक का निरूपण किया गया है। समयसुन्दर कृत इस अध्ययन की व्याख्या का यही सार है।

चतुर्थ अध्ययन २२ गद्य सूत्रों और २८ श्लोकों में प्रणीत है, जिसे 'छज्जीवणिया-षड्जीवनिका' नाम दिया गया है। इसमें जीव-अजीव के स्वरूप का निर्देश, चरित्र-धर्म का निरूपण तथा हिंसा के विविध रूपों से बचने का उपदेश दिया गया है। समयसुन्दर ने अपनी वृत्ति में उपर्युक्त सभी बातों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है।

पंचम अध्ययन का शीर्षक 'पिण्डेसणा — पिण्डैषणा' है। यह दो उद्देशकों में विभक्त है। कवि का कथन है कि पहले उद्देशक में एषणा-गवेषणा, ग्रहणेषणा और भोगेषणा की शुद्धि का निर्देश है; अर्थात् आहार आदि की गवेषणा की विधि, भक्तपान लेने की विधि, भोजन करने की आपवादिक विधि, भोजन करने की सामान्य विधि इत्यादि का वर्णन है। वृत्तिकार ने इस तथ्य का वृत्ति में विश्लेषण किया है। यह उद्देशक

१०० श्लोकों में निर्मित है। दूसरे में भी वृत्तिकार ने मुनि को निर्दोष भिक्षा ग्रहण करने के विधान की व्याख्या की है। इसमें श्लोकों की संख्या ५० है।

षष्ठ अध्ययन 'महाचारकथा-महाचारकथा' नामक है। इसमें आचार के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, रात्रिभोजन का त्याग, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की यतना, अकल्प्य, गृहिभाजन, पर्यक निषद्या, स्नान, विभूषावर्जन — इन अठारह स्थानों का समयसुन्दर ने विश्लेषण किया है। यह अध्ययन ६८ श्लोकों में रचित है।

सप्तम अध्ययन का नाम 'वक्त्रसुद्धि — वाक्यशुद्धि' है। प्रस्तुत अध्ययन में असत्य और सत्यासत्य भाषा के प्रयोग का निषेध किया गया है। कवि ने इस अध्ययन की सुन्दर व्याख्या की है। इस अध्ययन में ५७ श्लोक हैं।

अष्टम अध्ययन 'आयारपणिही — आचारप्रणिधि' का है। 'आचारप्रणिधि' का अभिप्राय आचार के प्रणिधान से है। श्रमण को इन्द्रिय तथा मन का अप्रशस्त-प्रयोग नहीं करना चाहिये, प्रशस्त प्रयोग करना चाहिये — यह शिक्षण ही इस अध्ययन की आत्मा है। इसलिए इसका नाम 'आचार-प्रणिधि' रखा गया है।^१ वृत्तिकार ने भी प्रस्तुत अध्ययन की वृत्ति की भूतिका में 'साधु को आचार-पालन के लिए प्रयत्न करना चाहिये' — यही इसका मेरुदण्ड दिग्दर्शित किया है। कवि ने इस अध्ययन के ६३ श्लोकों की सुन्दर व्याख्या करने का प्रयास किया है।

नवम अध्ययन को 'विणयसमाहि — विनयसमाधि' शीर्षक दिया गया है। इसमें चार उद्देशक हैं, जिसके श्लोकों की संख्या क्रमशः १७+२३+१५+७ = ६२ है। प्रथम उद्देशक में विनय से होने वाला मानसिक स्वास्थ्य, द्वितीय उद्देशक में अविनीत-सुविनीत की आपदा-सम्पदा, तृतीय उद्देशक में पूज्य कौन, पूज्य के लक्षण और उसकी अर्हता का उपदेश और चतुर्थ उद्देशक में विनय-समाधि के स्थानों का वर्णन है — इस अध्ययन पर की गई वृत्ति का यही सारांश है।

दशम अध्ययन का नाम 'स-भिक्षु' अर्थात् 'सभिक्षु या सद् भिक्षु' दिया गया है। सद्भिक्षु का भी प्राकृत रूप सभिक्षु बनता है। वैसे कवि ने भी सभिक्षु को सभिक्षु के रूप में ही स्वीकृत किया गया है, लेकिन उसे सद्भिक्षु या सम्यग्भिक्षु के रूप में भी माना है। यह विवेच्य सूत्र का उपसंहार और मूल्यांकन है। इसमें भिक्षु के लक्षण और उसकी अर्हता का उपदेश समाहित है। पूर्ववर्ती ९ अध्ययनों में कथित आचार का पालन करने हेतु जो भिक्षादि करता है, वही भिक्षु है; पेट-पूर्ति मात्र करने वाला भिक्षु नहीं हो सकता — यही दसवें अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है और उसका प्रतिपादन कुल २१ श्लोकों में हुआ है।

१. दशवैकालिक-निर्युक्ति, ३०८

तत्पश्चात् इसके अन्त में दो चूलिका भी दी गई हैं। 'इवक्का-रतिवाक्या' संज्ञक प्रथम चूलिका में स्थिरीकरण का उपदेश 'विविक्तचरिया - विविक्तिचर्या' संज्ञक द्वितीय चूलिका में विविक्तचर्या का उपदेश है अर्थात् इसमें श्रमण की चर्या, गुणों और नियमों का निरूपण है। १६ श्लोकों में इस चूलिका की रचना हुई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'दशवैकालिक-वृत्ति' में आचार-गोचर की प्ररूपणा के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन भी हुआ है। वृत्ति के अन्त में वृत्तिकार ने हरिभद्र कृत टीका को विषम बताते हुए अपनी टीका को सुगम बताया है। इसका ग्रन्थमान ३४५० श्लोक प्रमाण है —

हरिभद्रकृता टीका वर्तते विषमा परम् ।
मया तु शीघ्रबोधाय शिष्यार्थं सुगमाकृता ॥
चन्द्रकुले श्री खरतरगच्छे जिनचन्द्रसूरिनामानः ।
जाता युगप्रधानास्तच्छिष्यः सकलचन्द्रगणिः ॥
तच्छिष्य समयसुन्दरगणिना चक्रे च स्तम्भतीर्थपुरे ।
दशवैकालिक-टीका-शशिनिधि-शृंगार-मित-वर्षे ॥
शब्दार्थवृत्तिटीकायाः श्लोकामानमिदं स्मृतम् ।
सहस्रत्रयमग्रे च पुनः सार्धचतुः शतम् ॥^१

कविवर समयसुन्दर विरचित 'दशवैकालिक-सूत्र-वृत्ति' का श्री जिनयशसूरि ग्रन्थरत्नमाला समिति, खम्भात द्वारा वि० सं० १९७५ में प्रकाशन हो चुका है।

२.११ रघुवंश-वृत्ति (अर्थलापनिका)

रघुवंश महाकवि कालिदास रचित महाकाव्यों में एक है। इसमें सूर्यवंशी राजाओं में दिलीप से लेकर अग्निवर्ण पर्यन्त राजाओं का वर्णन किया गया है, किन्तु मुख्य रूप में दिलीप, अज, दशरथ और राम के चरित्र का ही वर्णन प्राप्त होता है। अन्य राजाओं का अत्यन्त संक्षिप्त चरित्र-चित्रण किया गया है।

इस ग्रन्थ में कवि की कल्पना के कुछ उत्तम और विलक्षण उदाहरण मिलते हैं। अतएव यह काव्य अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। सामान्य व्यक्ति को भी इस काव्य का रसास्वादन हो सके, इस उद्देश्य से महोपाध्याय समयसुन्दर ने काव्य पर 'अर्थलापनिका' नामक एक सरल वृत्ति की रचना की है। समयसुन्दर के अलावा अन्य जैन विद्वानों ने भी रघुवंश की व्याख्या की है, जिनमें चारित्रवर्धन, धर्ममेरु, गुणविनय (गुणविजय) श्री विजयगणि, सुमतिविजय, हेमसूरि, रत्नचन्द्रगणि, मलयसुन्दरगणि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।^२ समयसुन्दर ने इस वृत्ति में काव्य के अक्षरार्थ की समास आदि के विश्लेषण के

१. दशवैकालिकवृत्ति, प्रशस्ति (१-३, ७)

२. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ ३२५-२६

साथ-साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वृत्तिकार ने वृत्ति में कहीं-कहीं प्राचीन व्याख्याकारों द्वारा प्रदर्शित अर्थों से भिन्न अर्थ भी अपनी प्रतिभा द्वारा प्रदान किये हैं। उदाहरणार्थ — प्रथम सर्ग के प्रथम पद्य में प्रयुक्त 'पार्वतीपरमेश्वरो' पद के दो नवीन अर्थ किये हैं —

१. (क) पार्वतीप अर्थात् पार्वती के रक्षक
(ख) रमेश्वर अर्थात् रमा के ईश्वर — विष्णु
२. (क) पार्वतीपर अर्थात् पार्वती का भरण-पोषण करने वाला
(ख) मेश्वर अर्थात् मया के ईश्वर — नारायण

प्रस्तुत वृत्ति की हस्तलिखित पाण्डुलिपि जैन भवन, कोलकाता में सुरक्षित है, परन्तु वह अपूर्ण है। प्राप्त पाण्डुलिपि में केवल ६९ पत्र हैं। अतः सम्पूर्ण वृत्ति के परिणाम का उल्लेख करना अशक्य है। महोपाध्याय विनयसागर ने इस वृत्ति का रचना-काल सं० १६९२ और रचना-स्थल खम्भात उल्लिखित किया है।^१

२.१२ सन्देहदोलावली-पर्याय

'सन्देहदोलावली' नाम से दो विद्वानों ने ग्रन्थ-रचना की है। इनमें एक ग्रन्थ है, जिनदत्तसूरि रचित और दूसरा ग्रन्थ है, प्रबोधचन्द्रगणि कृत। प्रस्तुत कृति जिनदत्तसूरि विरचित 'सन्देहदोलावली' की व्याख्या है।

प्रस्तुति वृत्ति के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ १५० गाथाओं में निबद्ध है। सम्यक्त्व-प्राप्ति, सुगुरु एवं जैनदर्शन की उन्नति के लिए यह कृति उत्कर्ष पथ का प्रदर्शन करती है एवं तात्कालिक गृहस्थों को, सद्गुरुओं तथा पार्श्वस्थों (शिथिलाचारियों) के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये इत्यादि बातों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट करती है। समयसुन्दर ने इस कृति का अपर नाम 'संशयप्रद प्रश्नोत्तर' भी बनाया है। उन्होंने लिखा है कि भटिण्डा की एक श्राविका के सम्यक्त्वमूलक कतिपय प्रश्न थे, जिसके प्रत्युत्तर में जिनदत्तसूरि ने इस रचना का प्रणयन किया था।

प्रस्तुत कृति का रचना-काल विक्रम संवत् १६९३ है।

२.१३ वृत्तरत्नाकर-वृत्ति

'वृत्तरत्नाकर' छन्दःशास्त्र का सर्वमान्य तथा सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। आशुकवि समयसुन्दर ने प्रस्तुत कृति में 'वृत्तरत्नाकर' में संकलित विभिन्न छन्दों के रूप और लक्षणों की सविस्तार व्याख्या की है। अतः स्पष्ट है कि कवि का छन्दःशास्त्रीय अध्ययन व्यापक एवं पूर्ण था। 'वृत्त-रत्नाकर' पर की गई विविध व्याख्याओं, टीकाओं में प्रस्तुत वृत्ति भी अपना गौरवपूर्ण स्थान रखती है, तथापि यह अभी तक प्रकाश में नहीं लाई जा सकी है। उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि समयसुन्दर के अतिरिक्त सोमचन्द्रसूरि, क्षेमहंसगणि,

१. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ५

मेरुसुन्दर आदि जैनविद्वानों ने भी 'वृत्तरत्नाकर' पर व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं।^१

प्रस्तुत वृत्ति छः अध्यायों में विभक्त है। वृत्ति का परिमाण ११०० श्लोक-प्रमाण है। ग्रन्थ की रचना जालोर में फसला लूणिया प्रदत्त स्थान में वि० सं० १६९४ की दीपावली को पूर्ण हुई थी। वृत्तिकार ने स्वयं सूचित किया है —

संवति विधिमुखनिधि-रस-शशि-संङ्ख्ये दीप पर्व दिवसे च।

जालोर - नामनगरे लूणेया फसलार्पितस्थाने ॥

वृत्ति की ३ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जैनभवन, कोलकाता में सुरक्षित रूप से उपलब्ध हैं।

२.१४ सप्तस्मरणस्तव-वृत्ति

प्राचीन जैनाचार्यों ने तीर्थङ्कर आदि महापुरुषों की स्तुति के रूप में अनेक स्तोत्रों की रचना की है। 'सप्तस्मरणस्तव' उन्हीं में से एक है। यह सात प्रभाविक स्तोत्रों का संकलन है।

प्रस्तुति कृति 'सप्तस्मरणस्तव' पर समयसुन्दर की विस्तृत व्याख्या है। ये स्तोत्र प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। वृत्तिकार ने स्वयं भी वृत्ति के आरम्भ एवं अन्त में यह उल्लेख किया है कि यह वृत्ति मैंने ग्रन्थ के सुगमबोधार्थ लिखी है। उन्होंने अपनी वृत्ति में सप्त स्तोत्रों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके अर्थ, व्याकरणगत नियम, समास, आगम-प्रमाण तथा जिन पद्यों के साथ यदि कोई कथा आदि जुड़ी हो, तो उसका भी वर्णन और विवेचन किया है।

कवि समयसुन्दर ने प्रस्तुत वृत्ति श्री जिनप्रभसूरि कृत टीका के आधार पर लिखी है। वृत्ति की प्रशस्ति में यह भी निर्दिष्ट है कि इस वृत्ति का संशोधन मेरी (समयसुन्दर) वृद्धावस्था होने के कारण मेरे शिष्य हर्षनन्दन ने किया है। यह कृति वि० सं० १६९५ में फसला दत्त लूणिया के आग्रह से जालोर में रची गई है, जैसा कि वृत्त्यान्त में लिखा है —

लूणिया-फसला-दत्त-वसत्यां वृत्तिरुत्तमा।

श्रीजालोरपुरे बाण-निधि-शृंगार-संवति ॥

पं० गिरधर लिखित इसकी पाण्डुलिपि में 'सप्तस्मरण-वृत्ति' का परिमाण दो हजार श्लोक-प्रमाण निर्दिष्ट है। यह ग्रन्थ श्री जिनदत्तसूरि-ज्ञान-भण्डार, सूरत द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

१. वृत्तिकार ने मंगलाचरण के साथ 'सप्तस्मरण-वृत्ति' प्रारम्भ की है। उन्होंने 'श्री अजितशान्तिनाथस्तव' नामक प्रथम स्मरण में भगवान् अजितनाथ और शान्तिनाथ के गुणों की व्याख्या की है। तीर्थङ्करों की स्तुति ३४ पद्यों में है। तत्पश्चात् ३ पद्यों में स्तुति का उपसंहार है, जिसमें स्तुतिकर्ता का नाम महर्षि नन्दिषेण बताया गया है। स्मरण के

१. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ ३६४

उपसंहार के पश्चात् की अन्त्य दो गाथाएँ सम्भवतः नन्दिषेण मुनि की रचित न होकर स्तव की महिमा प्रदर्शित करने वाली अन्यकृत गाथाएँ हैं, क्योंकि कवि के पूर्व गोविन्दाचार्य ने इस स्तोत्र की वृत्ति में उन दो गाथाओं की वृत्ति नहीं लिखी है। वर्तमान में इस स्तव की प्रकाशित पुस्तकों में और भी एक अतिरिक्त गाथा प्राप्त होती है,^१ लेकिन प्रस्तुति वृत्ति में वह गाथा अनुपलब्ध है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान में वह प्रचलित गाथा भी अन्यकृत है और अर्वाचीन भी। यति सूर्यमल्ल ने दो और गाथाओं का उल्लेख किया है,^२ परन्तु ये सब गाथाएँ अन्यकृत तथा अर्वाचीन सिद्ध होती हैं।

२. द्वितीय स्मरण 'श्री लघुअजित-शान्तिस्मरण-स्तव' के कर्ता जिनवल्लभसूरि हैं। इस स्तव में भी दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथ की एवं सोलहवें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की सद्भावसिक्त स्तुति की गई है। स्तोत्र की आलंकारिक छटा भी रमणीय है। इस स्तव की वृत्ति करते हुए वृत्तिकार ने यह लिखा है कि प्रस्तुत स्तोत्र की रचना विशेषतः संघ के श्रेय एवं पाक्षिकादि पर्वों में बोलने के लिए हुई है। खरतरगच्छ में आज भी त्रयोदशी के दिन संध्याकालीन प्रतिक्रमण के अन्तर्गत संघ-श्रेयार्थ इसका वाचन होता है।

३. 'णमिरुण' नामक तृतीय स्मरण की वृत्ति लिखते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि मानतुंगाचार्य ने महाभय का नाश करने के लिए प्रस्तुत स्तोत्र की रचना की है। उन्होंने तेइसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ को भयनिवारक माना है। महाभय सोलह अथवा आठ माने जाते हैं। प्रस्तुत स्तव में अष्टभय-निवारण-लक्षण रूप अर्हम् पार्श्वनाथ के अतिशयों का वर्णन किया गया है। कर्ता ने प्रथम अष्ट भयनिवारक अतिशयों का निर्देश करके 'रोगजलजलण' आदि गाथाओं द्वारा अपना उद्देश्य बताया है। यह स्तव २१ पद्यों में निबद्ध है। वर्तमान में प्रकाशित कतिपय पुस्तकों में ३ अन्य पद्य भी उपलब्ध होते हैं, किन्तु वे अर्वाचीन तथा अन्यकृत लगते हैं।

४. 'तंजयउ' नामक चतुर्थ स्मरण २६ गाथाओं में निबद्ध है। इसके रचयिता जिनदत्तसूरि हैं। प्रस्तुत स्तोत्र की वृत्ति के आदि में वृत्तिकार लिखते हैं कि जिनदत्तसूरि ने रोग तथा व्यन्तर-सम्बन्धी कोप से संघ-हितार्थ इस स्तोत्र की रचना की। इसमें तीर्थ, तीर्थङ्कर सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, गुरु, चतुर्विंश यक्ष-यक्षिणी, षोडश विद्यादेवी, गृह-गोत्र-जल-क्षेत्र-स्थल-वन-पर्वतवासी देव-देवी, दस दिक्पाल, नवग्रह, भुवनपतिदेव, तीर्थङ्कर महावीर, तीर्थङ्करों के गणधर, सुधर्मा स्वामी एवं जिनशासनसेवी देवों की महिमादि बताते हुए उनकी क्रमशः स्तुति की गई है। वृत्तिकार ने आवश्यक टिप्पणी सहित इन सबका विस्तृत विश्लेषण किया है।

१. द्रष्टव्य — पंच प्रतिक्रमण सूत्र तथा नवस्मरण, पृष्ठ ३६७

२. द्रष्टव्य — जैन-रत्नसार, पृष्ठ ६६१

५. 'मयरहिअ' नामक पंचम स्मरण की वृत्ति करते हुए समयसुन्दर लिखते हैं कि प्रस्तुत स्तोत्र के कर्ता जिनदत्तसूरि हैं। स्तोत्रकर्ता ने विचरण करते हुए जब जनता को रोगादि से पीड़ित देखा, तो वे करुणा से प्रपन्न हो उठे। उसके रोग के विनाशार्थ एवं परोपकारार्थ उन्होंने प्रस्तुत स्तोत्र गुम्फित किया, जो महाप्रभावक सिद्ध हुआ। वृत्तिकार ने जिनदत्तसूरि के अतिशयों का भी प्रसंगवश वर्णन किया है।

स्तोत्र में २१ गाथाएँ हैं। इस स्तोत्र में, जिनके नाम स्मरण से रोगादि दूर होते हैं, उनकी भावभीनी स्तुति की गई है। सुधर्मस्वामी, उद्योतनसूरि, वर्द्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि आदि को इस स्तोत्र में स्तुत्य आदर्श पुरुष माना गया है और उन्हीं की स्तुति की गई है।

६. 'सिग्घमवहरउ विग्घ' नामक षष्ठ स्मरण की वृत्तिकार ने संक्षिप्त व्याख्या की है। यह स्तोत्र १४ पद्यों में निबद्ध है। इसमें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ, गणधर, शक्रादिदेव, गोमुख आदि प्रमुख यक्ष, जिनशासनदेव, ब्रह्मशांति यक्ष, क्षेत्रादिदेव, चक्रेश्वरी देवी, तीर्थपति महावीर, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि आदि की क्रमशः स्तुति की गई है।

७. 'उवसगहर' संज्ञक सप्तम स्मरण का वृत्तिकार ने सविस्तार विवेचन किया है। इसके रचनाकार हैं — आचार्य भद्रबाहु। स्तोत्रोत्पत्ति के सम्बन्ध में समयसुन्दर ने निम्नांकित कथा सूचित की है —

एक बार आर्यसम्भूतविजयसूरि के पास वराहमिहिर और भद्रबाहु नामक दो सहोदर दीक्षित हुए। दोनों ही गीतार्थ बने। 'अनशन' ग्रहण करते समय आर्यसम्भूतविजयसूरि ने अपने गच्छ का भार एवं उत्तरदायित्व भद्रबाहु को सौंपा। इस प्रसंग से वराहमिहिर के मन में द्वेषभाव उत्पन्न हो गया कि गुरु ने गच्छभार मुझे क्यों नहीं दिया? अज्ञानतप करते हुए मरकर वह व्यन्तर देव हुआ। द्वेषवश उसने जैनसंघ में महामारी इत्यादि उपद्रव करने शुरू कर दिये। अतएव भद्रबाहु स्वामी ने प्रस्तुत स्तोत्र की रचना कर इस उपद्रव को शान्त किया।

समयसुन्दर स्तोत्र का माहात्म्य बताते हैं — 'इदं स्तोत्रं च महाप्रभावम्। इदंस्तोत्रं योऽष्टोत्तर शतवारान् जपति तस्य विघ्ना दूरं नश्यन्ति, सर्वसिद्धयश्च संपद्यते।'

इस स्तोत्र में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के आदर्श गुणों की स्तुति ललित पद्धति से व्यंजित है। यद्यपि यह स्तोत्र मुख्यरूपेण अर्हत् की उपासना के लिए ही रचा गया, लेकिन वृत्तिकार ने स्तोत्र की पाँच गाथाओं के आद्याक्षरों को पंचपरमेष्ठी (अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के रूप में भी सिद्ध किया है। इस प्रकार इस स्तोत्र में बीज-मन्त्र भी समाविष्ट है। आज भी यह स्तोत्र अत्यधिक प्रसिद्ध है।

२.१५ कल्याणमन्दिर-वृत्ति

'कल्याणमन्दिर' स्तोत्र के कर्ता हैं — कुमुदचन्द्राचार्य, जो सिद्धसेनदिवाकर

सूरि के नाम से प्रसिद्ध हैं। स्तोत्रकर्ता ने प्रस्तुत स्तोत्र की रचना शिवलिंग में निहित तीर्थङ्कर पार्श्व की प्रतिमा प्रकट करने के लिए की थी। आज भी यह स्तोत्र महाप्रभाविक तथा चामत्कारिक माना जाता है। स्तोत्र ४४ पद्यों में निबद्ध है।

कविवर की प्रस्तुत कृति उक्त स्तोत्र की व्याख्या है। व्याख्या सरल भाषा में की गई है। स्तोत्र में प्रयुक्त कठिन शब्दों में शीघ्रबोध हेतु वृत्तिकार ने आवश्यक निर्देश दिये हैं। उनके वैयाकरण नियम, शब्दों की व्युत्पत्ति इत्यादि भी वृत्ति में निर्दिष्ट है। इस स्तोत्र में भगवान् पार्श्वनाथ की विविध रूप से स्तुति करते हुए उनका माहात्म्य एवं उनके प्रतिहार्यों का भी वर्णन किया है। स्तोत्र भाव तथा भाषा — दोनों ही दृष्टियों से अनुपम है।

‘कल्याणमन्दिर-वृत्ति’ का रचना-काल वि० सं० १६९५, फाल्गुन शुक्ला १५ है और रचना-स्थान प्रह्लादनपुर है —

श्री मद्विक्रमतः वरेषु नवषट्जैवातृके वत्सरे ।

मासे फाल्गुनिके प्रपूर्ण शशिनिप्रह्लादने सत्पुरे ॥

वृत्ति की हस्तलिखित पाण्डुलिपि जैन भवन, कोलकाता एवं वाराणसी के जैन श्वेताम्बर पंचायती बड़ा मन्दिर के ज्ञान-भण्डार में सुरक्षित है।

२.१६ दंडक-प्रकरण-वृत्ति

जैन धर्म में आगमिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रायः सबसे पहले ‘चारप्रकरण’ पढ़े जाते हैं। ‘दंडक-प्रकरण’ तीसरा प्रकरण है। इसके लेखक गजसार मुनि हैं। यह प्रकरण ४२ प्राकृत पद्यों में निबद्ध है। इसमें नारक, असुरा, भुवनपति आदि के शरीर, अवगाहन, संघयण आदि का वर्णन है। किसी वर्ग विशेष को दंडक कहते हैं और जिसके द्वारा उस वर्ग या दंडक के जीवों की आयु, स्थिति, शरीरपरिमाण, गति आदि के संबंध में विचार किया जाता है, वे द्वार कहलाते हैं।

समयसुन्दर ने इस ‘दंडक प्रकरण’ पर सरल अर्थबोध हेतु प्रस्तुत वृत्ति लिखी है। वृत्ति में वृत्तिकार ने सभी गाथाओं की अपेक्षित संक्षिप्त व्याख्या भी की है। व्याकरण-संबंधी आवश्यक निर्देश भी दिए हैं।

प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि दंडक प्रकरण पर समयसुन्दर से पूर्व अन्य किसी ने वृत्ति नहीं लिखी है। उनके परवर्तीकाल में रूपचन्द्र एवं अन्य किसी अज्ञात विद्वान् ने वृत्ति लिखी है।^१

प्रस्तुत वृत्ति अहमदाबाद के हाजा पटेल पोल की एक शाला में लिखी गई। इसका रचना-काल है — वि०सं० १६९६। वृत्ति के अन्त में लिखा है —

संवति रसनिधिगुहमुखसोममिते नभसि कृष्ण पक्षे च ।

अहमदाबादे हाजा पटेल पोलीस्थ शालायाम् ॥

१. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ १६६

इस वृत्ति की हस्तलिखित प्रति स्व० पूरणचन्द नाहर-संग्रहालय, कोलकाता में एवं हमारे संग्रह में भी इसकी प्रतिलिपि उपलब्ध है। यह वृत्ति अप्रकाशित है।

२.१७ वाग्भटालंकार-टीका

‘वाग्भटालंकार’ नामक तीन कृतियाँ उपलब्ध होती हैं — एक वाग्भट की, दूसरी रत्नशेखर की और तीसरी धर्मदास की। प्रस्तुत टीका वाग्भट कृत वाग्भटालंकार की है।

मूल ग्रन्थ में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के प्रयोजन, काव्य के कारण और कुछ बन्धों का विवरण दिया गया है। द्वितीय परिच्छेद में काव्य के शरीर, भाषा का स्वरूप और काव्य-दोषों का सोदाहरण निरूपण उपलब्ध होता है। तृतीय परिच्छेद में काव्य के माधुर्य आदि गुणों का और चतुर्थ परिच्छेद में शब्दालंकार और अर्थालंकार का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। पंचम परिच्छेद में रस और नायक-नायिका का निरूपण किया गया है।

काव्यशास्त्रीय मान्यताओं के बारे में आचार्यों में चिरकाल से मतभेद रहा है। वाग्भट के ग्रन्थ में निरूपित उन सभी विषयों का पूर्ण बोध बिना किसी विस्तृत टीका के होना सम्भव नहीं था। इसलिए महोपाध्याय समयसुन्दर ने इस ग्रन्थ पर प्रांजल टीका लिखी है, जिसमें युक्तिपूर्वक मतान्तरों की समीक्षा करते हुए वाग्भट के पक्ष का समर्थन किया गया है। काव्यशास्त्र के अध्येताओं के लिए यह टीका अत्यन्त उपादेय है।

प्रस्तुत टीका का निर्माण संवत् १६९२ में अहमदाबाद नगर में हरिराम मुनि के लिए किया गया था। यह तथ्य ग्रन्थान्त में उल्लिखित पद्य से प्रमाणित होता है —

अहमदाबादे नगरे, करनिधिश्रृंगारसंख्याब्दे ।

किन्त्वर्थलापनं चक्रे, हरिराममुनेः कृते ॥

प्रस्तुत कृति की अपूर्ण प्रति बड़ा ज्ञान भण्डार, बीकानेर में एवं एक पूर्णप्रति एसियाटिक सोसायटी, मुम्बई में उपलब्ध है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं है।

२.१८ कुमारसम्भव-वृत्ति

प्रस्तुत कृति महाकवि कालिदास रचित ‘कुमारसम्भव’ की सुबोध टीका है। इस काव्य में तारकासुर द्वारा त्रस्त देवताओं की प्रार्थना से पार्वती के साथ शिव के विवाह और कुमार की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। ‘कुमारसम्भव’ सतरह सर्गों में विभक्त है, किन्तु आलोचकों के अनुसार कालिदास ने यह रचना सप्तम वर्ग तक ही लिखी है। समयसुन्दर ने भी केवल सात सर्गों तक ही ‘कुमारसम्भव’ की व्याख्या की है।

प्रस्तुत वृत्ति में मुख्यतः शब्दार्थों का ही समास-विग्रह पूर्वक विश्लेषण किया गया है, किन्तु कहीं-कहीं कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है, जो अन्य वृत्ति-टीकाओं में नहीं है। यथा — प्रथम सर्ग के प्रथम पद्य में ‘हिमालय’ शब्द का प्रसिद्ध अर्थ बताकर

'हि' शब्द को अलग करके 'मालय' शब्द का नवीन अर्थ — 'मा' अर्थात् लक्ष्मी का आलय (लक्ष्मी का निवास-स्थान) दिया गया है। इसी तरह कहीं-कहीं अन्य प्रसंगों में भी व्याख्यागत उत्कर्ष देखा जा सकता है। यह वृत्ति कवि ने अपने शिष्यों के पठनार्थ बनाई थी, इसलिए यह अन्य वृत्तियों की अपेक्षा संक्षिप्त है।

महोपाध्याय समयसुन्दर के अतिरिक्त 'कुमारसम्भव' पर जिन मुनियों ने वृत्ति लिखी है, वे ये हैं — चारित्रवर्धनगणि, श्रीविजयगणि, जिनसमुद्रसूरि, मतिरत्न, धर्मकीर्त्ति, कल्याणसागर, लक्ष्मीवल्लभ, जिनचन्द्रसूरि, जिनभद्रसूरि, कुमारसेन आदि।^१

प्रस्तुत वृत्ति की हस्तलिखित प्रति श्री जिनहरिविहार, पालीताना से उपलब्ध हुई है। प्रति पूर्ण सुरक्षित है, केवल अन्तिम पत्र आवरण-पत्र से संश्लिष्ट हो जाने के कारण सुवाच्य नहीं है। फिर भी जितना पढ़ा जा सका, उसके आधार पर वृत्ति के रचना-काल एवं रचना-स्थल आदि का संकेत मिलता है।

कवि समयसुन्दर ने वि० सं० १६७९ का चातुर्मास श्रीसंघ के आग्रह से प्रह्लादनपुर में किया था। उसी चातुर्मास के पश्चात् मार्गशीर्ष मास में यह वृत्ति लिखी गई थी। उन्होंने इसका प्रणयन कर पण्डित सहजविमल और पण्डित माईदास नामक अपने दो शिष्यों के द्वारा अपने अन्य शिष्यों के अध्ययनार्थ लिखवायी। प्राप्त प्रति कवि के ही एक अन्य शिष्य पं० हर्षकुशलमुनि द्वारा सं० १६९४, फाल्गुन वदी ३ को जालोर नगर में लिपिबद्ध की गई थी। यह वृत्ति अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसके प्रकाश में आने से 'कुमारसम्भव' के पद्यों में नवीन अर्थों की विलक्षणता आयेगी।

२.१९ सारस्वत-वृत्ति

प्रस्तुत ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य एवं अज्ञात रहा है। इस ग्रन्थ के बारे में हमें कहीं से कोई विशेष सूत्र या संकेत प्राप्त नहीं हुए; किन्तु यह ग्रन्थ समयसुन्दर ने निबद्ध किया था, इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं सारस्वतीय शब्द-रूपावली में इस प्रकार किया है —

सारस्वतस्य रूपाणि, पूर्व वृत्तिरेलीलिखित्।

स्तम्भतीर्थे मघौ मासे, गणिः समयसुन्दरः॥

उक्त उद्धरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि समयसुन्दर ने सारस्वतव्याकरण पर प्रस्तुत वृत्ति लिखी थी। प्रस्तुत वृत्ति गवेषणीय है।

२.२० विमलस्तुतिवृत्ति

२.२१ मेघदूत प्रथम श्लोक (तीन अर्थ)

२.२२ माघकाव्य-वृत्ति

२.२३ लिंगानुशासन-चूर्णि

२.२४ अनिट्कारिका

१. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ ९३-९४

२.२५ मेघदूत-वृत्ति

उक्त ग्रन्थों की सूचना महोपाध्याय विनयसागर^१ एवं नाहटा-बन्धुओं^२ ने दी है, किन्तु इन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ अथक प्रयास के पश्चात् भी किसी ग्रन्थालय में प्राप्त नहीं हो सकीं। इन ग्रन्थों को प्राप्त करने के लिए प्रयास जारी रहेगा। यदि किसी ग्रन्थालय में ये ग्रन्थ उपलब्ध होंगे, तो हम उन पर अनुसन्धानपरक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करने की भावना रखते हैं।

३. संग्रह-ग्रन्थ

संग्रह-ग्रन्थ वे ग्रन्थ हैं, जिनमें प्राचीन आचार्यों की कृतियों से श्लोकों या पद्यों को लेकर उन्हें एक सुव्यवस्थित रूप में संकलित किया जाता है। महोपाध्याय समयसुन्दर ने न केवल पद्यों आदि के संग्रह-ग्रन्थ निबद्ध किये हैं, अपितु कथाओं के भी संग्रह-ग्रन्थ लिखे थे। अब तक की खोज से उनके निम्नलिखित संग्रह-ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं —

३.१ गाथा-सहस्री

३.२ कथाकोश

उक्त दोनों संग्रह-ग्रन्थों का परिचयात्मक अध्ययन निम्नानुसार है—

३.१ गाथा-सहस्री

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ में पूर्वाचार्यों द्वारा कथित सुभाषितों का सुन्दर संकलन हुआ है। पण्डितप्रवर समयसुन्दर से पूर्व भी सुभाषित-वचनों को संग्रहीत करने का कार्य होता आ रहा है। विद्वानों की दृष्टि में ११वीं शती में संग्रहीत 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' ही प्राचीनतम सुभाषित-संग्रह माना गया है। जैन परम्परा में भी पादलितसूरि का 'गाथा-सप्तशती', जय वल्लभ का 'वज्जालग', समयसुन्दर का 'गाथा-सहस्री' आदि संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

इन संग्रह ग्रन्थों में 'गाथा सहस्री' भी एक महत्त्वपूर्ण संकलन है, जो कवि समयसुन्दर के व्यापक ज्ञान का द्योतक है। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन करने के लिए कवि ने विविध ग्रन्थों का गहनावलोकन किया था। उनके अत्यधिक उद्यम से ही यह ग्रन्थ तैयार हो सका। कवि स्वयं निर्देश देते हैं —

गाथा कियत्यः प्रकृताः कियत्य श्लोकाश्च काव्यानि कियन्ति सन्ति।

नानाविध ग्रन्थ विलोकन श्रमा देकीकृता अत्र मया प्रयत्नात् ॥^३

इस संग्रह ग्रन्थ में जैन आगमों की सूक्तियों, सुभाषितों, अन्योक्तियों, गाथाओं आदि का सर्वाङ्गीण संग्रह किया गया है। प्रमुख जैनेतर धार्मिक ग्रन्थों की सूक्तियों का भी

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, महोपाध्याय समयसुन्दर, पृष्ठ ५०-५५

२. सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५४-५५

३. गाथा-सहस्री, प्रशस्ति (२)

इस 'गाथा-सहस्री' में संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थ पण्डितजनों के मुख की शोभा रूप ताम्बूल-सदृश है और व्याख्यानदाताओं के लिए तो अत्यन्त उपयोगी है। संग्रहकर्ता स्वयं ही इस प्रकार कहता है —

व्याख्याचातुर्यवाँछां यदि, भवति तदा शास्त्रमेतत्समग्रं ।
कण्ठे कृत्वा विशेषाऽवगम-परमार्थं गृहीत्वा गुरुक्तेः ।
व्याख्याकाले विचाले प्रवर-मवसरं प्राप्य वाच्यं प्रसक्तं,
सभ्येभ्यानां पुरस्ताच्चतुर-चमत्कारकारं च भावि ॥^१

अर्थात् यदि आप प्रखर वक्ता बनना चाहते हैं, तो सम्पूर्ण ग्रन्थ कण्ठाग्र कर, गुरु के मुख से ग्रन्थ का गूढ़ अर्थ समझकर, प्रतिदिन सभा समक्ष प्रवचन करते समय समयानुसार सुभाषित पद्य बोलने से सज्जनों के चित्त को आप अवश्य आश्चर्य करने वाले होंगे।

समयसुन्दर के गाथा सहस्री में कुल $८५५+६+२ = ८६३$ गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। गाथाएँ प्राकृत और संस्कृत भाषा की हैं। गाथा-सहस्री की रचना-समाप्ति का संवत् समयसुन्दर ने स्वयं ही दिया है —

ऋतु-वसु-रस-शशि वर्षे,
विनिर्मितो विजयता चिरं ग्रन्थः ॥^२

अर्थात् 'गाथा-सहस्री' ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६८६ में समाप्त हुई थी।

गाथा सहस्री की हस्तलिखित प्रति चार स्थानों में प्राप्त हुई है। वे ये हैं —
१. श्री मोहनलाल-ज्ञान-भण्डार, सूरत, २. श्री जिनदत्तसूरि-ज्ञान-भण्डार, सूरत, ३. श्री जिनदत्तसूरि-ज्ञान-भण्डार, मुम्बई, ४. श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि-ज्ञान-भण्डार, बीकानेर। आज यह ग्रन्थ जिनदत्तसूरि-ज्ञानभण्डार, सूरत और जव्हेरी मूलचन्द हीराचन्द भगत, मुम्बई की ओर से प्रकाशित रूप में भी उपलब्ध है।

३.२ कथाकोश

प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय पृष्ठ ११७ पर द्रष्टव्य है।

४. भाषा-वृत्तियाँ

'भाषा' आधुनिक हिन्दी का प्राचीन नाम है। महाकवि समयसुन्दर की भाषा-कृतियाँ विपुल हैं। अब तक किये गए शोध से कवि की भाषा में प्रणीत जो कृतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनका परिचयात्मक अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है —

- ४.१ रास-चौपाई-साहित्य
- ४.२ छत्तीसी-साहित्य
- ४.३ अन्य रचनाएँ

-
- १. वही, प्रशस्ति (३)
 - २. वही, प्रशस्ति (६)

४.१ रास-चौपाई-साहित्य

कविराज समयसुन्दर का रास-चौपाई-साहित्य अति समृद्ध है। यह साहित्य मुख्यतः कथा प्रधान है। किसी सीमा तक प्रस्तुत वर्ग का शीर्षक कथा-साहित्य भी हो सकता है, किन्तु कुछेक रास-चौपाइयाँ ऐसी भी हैं, जिनका सम्बन्ध कथाओं से नहीं है। इसीलिए हमने इस वर्ग का शीर्षक 'कथा-साहित्य' न रखकर 'रास-चौपाई साहित्य' ही रखा है, ताकि अधिक भेदोपभेद की अपेक्षा उन रचनाओं का भी इसमें समावेश हो सके, जिन्हें 'कथा-साहित्य' के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। जैसे — शत्रुंजय-रास आदि।

आलोच्य रास-चौपाई-साहित्य में समयसुन्दर ने ऐसे प्रख्यात एवं महत्त्वपूर्ण कथानकों को चुना है, जो आनन्ददायक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रदायक सूत्रों से भी वेष्टित हों। ये गृहीत कथानक इतिहास, आगम एवं प्रकरणों पर आश्रित तथा विकल्पनाजन्य — दोनों प्रकार के हैं।

समयसुन्दर ने पुरुषपात्र प्रधान कथा-साहित्य भी लिखा है और स्त्रीपात्र प्रधान भी। जैसे — पुण्यसागरचरित्र-चौपाई, वल्कलचीरी-रास, क्षुल्लकऋषि-रास, चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई आदि पुरुषपात्र प्रधान कथाएँ हैं; तो मृगावती-चरित्र-चौपाई, द्रौपदी-चौपाई स्त्रीपात्र प्रधान कथाएँ हैं। कतिपय रासों और चौपाइयों की कथाएँ ऐसी हैं, जिनमें पुरुष एवं स्त्री — दोनों पात्रों की प्रधानता है; यथा — नलदवदंती-रास, सीताराम-चौपाई। कुछ रचनाओं में एकाधिक पुरुष-पात्रों की प्रधानता है। उदाहरणार्थ — शांब-प्रद्युम्न-चौपाई, चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई, वस्तुपाल-तेजपाल-रास आदि। समयसुन्दर ने 'सिंहलसुत-प्रियमेलक-चौपाई' नामक तीर्थ माहात्म्यविषयक कथा भी गुम्फित की थी।

वर्ण्य रास-चौपाई-साहित्य के कथानकों के नायक महापुरुष, शूरवीर और विजयी हैं। कवि ने जीवन के व्यापक तथा गम्भीर अनुभवों का चित्रण करने के लिए नायक के अतिरिक्त प्रतिनायक एवं गौण पात्रों की अवतारणा, विविध घटनाओं की सृष्टि, अवान्तर कथाओं की योजना आदि अनेक तत्त्वों के सम्मिश्रण से संघटित कथानकों का निर्माण अथवा ग्रहण किया है। कर्मफल बताने के लिए कवि ने अपने नायकों के पूर्व भव की कथाओं एवं अवान्तर कथाओं की हर रास-चौपाई में योजना की है। विशेषता यह है कि कथानक की पूर्व और अपर घटनाएँ एक दूसरे से पूर्ण सम्बद्ध हैं और वे अन्वितपूर्ण, गतिशील एवं सुसंगठित हैं।

कवि समयसुन्दर ने रास-चौपाई-साहित्य में अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का भी समावेश किया है। उन्होंने अतिप्राकृत पात्रों और उनके अलौकिक कार्यों को देवता, राक्षस, यक्ष, व्यन्तर आदि द्वारा ही नहीं, बल्कि पुण्यवान् मनुष्य और मुनियों द्वारा भी दिखाया है।

समयसुन्दर ने अपने प्रायः समस्त रासोसाहित्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण,

वस्तु-निर्देश, आदर्श सज्जन पुरुषों की प्रशंसा की है और अन्त में रचना-काल, रचना-स्थल, गुरु, प्रगुरु, रचना-लेखन के प्रेरणा-स्त्रोत अथवा निवेदक एवं उद्देश्य आदि का वर्णन किया है। प्रत्येक रास में एकाधिक खण्ड है और हर खण्ड में कई उपखण्ड हैं, जिसे कवि ने 'ढाल' की संज्ञा दी है। सभी कथाएँ पद्यबद्ध हैं, जो एकाधिक खण्डान्तर्गत छन्दों, रागों तथा देशियों में निबद्ध हैं। समयसुन्दर का सम्पूर्ण रास-चौपाई-साहित्य इसी पद्धति से लिखित है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित निर्दिष्ट कृतियाँ हैं —

- | | |
|-----------------------------------|--------------------------------------|
| ४.१.१ शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई | ४.१.२ चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई |
| ४.१.३ मृगावती-चरित्र-चौपाई | ४.१.४ सिंहलसुत/प्रियमेलक तीर्थ-चौपाई |
| ४.१.५ पुण्यसारचरित्र-चौपाई | ४.१.६ नल-दवदन्ती-रास |
| ४.१.७ सीताराम-चौपाई | ४.१.८ वल्कलचीरी-चौपाई |
| ४.१.९ शत्रुंजय-रास | ४.१.१० वस्तुपाल-तेजपाल-रास |
| ४.१.११ थावच्चासुत ऋषि-चौपाई | ४.१.१२ क्षुल्लकऋषि-रास |
| ४.१.१३ चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई | ४.१.१४ गौतमपृच्छा-चौपाई |
| ४.१.१५ धनदत्त-चौपाई | ४.१.१६ पुंज (रत्न) ऋषि-रास |
| ४.१.१७ द्रौपदी-चौपाई ^१ | |

अब हम आगामी पृष्ठों में उपर्युक्त कृतियों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं —

४.१.१ शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई

शाम्ब-प्रद्युम्न के कथानक पर अनेक जैनाचार्यों ने अपनी लेखनी चलाई है। जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराण, गुणभद्र रचित उत्तरपुराण, स्वयम्भू रचित रिट्टणे-मिचरिउ, पुष्पदन्त रचित महापुराण, धवल रचित हरिवंशपुराण में उक्त कथानक का क्रमशः विकसित रूप दृष्टिगत होता है। इस कथानक पर स्वतंत्र रूप में लिखी हुई कृतियों में सर्वप्रथम ११वीं शती में लिखित महासेनाचार्य की 'प्रद्युम्न चरित्र' नामक कृति मिलती है, जो कि संस्कृत-भाषा में लिखी गई है। हिन्दी भाषा में इस कथानक पर साहित्य-सृजन का कार्य १५वीं शती के कवि सधारु के 'प्रद्युम्न चरित्र' से प्रारम्भ होता है। शाम्ब-प्रद्युम्न-चरित्र पर आज तक लगभग २५ कृतियाँ प्राप्त होती हैं।^२ उन्हीं में से एक कृति है, हमारे आलोच्य कवि समयसुन्दर कृत 'शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई'।

यह कवि समयसुन्दर द्वारा लिखित प्रथम बृहत् रचना है। कवि ने स्वयं रास के आदि में यह निर्देश किया है —

१. यह कृति-क्रम रचना-काल के अनुसार है।

२. द्रष्टव्य — प्रद्युम्न-चरित्र, पण्डित चैनसुखदास, डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल लिखित प्रस्तावना, पृष्ठ १३

सकति नहीं मुझ तेहवीं, बुद्धि नहीं सुप्रकाश।

वचन-विलास नहीं तिसउ, ए पिण प्रथम अभ्यास ॥^१

कवि ने 'अन्तकृद्शांग' ग्रन्थ में निबद्ध शाम्ब और प्रद्युम्न के कथानक के आधार पर अपने रास का प्रणयन किया है। कवि ने लिखा है-

आठमइ अंगइ ए कह्या, संक्षेपइ सम्बन्ध।

पणि हुं प्रकरण थी कहिसि, विस्तर पणइ प्रबन्ध ॥^२

× × ×

आठमइ अंगइ ए कह्या, संब-प्रद्युम्न अधिकार।

सोहम साभि उपदिसइ, जंबू नइ सुविचार ॥^३

यह कृति वि० सं० १६५९, विजयादशमी को खम्भात में श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ की कृपा से सम्पूर्ण हुई। निम्नांकित वाक्यों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है -

सुखकार संवत सोल ए गुणसठि, विजयादसमी दिनइ।

एकबीस ढालइ रसाल ए, ग्रन्थ रच्यउ सुन्दर शुभ मनइ ॥^४

समयसुन्दर ने इसकी रचना जैसलमेर के साहित्यप्रेमी शाह शिवराज के आग्रह से की थी। श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त एक प्रति में उक्त तथ्य का इस प्रकार उल्लेख है -

'इति जैसलमेरु वास्तव्य नानाविध शास्त्र-विवेक, रसिक लोढा सा० सिवराज अभ्यर्थनया कृतः शाम्ब-प्रद्युम्न-सम्बन्ध समाप्तः।'

प्रस्तुत रचना का निर्माण कवि का प्रथम प्रयास होते हुए भी काव्यत्व की दृष्टि से सुनियोजित एवं 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' से ओतप्रोत है। रचना का कथानक और कथानक को ढालने की कला - दोनों ही रोचक हैं।

स्व० पूरणचन्दनाहर संग्रहालय, कोलकाता से प्राप्त इस रचना की पाण्डुलिपि में दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में १३ ढाले हैं। प्रत्येक ढाल के प्रारम्भ में कुछ दोहे हैं। द्वितीय खण्ड में ८ ढालें हैं। इसमें भी सभी ढालों के प्रारम्भ में कुछ दोहे दिये गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कृति २१ ढालों में निबद्ध है, जिसमें कुल ६३५ पद्य हैं। ग्रन्थ-परिमाण ८०० श्लोक है।

कवि समयसुन्दर ने सर्वप्रथम तीर्थङ्कर नेमिनाथ, स्तम्भन पार्श्वनाथ, महावीर, गणधर गौतम और सद्गुरु का स्मरण और उन्हें वन्दन किया है। तत्पश्चात् कथा का

१. शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई, (खण्ड १, ढाल १ से पूर्व, दूहा ५)

२. वही (दूहा ८)

३. वही (२.८.३३)

४. शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१.१.३३)

गुम्फन किया है। कथासार अधोअङ्कित है —

द्वारामती (द्वारिका) नगरी में वासुदेव कृष्ण शासन करते थे। वे सोलह हजार राजाओं के स्वामी थे। कृष्ण की अनेक पत्नियों में सत्यभामा पटरानी थी, तो रुक्मिणी सर्वाधिक प्रिय।

एक बार एक साधु रुक्मिणी के यहाँ आया। रुक्मिणी ने उससे सभक्ति पूछा — 'मेरे पुत्र होगा या नहीं?' साधु ने कहा — 'तुम्हें पुत्र की प्राप्ति निश्चित होगी।' साधु के ये वचन सत्यभामा ने सुन लिये। रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों यह कहती हुई परस्पर कलह करने लगीं कि साधु ने पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद तुम्हें नहीं, अपितु मुझे दिया है। अन्त में कृष्ण, वलभद्र आदि के साक्ष्य में दोनों ने यह निर्णय किया —

अम्ह बिऊँ मांहि जे जूठी पडइ । तेइ तणइ सिरए दंड चडइ ॥

पडिलउ परणइ सुत जेहनइ । ए कुमरि वरिसइ तेहनइ ॥

मस्तक मुंडी तेहना बेस, पडलइ चडस्यइ किस्सुं कलेस ॥^१

अर्थात् — हम दोनों (रुक्मिणी और सत्यभामा) में जो असत्य सिद्ध होगी, उसी के ऊपर यह दण्ड चढ़ेगा कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा, उसकी जीत होगी और दूसरी विवाहोत्सव में अपने केश उतार देगी, जो वधू के 'पड़ले' में चढ़ाये जायेंगे।

कुछ समय पश्चात् रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों की कुक्षि से एक-एक पुत्र का जन्म हुआ। एक दिन रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न को कृष्ण अपनी क्रोड़ में क्रीड़ा करा रहे थे कि धूमकेतु देव प्रद्युम्न से पूर्वभव का वैर होने के कारण रुक्मिणी का रूप बनाकर कृष्ण के पास आया और उनसे बालक मांगा। कृष्ण ने सहजभाव से उसे बालक दे दिया। वह बालक को लेकर जंगल में गया और आकाश से ही बालक को नीचे गिरा दिया, किन्तु बालक पुष्प-पत्रों पर गिरने से बच गया। उस मार्ग से गुजरते हुए कालसंवर नामक विद्याधर ने उस बालक को ग्रहण कर लिया और निस्सन्तान दुःखियारी अपनी पत्नी कनकमाला को उसे सौंप दिया। कनकमाला उसका स्नेहपूर्वक पालन-पोषण करने लगी।

उधर जब प्रद्युम्न के अपहरण का रहस्य प्रकट हुआ, तो रुक्मिणी आदि सभी को बड़ा दुःख हुआ। यादव-सभा में सहसा नारद महर्षि पधार गये। उन्होंने ऋषि से प्रद्युम्न की खोज करने का निवेदन किया।

नारद महाविदेह क्षेत्र में सीमन्धर स्वामी के पास गये और उन्होंने प्रद्युम्न के सम्बन्ध में सारी पूछताछ की। प्रभु ने सम्पूर्ण बात बताकर कहा कि प्रद्युम्न सोलह वर्ष पश्चात् स्वयं अपने माता-पिता से मिलेगा। सीमन्धर स्वामी ने उन्हें प्रद्युम्न के दस पूर्वभवों को भी सविस्तार बताया।

१. शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (२.८ ३८)

नारद मुनि ने द्वारिका के नागरिकों को जब यह सम्पूर्ण बात बतलाई, तो सभी चकित और प्रसन्न हुए।

उधर प्रद्युम्न सर्वविद्याओं में प्रवीण हो गया। उसके यौवन का विकास देखकर कनकमाला का चित्त विचलित हो उठा। उसने प्रद्युम्न से कहा कि मैं तेरी माता नहीं हूँ। यदि तुम मुझे ग्रहण करो, तो मैं तुम्हें प्रज्ञप्ति-विद्या सिखा सकती हूँ। प्रद्युम्न ने उससे विद्या सीखकर कहा कि तुमने मेरा लालन-पालन किया, इसलिए तुम मेरी मां हो और विद्याभ्यास करवाया, इसलिए गुरु भी हो। अतः तुम्हारे मुँह से यह बात अशोभनीय है। कनकमाला ने जब यह छल हुआ जाना, तो वह कुपित हो गई और उसने अपने केश बिखेर लिए, वस्त्र फाड़ लिए एवं प्रद्युम्न पर आक्षेप करती हुई विलाप करने लगी। कालसंवर ने जब यह दृष्टिपाल किया, तो वह प्रद्युम्न को मारने के लिए उद्यत हुआ। दोनों में युद्ध छिड़ गया, लेकिन प्रद्युम्न के आगे कालसंवर ठहर न सका। जब कालसंवर को उसकी 'प्रज्ञप्ति-विद्या' का पता लगा, तो वह अपनी पत्नी से अपनी विद्या मांगने गया। यथार्थ स्थिति ज्ञात होते ही कालसंवर ने युद्ध बन्द कर दिया। उसी समय नारद मुनि आ पहुँचे। उन्होंने प्रद्युम्न से कहा कि श्री कृष्ण की रानी रुक्मिणी तुम्हारी माता है। उसका सत्यभामा के साथ यह तय हुआ था कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा, दूसरी केश उतार देगी, जो वधू के 'पड़ले' में चढ़ाये जायेंगे। सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार का विवाह निश्चित हो गया है। अतएव तुम द्वारिका जाओ और अपनी माता की रक्षा करो।

प्रद्युम्न ने कालसंवर से आज्ञा लेकर नारद के साथ द्वारिका नगरी हेतु आकाशमार्ग से विमान द्वारा प्रस्थान किया। द्वारिका में उसने सैन्यरक्षित भानु की भावी पत्नी उदधिकुमारी का हरण कर अपने विमान में बैठा दिया। तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने अपनी विद्याओं का प्रयोग करना शुरू किया। उसने एक बन्दर उत्पन्न किया, जिसने सत्यभामा के उद्यान को नष्ट कर डाला। उसके बाद प्रद्युम्न ने एक अश्व का आविर्भाव किया, जिसने खेतों को तृणरहित एवं कूपों को भी जलशून्य कर दिया। फिर प्रद्युम्न ब्राह्मण-वेष धारण कर पंचांग लिए सत्यभामा के महल पर आया। उसने एक कुब्जा दासी को रूपवती बना दिया। सिद्धपुरुष जानकर सत्यभामा ने उसे आदरपूर्वक महल में बुलाया और भोजन कराना शुरू किया। यह प्रद्युम्न से बोली- 'हे प्रिय! रानी रुक्मिणी अत्यधिक लावण्यवती है, अतः मेरे पति उसे ही चाहते हैं। यदि आप मुझे उससे अधिक लावण्यवती बना दें, तो आपका बहुत उपकार होगा।' प्रद्युम्न ने उसे इसका उपाय बतलाते हुए कहा कि यदि 'तुम सिर-मुण्डन करवाकर और केवल जीर्ण-वस्त्र पहनकर 'रुण्डबुण्ड स्वाहा, रुण्डबुण्ड स्वाहा' - इस मन्त्र की एक माला जपोगी, तो तुम्हें मनोवांछित फल प्राप्त होगा।' सत्यभामा ने उसे पेटभर भोजन कराया। जब प्रद्युम्न वैवाहिक भोजन की सम्पूर्ण सामग्री चट कर गया, तो एक दासी ने उसे राक्षस समझकर भगा दिया।

तदुपरान्त प्रद्युम्न एक छोटे साधु का रूप बनाकर रुक्मिणी के महल में गया। रुक्मिणी पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी, क्योंकि केवली-कथित वचनानुसार पुत्र के आगमन के सारे लक्षण दृष्टिगत हो रहे थे। उसने साधु को आते देख उनका स्वागत किया। साधु सीधे कृष्ण के सिंहासन पर आसीन हो गया। उसने साधु से आने का कारण पूछा। वह बोला —

सोल वरस नुं पारणुं रे, नहिं पीधु माता नुं दूध रे।

अधिक तप्यउ तप आकरु रे, काया कीधू सुध रे॥

रुक्मिणी ने उसे ढेर-सारे लड्डू खिलाये। उधर सत्यभामा ने प्रद्युम्न के कथनानुसार कार्य किया। इस प्रकार सत्यभामा के केश रुक्मिणी से पहले उतर गए। सत्यभामा ने दासियों को रुक्मिणी से केश मंगवाने के लिए भेजा, पर प्रद्युम्न ने उन्हें भगा दिया।

तभी नारद मुनि वहाँ पधार गये। उन्होंने रुक्मिणी से प्रद्युम्न का परिचय कराया। माँ पुत्र की पुनः प्राप्ति पर अत्यन्त हर्षित हुई। दोनों के आनन्द का पार नहीं था। प्रद्युम्न ने माता को रथ में बिठाकर समस्त यादवों को ललकारा कि यदि किसी वीर में सामर्थ्य हो, तो वह रानी रुक्मिणी को मुझसे छुड़ाकर ले जाए। श्रीकृष्ण अपने योद्धाओं के साथ संग्राम-स्थल पर आ पहुँचे। प्रद्युम्न ने विद्या-बल से सारी सेना को निद्रा की गोद में सुला दिया। कृष्ण के शस्त्र भी निरर्थक हो गये। आकस्मिक, कृष्ण की दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उधर से नारदमुनि भी आ गये। उनके द्वारा उनके पिता-पुत्र के संबंध का भेद खुलते ही संग्राम-स्थल, उत्सव-स्थल बन गया। सभी लोगों के आग्रह पर भी प्रद्युम्न ने दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी से यह कहते हुए विवाह नहीं किया कि वह मेरी भाभी है। प्रद्युम्न का पचास विद्याधर-कन्याओं से पाणिग्रहण हुआ और वह सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगा। यहाँ प्रथम खण्ड समाप्त हो जाता है।

द्वितीय खण्ड के आरम्भ में कवि ने 'काश्मीरी मुख-मण्डणी' नामक देवी को नमस्कार किया। (यह देवी जैन थी अथवा जैनेतर, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हाँ! यह कवि की इष्ट देवी थी, इतना स्पष्ट है।) इस प्रकार मध्य मंगल करते हुए कवि ने लिखा है कि सत्यभामा ने प्रद्युम्नवत्-पुत्र-प्राप्ति की अपनी तीव्र अभिलाषा को श्रीकृष्ण के सम्मुख व्यक्त की। श्रीकृष्ण ने हरिणगमेषी देव की आराधना की। देव ने प्रकट होकर कृष्ण को एक हार प्रदान किया और बोला कि आप जिसके गले में यह हार पहनायेंगे, उसी के पुत्र-रत्न उत्पन्न होगा।

प्रद्युम्न ने अपनी विद्या से यह बात अवगत कर ली। उसने रानी जाम्बवती को सत्यभामा का रूप दे दिया तथा समझा-बुझाकर कृष्ण के पास प्रेषित किया। कृष्ण ने उसे सत्यभामा समझकर वह हार सस्नेह उसके गले में सुशोभित कर दिया। कुछ देर पश्चात् सत्यभामा भी आई। कृष्ण ने अपने साथ छल हुआ जानकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा

कि तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। सुबह जब कृष्ण ने वह हार जाम्बवती के गले में देखा, तो उन्होंने इसे प्रद्युम्न की ही करतूत समझी।

जाम्बवती से उत्पन्न हुए पुत्र का 'शाम्ब' नामकरण किया गया। वह शैशवकाल में ही समस्त कलाओं में पारंगत हो गया। उसका भी पचास कन्याओं से विवाह हुआ। शाम्ब और प्रद्युम्न में घनिष्ठ मैत्री हो गयी।

एक दिन रुक्मिणी ने भोजकटक के राजा रुक्मी को उसकी पुत्री वैदर्भी से अपने पुत्र प्रद्युम्न का विवाह करने का सन्देश कहलवाया। रुक्मिणी रुक्मी के इस प्रत्युत्तर से खिन्न हो उठी कि वह चांडाल-पुत्र को अपनी पुत्री नहीं देगा। रुक्मिणी के दुःख को दूर करने के लिए प्रद्युम्न और शाम्ब दोनों भोजकटक गये। उन्होंने चाण्डाल का रूप बनाया और वहाँ मधुर गीत गाने लगे। उन्होंने वहाँ एक मदोन्मत्त हाथी को भी वश में कर लिया। अन्ततः उसी वेश में प्रद्युम्न ने वैदर्भी से पाणिग्रहण किया। प्रद्युम्न का वास्तविक परिचय मिलने पर रुक्मी आदि सभी प्रसन्न हुए। प्रद्युम्न और शाम्ब द्वारिका लौट आए।

शाम्ब और सत्यभामा का पुत्र भानुकुमार — दोनों जब भी खेलते थे, शाम्ब को ही विजयश्री प्राप्त होती। भानु श्रीकृष्ण से शिकायत करता और श्रीकृष्ण जाम्बवती से। जाम्बवती कहती — मेरा पुत्र बड़ा सीधा और सयाना है। एक दिन कृष्ण शाम्ब की शरारत दिखाने के लिए जाम्बवती को साथ ले गये। दोनों अहीर-अहीरनी का रूप बनाकर शाम्ब के क्रीड़ा-स्थल पर पहुँचे। शाम्ब ने अहीरनी को छेड़ा और उसका हाथ पकड़ लिया। जाम्बवती एवं कृष्ण ने जैसे ही अपना यथार्थ रूप प्रकट किया, शाम्ब वहाँ से नौ-दौ ग्यारह हो गया।

दूसरे दिन, शाम्ब एक लकड़ी की कील गढ़ता हुआ राज्य-सभा में पहुँचा। श्रीकृष्ण के द्वारा कील गढ़ने का कारण पूछने पर उसने कहा कि जो गत दिवस की घटना का उल्लेख इस सभा में करेगा, यह कील मैं उसके मुँह में गाड़ दूंगा। यह सुन कृष्ण ने कुपित होकर उसे नगर से बाहर निकाल दिया। उधर प्रद्युम्न भी भानु को छेड़ने लगा। सत्यभामा ने उसे भी नगर के बाहर निकलवा दिया। प्रद्युम्न और शाम्ब — दोनों श्मशान-स्थल पर मिल गये।

इधर सत्यभामा अपने पुत्र भानु के विवाह की तैयार करने लगी। वह भानु का विवाह १०० कन्याओं से कराना चाहती थी। निन्यानवे कन्याएँ तो उसे मिल गईं और एक कन्या की खोज कराने लगी।

प्रद्युम्न ने अवसर का लाभ उठाकर विद्या-बल से स्वयं को जितशत्रु राजा और शाम्ब को अपनी पुत्री बना लिया। सत्यभामा ने इसे देखते ही अपनी सौवी वधू बनाने हेतु जितशत्रु रूप प्रद्युम्न से मांग लिया। शाम्ब सत्यभामा के संग गया और युक्तिपूर्वक निन्यानवे कन्याओं के साथ पाणिग्रहण कर अपना असली रूप प्रकट कर दिया। सत्यभामा

तो जल-भुन गई।

एक बार तीर्थङ्कर नेमिनाथ द्वारिका पधारे। शाम्ब और प्रद्युम्न ने उनके उपदेश से प्रतिबोधित होकर जिन दीक्षा ले ली। उत्कृष्ट संयम-चर्या करते हुए दोनों भाइयों ने अन्न में विमलगिरि पर संलेखना ग्रहण की और कैवल्य प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध बने। इसी के साथ दूसरा खण्ड समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ स्व० पूरणचन्द नाहर, कोलकाता के निजी ज्ञान भण्डार में, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में और जैन श्वे० पंचायती बड़ा मंदिर ज्ञान भण्डार, वाराणसी में उपलब्ध हैं।

४.१.२ चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई

जिसने बोधि प्राप्त कर ली है, वह बुद्ध कहलाता है। बुद्ध तीन प्रकार के होते हैं — १. स्वयं-बुद्ध, २. प्रत्येक-बुद्ध और ३. बुद्ध-बोधित। जो स्वयं चिन्तन के द्वारा बोधि प्राप्त करता है, वह स्वयं-बुद्ध कहलाता है। जो किसी एक घटना के कारण बोधि पाता है, उसे प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है। जो बोधि-प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधि-लाभ करते हैं, वे बुद्ध-बोधित कहे जाते हैं।^१ समयसुन्दर विरचित इस रास का सम्बन्ध प्रत्येकबुद्ध से है। उत्तराध्ययनसूत्र के नवमें अध्याय में नमि नामक एक प्रत्येक-बुद्ध के जीवन की एक विशेष घटना निबद्ध है और उसके अठारहवें अध्याय में चारों प्रत्येक-बुद्धों का नामोल्लेख मात्र है। उत्तराध्ययननिर्युक्ति^२ में उन चार प्रत्येकबुद्धों का संक्षेप में निर्देश मिलता है, जिनको कवि ने अपने रास का नायक बनाया है। ये चार प्रत्येक-बुद्ध हैं - करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति। यद्यपि प्रत्येक-बुद्धों की संख्या में विवाद है, किन्तु समयसुन्दर ने अपनी एक अन्य कृति में विविध प्रमाणों के आधार पर उनकी संख्या कुल ४५ सिद्ध की है।^३

उत्तराध्ययन-समागत प्रत्येक-बुद्धों पर समाष्टि रूप में अनेक रचनाएँ लिखी गई। इनमें समयसुन्दर के अलावा श्रीतिलक, जिनरत्न, लक्ष्मीतिलक, जिनवर्धनसूरि, भावविजय, नेमिचन्द्रसूरि आदि द्वारा लिखित काव्य-रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। बौद्धों के पालिसाहित्य में भी उक्त चारों प्रत्येक-बुद्धों की कथाएँ वर्णित हैं।^४

कवि समयसुन्दर कृत 'चार प्रत्येक-बुद्ध-चौपाई' में करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति — इन चारों प्रत्येक-बुद्धों के जीवन-चरित्र का सुन्दरतम विवेचन है। कवि ने इस रास में उक्त चार प्रत्येक-बुद्धों का स्वतन्त्र पृथक्-पृथक् खण्ड बनाया है। प्रत्येक

१. द्रष्टव्य — नन्दी सूत्र (३०)

२. द्रष्टव्य — उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा २७०-८०

३. विचार-शतक (६०)

४. कुम्भकार-जातक (४०८)

खण्ड में एक-एक प्रत्येक-बुद्ध का वर्णन किया गया है। सभी खण्डों का रचनाकाल भी पृथक्-पृथक् है, जो कि खण्ड के अन्त में निर्दिष्ट है।

समयसुन्दर कृत 'चार प्रत्येक-बुद्ध-चौपाई' के आदि में कवि ने अरिहन्त महावीर, लब्धिभण्डार गौतम तथा माता सरस्वती का स्मरण करके चार प्रत्येकबुद्धों का नामोल्लेख किया है। तत्पश्चात् कवि ने लिखा है कि चम्पा नामक एक नगरी थी। दधिवाहन वहाँ का राजा था। पद्मावती उसकी रानी थी। एक बार उसे छत्रधारक राजा के साथ गजारूढ़ होकर कानन-उद्यान में विचरण करने का दोहद उत्पन्न हुआ। राजा ने रानी की इच्छा-पूर्ति के लिए वैसा ही किया, लेकिन हाथी उन्मत्त होकर उन्हें भैरव अटवी में ले गया। सभी साथी पीछे छूट गए। हाथी ने न रुकने पर वट-वृक्ष की शाखा पकड़कर उतरने के निर्णय के अनुसार राजा तो उतर गया, परन्तु रानी न उतर सकी। हाथी भागता हुआ प्यास के मारे एक सरोवर के निकट पहुँचा। रानी अवसर पाकर धीरे से नीचे उतर गयी। धर्म को शरण रूप समझकर उसने धर्म की शरण लेना ही समीचीन समझा। उसने जान या अनजान में हुए अपराधों के लिए प्राणिमात्र के प्रति 'मिच्छामि दुक्कड़' (मिथ्या दुष्कृतम) दिया और यह कहकर चतुःशरणपूर्वक सागारी अनशन ग्रहण कर लिया —

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ वेलाए।

आहार मुवहि देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरियं ॥

(कवि ने इसका तीसरी ढाल में विवचेन किया है। यह ढाल 'पद्मावती-आराधना-स्तवन' के रूप में आज भी जैन समाज में प्राणान्त होने वाले व्यक्ति को श्रवण करायी जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अपरिहार्य है कि कवि के नाम से 'पद्मावती आराधना' नामक जो स्वतन्त्र रचना समझी जाती है, वह वस्तुतः स्वतन्त्र न होकर 'चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई' का ही एक अंश है।)

पद्मावती वहाँ से चली। आगे उसकी एक तापस से भेंट हुई, जो राजा चेटक का परिचित था और पद्मावती चेटक की पुत्री थी। उसने पद्मावती को धैर्य दिलाकर आग्रहपूर्वक फलाहार कराया। गाँव की सीमा पर पहुँचाकर उसने कहा- 'यह दन्तपुर का पथ है; वहाँ दन्तचक्र राजा राज्य करता है। तूँ नगर में निर्भय होकर जा।'

पद्मावती दन्तपुर में सीधी आर्याओं के उपाश्रय में पहुँची। आर्या के उपदेश से संसार को असार समझकर वैराग्यपूर्वक वह दीक्षित हो गई, लेकिन उसने अपने गर्भ की बात छिपाकर रखी थी। प्रसव होने पर रत्नकम्बल में बालक को नामांकित मुद्रिका सहित लपेटकर श्मशान में रख आई। श्मशान-पालक चण्डाल ने बालक को अपनी पत्नी को दे दिया। उसने उसका 'अवकर्णिक' नाम रखा, किन्तु हाथ में खुजली होने से उसका नाम 'करकण्डु' प्रसिद्ध हुआ। साध्वी पद्मावती पुत्रमोहवश उसे मोदकादि भी लाकर खिलाती थी। करकण्डु बड़ा होकर श्मशान की देखभाल करने लगा। एक बार वंशजाल में उत्पन्न

दण्डरत्न को देखकर साधुओं ने लकड़ी के गुण-दोष प्रकट करते हुए कहा कि इस लाठी को जो ग्रहण करेगा, वह राजा बनेगा। करकण्डु और एक ब्राह्मणपुत्र ने यह रहस्य सुन लिया। श्मशान में पैदा होने से उसने ब्राह्मणपुत्र को दण्ड लेने नहीं दिया। किसी ने कहा कि यदि तुम राजा बनो, तो एक गाँव इसे भी दे देना। उसने यह बात मान ली, लेकिन दण्डरत्न के अपहरण के भय से वह कञ्चनपुर भाग आया। वहाँ के राजा का निधन हो गया, वह पुत्रहीन था। अतः राजा की नियुक्ति हेतु पञ्च दिव्य प्रकट हुए। नगर के बाहर सोया करकण्डु राज्याभिषिक्त हुआ। नगर-प्रवेश की बेला में मातङ्ग-जाति बताने से उत्पन्न विरोध दण्डरत्न के प्रभाव से समाप्त हो गया। उस ब्राह्मण की इच्छानुसार उसने चम्पानगरी के राजा दधिवाहन को लिखा कि इसे अपना एक गाँव दे दें और बदले में मेरा कोई नगर ले लें। दधिवाहन ने अस्वीकार कर दिया। अतः करकण्डु ने उस पर चढ़ाई कर दी।

साध्वी पद्मावती ने आकर पिता-पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध को बताकर युद्ध को रोका। सभी में आनन्द छा गया। बाद में दधिवाहन करकण्डु को राज्य देकर दीक्षित हो गया। एक हृष्ट-पुष्ट बछड़े को कालान्तर में जराजीर्ण देखकर करकण्डु के चित्त में विरक्ति हो गई। घटना के द्वारा वह स्वयं प्रतिबोध पाकर प्रत्येक-बुद्ध हुआ। लोच कर, देव-प्रदत्त मुनि-वेष धारण कर संयम की साधना करने लगा। इसी के साथ प्रथम खण्ड का समापन हो जाता है। यह खण्ड दस ढालों में गुम्फित है और यह खण्ड बुधवार, सिद्धियोग, फाल्गुनमास, वि० सं० १६६४ में आगरा में पूर्ण हुआ था।

द्वितीय खण्ड में कवि ने दूसरे प्रत्येक-बुद्ध के सम्बन्ध में लिखा है कि पंचाल देश में कम्पिला नामक नगरी थी। वहाँ हरिकुल-वंश-रत्न जय नामक राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम गुणमाला था। एक बार चित्रसभा बनाने के लिए भूमि खोदते समय सर्वरत्नजड़ित एक प्रतापी मुकुट निकला, जिसे महोत्सवपूर्वक राजा ने धारण किया। मुकुट में राजा के दो मुँह/मुख दिखने से उसका नाम दुमुह/द्विमुख प्रख्यात हुआ।^१

राजा के सात पुत्र हुए और यक्ष की आराधना से एक पुत्री भी हुई। एक बार उज्जयनी-नरेश चण्डप्रद्योत ने इस प्रभावक मुकुट के बारे में सुना। उसने लोभवश द्विमुख से मुकुट मांगा। बदले में द्विमुख ने भी उससे उसके राज्य की सारभूत कुछ चीजें मांगी। चण्डप्रद्योत क्रोधित हो गया। उसने पंचाल देश पर चढ़ाई कर दी। द्विमुख मुकुट के प्रभाव से जीत गया तथा उसे बन्दी बना लिया।

१. यहाँ हमें कथानक में यह असंगति दिखाई देती है कि कोई भी मुकुट, धारक के मुख को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता, क्योंकि प्रतिबिम्बित करने के लिए उसका सम्मुख होना आवश्यक है और सम्मुख होने पर दर्शक को द्विमुख प्रतिबिम्बन नहीं हो सकेगा।

एक दिन चण्डप्रद्योत ने द्विमुख की मदनमञ्जरी नामक कन्या को देखा और वह उसपर अनुरक्त हो गया। द्विमुख ने दोनों का विवाह कर दिया और उसे विदा कर दिया।

एक बार इन्द्रोत्सव के अवसर पर राजा के आदेश से नागरिकों ने इन्द्र-ध्वज खड़ा करके उत्सव मनाया। कुछ दिन बाद राजा ने उसी इन्द्रध्वज को मलमूत्रादि रूप दुर्गन्धपूर्ण स्थल पर पड़ा देखा। इससे राजा संसार से विरक्त हो गया। प्रतिबोध पाकर प्रत्येक-बुद्ध हो गया। शासन-देव प्रदत्त लिंग ग्रहण कर वह प्रव्रजित हो गया और संयम पालन करता हुआ विचरण करने लगा। कवि ने ऋद्धि, समृद्धि, पुद्गल की विरसता तथा विद्युत की भाँति चपलता बताने के लिए यहाँ अनेक विश्रुत व्यक्तियों के उदाहरण दिये हैं। इसी के साथ द्वितीय खण्ड की समाप्ति होती है। यह खण्ड आगरा में शुक्रवार, चैत्रविदि १३, वि० सं० १६६४ में पूर्ण रचा गया।

तृतीय खण्ड में समयसुन्दर ने नमि नामक तीसरे प्रत्येक-बुद्ध का अङ्कन किया है। 'उत्तराध्ययन-निर्युक्ति' में विदेह राज्य में दो नमि होने का उल्लेख मिलता है। दोनों अपने-अपने राज्य का त्याग कर श्रमण बने। अन्तर इतना ही है कि एक तीर्थङ्कर हुए, दूसरे प्रत्येक-बुद्ध^१ कवि ने इस खण्ड में दूसरे नमि का विवरण एवं परिचय दिया है।

अवंती देश (आधुनिक मालवा) के सुदर्शनपुर नगर में सम्राट मणिरथ राज्य करता था। उसका कनिष्ठ भाई जुगबाहु था। जुगबाहु/युगबाहु की पत्नी मदनरेखा लावण्यवती थी। कवि ने वहाँ अनेक महापुरुष संयमियों के कामग्रस्त हो जाने का उल्लेख किया है। मणिरथ भी कामासक्त हो गया और उसने कपटपूर्वक युगबाहु की हत्या कर दी। मदनरेखा उस समय गर्भवती थी। शीलरक्षा के लिए वह जंगल में निकल गई। उसने जंगल में एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस शिशु को मिथिला का राजा पद्मरथ ले गया और उसका नाम 'नमि' रखा।

इधर मणिप्रभ विद्याधर ने मदनरेखा को अपनी पत्नी बनाना चाहा। मदनरेखा उसके साथ तीर्थयात्रा करती हुई मणिचूड़ नामक चारण मुनि के पास गई। उन्होंने मणिप्रभ को उपशान्त किया। उसने मदनरेखा को बहिन रूप में मानकर क्षमायाचना की। संसार को सारशून्य समझ कर मदनरेखा साध्वी बन गई।

पद्मरथ के अनगार बन जाने पर 'नमि' मिथिला का राजा बना। नमि का धवल हाथी एक बार उन्मत्त होकर भागता हुआ सुदर्शनपुर जा पहुँचा। चन्द्रयश राजा ने उसे पकड़ लिया। दोनों में युद्ध होने लगा। साध्वी मदनरेखा दो भ्राताओं के मध्य होने वाले युद्ध को रोकने के लिए सुदर्शनपुर आई। उसने दोनों के भ्रातृ-सम्बन्ध का रहस्य प्रकट किया। चारों ओर आनन्द छा गया। बाद में चन्द्रयश ने मुनि-जीवन ग्रहण कर लिया।

१. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा २६७

नमि एक बार छः मास तक दाह-ज्वर की वेदना से पीड़ित रहा। उपचार चला। दाहज्वर शान्त करने के लिए रानियाँ स्वयं चन्दन घिसने लगीं। उनके हाथों में पहिने हुए कंगण बज रहे थे। उनकी आवाज नमि सहन नहीं कर सके। अतः रानियों ने सौभाग्यसूचक एक-एक कंगण रखा और सब कंगण उतार दिए। आवाज बन्द हो गई। इस घटना ने राजा की मनोगति को ही बदल दिया। राजा ने पूछा - अब कंगण का शब्द क्यों नहीं होता? रानियों ने कहा - स्वामिन्! कंगणों के घर्षण का शब्द आपको अप्रिय लगा, इसलिए हमने एक-एक कंगण रखकर शेष उतार दिए। अब अकेला कंगण भला कहाँ से शब्द करे?

नमि प्रबुद्ध हो गया। वह विचारने लगा कि जहाँ अनेक हैं, वहाँ संघर्ष है, पीड़ा है। जहाँ एक है, वहाँ पूर्ण शान्ति है। उदात्त जागरण में राजा को जातिस्मरण-ज्ञान हो गया और वह प्रतिबुद्ध होकर निर्ग्रन्थ मुनि हो गया।

आकस्मिक ही नमि को मुनि बनते देख इन्द्र परीक्षा के लिए ब्राह्मण रूप धारण कर आया। उसने नमि को कर्तव्य-बोध कराया और उसे लुभाने का प्रयत्न किया, लेकिन नमि ने गहरी आध्यात्म की बातें की, भेद-विज्ञान की चर्चा की और संसार की असारता का उसे बोध दिया। जब इन्द्र ने उसे देखा कि नमि राजर्षि अपने संकल्प पर अडिग है, तो उसने अपना मूल स्वरूप उजागर किया। उनके गुणों की प्रशंसा करके वह चला गया। इधर नमि भी विहार करने लगे। दोनों में जो प्रश्नोत्तर हुए, उसके लिए कवि ने बताया कि यह मैंने 'उत्तराध्ययनसूत्र' से उद्धृत किए हैं। यह तृतीय खण्ड कवि ने उग्रसेनपुर में रचा। इसमें १७ ढालें हैं। इस खण्ड के रचना-काल की सूचना प्राप्त नहीं होती है।

चतुर्थ खण्ड में कवि समयसुन्दर कहते हैं कि मगध देश के पुण्ड्रवर्द्धन नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। एक बार राजा एक नये अश्व पर सवार होकर घूमने निकला। अश्व विपरीत शिक्षित था। वह राजा को बारह योजन दूर ले गया। वहाँ पर्वत पर एक सप्त मंजिल महल देखकर राजा उसमें चला गया। वहाँ एक सुन्दरी थी। दोनों के प्रेम-तन्तु दृढ़ हो गये। दोनों ने गन्धर्व-विवाह कर लिया। राजा ने उससे महल में अकेली रहने का कारण पूछा। वह बोली -

एक बार क्षित्रप्रतिष्ठ (क्षितिप्रतिष्ठित) नगर के राजा ने राज-सभा में चित्रांकन के लिए चित्रकारों को समान भित्तिखण्ड बाँट दिए। उसमें चित्रांगद नाम का एक वृद्ध चित्रकार भी था। एक बार उसकी पुत्री कनकमञ्जरी उसके लिए भोजन ला रही थी। मार्ग में उसने एक अश्वरोही को जनसंकुल में से अश्व दौड़ाते देखा। चित्रांगद भोजन आया देख शौच के लिए जंगल चला गया। कनकमञ्जरी ने पीछे से एक मयूर-चित्र बना दिया। राजा निरीक्षणार्थ आया। उसने मयूर के हूबहू चित्र को मयूर समझ पकड़ना चाहा। कनकमञ्जरी ने कहा - तीन पायोंवाला पलंग गिर जाता है, अब चौथा पाया मिल गया।

राजा ने इसका अर्थ पूछा। वह बोली, 'भीड़ होने पर भी घोड़ा दौड़ाने की मूर्खता, गर्म भोजन लाने के बाद शौचालय जाने की मूर्खता, वृद्ध पिता को अन्य युवा चित्रकारों की बराबरी का भित्तिचित्र बनाने के लिए देने की चित्रशाला के अधिकारी की मूर्खता, मकान में चित्रित मोर को पकड़ने की राजा की मूर्खता — ये चार पाये हुए।' राजा, कनकमञ्जरी के वाक्चातुर्य पर मुग्ध हो गया। राजा ने उससे शादी कर ली। वह प्रतिदिन आश्चर्य में डालने वाली अधूरी कहानी सुनाती और अगले दिन उसे पूरा करती। राजा उसकी कहानी सुनने प्रतिदिन उसी के महल में आता। (कवि ने इन बौद्धिक कथाओं में बहुत ही लालित्य भरा है।) ऐसे छः मास व्यतीत हो गये। अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश राजा को भड़का दिया, लेकिन राजा ने यथार्थ स्थिति जानी और वह उससे इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उसे अपनी पटरानी बना दिया। वह श्राविका-धर्म का पालन करती हुई मरकर देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर तोरणपुर-नरेश दृढशक्ति की कनकमाला नामक लड़की हुई, जिसका तरुणावस्था में विद्याधर वासव ने अपहरण कर लिया और पर्वत पर महल विकुर्वित कर उससे विवाह करना चाहा। कनकमाला के भाई कनकतेज से उसका युद्ध हुआ, जिसमें दोनों मर गये। दृढशक्ति विद्याधर पुत्र-पुत्री का सन्धान करते हुए जब पहुँचा, तो एक वाण-व्यन्तर देव ने सबको मृतक दिखा दिया। राजा विरक्त हो प्रव्रजित हो गया। उसी देव ने कनकमाला को बताया था कि जो विपरीत शिक्षित अश्व पर आरूढ़ होकर यहाँ आयेगा, वह तेरा पति होगा। मैं वही कनकमाला हूँ। देव भी इसी महल में रहता है। देववाणी-अनुसार आपने मुझसे विवाह किया।

राजा ने उत्सव-सहित नगर-प्रवेश किया। वह हर पाँचवें दिन उस नग-पर्वत पर जाता, जिससे उसका नाम नग-गई=नगगति हो गया। राजा ने देव के कहने से वहाँ जिनालयादि भी बनाये।

एक दिन राजा परिकर के साथ पर्यटन हेतु निकला। उसने एक आप्रवृक्ष से एक आम तोड़ लिया। राजा की देखा-देखी सभी ने आम और पत्ते तक तोड़ डाले। वापस लौटते समय राजा ने वहाँ टूँट मात्र देखा। राजा प्रबुद्ध हो गया। उसने सोचा, जब तक ऋद्धि-समृद्धि है, तभी तक शोभा है और ऋद्धि चंचल है। इस प्रकार से चिन्तन करते हुए वह तत्काल प्रत्येक-बुद्ध मुनि हो गया।

ये चारों प्रत्येक-बुद्ध विचरण करते हुए क्षिति-प्रतिष्ठित नगर में आए। वहाँ चार द्वारोंवाला एक देवकुल था। करकण्डु पूर्व दिशा के द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्विमुख दक्षिण द्वार से, नमि पश्चिम द्वार से एवं नगगति उत्तर द्वार से। यक्षदेव ने यह सोचकर कि मैं साधुओं को पीठ देकर कैसे बैदूँ, अपने को चतुर्मुख कर लिया।

करकण्डु खुजली से पीड़ित था। उसने एक कण्डूयन से कान में खुजली करके उसे अपने पास रखकर छुपा लिया। यह देख द्विमुख ने कहा — मुने! अपना अन्तःपुर

राज्य आदि त्यागकर इसका संचय क्यों करते हो? यह सुनते ही करकण्डु के उत्तर देने से पूर्व ही नमि ने कहा- मुनि! आपके राज्य में आपके अनेक आज्ञापालक थे। आप दूसरों को दण्ड देते और पराभव करते थे। इस कार्य को छोड़ आप मुनि बने हैं, तो आप दूसरों के दोष क्यों देख रहे हैं? यह सुन नग्गति बोला — जो मोक्षार्थी हैं, वे दूसरों की गद्दा कैसे करेंगे? तब करकण्डु ने कहा — नमि, द्विमुख और नग्गति ने जो कुछ कहा है, वह अहित का निवारण करने के लिए है। अतः वह दोष नहीं है। चारों निरभिमानी थे। चारों ने यह बात मानी।

अन्तिम आठवीं ढाल में कवि चारों प्रत्येक-बुद्धों के गुणों की प्रशंसा करता है। जो बात 'उत्तराध्ययन निर्युक्ति'^१ में कही गई है, वही बात कवि ने भी कही है कि इन चारों प्रत्येक-बुद्धों के जीव एक साथ पुष्पोत्तर देव-विमान से च्युत हुए थे। चारों ने एक साथ प्रव्रज्या ली। एक ही समय में प्रत्येकबुद्ध हुए, एक ही समय में केवली बने और एक ही समय में सिद्ध हुए।

चतुर्थ खण्ड में ९ ढाल हैं। इसकी रचना आगरा में ज्येष्ठ-पूर्णिमा, वि० सं० १६६५ में तीर्थङ्कर विमलनाथ के प्रसाद से और कुशलसूरीन्द्र के सात्रिध्य में सम्पूर्ण हुई। इस ग्रन्थ का प्रणयन कवि ने नागड़ गोत्रीय संघनायक सूरशाह के आग्रह से किया था।

चार प्रत्येक-बुद्ध-चौपाई का आनन्दकाव्य-महोदधि से सातवें भाग में सम्पादन किया गया है। इस ग्रन्थ का सम्पादन मुनि सम्पतविजय ने किया है और प्रकाशन सेठ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार-फण्ड, मुम्बई ने।

४.१.३ मृगावती-चरित्र-चौपाई

कविवर समयसुन्दर के रास-चौपाई-साहित्य में 'मृगावतीचरित्र-चौपाई' भी एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस कृति की रचना कवि ने वि० सं० १६६८ में सिन्ध-प्रान्त के अन्तर्गत मुलताननगर में जैसलमेरी श्रावक करमचन्द रीहड़ के आग्रह से की थी। कवि ने इस चौपाई का अपर नाम 'मोहनवेल' दिया है। कवि ने लिखा है —

सोलसई अठसटा वरष हुई चउपई घणे हरषे बे।^२
मृगावती चरित्र कह्या त्रिहुं खंडे घणे आणन्द घमन्डे बे।

× × ×

जाण श्रावक ते जैसलमेरा, मरम लहई ध्रम केरा बे।
करमचन्द रीहड़ जाणीता, साहे सदा वदीता बे ॥
तसु आग्रह करि जो ग्रन्थ कीधा, नाम मोहनवेल दीधा बे ॥^३

१. उत्तराध्ययन-निर्युक्ति, गाथा २७०

२. मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.१२.२६-२७)

३. वही, (३.१२.९-११)

कवि ने इस चौपाई की कथावस्तु के लिए मृगावती के जैन परम्परागत ऐतिहासिक चरित्र को ग्रहण किया है। कवि ने इस चौपाई की रचना तीन खण्डों के अन्तर्गत ३८ ढालों में की है। प्रथम खण्ड में १३ ढालें, द्वितीय खण्ड में १३ ढालें और तृतीय खण्ड में १२ ढालें - कुल ७४५ गाथायें हैं। इस चौपाई में एक ढाल सिन्धी भाषा में रचित है और शेष समस्त ढालें प्राचीन हिन्दी में।

प्रथम खण्ड में कवि ने सरस्वती एवं सद्गुरु को नमस्कार करते हुए शील का माहात्म्य प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् सती मृगावती का चरित्र प्रारम्भ होता है। सती मृगावती वत्स देश में कौशाम्बी नगर के राजा शतानीक की पटरानी थी। राजा न्यायप्रिय और शूरवीर था, तो उसकी रानी भी शीलवती, गुणवती और अनन्य सुन्दरी थी। राजा का मन्त्री जुगन्धर स्वामिभक्त एवं राजकार्यों में प्रवीण था।

रानी मृगावती वैशालीपति चेडी महाराज की पुत्री थी। एक बार वह गर्भवती हुई। उसे रुधिर से परिपूर्ण वापी में स्नान करने का दोहद उत्पन्न हुआ। मन्त्री ने दोहद-पूर्ति हेतु पानी में कुसुम्बा घुलवा दिया। मृगावती उस रक्तवर्णी पानी में स्नान करने लगी। स्नान से निवृत्त हो, रानी जैसे ही वापी से बाहर आयी, उसी समय एक भारण्ड पक्षी उसे लाल मांस-पिण्ड समझ कर पञ्जों से पकड़कर उड़ गया। सर्वत्र रानी की खोज की गई, परन्तु चौदह वर्ष तक रानी का कोई पता न लगा।

एक दिन राजा शतानीक के पास दो व्यक्ति आये और उन्होंने राजा को एक रत्न-जड़ित नामाङ्कित कङ्कण दिया। राजा ने मृगावती के इस कंकण को पहचान लिया और उसके बारे में उनसे पूछताछ की। वे राजा को कङ्कण के प्राप्ति-स्थान पर ले गये। राजा जंगल में तापसाश्रम में गया। वहाँ उसका अपने पुत्र उदयन और प्रिया रानी मृगावती से मिलन हुआ। प्रमुख तापस विश्वभूति और ब्रह्मभूति से आशीर्वाद प्राप्त कर उत्सव-सहित कौशाम्बी में प्रवेश किया। यहाँ मृगावती-चरित्र-चौपाई का पहला खण्ड समाप्त हो जाता है।

द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में कवि ने जिनकुशलसूरि को वन्दन कर कथा का विस्तार किया है। कवि ने लिखा है कि शतानीक और मृगावती सपरिवार धर्मयुक्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन एक निपुण वीणा-वादक ने अनुपम ढंग से अपनी कला का प्रदर्शन किया, किन्तु उदयन ने उसमें कमियाँ बता दीं। राजा के पूछने पर उदयन ने अपने संगीत-ज्ञान की प्राप्ति का विस्तृत वृत्तान्त बताया और कहा कि यह ज्ञान मुझे अपने पूर्वभव के मित्र महर्द्धिक देव द्वारा प्राप्त हुआ था।

एक बार सभासदों के परामर्श से राजा ने राजमहल में कलात्मक चित्रण करवाया। एक चित्रकार ने मृगावती के अंगूठे मात्र को देखकर सम्पूर्ण शरीर का चित्र बना दिया। राजा उससे बहुत प्रभावित हुआ, लेकिन जंघा पर चिह्नित तिल को देखकर राजा

ने उसे रानी पर दुराचारी होने का आरोप लगाया। चित्रकार ने इस चित्र-कला का रहस्य प्रकट किया और कहा कि मैंने यह कला एक यक्ष की कृपा से सीखी थी, किन्तु राजा ने क्रोधावेश में उसका दाहिना हाथ कटवा दिया। चित्रकार ने पुनः यक्ष-मन्दिर में यक्ष से बायें हाथ से भी पूर्ववत् चित्र बनाने का वरदान मांगा। निरपराध दण्ड का प्रतिशोध लेने के लिए उसने उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योतन को मृगावती का चित्र भेंट किया। राजा ने मृगावती को प्राप्त करने के लिए दूत को भेजा और कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी।

मृगावती अपने रूप को धिक्कारने लगी, तो राजा अपने अज्ञानवश हुए क्रोध को; जिसके कारण युद्ध की स्थिति आ गई। राजा पर अतिसार-रोग का प्रकोप हो गया और उसने समाधि-मरण को प्राप्त किया। इसी के साथ दूसरे खण्ड का समापन हो जाता है।

तृतीय खण्ड के आरम्भ में कवि ने श्री जिनदत्तसूरि की स्तुति की है। तत्पश्चात् कथा को पुनः आगे बढ़ाया है। मृगावती ने चण्डप्रद्योतन से कहा कि मेरे पति का अभी देहान्त हो गया है; अतः एक वर्ष के बाद मैं आपकी ज्ञाना मानने को प्रस्तुत हूँ। तब तक आप मेरे पुत्र के लिए सुदृढ़ किला आदि बनवा दीजिये, ताकि उसका भविष्य सुरक्षित रहे। रानी की चाल सफल हो गई। एक वर्ष बाद मृगावती ने अपने को समर्थ जानकर उसे यह स्पष्ट कह दिया कि नागमणि की भाँति सती का शील कोई खंडित नहीं कर सकता।

उसी समय भगवान् महावीर कौशाम्बी में पधारे। उनके प्रवचन को सुनने के लिए चण्डप्रद्योतन ससैन्य और मृगावती समस्त नागरिकों के साथ गयी। भगवान् के प्रवचन से प्रतिबुद्ध हो, मृगावती वैराग्य जागृत होने से दीक्षा लेकर साध्वी बन गयी। भगवान् ने इसे प्रवर्तिनी चन्दनबाला की शिष्या बनाया।

एक दिन सूर्यास्त हो जाने पर भी भगवान की सभा में अधिक समय रुक जाने के कारण गुरुवर्या चन्दनबाला द्वारा उपालम्भ मिलने पर मृगावती ने अतिपश्चाताप और आलोचना की, जिसके कारण उसे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु की अपेक्षा शिष्या को शीघ्र परम ज्ञान की प्राप्ति का समाचार सुनकर उसने मृगावती को नमस्कार किया और स्वयं भी आत्म-निन्दा करने लगी; फलस्वरूप गुरुणी चन्दनबाला को भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया। सामान्यतया जैसे जैन-कथाओं में कथानायक या कथानायिका के निर्वाण-प्राप्ति के प्रसंग से कथा का समापन होता है, वैसे ही यहाँ भी मृगावती के निर्वाण के प्रसंग के साथ कथा का समापन हुआ है।

उपर्युक्त चौपाई की हस्तलिखित पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है। यह कृति नाहटा-बन्धुओं एवं डा० रमणलाल ची० शाह के सम्पादकत्व में गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित हुई है।

४.१.४ सिंहलसुत/प्रियमेलकतीर्थ-चौपाई

मनुष्य आदिकाल से ही कथा-साहित्य के प्रति आकर्षित रहा है; इसीलिए

सिंहलसुत की कहानी भी लोक-कथाओं में सुप्रसिद्ध है और इसकी अनेक सचित्र हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हैं।

सिंहलसुत पर रचित कृतियों में कविप्रवर समयसुन्दर रचित कृति अत्यधिक लोकप्रिय है। इसकी भाषा सरल तथा प्रसादगुणयुक्त है। इस चौपाई की रचना वि० सं० १६७२ में मेड़ता नगर में हुई थी। श्रावक जैसलमेरी झाबक कचरा के मुलतान में किये गये आग्रह से कवि की प्रवृत्ति इस रचना में हुई थी। कवि ने इसी तथ्य का उल्लेख इस प्रकार किया है —

संवत सोल बहुत्तरि समइ रे, मेड़ता नगर मझार।

प्रियमेलक तीरथ चउपई रे, कीधी दान अधिकार ॥

कचरउ झाबक कौतकी रे, जैसलमेरी जाण।

चतुर जोड़ावी जिणए चउपई रे, मूल आग्रह मुलताण ॥^१

सिंहलसुत/प्रियमेलकतीर्थ-चौपाई की हस्तलिखित प्रतियों में एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है, जो साध्वी चम्पा के द्वारा कार्तिक कृष्णा ६, सं० १६७२ में लिखी गई। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कवि ने उसी वर्षावास में यह रचना रची होगी।

यद्यपि प्रस्तुत कृति का पूरा नाम 'दानाधिकारे प्रियमेलक तीर्थ-प्रबन्धे सिंहलसुत चउपई है', लेकिन संक्षेप में इसे 'सिंहलसुत-चौपाई' अथवा 'सिंहलसुत प्रियमेलक तीर्थ चौपाई' कहा जाता है और इसी नाम से इस कृति की प्रसिद्धि है। यह चौपाई ११ ढाल, २३० गाथाएँ अर्थात् ३०५ ग्रन्थाग्रन्थ में लिखित है। इसका प्रकाशन श्री भंवललाल नाहटा के सम्पादकत्व में सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर द्वारा हुआ है। कृति की विषयवस्तु का सार निम्नांकित है —

सिंहलद्वीप के राजा सिंहल की रानी सिंहली का पुत्र सिंहलसिंह^२ शूरवीर, गुणवान् एवं पुण्यात्मा था। एक बार वसन्त ऋतु में उपवन में पौरजन क्रीड़ा कर रहे थे। एक जंगली हाथी उन्मत्त होकर उधर आया और क्रीडारत नगरसेठ धनदत्त की पुत्री धनवती को सूण्ड में उठाकर भागने लगा। सिंहलसिंह ने बुद्धि और युक्तिपूर्वक उसे छुड़ा दिया। दोनों में प्रेम हो गया और सेठ तथा राजा ने उनका विवाह करवा दिया। दोनों सुखपूर्वक काल-निर्गमन करने लगे।

राजकुमार जिस गली में गमन करता, उसके सौन्दर्य पर नगर-वनिताएँ मुग्ध हो जातीं। वे अपना गृहकार्यादि छोड़ पीछे-पीछे घूमने लगतीं। नागरिकों की यह शिकायत

१. समयसुन्दर-रासपंचक, प्रियमेलक-तीर्थ-प्रबन्ध-सिंहलसुत-चौपाई (११.२-३)

२. समयसुन्दर ने 'सिंहलसिंह, सिंघलकुमार' और 'सिंहलसुत' — तीनों नामों का प्रयोग किया है।

होने से राजा ने सिंहलसिंह को नगर-वीथिकाओं में क्रीड़ा-केलि करना सर्वथा निषिद्ध कर दिया। कुमार ने तिरस्कृत हो भाग्य-परीक्षा के निमित्त एक दिन सपत्नी नौका पर आरूढ़ होकर अन्यद्वीप के लिये प्रयाण कर दिया। तूफान में नौका टूट गई। धनवती काष्ठफलक के माध्यम से तैरती हुई समुद्र-तट पर आ गई। एक वृद्धा से नगर का नाम पूछने पर उसने बताया कि यह कुसुमपुर नगर का प्रियमेलक तीर्थ है। यहाँ जो स्त्री मौन-तपपूर्वक शरण लेकर बैठती है, उसके बिछुड़े हुए पति का मिलाप निश्चित होता है। धनवती ने अभिग्रह ग्रहण कर मौन-तप आरम्भ कर दिया और वहाँ शरण ले ली।

सिंहलकुमार भी एक बड़े काष्ठ के सहारे एक तट पर पहुँचा। वहाँ रत्नपुर नगर के राजा रत्नप्रभ की रानी रत्नसुन्दरी की आत्मजा रत्नवती को सर्प काट खाया। सिंहलकुमार ने अपनी मुद्रिका को जल में स्पर्श करके उस पर छिड़का और उसे निर्विष कर दिया। राजा ने कुमार के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण करा दिया, किन्तु कुमार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहा था। राजा ने रुद्र पुरोहित के साथ इस नव-दम्पति को भारी दहेज देकर जहाज में विदा किया। कामांध पुरोहित ने कुमार को सागर में धकेल दिया। (श्री पाल-रास ग्रन्थ में भी इसी तरह कामान्ध धवल सेठ, श्रीपाल को समुद्र में गिराता है।) राजकुमारी ने दुष्ट पुरोहित का यह कुकृत्य जान लिया। कुमारी ने युक्तिपूर्वक वहाँ से काष्ठतख के सहारे सिन्धु-तट प्राप्त कर लिया। प्रियमेलक-तीर्थ का भेद ज्ञात कर रत्नवती ने भी वहाँ शरण ली। पुरोहित ने अपनी बुद्धि से कुसुमपुर आकर राजा का मन्त्रिपद प्राप्त कर लिया।

सिंहलकुमार को गिरते हुए किसी देव ने ग्रहण कर एक तापसाश्रम में पहुँचा दिया। तापस ने अपनी रूपवती नामक पुत्री से उसका विवाह करा दिया। करमोचन के समय कुमार को एक अद्भुत कथा - जो प्रतिदिन खंखेरने पर सौ रुपये देती थी और एक आकाश-गामिनी खटोली भी दी। खटोली ने दम्पति को कुसुमपुर पहुँचाया। रूपवती को प्यास लगने पर कुमार कूप पर जाकर पानी निकालने लगा। कूप में से एक भुजङ्ग ने मानवीय भाषा में बाहर निकालने की प्रार्थना की। कुमार द्वारा उसे बाहर निकालते ही उसने कुमार को काट खाया, जिससे कुमार कुब्जा तथा कुरूप हो गया। सांप कहता है - कुमार! यह रूप तुम्हें लाभदायक होगा। (यह घटना अनायास ही नलोपाख्यान की स्मृति दिलाती है।) कुमार ने उसी रूप में पत्नी को पानी पीने को दिया। उसने पति को कुब्जे-रूप में नहीं पहचाना और पीठ फेर ली। आखिर पति को न पाकर वह भी पति-प्राप्ति हेतु पूर्व शरणागत तरुणियों के पास जाकर मौन-तपस्या करने लगी।

तीनों रूपवती महिलाओं के मौन-तप की प्रसिद्धि नगर में सर्वत्र फैल गयी।

अतः राजा के मन में उन्हें बोलवाने की उत्सुकता जगी। राजा ने नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि जो इन तपस्विनी सुन्दरियों का मौन-भंग करेगा, उसे राजकन्या मिलेगी।

वामन रूप में सिंहलकुमार ने पटह सुना। वामन तीनों युवतियों के पति के साथ घटित घटनाओं आदि की थोड़ी-सी कथा कहकर शेष कथा दूसरे दिन पर स्थगित कर देता था। आगे की बात सुनने की जिज्ञासा से क्रमशः तीनों स्त्रियाँ बोल उठीं। राजा ने अपने वचन के अनुसार राजकुमारी का उससे विवाह कर दिया। वहाँ देव ने उसका असली रूप दे दिया। सब में आनन्द छा गया। कुमार ने देव से पूछा — तुम कौन हो और निष्काम मेरा उपकार कैसे किया? देव ने कहा — मैं नागकुमार देव हूँ, तेरी समस्त आपदाओं को मैंने ही दूर किया है। देव ने उसका पूर्व भव बताया और कहा कि तुम्हारे पूर्व भव के कृत धर्म-दान आदि से तुम्हारे पुण्य प्रबल हैं, साथ ही तुमसे मेरा स्नेह है। तुम्हें कुरूप वामन करने का मेरा उद्देश्य था कि यह पुरोहित तुम्हें पहचान कर मारने का षडयन्त्र न रचे। पूर्वभव सुनने से कुमार को जातिस्मरण हो गया। राजा ने पुरोहित को मारने की आज्ञा दी, परन्तु कृपालु कुमार ने उसे छुड़ा दिया।

कुमार चारों पत्नी-सहित माता-पिता के पास उड़नखटोली से पहुँचा। सबका वियोग दूर हुआ। राजा कुमार को अपने सिंहासन पर अभिषिक्त कर स्वयं दीक्षित हो गया। सिंहलकुमार ने दिनोंदिन अधिकाधिक धर्म-ध्यान करते हुए श्रावक-धर्म का पालन किया तथा अन्त में समाधिपूर्वक मरकर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। भविष्य में वह मोक्षपद प्राप्त करेगा।

प्रस्तुत कथानक की ऐतिहासिकता बताने के लिए हमें इसका कोई उल्लेखनीय प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने प्रस्तुत रास के कथानक को कवि द्वारा कल्पित माना है।^१ हमें लगता है कि यह कथानक या तो कवि-कल्पित है अथवा तत्कालीन प्रचलित कोई लोककथा है।

४.१.५ पुण्यसागर-चरित्र-चौपाई

कविवर्य समयसुन्दर ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किसी प्राचीन अन्य कवि के द्वारा विरचित 'शान्तिनाथ-चरित्र' के आधार पर किया है। इस बात का उल्लेख स्वयं कवि ने ही किया है। इसका रचना-काल विक्रम सं० १६७३ का भाद्र मास है। वे स्वयं लिखते हैं —

शान्तिनाथ जिन सोलमउ, तसु चरित चउसाल।

ए मइं तिहां थी ऊधर्यउ, सम्बन्ध विसाल ॥

सम्बत् सोल तिहुत्तरइ, भर भादव मास।

ए अधिकार पूरउ कर्यउ, समयसुन्दर सुखवास ॥^२

इसमें १५ ढाल हैं। प्रत्येक ढाल के पूर्व में दोहा-सोरठा आदि का भी प्रयोग किया गया है। समस्त सामग्री ३०१ श्लोक-परिमाण है। इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि

१. देखें — जैन साहित्य संशोधक, खण्ड २, अंक ३, पृष्ठ २५

२. पुण्यसार-चरित्र-चौपाई (१५.१०-११)

श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर द्वारा प्रकाशित तथा श्री भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित समयसुन्दर-रासपञ्चक में इसको संग्रहीत किया गया है।

समयसुन्दर ने चौपाई के आरम्भ में मंगलाचरण किया है। तत्पश्चात् लिखते हैं कि गोपाचल (ग्वालियर) में पुरन्दर नामक सेठ रहता था। पुण्यश्री उसकी पत्नी थी। बहुत समय तक उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। अन्त में कुलदेवी की आराधना से उनके एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम पुण्यसार रखा गया।

एक बार विद्यालय में पुण्यसार और रत्नवती में विवाद हो गया। रत्नवती ने पुरुष की निन्दा की, तो पुण्यसार ने उसी से विवाह करने का निर्णय किया। पुण्यसार के हठ के कारण उसका पिता रत्नवती के पिता रत्नसार के पास गया। रत्नसार ने सहर्ष स्वीकृति दे दी, लेकिन रत्नवती ने पुण्यसार से विवाह करने को अस्वीकार कर दिया। पुण्यसार ने अपना भविष्य अनुकूल बनाने के लिए कुलदेवी की उपासना की। कुलदेवी ने उसे उसका मनोवांछित सिद्ध होने का वर दिया।

एक दिन पुण्यसार जुए में धरोहर रूप रखा रानी का हार हार गया। तदर्थ पिता ने उसे घर से निकाल दिया। रात्रि बिताने के लिये वह वटवृक्ष के कोटर में बैठ गया। पुण्यश्री के उपालम्भ सुनकर सेठ पुत्र को खोजने निकला। वटवृक्ष पर बैठी दो देवियों ने कौतुक देखने के लिये वटवृक्ष सहित उड़कर वल्लभी नगरी के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पुण्यसार का सुन्दर सेठ की सात पुत्रियों से पाणिग्रहण हुआ। शरीर चिन्ता-निवारण के निमित्त से पुण्यसार महल से नीचे आया और खड़िया मिट्टी से तत्काल निम्नोक्त दोहा तथा श्लोक लिख दिया —

किहाँ गोपाचल किहाँ वलहि, किहाँ लम्बोदर देव ।

आव्यो बेटो विहि वसहि, गयो सत्तवि परणेव ॥

गोपाचलपुरा दागाँ, वल्लभ्यां नियतेर्वशात ।

परिणीय वधु सप्त, पुनर्तत्र गतोस्म्यहं^१

यह लिखकर वह जहाँ वटपृक्ष था, वहाँ आकर कोटर में बैठ गया। देवियाँ आईं और वटवृक्ष को उड़ाकर अपने स्थान में लाकर रख दिया।

पुरन्दर सेठ पुत्र की खोज करता हुआ थककर वटवृक्ष के नीचे आ बैठा था। सूर्योदय होने पर पुण्यसार कोटर से निकला। पिता-पुत्र मिले। परस्पर अपने अपराधों की क्षमा-याचना की और रात्रि का सारा वृत्तान्त ज्ञात किया। पुण्यसार ने द्यूत-व्यसन छोड़ दिया।

१. पुण्यसार-चरित्र-चौपाई (ढाल ९ से पूर्व दूहा ७-८)

उधर सातों बहिनें पति-विरह में रोने लगीं। गुणसुन्दरी ने नीचे जाकर दीवार पर लिखित अभिलेख को पढ़ा और पति-परिचय का अन्वेषण पा लिया। उसने पिता से पुरुष-पोषाक लेकर छः माह में पति-प्राप्ति की प्रतिज्ञा कर विदा ली। वह गोपाचल में गुणसुन्दर कुमार के नाम से उद्योग करने लगी और सफल व्यवसायी के रूप में ख्याति अर्जित कर ली। एक दिन रत्नवती उस पर मुग्ध हो गई। अयोग्य सम्बन्ध होते हुए भी रत्नसार के अत्यधिक आग्रह से उसे उससे विवाह करना पड़ा।

जब पुण्यसार आत्महत्या करने लगा, तो देवी ने भावी विधान देखने को कहा। छः मास बीत जाने पर एक दिन गुणसुन्दरी अग्नि-प्रवेश करने लगी। सारा नगर इसके लिए चिन्तातुर हुआ। राजा स्वयं आया। उसने पुण्यसार को इसे समझाने के लिये कहा। दोनों ने अपनी वियोग-घटना कही। दोनों मिल गये। रत्नवती भी पुण्यसार को सहज ही मिल गई। वह आठ रातियों सहित सानन्द काल-निर्गमन करने लगा।

एकदा ज्ञानसागर नामक ज्ञानी मुनि गोपाचलपुर आए। पुरन्दर सेठ ने पुण्यसार का पूर्वभव पूछा, जिसे सुनकर उसने पुण्यसार को गृहभार सौंपा और प्रव्रजित हो गया। पुण्यसार ने भी श्रावक-धर्म का पालन करते हुए अन्त में जिन-दीक्षा अङ्गीकार की और समाधि-मरण प्राप्त किया।

प्रस्तुत कथा पर विवेकसमुद्रगणि^१, अजितप्रभसूरि^२ तथा भवचन्द्र^३ रचित कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो कि संस्कृत में हैं।

४.१.६ नलदवदन्ती-रास

'नलदवदन्ती-रास' कविप्रवर समयसुन्दर की पद्यबद्ध भाषा-कृतियों में प्रमुख कृति है। इस रचना के प्रणयन के लिये रायमल गोलछा के पुत्र नेतसी का कविवर को आग्रह था। रचना के अन्त में कवि ने इसका निर्देश किया है —

उवज्ञाय इम कहइ समयसुन्दर, कीयऊ आग्रह नेतसी।

चउपई नलदवदन्ती केरी, चतुर माणस चितवसी ॥^४

कवि ने छः खण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ की रचना वि.सं. १६७३ में मेड़ता (राजस्थान-प्रान्त) नगर में की थी। इस कृति की समाप्ति पर इसकी तिथि का तथा रचना-स्थल का उल्लेख इस प्रकार किया है —

१. जिनदत्तसूरि ज्ञान-भण्डार-कार्यवाहक ट्रस्ट, सूरत से वि० सं० २००१ में प्रकाशित।

२. जिनरत्नकोश, पृष्ठ २५१

३. हीरालाल हंसराज, जामनगर से सन् १९२५ में प्रकाशित।

४. नलदवदन्ती रास (६.१०.३)

संवत सोल तिहुत्तरई, मास बसंत आणंद।
नगर मनोहर मेडतऊ, तिहाँ वासुपूज्य जिणंद ॥^१

कवि की इस रचना के समसामयिक ही अन्य कवियों ने भी नल-दवदन्ती-रास का प्रणयन किया है, जिनमें वि.सं. १६६४ में मेघराजकृत, वि.सं. १६६५ में नयसुन्दर कृत तथा वि. सं. १६६४ में नारायण कृत नलदवदन्ती (दमयन्ती) रास मिलते हैं; परन्तु उपर्युक्त रचनाओं की आलेखन-पद्धति आदि का सामान्य प्रभाव भी कवि समयसुन्दर पर नहीं पड़ा है। हाँ! कथावस्तु का आधार कवि ने पूर्ववर्ती साहित्य के 'पाण्डव-चरित्र' एवं 'नेमिचरित्र' से अवश्य लिया है, जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है —

पांडवनेमिचरित्र हो, ए अधिकार तिहां थी उघर्यऊ।

चंचल कविअण चित्त हो, कवियण केरी किहाँ कवि चातुरी ॥^२

कवि के इस ग्रन्थ का परिमाण लगभग १३०७ श्लोक-प्रमाण है। प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा प्राचीन राजस्थानी-गुजराती है। यह कृति सरल, सुबोध, आह्लाददायक एवं काव्य-रस से परिपूर्ण है। अभी तक की शोध से इस रचना की छः प्रतियाँ मुनि पुण्यविजय, डॉ. रमणलाल ची. शाह आदि को प्राप्त हुई हैं। डॉ. रमणलाल ची. शाह ने विभिन्न प्रतियों के पाठान्तरों का निर्देश करते हुए भारतप्रकाशन, अहमदाबाद से गुजराती-लिपि में इसे प्रकाशित किया है।

भारतीय सहित्य में नल-दमयन्ती की कथा प्राचीनकाल से प्रचलित है। 'महाभारत', 'श्रीहर्षचरित्र', 'नैषधीयचरित', 'नलचम्पू', 'नलोदय', 'नलअभ्युदयकाव्य' आदि में नल-दमयन्ती की कथा वर्णित है। जैन-परम्परा में भी 'वृहत्कथा', 'वसुदेव हिण्डी', 'कथासरितसागर', 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष', 'नलविलास नाटक' 'पाण्डवचरित्र' आदि ग्रन्थों में नल-दमयन्ती की कथा पाई जाती है। अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य में भी नल-दमयन्ती की कथा उपलब्ध होती है। विवेच्य कवि के 'नल-दवदन्ती रास' के कथानक का मुख्य आधार भी जैन-परम्परा में रचित प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश कथा-साहित्य ही है।

प्रस्तुत कृति 'नलदवदन्ती रास' के प्रथम खण्ड के प्रारम्भ में कवि ने सीमन्धर स्वामी, तीर्थङ्करों, केवलज्ञानियों, गणधरों, साधुओं और स्वयं के गुरु तथा सरस्वती को नमन करके कथा का आरम्भ किया है। कवि ने अयोध्या नगरी की शोभा का वर्णन करते हुए वहाँ के राजा निषध के नल और कूबर नामक दो पुत्रों का उल्लेख किया है। इनमें नल तेजस्वी और उदात्त था।

१. वही (६.१०)

२. वही (६.९.१४)

एक दिन विदर्भ देश के अधिपति भीम राजा ने अपनी पुत्री दवदन्ती (दययन्ती)^१ के स्वयंवर हेतु निषध राजा को दूत द्वारा आमन्त्रण भेजा। अतः निषध राजा अपने दोनों पुत्रों को लेकर कुण्डिनपुर गये, जहाँ उनका पूर्ण स्वागत हुआ।

दवदन्ती के स्वयंवर के लिए भीम राजा ने अति सुन्दर मण्डप की रचना की थी। अनेक देश के राजा उपस्थित थे, लेकिन दवदन्ती ने नल के गले में वरमाला पहनाई और धूमधाम के साथ दोनों का विवाह हुआ। पुत्री-विदा के समय दवदन्ती की माता आदि ने अपनी कन्या को अच्छी शिक्षाएँ दीं।

कुण्डिनपुर से नलदवदन्ती ने अयोध्या के लिये प्रयाण किया। मार्ग में अर्द्ध रात्रि में चतुर्दिक् इतने अधिक भ्रमर उड़ रहे थे कि सर्वत्र अंधकार ही अंधकार हो गया और इनके आगे बढ़ने में भ्रमर अवरोधक बन गये। उसी समय दवदन्ती के भाल पर के स्वाभाविक तिलक के हटने से सूर्यवत् तेजपुञ्ज प्रकट हुआ। उस प्रकाश में सबने कायोत्सर्ग-ध्यानावस्था में लीन एक मुनि/साधु का दर्शन किया। नल-दवदन्ती ने साधु की प्रदक्षिणा लगाकर वन्दन किया। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर मुनि ने उन्हें धर्मोपदेश दिया और दवदन्ती के भाल-तिलक का रहस्य बताया।

अयोध्या नगरी में पहुँचने पर समस्त नागरिकों ने उत्साह के साथ नवदम्पति का सत्कार किया और बुजुर्गों ने शुभाशीर्वाद प्रदान किया। इसी के साथ सात ढालों में रचित पहला खण्ड समाप्त होता है।

द्वितीय खण्ड में कवि कहता है कि नल अयोध्या में सुखपूर्वक राज्य करता था; परन्तु एक दिन अनुज भाई कूबर के साथ घूत-क्रीड़ा में पराजित हो गया और शर्त के अनुसार दोनों पति-पत्नी ने वनवास ग्रहण किया। वन में इस दम्पति को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। नल ने एक दिन सोचा कि यदि दवदन्ती मेरे साथ रहेगी, तो उसे अनेक आपदाओं को सहन करना होगा। ऐसा विचार कर रात्रि में अपने रक्त से उसके वस्त्र पर उसे पीहर जाने का सुझाव देकर वहाँ से दवदन्ती को सुषुप्त-अवस्था में छोड़कर अकेले ही प्रस्थान कर दिया। किन्तु दवदन्ती के साथ विश्वासद्रोह करने के कारण नल अपने को धिक्कारता है —

हा हा नल दुष्टतमा, काँ तुं भसम न होई;।

निरपराध निज कामिनी, अबला तजई न कोई।^२

दवदन्ती का त्यागकर जीवन के साथ संघर्ष करता हुआ नल आगे चला जा रहा था कि सहसा उसने आग में जलते हुए एक सर्प की बचाने की प्रार्थना सुनी। परोपकारी

१. रानी पुष्पवती ने दावानल से डरकर आते हुए दन्ती (हाथी) का स्वप्न देखा था; अतः पुत्री का नाम दवदन्ती रखा गया, किन्तु लोक-भाषा में दमयन्ती नाम भी प्रचलित है।

२. नलदवदन्ती रास (२.४.१९)

नल ने उसे आग से निकाल दिया, किन्तु सर्प ने नल को काट डाला। यह सर्प नल का पिता निषध था, जो मृत्यु पश्चात् देव बना और सर्प का रूप धारण किया हुआ था। इसके दंश से नल का शरीर कूबड़ा और कुरूप हो गया, किन्तु सर्प ने उसे ऐसे वस्त्र और आभूषण दिये, जिन्हें पहनने से वह अपना मूल रूप धारण कर सकता था। रूप कुरूप और नाम हुंडिक धारण करके वह सुसमापुर (सूषमापुर या सुसुभारपुर) पहुँचा। वहाँ उसने एक पागल-उन्मत्त हाथी को वश में किया। फलस्वरूप वहाँ के राजा दधिपर्ण ने इस कूबड़े रूप नल को आदर दिया एवं उसे अपने पास ही रख लिया। इसी के साथ पाँच ढालों में प्रणीत दूसरा खण्ड पूर्ण हो जाता है।

तृतीय खण्ड में कथा का विकास त्वरित गति से हुआ है। दधिपर्ण राजा ने हुंडिक (नल) से उसका परिचय पूछा। हुंडिक ने अपने को नल राजा का रसोइया और सर्वविद्या-ज्ञाता बताया। नल राजा अपने छोटे भाई कूबर के साथ जुए में हार जाने से दवदन्ती के संग वनवास के लिए निकल गये। अब सुना जाता है कि नल का देहावसान हो गया; अतः मैं इस तरफ आ गया हूँ। हुंडिक द्वारा नल की मृत्यु का समाचार जानकर दधिपर्ण को अत्यधिक दुःख हुआ।

हुंडिक ने दधिपर्ण की 'सूर्यपाक' और 'रसवती पाक' का भोजन कराकर बहुत प्रसन्न किया। एक दिन हुंडिक एक तालाब के किनारे उदासीन बैठा था। वहाँ एक ब्राह्मण पथिक विश्राम के लिए आया और परस्पर गीत-गोष्ठी होने लगी। गोष्ठी में उसने दवदन्ती जैसी स्त्री का परित्याग करने वाले नल की निन्दा की। हुंडिक की आँखें द्रवित हो गईं। हुंडिक ने दवदन्ती की वर्तमान स्थिति को जानने हेतु अनभिज्ञ होकर ब्राह्मण से दवदन्ती के विषय में पूछा। पथिक ने सम्पूर्ण वस्तु-स्थिति बताई।

दवदन्ती जगने पर पति को न पाकर उसे दूढ़ने लगी, न मिलने पर वह बहुत ही निराश हो गई। विरह एवं कष्टों को उसने भाग्य की विडम्बना ही समझा और चन्द्र के द्वारा अपने पति को हृदय-द्रावक संदेश भेजा। फिर दवदन्ती ने अपने वस्त्र पर लिखित अक्षरों को पढ़ा और वह पीहर के लिए रवाना हो गई। मार्ग में व्यापारियों के एक सार्थ के साथ वह मिल गई। इस सार्थ पर एक चोरों के दल ने आक्रमण किया। तदर्थ दवदन्ती ने सिंहनीवत् साहस करके चोरों को भगा दिया। सार्थ ने यह उपकार मानकर उसे कुलदेवी के रूप में मान्य किया।

भारी वर्षा के कारण सार्थ बीच में ही रुक गया। अतः दवदन्ती उसे छोड़कर गुप्त रूप से आगे चल दी। आगे उसे एक राक्षस मिला, जो दवदन्ती का भक्षण करना चाहता था। दवदन्ती ने उसे कहा — मुझे मरने का भय नहीं है, परन्तु मुझ जैसी शीलवती नारी को खाने से तू भस्म हो जाएगा। यह सुनकर राक्षस सन्तुष्ट हुआ और उसे वर मांगने को कहा। दवदन्ती ने कहा — मेरा प्रिय मुझे कब मिलेगा? राक्षस बोला — बारहवें वर्ष। राक्षस के

द्वारा उसे उसके पीहर पहुँचने का कहने पर उसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मैं परपुरुष के साथ नहीं जाऊँगी। प्रिय-मिलन के समाचार तुमने बताये, तुम्हारा यह उपकार ही बहुत है। यहीं पाँच ढालों में बने तीसरे खण्ड का समापन हो जाता है।

दीर्घकाल में प्रिय-मिलन की बात सुनकर दवदन्ती एक गुफा में तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित कर वहीं रहने लगी। उधर सार्थवाह दवदन्ती की खोज करता हुआ गुफा में आ पहुँचा। समीपवर्ती तापस भी उसके पास आने लगे। एक समय उसने तापसों को बाढ़ में डूबने से बचाया। सभी तापस भी उसकी गुफा के पास रहने लगे और सार्थवाह ने तापसपुर नगर बसाया। यहीं कूबर के पुत्र सिंहकेसरी को कैवल्य और मोक्ष प्राप्त हुआ। यह जानकर दवदन्ती को प्रव्रज्या लेने की अभिलाषा हुई। मुनि यशोभद्र ने उसे प्रव्रज्या अङ्गीकार करने के लिए मना किया, साथ ही उसके पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाकर उसकी वियोगावस्था का कारण बताया।

एक दिन किसी पुरुष के कथन पर दवदन्ती पति की खोज में निकली और पुनः जङ्गलों में भटक गई। यहाँ उसे एक राक्षसी का सामना करना पड़ा, लेकिन सतीत्व-बल और धर्म-बल के कारण राक्षसी उसका कुछ न कर सकी। सार्थवाह ने दवदन्ती को खोजकर उसे अचलपुर पहुँचाया और उसी के साथ कवि ने नलदवदन्ती रास के चौथे खण्ड को छः ढालों में सम्पूर्ण किया है।

कवि समयसुन्दर नल-दवदन्ती के कथानक का सुन्दर और रसप्रद वर्णन करते हुए कहते हैं कि दवदन्ती अचलपुर में रानी चन्द्रयसा एवं ऋतुपर्ण राजा के वहाँ रहने लगी और नल की जानकारी पाने के आशय से दानशाला में दान देने लगी। नल और दवदन्ती की खोज के लिये राजा भीम द्वारा प्रेषित विप्र हरिमित्र अचलपुर आया। दान लेते समय वह दवदन्ती को पहचान गया। उसने शीघ्र राजा एवं रानी से इस सम्बन्ध में चर्चा की। यद्यपि ये दोनों दवदन्ती के मौसा-मौसी थे, परन्तु एक-दूसरे को पहचान न पाये थे। इस हेतु राजा-रानी ने दवदन्ती से क्षमा मांगी। हरिमित्र दवदन्ती को कुण्डिनपुर ले आया। राजा भीम पुत्री-मिलाप से अत्यन्त हर्षित हुआ। नल के विषय में जानकारी प्राप्त होने पर राजा भीम ने दवदन्ती के पुनः स्वयंवर करने का काल्पनिक समाचार दधिपर्ण राजा के यहाँ प्रेषित किया और स्वयंवर का समय बहुत कम दिया। दधिपर्ण राजा और हुंडिक रास्ते में अपनी-अपनी विद्याओं का विनिमय कर कुण्डिनपुर आ पहुँचे; लेकिन कुण्डिनपुर में स्वयंवर का कोई चिह्न न देखने पर दधिपर्ण बहुत आश्चर्यचकित हुआ। वस्तुतः यह हुंडिक को बुलाने की एक युक्ति थी। भीमराजा एवं दवदन्ती ने इस कुबड़े हुंडिक की परीक्षा करके देखा और यह नल ही है, ऐसा विश्वास होने पर उन्हें बड़ा आनन्द मिला। अन्त में नल ने भी दिव्य वस्त्रादि धारण कर स्वयं का सच्चा स्वरूप प्रकट किया। इस प्रकार कलात्मक ढंग से पाँच ढालों में कवि ने पाँचवाँ खण्ड सम्पूर्ण किया।

कवि नलदवदन्ती के अन्तिम जीवन का वर्णन करते हुए षष्ठ खण्ड में कहता है कि नल ने कूबर के साथ पुनः द्यूत खेलकर अपना राज्य वापस प्राप्त कर लिया। बहुत समय तक राज्य-सुख भोग करने के पश्चात् नल और दवदन्ती को वैराग्य हो गया और उन्होंने जिनसेन आचार्य से दीक्षा अङ्गीकार कर ली। मुनि बन जाने पर भी नल के चित्त में दवदन्ती के प्रति अनुराग समाप्त नहीं हुआ। अन्त में संलेखना व्रत (अनशन) ग्रहण करके दोनों ने देह का विसर्जन किया। दोनों देवलोक में उत्पन्न हुए। नल धनद (कुबेर) नामक देव हुआ और दवदन्ती उसकी प्रिया हुई। दवदन्ती देव-आयु पूर्णकर पेड़ालपुर के राजा हरिचन्द की कनकवती नामक पुत्री हुई। नल देवलोक में धनद के रूप में रहा। कनकवती का वसुदेव के साथ विवाह हुआ। कनकवती को चित्तविशुद्धि से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और वह साध्वी बनकर मुक्त हो गई। धनददेव भी भविष्य में देवलोक से च्युत होकर मानव-लोक में जन्म लेगा और साधना के द्वारा कैवल्य प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करेगा। इसी के साथ ही दस ढालों में लिखित छठा खण्ड सम्पूर्ण होता है।

यद्यपि कवि ने 'नलदवदन्ती-रास' की रचना परम्परागत कथावस्तु के आधार पर की है, फिर भी अनेक स्थलों पर उनकी अपनी प्रतिभा के कारण नवीनपन और कवित्व-शक्ति का विकास देखा जा सकता है। इसी कारण कवि प्रेमानन्द रचित 'नलाख्यान' से इसकी तुलना की जाये, तो हम दोनों कृतियों को एक श्रेणी की पायेंगे।

४.१.७ सीताराम-चौपाई

कविवर्य समयसुन्दर की हिन्दी भाषागत पद्य-रचनाओं में 'सीताराम-चौपाई' सबसे वृहद् रचना है। यह नौ खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में ढाल ७ और गाथा २४८ हैं। द्वितीय खण्ड में ढाल ७ और गाथा १९२ हैं। तृतीय खण्ड में ढाल ७ और गाथा १६८ हैं। चतुर्थ खण्ड में ढाल ७ और गाथा २२८ हैं। पंचम खण्ड में ढाल ७ और गाथा २४८ हैं। षष्ठ खण्ड में ढाल ७ और गाथा ४४४ हैं। सप्तम खण्ड में ढाल ७ और गाथा ३१२ हैं। अष्टम खण्ड में ढाल ७ और गाथा ३२३ हैं एवं नवम खण्ड में ढाल ७ और गाथा ३५५ हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में नौ खण्ड और २४१७ गाथाएँ हैं। इस रचना का परिमाण कवि ने इस प्रकार बताया है —

नवखण्ड पृथिवी ना कहा, तिण चउपई ना नव खण्डों रे ॥^१

त्रिण्ह हजारनइ सातसइ मानजइ ग्रन्थ नो मानो रे ॥^२

यहाँ यह 'त्रिण्ह हजारनइ सात सइ' अर्थात् ३७०० की संख्या गाथाओं की सूचक न होकर ग्रन्थ परिमाण की सूचक है; जिसकी गणना अनुष्टुप् छन्द के आधार पर होती है।

१. सीताराम-चौपाई (खण्ड ९, ढाल ७, गाथा १०)

२. वही खण्ड ९, ढाल ७, गाथा १९

इस विशद ग्रन्थ का निर्माण कवि ने कब और कहाँ किया, इसका संकेत हमें 'सीताराम-चौपाई' से प्राप्त नहीं हो पाया है। हाँ! चौपाई के अन्त में कवि ने यह अवश्य लिखा है कि यह चौपाई मैंने रायमल के पुत्र अमीपाल, नेतसी और भतीजे राजसीसाह के आग्रह से बनाई है, लेकिन कवि ने अपनी चौपाई के आरम्भ में अपनी कतिपय रचनाओं का उल्लेख करते हुए 'नलदवदन्ती-रास' का उल्लेख भी किया है। 'नल-दवदन्ती-रास' की रचना वि. सं. १६७३ में समाप्त हुई थी। अतः यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि वि. सं. १६७३ के पश्चात् ही 'सीताराम-चौपाई' का निर्माण हुआ था। इस रचना के छोटे खण्ड की तीसरी ढाल में कवि ने अपना जन्म-स्थान साँचौर बताया है। यही एक कृति है जिसमें कवि ने अपना जन्म-स्थान का उल्लेख किया हो। अतः यह कृति सम्भवतः साँचौर में ही निर्मित हुई होगी। 'साँचौरमंडन-महावीर-स्तवन' से ज्ञात होता है कि कवि वि. सं. १६७७ के माघ माह में साँचौर में थे। अतः इसी समय के आस-पास 'सीताराम-चौपाई' की रचना हुई होगी। वि. सं. १६८३ में लिखित इस कृति की प्रति भी प्राप्त होती है। अतः इसका निर्माण वि. सं. १६७३ से १६८३ के मध्यवर्ती काल में ही हुआ होगा।

सीताराम-चौपाई की भाषा राजस्थानी प्रधान है। सीताराम-चरित्र सम्बन्धी कवि की इस कृति के अतिरिक्त भी राजस्थानी में अनेक रचनाएँ जैन आचार्यों ने निर्मित की हैं। इनमें ब्रह्म जिनदास रचित 'रामचरित्र-काव्य' (वि.सं. १५०८), विनयसमुद्र रचित 'पद्मचरित' (वि.सं. १६०४), समयध्वज रचित 'सीता-चउपाई' (वि.सं. १६११), हेमरत्नसूरि रचित 'सीता-चरित्र' (वि.सं. १६३६-४५), नगरसी रचित 'रामसीता-रास' (वि.सं. १६४९), केसराज रचित 'रामयशो-रसायन' (वि.सं. १६८३), त्रिविक्रम रचित 'रामचन्द्र-चरित' (वि.सं. १६९९), चारित्रधर्म और घिद्याकुशल रचित 'रामचन्द्र-चरित' (वि.सं. १६९९), चारित्रधर्म और घिद्याकुशल रचित 'रामायण' (वि.सं. १६२१), दौलतकीर्ति रचित 'सीताहरण चौढालिया' (वि.सं. १७८४), सुज्ञानसागर रचित 'ढालमंजरी' (सं. १८२२), चौथमल रचित 'रामचरित' (वि.सं. १८६२) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। राम-सीता-कथासम्बन्धी राजस्थानी जैनैतर साहित्य में माधवदास दधवाड़िया रचित 'रामरासो' (वि.सं. १६६४), रुघपति-रुघनाथ रचित 'रुघरासो' (वि.सं. १७२५), अमृतलाल माथुर रचित 'गीत रामायण' (वि.सं. १९५५) आदि प्रमुख हैं। राजस्थानी भाषा में रचित सीता-राम-कथासाहित्य में कवि समयसुन्दर की 'सीताराम-चौपाई' अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। कवि ने इस काव्य में जैन-परम्परा की रामकथा को समग्ररूपेण गुम्फित किया है। कवि ने प्रस्तुत कृति के कथानक का आधार 'पद्मचरित' / 'पउम चरिउ' से लिया है, ऐसा कवि के संकेतों से विदित होता है। वैसे कवि ने हिन्दू धर्म में प्रचलित रामायण के विविध आख्यानों पर जिन अनेक कवियों ने लिखा है, उनका भी उल्लेख किया है —

जिनशासन शिवशासने सिताराम चरित्र सुणीजे रे ।

भिन्न-भिन्न शासन भणी को को वार्ता कहीजै रे ॥

अब हम 'सीताराम-चौपाई' के वर्ण्य-विषय को प्रस्तुत करेंगे ।

प्रथम खण्ड की शुरुआत में कवि ने पूज्य पुरुषों को और शारदा माता को नमस्कार किया है । कवि ने परमज्ञानी गौतम गणधर के मुख से राजा श्रेणिक आदि परिषद् के समक्ष सीता के पूर्वभव से लगाकर उनका समग्र जीवन-वृत्त कहलाया है । यह शैली विमलसूरि के 'पउम-चरिउ' में उपलब्ध है ।

गौतम कहते हैं — भरत क्षेत्र में मृणाकुण्ड नगर में श्रीभूति पुरोहित की वेगवती नामक कन्या रहती थी । एक बार उसने सुदर्शन मुनि पर झूठा कलंक लगाया कि मैंने इन्हें स्त्री के साथ व्रत-भंग करते देखा था । लेकिन धर्मज्ञान प्राप्त होने पर उसने कृतकर्म का पश्चाताप किया और धर्मश्रवण कर संयम स्वीकार कर लिया । आयुष्यपूर्ण होने पर प्रथम देवलोक में पैदा हुई । वहाँ से वह मिथिलापुर के राजा जनक की भार्या वैदेही की कुक्षि से उत्पन्न हुई । एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, लेकिन पूर्वभव के वैरवश एक देव ने उसका हरण कर लिया । पुत्री का जन्मोत्सव मनाकर उसका नाम सीता रखा गया । क्रमशः यौवनवय में उसका विवाह अयोध्या नरेश दशरथ-सुत रामचन्द्र से निश्चित हुआ ।

एक दिन नारद मुनि लावण्यवती और गुणवती सीता को देखने के लिए आये, किन्तु वहाँ तिरस्कृत होने से उन्होंने क्रोधवश वैताढ्य पर्वत पर रथनेउर नरेश के पुत्र भामंडल, जो वस्तुतः सीता का अपहृत भाई था, को सीता का चित्र दिया । भामण्डल, सीता को पाना चाहने लगा । रथनेउर नरेश ने जनक राजा को बुलाकर सीता की मांग की । जनक ने इस विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । अन्त में विद्याधरों के आग्रह से धनुष-भंग का आयोजन किया गया । अनेक राजाओं की उपस्थिति में प्रथम धनुष राम ने चढ़ाया और दूसरा लक्ष्मण ने । राम के साथ सीता का विवाह हुआ और लक्ष्मण के साथ विद्याधरों की अठारह कन्याओं का पाणिग्रहण हुआ । राजा दशरथ सपरिवार विपुलसमुद्धि के साथ अयोध्या लौटे । यहीं पर 'श्रीसीताराम-प्रबन्ध-सीता-विवाह सीता-रूप वर्णनो नाम प्रथमः खण्डः' समाप्त हो जाता है ।

द्वितीय खण्ड में उधर भामण्डल ने अपने को अधन्य मानते हुए सीता की प्राप्ति के लिए ससैन्य प्रस्थान किया । मार्ग में जब वह विदर्भा नगरी में पहुँचा, तो वहाँ के दृश्यों को देखने से उसे जातिस्मरण हो गया । अपनी ही भगिनी की वांछा करने का उसे पश्चाताप हुआ । वापस आने पर चन्द्रगति के पूछने पर भामण्डल ने कहा — हे तात ! मैं पूर्व जीवन में अहिमण्डल नामक राजकुमार था और मैंने एक ब्राह्मणी का अपहरण किया था । मैं मरकर राजा जनक का पुत्र हुआ, सीता मेरी बहिन है । पूर्वजन्म के द्वेषवश एक देव ने मेरा अपहरण किया तथा प्रारब्ध के कारण आपने मुझे अपना पुत्र मान लिया । यह सुनकर

चन्द्रगति विरक्त हो गया और दीक्षा ले ली। अनेक निमित्तों से यहाँ पर दशरथ-परिवार, जनक-परिवार आदि से सच्चा सम्बन्ध और मिलन हुआ।

राजा दशरथ पूर्व से ही वैराग्यवासित थे। एक दिन वे रात्रि में जगकर चिन्तन कर रहे थे कि चन्द्रगति विद्याधर धन्य है, मुझे भी अनेक जन्म-मरण करते हुए यह मानव जन्म मिला है; अतः राम को राज्य सौंपकर मुझे संयम ग्रहण करना चाहिए। सभी की अनुमति से उन्होंने राम के राज्य-अभिषेक की कामना की। उसी समय कैकेयी द्वारा धरोहर रखा हुआ वर उसने मांगा कि 'राम को चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास और भरत को राज्य देने की कृपा करें।' दशरथ चिन्तातुर होकर राम को कैकेयी के वर की पूर्व बात बतलाते हैं। (कवि ने इस करुणात्मक घटना का अति सजीव और सटीक वर्णन किया है।) अन्ततः राम और लक्ष्मण ने वनवास के लिये प्रस्थान कर दिया; साथ में सीता भी छायावत् चल पड़ी। यह वियोग सभी के लिए असह्य था। दशरथ और उनके अनेक सामन्तों ने विरक्त होकर आचार्य भूतशरण से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कैकेयी अपने वर का फल हानिकारक समझकर भरत के संग राम को वापस लेने गई। लेकिन राम ने कह दिया कि हम क्षत्रिय हैं, वचन नहीं पलटते हैं। अतः सब लोग लौट जाते हैं। इसी के साथ 'श्रीसीतारामप्रबन्धे राम-सीता-वनवास-वर्णनो नाम द्वितीयः खण्डः' सम्पूर्ण हो जाता है।

राम आदि अवन्ति प्रदेश के दशपुर नगर में पहुँचे। वहाँ के राजा वज्रजिघ की धर्मनिष्ठता के कारण उन्होंने उसकी सहायता की और उस पर चढ़ाई करने वाले अन्यायी राजा सीहोदन को पराजित किया। इसी तरह उन्होंने म्लेच्छाधिप को भी मुक्त किया। यहाँ पर 'सीतारामप्रबन्धे वनवासे परोपकार-वर्णनो नाम तृतीयः खण्डः' की इति होती है।

चतुर्थ खण्ड में कवि ने लिखा है कि राम-सीता-लक्ष्मण ने अरुण गाँव के एक यक्ष-मन्दिर में वर्षावास बिताया। उनके प्रभाव से यक्ष ने वहाँ एक दिव्य नगरी का निर्माण किया और जाते समय उन्हें कुछ भेंट भी दी। विजयापुरी पहुँचने पर यहाँ के राजा महीधर की पुत्री के साथ लक्ष्मण का विवाह हुआ। नन्दावर्त नगर के सम्राट् अतिवीर्य द्वारा राजा भरत पर आक्रमण करने पर लक्ष्मणादि ने उसे हराकर भरत की अधीनता स्वीकार कराई। विविध अंचलों में भ्रमण करते हुए वे खेमजलि नगर पहुँचे। वहाँ राजा शत्रुदमन की पुत्री जितपद्मा के लिये लक्ष्मण का शक्ति-सन्तुलन हुआ। जब वे लोग वंशस्थल नगर पहुँचे, तो वहाँ एक मुनिराज पर दैविक उपसर्ग हो रहे थे। उन्होंने उपसर्गों को शान्त किया और मुनिराज को अचल ध्यान में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। रामादि ने मुनिराज की सेवा-भक्ति की और इनके द्वारा पूछे जाने पर मुनिराज ने उपसर्गों का कारण बताया। वंशस्थलपुर-नरेश सूरप्रभ ने राम के कहने से वहाँ एक जिनालय बनाया। इसी के साथ श्री सीतारामप्रबन्धे केवलिमहिमावर्णनोनाम चतुर्थ खण्ड समाप्त होता है।

पंचम खण्ड में कथा का विकास होता है। रामादि दण्डकारण्य में पहुँचे। वहाँ फलादि के आहार पर अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिन दो मुनिराजों को उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक आहार-दान दिया। एक दुर्गन्धित पक्षी ने आकर मुनिराजों को वन्दन किया, जिससे उसकी देह सुगन्धित और निरोग हो गई। पक्षी सीता के पास रहने लगा। उसके शरीर पर सुन्दर जटा होने से उसका नाम जटायुघ हो गया।

उस समय लंकागढ़ में रावण राज्य करता था। लङ्का के चतुर्दिक् समुद्र था। रावण ने गले में दिव्य हार पहना हुआ था, जिसमें नौ मुंह प्रतिबिम्बित होने से रावण का नाम दशमुख भी प्रसिद्ध था। रावण की बहिन चन्द्रनखा का संबुक (शम्बूक) नामक पुत्र दण्डकारण्य में विद्या-साधना कर रहा था। भवितव्यतावश लक्ष्मण के द्वारा संबुक की हत्या हो गई। इससे चन्द्रनखा के कथन पर उसके पति खरदूषण ने ससैन्य लक्ष्मण से सामना किया। खरदूषण के परास्त होने पर रावण आया। वह सीता के रूप पर मुग्ध हो गया और उसका हरण कर ले गया। जटायुघ पक्षी, रत्नजटी विद्याधर आदि ने इसका घोर विरोध किया, लेकिन रावण सीता का अपहरण करने में सफल हो गया। इधर राम-लक्ष्मण आदि सीता की सतत शोध करने लगे। उधर कामासक्त रावण की व्याकुलता अति तीव्र हो गई थी, परन्तु सीता अपने शील पर अडिग रही। रावण ने बलात्कार नहीं किया, क्योंकि उसने अनन्तवीर्य के पास व्रत लिया हुआ था कि मैं बलात्कारपूर्वक किसी भी स्त्री को नहीं भोगूंगा।

इसी बीच राम और सुग्रीव का मिलन हुआ। सुग्रीव ने राम को आश्वासन दिया कि मैं सीता को खोज निकालूंगा। अतः राम उससे प्रसन्न होकर किष्किन्धा आये। वहाँ सुग्रीव नामधेयी एक कपटी साहसगति विद्याधर का राम ने अन्त किया। यहाँ 'श्री सीतारामप्रबन्धे सीता-संहरण पंचमः खण्डः' का समापन हो जाता है।

षष्ठ खण्ड के आरम्भ में कवि समयसुन्दर ने जन्मदाता, दीक्षादाता, शिक्षादाता को नमस्कार किया है और तत्पश्चात् वे कहते हैं कि सुग्रीव द्वारा सीता की शोध की गई। लङ्कापति रावण से युद्ध-बल पर सीता को प्राप्त करना अशक्य था। रावण की मृत्यु उसी व्यक्ति के द्वारा होगी, जो कोटिशिला को उठायेगा। लक्ष्मण ने इसे अपनी बायीं भुजा से ऊपर उठा लिया। अतः पवनसुत हनुमान को लङ्कापति के पास दूत रूप में भेजा गया। लङ्का में हनुमान ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और सीता को राम की मुद्रिका तथा सन्देश देकर उसे आश्वस्त किया। प्रतिसन्देश रूप सीता ने अपना चूड़ामणि दिया। लौटते समय हनुमान मेघनाथ द्वारा नागपाश के बन्धन में जकड़ा गया। हनुमान और रावण में विवाद हुआ। हनुमान लङ्का में उपद्रव करते हुए राम के समीप वापस लौट आए। राम, सुग्रीव आदि सभी ने लङ्का पर आक्रमण करने की मन्त्रणा की। मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को विजययोग में शुभ शकुनों से सूचित होकर राम ने विशद सेनासहित लङ्का की ओर प्रयाण

किया। उधर विभीषण ने रावण को युद्ध में न उतरने की समयोचित शिक्षा दी; लेकिन वहाँ से तिरस्कृत होकर सत्यपक्षग्राही विभीषण अपनी तीस अक्षौहिणी सेना लेकर राम की शरण में पहुँचा। उधर भामंडल भी सदलबल आ पहुँचा। असंख्यासंख्य सैनिकों के साथ राम लड़ना पहुँचे। रावण के पास चार हजार अक्षौहिणी सेना तथा राम के पास एक हजार अक्षौहिणी वानरों की सेना थी। परस्पर भारी युद्ध हुआ। (कवि का युद्ध-वर्णन अद्भुत वीर-रसोत्पादक है।) विषम युद्ध में विशिष्ट शक्ति हेतु लक्ष्मण ने देवाराधना की। फलस्वरूप उन्हें अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हुईं। रावण के असह्य प्रहार से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए, जिसका राम को अति शोक हुआ, परन्तु विशल्या नामक पुण्यवती नारी को लाकर उसके स्पर्श से लक्ष्मण को सचेत किया गया। उधर रावण ने दैविक शक्ति का संचय करना शुरू किया। उसने अष्टम तप किया। राम के आदेश से अङ्गद आदि वीरों ने रावण को क्षुब्ध करने का प्रयास किया, परन्तु रावण को एकाग्र ध्यान से उसके बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई। इसी के साथ 'सीतारामप्रबन्धे रावणयुद्ध, विशल्या कन्या समुद्भूत, लक्ष्मण=शक्ति, रावण-समाधारित बहुरूपिणी विद्यादि वर्णनो नाम षष्ठः खण्डः' की इति हो जाती है।

सप्तम खण्ड में कवि का कथन है कि रावण सीता पर सिद्ध शक्ति का प्रयोग करने लगा, किन्तु उसे असफलता ही उसे हस्तगत हुई। अन्त में ज्ञान होने पर रावण को अपने कृत कार्य के लिए बड़ा पश्चात्ताप हुआ; किन्तु लोकलज्जावश उसने पुनः युद्ध किया। कृत संकल्पी रावण की वीरता अद्भुत होते हुए भी अंहकारी रावण का लक्ष्मण द्वारा पतन हो गया और राम विजयी हुए।

राम और रावण के परिवार ने रावण का शोकयुक्त अन्त्येष्टि-संस्कार किया। दूसरे दिन मुनि अप्रमेय के उपदेश से कुम्भकरण, मन्दोदरी आदि अनेक महानुभावों ने प्रव्रज्या धारण कर ली।

राम के दल का लङ्का में प्रवेश हुआ। राम ने विभीषण को लङ्का का राज्य दिया। राम-लक्ष्मण के साथ सहस्रों विद्याधरों की पुत्रियों का पाणिग्रहण हुआ। नारद मुनि द्वारा अयोध्या का चिन्तातुर समाचार जानकर राम अयोध्या की ओर आकाशमार्ग से बढ़े। अयोध्या में उनके स्वागत का भव्य आयोजन हुआ था। राम का अयोध्या-प्रवेश हुआ। भरत ने वैराग्यवश चारित्र ग्रहण कर लिया और सभी राजाओं के निवेदन पर राम का बलदेव के रूप में और लक्ष्मण का वासुदेव के रूप में अभिषेक हुआ। सीता के वैभव को देखकर उसकी सौतेँ उससे द्वेष करने लगीं। फलस्वरूप सीता को कलंकित करने का उन्होंने उपक्रम बनाया। सीता द्वारा रावण के पैरों का चित्र बनाकर राम को दिखाया गया, किन्तु सौतेँ को सफलता नहीं मिली। यहीं पर 'सीतारामप्रबन्धे रावणवध, सीतारामपश्चादानयन, रामलक्ष्मणयोध्याप्रवेश, सीता-कलंक-प्रदान वर्णनोनाम सप्तमो खण्डः' समाप्त हो जाता है।

अष्टम खण्ड में कवि का कहना है कि भावी प्रबल है। राम के सारे राज्य में सीता के शील पर कई तरह की आशंकाएँ फैलने लगीं। राम विकल्पों में फँस गए। अत्यधिक अपयश से बचने के लिए राम द्वारा गर्भवती सीता का अरण्य में निष्कासन कर दिया गया। विरहिणी, शोक-संतप्त सीता की वन में राजा वज्रजंघ से भेंट हुई। दोनों में परस्पर धर्मभाई-धर्मबहिन का सम्बन्ध स्थापित हो जाने से सीता वज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर चली गई। उधर धीर एवं संयमी राम की विकलता गम्भीर बनती जा रही थी। इधर सीता ने लव-कुश नामक युगल बच्चों को जन्म दिया। यौवनकाल में वे प्रौढ़ पराक्रमी हुए। उन्होंने पृथु राजा को भी पराजित किया। वज्रजंघ की सभा में नारद मुनि ने आकर लव-कुश का वास्तविक परिचय दिया। लव-कुश को अयोध्या जाने की जिज्ञासा हुई। राम-लक्ष्मण का मान-भंग करने के लिए लव-कुश ने ससैन्य अयोध्या की ओर प्रयाण किया। लव-कुश का राम से युद्ध हुआ। भेद खुलने पर सभी गले मिले और सभी ने एक-दूसरे का अभिनन्दन-अभिवादन किया। इसी के साथ 'श्री सीतारामप्रबन्धे सीता-परित्याग, वज्रजंघ-गृहानयन कुश-लव-युद्ध-कुशलव कुमारायोध्यायाप्रवेशादि वर्णनोनाम अष्टम खण्ड' सम्पूर्ण होता है।

नवम खण्ड में कवि ने लिखा है कि सुग्रीव आदि सीता को लेने के लिए पुण्डरीकपुर गए। सीता अयोध्या-निवास की अनिच्छा प्रकट करती हुई अपने शील की सत्यता प्रमाणित करना चाहने लगी। अयोध्या में सीता ने अग्निपरीक्षा द्वारा धीज करना स्वीकार किया। निमित्तप्रभावक सिद्धार्थ मुनि ने आकर कहा — 'शील गुणादि से सती सीता एकान्त पवित्र है। मैं निमित्त के बल पर कहता हूँ कि सीता के शील के प्रभाव से अग्नि तुरन्त ही जल के रूप में परिणत हो जाएगी।' वास्तव में अग्नि की प्रचण्ड ज्वालालाएँ जल-स्रोतों के रूप में बदल गयीं। सीता के निर्मल शील की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई और उभयकुल उज्वल हुए। उसी समय सीता ने सर्वगुप्ति मुनि से चारित्र ग्रहण कर लिया। राम, विभीषण आदि के पूछने पर केवली मुनि ने राम-लक्ष्मण का रावण के साथ युद्ध, सीताकलंक आदि का कारण बताया।

राम-लक्ष्मण में अनन्य और अटूट प्रेम था, जिसकी चर्चा इन्द्रसभा में हुई। दो देव परीक्षा करने के लिए आए। जब उन्होंने देवमाया से राम को मृत दिखाया, तो लक्ष्मण ने उसी क्षण अपने प्राण त्याग दिये। राम सचेत होने पर उस मृत देह को छः महीने तक प्रेमवश अपने कन्धे पर रखे रहे। अन्त में इन्द्र द्वारा प्रतिबोध पाकर राम ने शत्रुघ्न आदि हजारों पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। पूर्ण आत्म-शुद्धि होने पर राम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने धर्मदेशना दी, जिसे सीतेन्द्र देव (सीता का जीव) प्रभृति ने भी सुनी। भगवान् रामचन्द्र ने निर्वाण-पद प्राप्त किया। सीतेन्द्र का जीव भी भविष्य में सिद्धि-स्थान को प्राप्त करेगा।

अन्त में गणधर गौतमस्वामी ने महाराजा श्रेणिक से कहा कि इस सीता-चरित्र को सुनकर शीलव्रत धारण करना चाहिये और झूठा कलङ्क भी न लगाने का गुण ग्रहण करना चाहिए। इसी के साथ 'श्री सीतारामप्रबन्धे सीतादिव्यकरण, सीता-दीक्षा, लक्ष्मणमरण, रामनिर्वाण, लक्ष्मणरावण-सीतागामिभवपृच्छा वर्णनोनाम नवमः खण्डः' का समापन हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ एक चरित्रात्मक प्रबन्ध-काव्य है क्योंकि 'सीताराम-चौपाई' में छन्द की विविधता, रस का पूर्ण परिपाक, वृत्त की ऐतिहासिकता, जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण और अनेक सर्गों में आबद्ध होने से इसे 'प्रबन्ध-काव्य' कह सकते हैं। कवि ने भी स्वयं इस बात का प्रत्येक खण्ड के अन्त में निर्देश किया है — 'इति श्री सीताराम प्रबन्धे।'

इस ग्रन्थ के विशेष महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए प्रा. फूलसिंह 'हिमांशु' ने लिखा है कि 'कवि की प्रतिभा ने जानी-पहचानी जैन रामायण को भी एक नये आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी महान् गीतकार समयसुन्दर ने अनेक विषयों पर लिखा है। रास-साहित्य के लगभग दस हजार ग्रन्थों में से यह आलोच्य ग्रन्थ अपने विराट् रूप, मार्मिक प्रसंग एवं सहज सरसता के कारण अपना विशेष महत्त्व रखता है। सरस सरल भाषा में रामकथा को गेय रूप में प्रस्तुत करने का कवि का यह प्रयास अनेक दृष्टिकोणों से स्तुत्य है।'^१

मोहनलाल द. देसाई ने तो इस कृति को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि यह कृति तो कवि की अद्भुत हुई है और वह गुर्जर कवि-शिरोमणि प्रेमानन्द से अनेक बार टक्कर मारकर बहुत-सी बातों में उनसे ऊपर चढ़ जाती है।^२

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित पांडुलिपि अनूप संग्रह/संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर; देवचन्द लालाभाई पुस्तकोद्धार-फण्ड, सूरत; विजयधर्मसूरि-ज्ञानभण्डार, आगरा; अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। अगरचन्द नाहटा एवं भंवरलाल नाहटा ने इसे सम्पादित कर सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर द्वारा प्रकाशित किया है।

४.१.८ वल्कलचीरी-चौपाई

यह कृति परिमाण में छोटी है, किन्तु काव्य-तत्त्वों से परिपूर्ण है। इस कृति की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; प्र. श्री कान्तिविजयज्ञान-भंडार, बड़ौदा एवं ज्ञानभण्डार-लींबड़ी में उपलब्ध है। यह कृति 'समयसुन्दर-रास-पंचक' ग्रन्थ में संकलित है। इस कृति का सम्पादन श्री भंवरलाल नाहटा ने किया है और प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर से हुआ है।

१. द्रष्टव्य — मरुभारती, वर्ष ७, अंक १

२. जैन साहित्य संशोधक (खण्ड २, अङ्क ३, पृष्ठ २८)

कवि ने इस कृति को 'वल्कलचीरी-चउपई' के नाम से ही अभिहित किया है। उन्होंने इस कथा-काव्य का निर्माण मुलतान निवासी जैसलमेरी साह कर्मचन्द्र के आग्रह से किया था —

मुलतान मइ वसइ रे, साह करमचन्द रे, जैसलमेरी शुभ जसइ रे ।^१
पद सगवट रे वलकलचीरी चउपइ रे, हाँ रे क्रमचन्द्र आग्रह कीध ॥^२

कवि ने कृति के निर्माण काल का उल्लेख भी किया है —

जैसलमेर रे, जिनप्रसाद घणा इहां रे, हां रे सोम वसु सिणगार ।
वरस वखाणीइ रे,
खरतरगच्छ रे विरुद खरउ जागि जाणियइ रे ॥^३

इस उल्लेख के अनुसार कवि ने 'वल्कलचीरी-चौपाई' का निर्माण विक्रम संवत् १६८१ में जैसलमेर में सम्पन्न किया था।

'वल्कलचीरी-चौपाई' दस ढालों में रचित है और इसमें सब मिलाकर २१६ पद्य हैं, जिसमें वर्णित विषय का सार इस तरह है —

कवि समयसुन्दर भगवान् पार्श्वनाथ, सद्गुरु एवं सरस्वती को नमन करते हुए लिखते हैं कि मगध देश का राजगृह नगर अत्यन्त समृद्ध और पवित्र था। एक बार भगवान् महावीर उस नगर में पधारे। तदर्थ वहाँ का राजा श्रेणिक वन्दनार्थ गया। उसने मार्ग में एक महातपस्वी मुनि के दर्शन किये। सुमुख तथा दुमुख नामक श्रेणिक के दो राज-कर्मचारी भी उधर से निकले। सुमुख ने मुनि की प्रशंसा-स्तुति की, तो दुमुख ने निन्दा करते हुए कहा — 'यह कायर तथा पाखण्डी है। अपने बालक-पुत्र को राज्य देकर स्वयं तप का ढोंग करता है। अब शत्रु आक्रमण करेंगे और इसके पुत्र को मारकर इसकी रानियों को बन्दी बना लेंगे।'

मुनि के मन में पुत्र-मोह जगा और वह मन ही मन शत्रुओं से युद्ध करने लगा।

राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर से पूछा — मैंने मार्ग में जिन तपस्वी राजर्षि को वन्दन किया, वे यदि अभी मरें तो किस गति को प्राप्त होंगे? भगवान् ने कहा — सातवीं नरक। किन्तु कुछ समय बाद पूछा तो उत्तर मिला — 'सर्वार्थसिद्ध'। भगवान् ने इसका कारण विचारों के प्रवाह का बदलना कहा। दुमुख के वचन सुनकर राजर्षि को रौद्रध्यान आ गया था, किन्तु जब मुनि को अपने लुञ्जित सिर का ध्यान आया, तो वे पश्चात्तापपूर्वक शुभ ध्यान की ओर मुड़ गये। श्रेणिक के पूछने पर भगवान् ने राजर्षि द्वारा बालक को राज्य देकर दीक्षा-ग्रहण का कारण बताया कि पोतनपुर के राजा सोमचन्द्र और उनकी रानी

१. वल्कलचीरी-चौपाई (१०)

२. वही (१०.८)

३. वही (१०.५)

धारिणी ने सिर के श्वेत बालों को देखकर वैराग्यभाव से तापस-दीक्षा ली और तपस्या करने लगे। (रामायण में राजा दशरथ भी सफेद केश देखकर वैरागी होते हैं।) दीक्षा लेते समय रानी गर्भवती थी। वह एक पुत्र प्रसव करके मर गई। वल्कलचीरी नामक उस पुत्र का पिता ने ही पोषण किया। वह तरुण हो जाने पर भी भोला-भाला ब्रह्मचारी था और वह स्त्री-जाति से अनभिज्ञ था।

राजा प्रसन्नचन्द्र के मन में अपने युवा भाई से मिलने की अभिलाषा थी। उसका चित्र देखकर उसने भ्रातृस्नेहवश कुछ वेश्याओं को उसे लाने के लिए कहा। वेश्याएँ तापस-वेश में गईं और वल्कलचीरी को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो गईं। वेश्याओं ने अपना स्थान पोतन-आश्रम बताया। वल्कलचीरी पोतन आश्रम ढूँढ़ता हुआ एक रथ के पीछे-पीछे पोतनपुर पहुँचा। कहीं आश्रम नहीं मिला, तो वह रथी द्वारा प्रदत्त द्रव्य से एक वेश्या के यहाँ रुका। वेश्या ने भेद जानकर अपनी पुत्री से उसका पाणिग्रहण करा दिया।

प्रसन्नचन्द्र भाई के आश्रम से निकलकर नगर में पहुँचने के कारण चिन्तित था। वेश्या के घर वाजित्र सुन उसने उसका कारण ज्ञात किया और अन्ततः वल्कलचीरी को महोत्सवपूर्वक राजमहल बुला लिया। उसे गृहस्थ के विविध आचार-व्यवहारों का ज्ञान कराया गया।

उधर राजर्षि सोमचन्द्र वृद्धावस्था में पुत्र-वियोग से अन्धे हो गए, परन्तु उसकी कुशलता के सुखद समाचार मिलने पर उन्हें संतोष हो गया।

वल्कलचीरी को पोतनपुर में बारह वर्ष बीत गये। एक दिन पितृ-स्मरण होने से वह अपने को धिक्कारने लगा। तदनन्तर दोनों भाई आश्रम पहुँचे। दोनों ने राजर्षि का चरण-स्पर्श किया। यहाँ वल्कलचीरी बहुत पश्चाताप करने लगा। संयोगवश पिता को नेत्रज्योति मिल गई। पात्र-प्रतिलेखन करते हुए वल्कलचीरी को जाति-स्मरण/ज्ञान हो गया। अन्ततः उसने दीक्षा लेकर कैवल्य प्राप्त किया। उधर राजा प्रसन्नचन्द्र वैराग्यपूर्ण हृदय से पोतनपुर लौटे।

अरिहन्त महावीर ने कहा — श्रेणिक! एक दिन जब मैं पोतनपुर पहुँचा, तो प्रसन्नचन्द्र वन्दनार्थ आया। प्रवचन सुनकर अपने पुत्र को राजगद्दी दे, वह दीक्षित हो गया और अब आत्मसाधना कर रहा है। श्रेणिक! अब उसे केवलज्ञान हो गया है। समयसुन्दर वल्कलचीरी मुनिराज के गुण गाते हुए मोक्ष सुख की कामना करते हैं।

वल्कलचीरी की यह कथा बौद्धजातक एवं महाभारत में भी ऋषिशृंग के नाम से उपलब्ध है।

४.१.९ शत्रुञ्जय-रास

‘शत्रुञ्जय-रास’ समयसुन्दर की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। प्रस्तुत रास शत्रुञ्जय

तीर्थ (पालिताणा) की महिमा को उजागर करता है। शत्रुञ्जय जैनों का प्रमुख तीर्थ है। यहाँ संगमरमर के आठ सौ तिरसठ जिन-मन्दिर हैं। उनमें से अनेक कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। शायद ही कोई ऐसा जैनी होगा, जिसने जीवन में एक बार इस तीर्थ की यात्रा की अभिलाषा न की हो, क्योंकि कवि ने ही लिखा है —

सेत्रुंज तीरथ सारखड, नहीं छइ तीरथ कोय।
स्वर्ग मृत्यु पाताल मइ, तीरथ सगला जोय ॥
नामइ नवनिध संपजइ, दीठां दुरित पलाय।
भेटतां भवभय टलइ, सेवतां सुख थाय ॥^१

x x x

जिण सेत्रुंज तीरथ नहि भेट्यउ, ते ग्रभवास कहंत रे ।^२

शत्रुञ्जय तीर्थ के माहात्म्य को प्रगट करने वाली अनेक कृतियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें धनेश्वरसूरि कृत 'शत्रुञ्जय माहात्म्य', ऋषभदास कृत 'शत्रुञ्जयोद्धार' (सं. १६६७), हंसरत्न कृत 'शत्रुञ्जय माहात्म्योल्लेख' (सं. १७८२), कक्कसूरि कृत 'शत्रुञ्जय महातीर्थोद्धारप्रबन्ध' (सं. १६९२) जिनहर्षसूरिकृत 'शत्रुञ्जयमाहात्म्य', नयसुन्दरकृत 'शत्रुञ्जयोद्धार' (सं. १६३८), शुभशीलगणि कृत 'शत्रुञ्जयकथाकोश' (सं. १५१८), विवेकधीरकृत 'शत्रुञ्जयोद्धार' (सं. १५८७) उल्लेखनीय हैं ।^३

कवि का यह 'शत्रुञ्जय माहात्म्य' धनेश्वरसूरि के 'शत्रुञ्जयमाहात्म्य' पर आधारित है — इस बात का उल्लेख स्वयं कवि ने रास के प्रारम्भ में ही किया है। कवि ने यह भी बताया है कि धनेश्वरसूरि के अनुसार इस शत्रुञ्जय-माहात्म्य के मूल प्रवक्ता भगवान् महावीर ने स्वयं शत्रुञ्जय तीर्थ में पदार्पण कर इन्द्र एवं देवताओं के समक्ष इसका माहात्म्य वर्णित किया था। कवि ने धनेश्वरसूरि के काल का भी सूचना किया है। उनके अनुसार वे

१. शत्रुञ्जय — रास (१ से पूर्व ४-५)
२. शत्रुञ्जय — रास (२.२)
३. द्रष्टव्य — जिनरत्नकोश, पृष्ठ ३७२-७३

सं. ४७७ के शीलादित्य के शासन-काल में हुए थे।^१ यद्यपि धनेश्वरसूरि का यह कथन कि स्वयं महावीर शत्रुञ्जय तीर्थ पर गये थे, उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध नहीं होता। कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया —

संवत् च्यार सत्योतरइ, हुयउ धनेसर सूरि।

तिण सेत्रुंज महातम कीयउ, सिलादित हजूरि॥

वीर जिणिंद समोसर्या, सेत्रुंज उपरि जेम।

इन्द्रादिक आगई कह्यउ, सेत्रुंज महातम एम॥^२

यद्यपि विवेच्य रचना में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह लगता है कि कवि ने धनेश्वरसूरि कृत 'शत्रुंजयमाहात्म्य' को अपने रास की कथावस्तु का आधार बनाया है। कवि ने भी वह बात सूचित की है। वस्तुतः धनेश्वरसूरि की 'शत्रुंजयमाहात्म्य' नामक रचना में शत्रुंजय तीर्थ की महिमा बताने के लिए एक कथा वर्णित की गई है, जबकि प्रस्तुत रचना में उस ढंग की कोई कथा नहीं है। हाँ, जहाँ समयसुन्दर शत्रुंजयोद्धार की बात कहते हैं, उतना प्रसंग अवश्य 'शत्रुञ्जय माहात्म्य' पर आधारित है।

१. समयसुन्दर ने धनेश्वरसूरि के काल का जो उल्लेख किया है, वह प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता है। कवि के अनुसार धनेश्वरसूरि ने शीलादित्य की उपस्थिति अथवा उनके अनुरोध पर शत्रुंजयमाहात्म्य लिखा था। समयसुन्दर ने इस काल को संवत् ४७७ बताया है। जब केवल संवत् शब्द का उल्लेख होता है, तो वहाँ विक्रम संवत् ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु यहाँ 'संवत्', वल्लभी संवत् के रूप में प्रयुक्त है, जैसा कि अन्य साक्ष्यों से ज्ञात होता है। समयसुन्दर ने अपनी एक अन्य कृति गाथा-सहस्री में लिखा है —

पणसयरी वाससयं तिण्णि सयाइं अइकमेऊणं।

विक्रमकालाऊ तउ वलहीभंगो समुप्पन्नो॥

अर्थात् विक्रमकाल से ३७५ वर्ष अतिक्रमण करते हुए वलभीभङ्ग हुआ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि द्वारा उल्लिखित धनेश्वरसूरि का समय विक्रम संवत् ८५२ है; परन्तु शत्रुञ्जय-माहात्म्य में वि० सं० ११९९ से धनेश्वरसूरि विक्रम संवत् ८५२ में हुए — सिद्ध नहीं होता है। धनेश्वरसूरि वि० सं० १२३० के बाद ही हुए होंगे। इस संबंध में महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा एवं मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई के मत उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि वास्तव में वल्लभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हो गये हैं, पर जैन लेखक एक ही शीलादित्य का उल्लेख करते हैं। धनेश्वरसूरि भी कई हो गए हैं। सम्भवतः ये धनेश्वरसूरि तेरहवीं और बाद की सदी में हुए लेखक हैं। (विस्तृत जानकारी के लिये दृष्टव्य — (क) राजपूताने का इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३८५-३८९; (ख) जैन साहित्य नो इतिहास, पृष्ठ १४५-१४६ पर टिप्पणी)

२. शत्रुंजय-रास (ढाल १ से पूर्व दूहा २-२)

इस रास में कवि ने सर्वप्रथम शत्रुंजय का माहात्म्य छः गाथाओं में बताया है। पश्चात् पहली ढाल में शत्रुंजय के अन्य इक्कीस नामों का वर्णन किया है, जो कि पाँच कड़ियों में आबद्ध है। छः दोहों में तीर्थ का विस्तार-क्षेत्र बताकर दूसरी ढाल में इस तीर्थ पर कौन-कौन से महापुरुष पधारे और सिद्ध हुए, उनका संक्षेप में निर्देश किया गया है। इस ढाल में बारह कड़ियाँ हैं। तीसरी तथा चौथी ढाल में शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करने वाले सोलह दानदाताओं का सूचन किया हुआ है, जिनमें भरत का नाम प्रमुख है। वे ही सर्वप्रथम वहाँ चतुर्विध संघ लेकर गये और उन्होंने ही सर्वप्रथम वहाँ प्रभु ऋषभदेव का जिनालय बनवाया। तीसरी ढाल में अठारह और चौथी ढाल में बीस गाथाएँ हैं। आगे आठ दोहों में पुनः शत्रुंजय की महिमा प्रस्तुत कर पाँचवीं ढाल में बारह कड़ियों में यह लिखा है कि इस तीर्थ में जाकर मनुष्य यदि अपने पापों की आलोचना करता है, तो वह पाप-मुक्त हो जाता है। अन्तिम छठी ढाल महत्त्वपूर्ण है। इसमें तेईस गाथाओं में शत्रुंजय की तत्कालीन स्थिति का आँखों-देखा चित्रण है। रास में सर्वगाथा १०८ हैं। यह रास कवि ने नागौर जनपद में वि० सं० १६८२, श्रावण कृष्ण पक्ष में लिखा है —

संवत् सोल सइ व्यासीयइ ए, श्रावणवदि सुखकार ।

रास भण्यउ सेत्रुंज तणउ, नगर नागौर मझार ॥

प्रस्तुत रास की ऐतिहासिक साहित्य में गणना की जाती है।^१ इस रास की परवर्ती हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में रास के आरम्भ में दो संस्कृत श्लोक और रास के अन्त में दो हिन्दी गाथाएँ भी देखने को मिलती हैं।

४.१.१० वस्तुपाल-तेजपाल-रास

रास-साहित्य में कवि समयसुन्दर की यह कृति काफी लघु है, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व की है। इसमें कवि ने वस्तुपाल-तेजपाल की प्रगाढ़ धर्मनिष्ठता, उनके द्वारा बनवाये गये मन्दिरों एवं धर्मकार्यों का विस्तृत विवरण दिया है। इन्हीं द्वारा निर्मित आबू का देलवाड़ा का मन्दिर आज विश्व का अद्वितीय मन्दिर है। कला की दृष्टि से तो वह ताजमहल से भी उत्तम कोटि का है।

वस्तुपाल-तेजपाल के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि वे पोरवाड़-वंश के तिलक और जिनशासन के श्रृंगार थे। वे पाटण के निवासी थे। वस्तुपाल के पिता का नाम सोम तथा माता का नाम कुंवरि था और तेजपाल के पिता का नाम आसराज और माता का नाम रतन था। वस्तुपाल एवं तेजपाल धर्मनिष्ठ होने के साथ-साथ शूरवीर एवं राज्य-मन्त्री भी थे। कवि ने दो ढालों में इनके धर्मकृत्यों की अनुमोदना करते हुए उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है; यद्यपि वर्णन में कही-कहीं अतिशयोक्ति भी प्रतीत होती है।

१. जैन साहित्य नो इतिहास, पृष्ठ ६१६

प्रस्तुत रास की रचना तिमिरीपुर में वि० सं० १६८२ में हुई थी, जिसका निर्देश कवि ने इस प्रकार किया है —

संवत् सोल सइ ब्यासीया वरसे, रास कीधउ तिमरीपुर हरषे ।

वस्तुपाल तेजपाल नऊ ए रास, भणतां, सुणतां, परम हुलास ॥

‘समयसुन्दर कृति कुसुमांजली’ में यह कृति सम्पादित है ।

वस्तुपाल-तेजपाल के संबंध में समयसुन्दर के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी रचनाएँ लिखी हैं । इनमें संस्कृत में लिखित मेरुतुङ्गकृत प्रबन्धचिन्तामणि (सं० १३६१), जिनहर्षकृत वस्तुपालचरित्र (सं० १४९७) उल्लेखनीय हैं और भाषा में लिखित रचनाकारों में हीरानन्दसूरि (सं० १४८४), लक्ष्मीसागरसूरि (सं० १५४८), पार्श्वचन्द्र (सं० १५५५), मेरुविजय (सं० १७२१) आदि नाम उल्लेखनीय हैं ।

४.१.११ थावच्चासुत ऋषि-चौपाई

कविवर समयसुन्दर ने पौराणिक कथाओं के आधार पर बहुत से रास या आख्यान लिखे हैं । ‘थावच्चासुत ऋषि-चौपाई’ भी एक ऐसी ही रास कृति है, जिसका कथानक संक्षिप्त है, लेकिन एक सिद्धहस्त कवि के द्वारा इसका प्रणयन होने के कारण इसकी कथा में स्वाभाविकता और भाषा में प्रवाह है ।

‘थावच्चासुत ऋषि-चौपाई’ की समाप्ति कार्तिक वदि ३, वि० सं० १६९१ में खम्भात नगर के खारुयावाड़े में खरतरगच्छ के उपाश्रय में हुई थी । कवि ने स्वयं लिखा है —

संवत् सोल एकाणुं वरषे, काति वदि त्रीज हरषइ बे ।

श्री खम्भायत खारुयावाडइ, चउमास रह्या सुदिहाडइ बे ॥^१

यह रचना दो खण्डों में है । प्रथम खड में दस ढालें हैं और उसमें सर्वगाथा २१७ हैं । द्वितीय खण्ड में भी दस ढालें हैं और उसमें सर्वगाथा २३१ हैं । ढालों के बीच-बीच में दोहे भी रचे गये हैं । कुल मिलाकर यह रचना बीस ढाल में ४४८ गाथाओं में परिनिर्मित है । कवि ने थावच्चासुत के कथानक का आधार ‘ज्ञाता-धर्म-कथा’ ‘गायाधम्म-कह्य’ नामक आगमिक साहित्य से लिया है । ‘ज्ञाताधर्मकथा’ के ‘सेलग’ नामक पंचम अध्ययन में यह वृत्तान्त सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी को कहा था । कवि ने भी रास की अन्तिम पंक्तियों में इसका निर्देश दिया है —

एह एह संबंध अछइ अति सारा, ज्ञाताधरम मझारा बे ।

सुधरम साम कहइ गणधारा, जंबूनइ हितकारा बे ॥^२

थावच्चासुत की घटना तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ के काल की है । अतः कवि ने

१. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.१०.१९-२०)

२. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.१०.१५-१६)

प्रथम खण्ड के प्रारम्भ में सर्वप्रथम उन्हें नमन किया है। प्रास्ताविक निवेदन के पश्चात् कवि समयसुन्दर कहते हैं कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सोरठ देश के अन्तर्गत द्वारिका नामक नगरी में त्रिखण्डपति कृष्ण राज्य करते थे। उसी नगरी में थावच्चा नाम की एक गाथापतिनी गृहस्थ महिला (सार्थवाहिनी) निवास करती थी। उसके एक पुत्र था, जो थावच्चासुत के अभिधेय से पहचाना जाता था। उसने बालवय में विद्याभ्यास किया और क्रमशः बहतर कला में प्रवीण हुआ। यौवनावस्था में बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ।

एक बार द्वारिका नगर में भगवान् नेमिनाथ श्रमणसंघ सहित पधारे। तब उनके दर्शनार्थ श्रीकृष्ण और समस्त नागरिक गये, थावच्चासुत भी गया। धर्मवचन सुनकर थावच्चासुत को संयम-रथ पर आरूढ़ होने की अभिलाषा हुई। घर आकर उसने माता से अपना विचार कहा कि मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। माता को इससे आघात पहुँचा। श्रमणधर्म का पालन करना कितना दुष्कर है — इस विषय में उसने पुत्र को समझाया। यहाँ माता के द्वारा 'दशवैकालिक सूत्र' के आधार पर भी उपदेश दिलवाया गया है —

दीक्षा छड़ पुत्र दोहिली, जेहवी खांडा नी धार।

ते पुत्र तइ पलिस्यइ नहीं, ते भणी कहूँ वार-वार॥

सूघुं संयम पालतां, एतला बोल निषेध।

दसवैकालिक सूत्र मई, भगवन्त भाख्यउ संवेध॥^१

(थावच्चा पुत्र की माता के मुख से दशवैकालिक सूत्र का उल्लेख करवाने में कालव्यतिक्रम का दोष व्यंजित हुआ है, क्योंकि दशवैकालिक की रचना तीर्थङ्कर महावीरस्वामी के बाद हुई है, जबकि थावच्चा का काल अरिहन्त नेमिनाथ स्वामी के काल का है।)

माता के बहुत समझाने पर भी पुत्र अपने निर्णय में दृढ़ रहा। अन्ततः माता की सम्मति प्राप्त हो गई।

थावच्चासुत के साथ अन्य एक हजार पुरुषों ने भी दीक्षा ली। थावच्चासुत का श्रीकृष्ण से सांसारिक संबंध होने के कारण उन्होंने दीक्षा-महोत्सव धूमधामपूर्वक सम्पन्न कराया। दीक्षा लेते समय थावच्चासुत के मस्तक के बाल थावच्चामाता नापी के द्वारा कटा लेती है और उन्हें निर्मल कर स्मृति-चिह्न के रूप में रख लेती है।

समयसुन्दर ने इस प्रसंग को अपनी ओर से जोड़ा है। जिस 'ज्ञाताधर्मकथा' के आधार पर उन्होंने यह कथानक लिया है, उसमें इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है कि दीक्षा लेने से पूर्व थावच्चा माता के नापी के द्वारा थावच्चासुत के बालों को चार अंगुल कटवा लिया और उन्हें स्मृति के लिए रख लिया। फिर बाद में थावच्चासुत ने भगवान् के

१. थावच्चासुत-ऋषि-चौपाई (१.१.२-५)

पास जाकर पंचमुष्टि लोच की। 'ज्ञाताधर्मकथा' के अनुसार तो थावच्चासुत भगवान् के पास गया और पंचमुष्टि लोचकर दीक्षित हो गया।

अस्तु, थावच्चासुत ऋषि ने तपश्चर्या तथा शास्त्राभ्यास में असाधारण सिद्धि प्राप्त की। श्रुत-केवली बनने पर नेमिनाथ भगवान् की आज्ञा से वे अपनी शिष्य-सन्तति के साथ विचरण करने लगे। पाद-पर्यटन करते हुए एक दिन वे 'सेलक' नगर पहुँचे। वहाँ के राजा सेलक के नाम से उस नगर का नाम भी सेलक था। सेलक राजा ने थावच्चासुत का उपदेश-श्रवण किया। मुनि की आर्ष-वाणी से प्रभावित होकर उसने श्रावक के बारह-व्रत अङ्गीकार किये।

थावच्चासुत ऋषि विविध अंचलों में श्रमण करते हुए अनुक्रम से सौगन्धिका नगरी आए। उस नगरी में शुक्र नामक एक सांख्य परिव्राजक रहते थे। वे लोगों को शुचिधर्म का उपदेश देते थे। उसी नगरी में सुदर्शन नामक एक धनाढ्य सेठ भी रहता था। शुक परिव्राजक का शुचिधर्मान्तर्गत प्रवचन सुनकर उसने उस धर्म को ग्रहण कर लिया। कुछ वर्षों के पश्चात् जब थावच्चासुत ऋषि इस नगर में पधारे, तो सुदर्शन सेठ ने इनके यथार्थ विनयधर्म को स्वीकार कर लिया। सुदर्शन श्रावकधर्म का आचरण करने लगा। इस बात को जब शुक परिव्राजक ने सुना, तो वे भी सौगन्धिका नगरी आए और अपने भक्त सुदर्शन से मिले। सेठ ने सारी परिस्थिति से उन्हें अवगत कराया। तदर्थ शुक थावच्चासुत से शास्त्रार्थ करने को तैयार हुए, परन्तु शुक ने सिद्धान्त, क्रियाकाण्ड इत्यादि के सन्दर्भ में जो-जो प्रश्न किये, उन सबके अति संतोषजनक उत्तर सुनकर उनकी मनोगत समस्त शंकाएँ दूर हो गईं। शुक उनसे हतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपने हजार शिष्यों सहित उनके शिष्य बन गए।

अन्त में थावच्चासुत महर्षि ने शत्रुञ्जय तीर्थ पर संलेखना व्रत ग्रहण किया और केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर अन्त में मुक्ति प्राप्त की।

थावच्चासुत के शिष्य शुक मुनि के उपदेश से सेलकराज ने भी प्रव्रज्या ले ली। शुक और सेलक — दोनों मुनियों ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्गतप की उत्कृष्ट आराधना की। शुक मुनि ने अन्त में शत्रुञ्जय तीर्थ पर ही संलेखनासहित मोक्षपद प्राप्त किया। सेलक प्रव्रजित तो हो गए, लेकिन उन्हें श्रमणधर्म का पालन करना दुष्कर प्रतीत होने लगा। वे अत्यन्त रुग्ण हो गए। उनके पुत्र राजा मण्डुक ने उन्हें औषधोपचार के लिए अपने महल में रखा। औषध में मद्यपान, अतिपौष्टिक आहार आदि देने से सेलक प्रमादग्रस्त हो गये। उनकी धर्म-कर्म से रुचि समाप्त-सी हो गई। वे हर समय निद्रा और प्रमाद की गोद में ही सोये रहते। सेलकमुनि का यह शिथिलाचार देख उनके सभी शिष्य उनका त्याग करके चले गये। केवल पन्थक नामक एक शिष्य गुरु के वैयावृत्य हेतु रुका। उसने उनकी बहुत अधिक सेवा-सुश्रूषा की। एक दिन चातुर्मासिक

प्रतिक्रमण करके वह उनसे वर्षावास में हुई भूलों/त्रुटियों के लिए उनका चरण-स्पर्श कर क्षमा-याचना करने लगा। संयोगवश सेलकमुनि निद्राधीन थे। चरण-स्पर्श से वे जग पड़े और शिष्य पर बहुत क्रोधित हुए। इस अपराध के लिये भी मुनि ने पुनः क्षमा मांगी। तब सहसा उन्हें आत्मबोध हुआ। उन्होंने कृत कार्यों के लिए प्रायश्चित्त किया और उन्होंने श्री शत्रुंजय तीर्थ पर समाधिपूर्वक मृत्यु को वरण किया। कवि भी द्वितीय खण्ड के समापन को वरण करता है।

इस रसप्रद रास की हस्तलिखित पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है, जिसका गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशन भी हो चुका है।

४.१.१२ क्षुल्लकऋषि-रास

इस रास में ५ ढालें हैं। यह रास 'क्षुल्लकऋषि-रास', 'क्षुल्लक-रास' एवं 'क्षुल्लककुमार-रास' — तीनों नामों से प्रसिद्ध है। कवि ने भी तीनों नामों को प्रयुक्त किया है। यद्यपि इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है, परन्तु समयसुन्दर ने संक्षेप में भी इस कथा को बड़ी कुशलता से ग्रंथित किया है। इसकी लघुता ही उसके त्वरित विकास में सहायक बनी है। कथासार इस प्रकार है —

अयोध्या नामक नगरी में पुण्डरीक राजा राज्य करता था। उसका भाई कुण्डरीक था, जिसकी पत्नी यशोभद्रा थी। पुण्डरीक ने यशोभद्रा के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर प्रणय-याचना की। यशोभद्रा को पुण्डरीक के कामासक्त अनुचित वचन सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उसे कौटुम्बिक संबंध एवं लोकलज्जा की बात कही, किन्तु पुण्डरीक उस पर इतना आसक्त था कि उसने उसे प्राप्त करने के लिए अवसर पाकर अपने भाई कुण्डरीक ही हत्या कर डाली और यशोभद्रा के साथ बलात्कार करना चाहा। सतीत्व-रक्षण के लिए यशोभद्रा वहाँ से भागकर श्रावस्तीनगरी में पहुँच गई, जहाँ उसने एक साध्वी के उपदेश से प्रभावित होकर जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

जब यशोभद्रा दीक्षित हुई, तब वह गर्भवती थी। कुछ दिन बाद उसकी गुरुवर्या को सगर्भा होने की शंका हुई। गुरुवर्या द्वारा पूछने पर यशोभद्रा के बताया कि यह गर्भ उसके पति का है। गुरुवर्या ने प्रसूति के लिए सारी व्यवस्था करवा दी। उसने एक बालक का प्रसव किया, जो क्षुल्लककुमार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका पालन-पोषण शय्यातरी श्राविका ने किया।

आठ वर्ष के अल्पवय में ही क्षुल्लककुमार ने यशोभद्रा के कहने से अजितसूरि के पास संयम ग्रहण कर लिया। क्षुल्लक संयम-जीवन में होने वाले कष्टों के कारण संयम से विचलित हो गया। यौवन-अवस्था होने के कारण वह कामग्रस्त हो गया। अतः उसने गृहस्थ-जीवन अंगीकार करना चाहा। सभी ने उसे यह कार्य न करने की प्रेरणा दी, किन्तु उस पर उनका कोई प्रभाव न पड़ सका। अन्ततोगत्वा साध्वी यशोभद्रा (माता) ने

रत्नकम्बल एवं नामाङ्कित अंगूठी देकर उसे अपने चाचा के पास अयोध्या जाने को कहा। जब क्षुल्लक अयोध्या पहुँचा, तो वहाँ एक नाटक खेला जा रहा था। एक नर्तकी द्वारा सारी रात नृत्य करते रहने पर भी राजा ने उसे पारितोषिक स्वरूप कुछ नहीं दिया। अन्यमनस्का नर्तकी के स्वर-भंग होने लगे। ऐसी स्थिति में नट ने निम्नाङ्कित पद में कहा कि यह रङ्ग में भङ्ग कैसा —

सुदु, गार्डयं सुदु वाडयं, सुदु, नच्चियं सामसुन्दरि।

अणुपालिय दीह रायं सुयिणं ते मास मास माय ए॥

नट के इस पद्य से प्रभावित होकर राजकुमार ने दो कुण्डल, क्षुल्लक ने रत्नकम्बल, मुंहता (मन्त्री या विदूषक) ने कंगन, महावत ने अंकुश और सार्थवाहिनी ने हार — इस प्रकार कुल पाँच बहुमूल्यवान चीजें नर्तकी को भेंट दे दीं।

आगामी दिवस नृप ने पाँचों व्यक्तियों से नर्तकी को भेंट देने का कारण पूछा, तब राजकुमार ने कहा — राजन्, योग्य हो जाने पर भी मुझे आधा राज्य न मिलने के कारण मैं सोच रहा था कि क्यों न राजा को मार दिया जाए? उसी समय नट की गाथा से यह शिक्षा मिली कि बहुत बीती, थोड़ी रही; अतः शेष को क्यों खो रहे हो? क्षुल्लक ने बताया कि मैं दीक्षा-पर्याय के कष्टों एवं परीषहों का स्मरण कर राज्यसुख सोच रहा था। मुंहता ने कहा — आपने मेरे भोजन एवं आवास की व्यवस्था नहीं की थी; अतएव मैं आपके विनाश की बात सोच रहा था। महावत बोला — राजन्! मैं हाथी का अपहरण करके अन्यत्र चले जाने का विचार कर रहा था, क्योंकि आपने कभी मुझे अपेक्षित भोजन नहीं दिया। सार्थवाहिनी ने प्रत्युत्तर में कहा — मेरे प्रियतम को परदेश गये बारह वर्ष हो गये, अभी तक लौटे नहीं। इस गाथा से मुझे यह अर्थबोध हुआ कि अब वे आने वाले हैं।

इस तरह सभी ने अपनी-अपनी दृष्टि से उक्त गाथा का अर्थ लगाया। राजा उनके उत्तर सुनकर बड़ा प्रभावित हुआ। वह बोला — मैं आप सबकी आन्तरिक इच्छाएँ पूरी करूँगा; किन्तु पाँचों संसार से विरक्त हो गये थे। अतः सभी ने प्रत्युत्तर में कहा कि अब हम इस असार संसार में नहीं पड़ना चाहते। सभी ने पवित्र चारित्र-धर्म ग्रहण कर अपना जीवन सार्थक किया।

इस प्रकार क्षुल्लककुमार एवं अन्य चार लोग अपथगामी होने से बच गये। उसे आचार्य, मातृसाध्वी आदि द्वारा अनेक प्रकार से दिये गये उपदेश पथभ्रष्ट होने से न रोक सके, जबकि नट की एक गाथा ने उसके जीवन में विलक्षण परिवर्तन ला दिया।

अन्त में क्षुल्लक ऋषि ने उत्कृष्ट संयम का पालन किया और उत्तम गति पाई।

यहाँ कवि ने क्षुल्लककुमार के संबंध में लिखा है कि 'दशवैकालिक सूत्र मांहे कह्यो, ते उत्तम गति पायोजी।' किन्तु यह तथ्य 'दशवैकालिकसूत्र' में कहीं भी उल्लिखित नहीं है। सम्भव है कि उक्त तथ्य दशवैकालिकसूत्र की किसी वृत्ति में कथित हो।

उपर्युक्त कथानक कवि ने 'ऋषिमण्डल-टीका' से गृहीत किया है, जैसा कि कवि ने स्वयं सूचित किया है-

ऋषिमण्डल टीका थकी ऊद्धर्यो, क्षुल्लककुमार नउ रासो जी ।

समयसुन्दर कहइ सामग्री सदा, लहिज्यो लील विलासो जी ॥

प्रस्तुत रास की रचना समयसुन्दर ने जालौर में वि० सं० १६९४ के वर्षावास में की थी। इसकी रचना के लिए श्रावक लूणिया फसला ने कविवर से अनुरोध किया था। उन्होंने कविवर को अपने पास रखा और उसी समय कवि ने इस रास का गुम्फन किया था।

यह रास 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

४.१.१३ चम्पक-श्रेष्ठी-चौपाई

प्रस्तुत चौपाई का कथानक पूर्व एवं पश्चिम — दोनों देशों में प्रसिद्ध है। यह कथानक चम्पकश्रेष्ठी की जीवनी से सम्बन्धित है। इस कथानक को जैन साहित्य के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं बौद्धसाहित्य में भी पाते हैं। जैन साहित्य में कवि समयसुन्दर के अतिरिक्त चम्पकश्रेष्ठी की कथा पर सोमसुन्दरसूरि के शिष्य जिनकीर्ति की रचना (१५वीं शती), जयविमलगणि के शिष्य प्रीतिविमल की रचना तथा जयसोम की रचना भी उपलब्ध होती है।^१

समयसुन्दर कृत 'चम्पक-श्रेष्ठी-चौपाई' दो खण्डों में विभक्त है। इसका विवरण इस प्रकार है — प्रथम खण्ड में १३ ढालें, ३४४ गाथाएँ हैं तथा द्वितीय खण्ड में ८ ढालें, १६२ गाथाएँ हैं। ढालों के पूर्व कुछ दोहे हैं। सब मिलाकर इसमें २१ ढालें, ५०६ गाथाएँ हैं, जिसकी ७०० ग्रन्थाग्रन्थ संख्या होती है।

प्रस्तुत चौपाई में चम्पकश्रेष्ठी की मुख्य कथा के व्यक्तिरिक्त किन्तु उसी के अन्तर्गत भाग्य और पुरुषार्थ के महत्त्व को सूचित करने वाली दो और कथाएँ योजित हैं। कथा को मनोरंजक बनाने के लिए एक हास्यपूर्ण कथा भी संयुक्त की गई है। संक्षेप में कथासार इस प्रकार है —

प्रथम खण्ड में कवि समयसुन्दर कहते हैं कि पूर्व देश में चम्पापुरी नामक नगरी में वृद्धदत्त नामक एक करोड़पति सेठ रहता था, लेकिन वह कंजूस था। सेठ के कौतुक देवी नामक स्त्री, साधुदत्त नामक भाई और तिलोत्तमा नामक पुत्री थी। एक रात्रि में देव द्वारा उसके धन का भोक्ता काम्पिलपुर के त्रिविक्रम वणिक् की पुष्पवती दासी से उत्पन्न होने वाला है, यह ज्ञात किया।

दूसरे दिन दोनों भाई विचार-विमर्श करने लगे। साधुदत्त ने भावी की अमितता के संबंध में एक दृष्टान्त सुनाया, जो व्यर्थ में भाग्यचक्र को चुनौती देता है; किन्तु इसके

१. देखिये — जिनरत्नकोश, पृष्ठ १२१

विपरीत वृद्धदत्त की मान्यता है कि उद्यम के आगे भावी कुछ नहीं। इस संबंध में उसने भी दृष्टान्त सुनाया और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उद्यम का आश्रय लेकर विधाता के लेख में भी मेख मारी जा सकती है।

वृद्धदत्त अपना कार्य सिद्ध करने के लिए कम्पिला नगरी जाकर व्यवसाय करने लगा। सेठ त्रिविक्रम से उसने घनिष्ठ मित्रता की। चम्पापुरी जाते समय भोजनादि की व्यवस्था हेतु वह पुष्पवती दासी को साथ में ले गया। मार्ग में उसने उसे मरणासन्न कर दिया। उसे मृतक समझकर वृद्धदत्त चम्पापुरी चला गया। उधर पुष्पवती ने मृत्यु के पूर्व एक उत्तम बालक को प्रसव किया। एक पथिक वृद्धा उस बालक को ले गई और वह राजाज्ञा से उसका पालन करने लगी। चम्पक वृक्ष के नीचे बालक मिलने से उसका नाम चम्पक रखा गया। बुद्धिशाली चम्पक तरुणवय में प्रचुर वित्तोपार्जन करके राजमान्य नगर सेठ हो गया।

चम्पक एक बार चम्पा नगर गया। वृद्धदत्त ने इसकी शालीनता और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपनी पुत्री के योग्य वर माना, परन्तु जब उसे उसका परिचय मिला, तो उसके हृदय पर साँप लोटने लगे और उसे देवी-वचनों की सत्यता प्रमाणित होती हुई प्रतीत हुई। तब उसने उसकी पुनः हत्या कराने का षडयन्त्र रचा। वृद्धदत्त ने उसे भावी भारी व्यवसाय का लोभ देकर एक पत्र के साथ उसे अपने भाई साधुदत्त के पास भेजा। इसमें चम्पक की हत्या करने का निर्देश था।

चम्पक वृद्धदत्त के घर पहुँचा। उसकी पुत्री उसे देखते ही मुग्ध हो गई। उसने दूसरा पत्र लिखा, जिसमें आज ही दोनों का विवाह करने का उल्लेख था। साधुदत्त ने धूमधाम से विवाह कर दिया। इससे वृद्धदत्त जल-भुन गया, परन्तु यह करतूत तिलोत्तमा की है, यह ज्ञात कर चुम्पी साथ ली।

दो माह बाद वृद्धदत्त ने अपनी पत्नी से चम्पक को विष खिलाने को कहा, जिसे तिलोत्तमा ने सुन लिया। तिलोत्तमा ने अपने पति से कहा कि अपशकुन होने से आप दो महीने तक इस घर का अन्न-जल कुछ भी न खाएँ। चम्पक ने वैसा ही किया। वृद्धदत्त ने अपनी सफलता के लिए दूसरा उपाय किया। कुछ सुभटों को लोभ देकर उसने चम्पक को मार डालने के लिए कहा। सुभटों ने एक रात्रि में चम्पक सेठ के भ्रम से वृद्धदत्त की हत्या कर डाली। भावी प्रबल है। कवि समयसुन्दर कहते हैं —

सहु को लोक कहै छै सरज्यूं, ते बोल केता वांचु रे।

उद्यम छै पणि भावी अधिकुं, समयसुन्दर कहे सांचु रे ॥

इस प्रकार चम्पक सेठ स्वतः सारे धन का स्वामी बन गया और क्रमशः वह अरबपति हो गया है।

द्वितीय खण्ड में कवि समयसुन्दर चम्पक सेठ की ऋद्धि का वर्णन करते हैं।

तत्पश्चात् कविवर लिखते हैं कि एक बार चम्पापुरी में केवली भगवान् पधारे। चम्पक ने उनसे अपने जीवन की विविध घटनाओं के बारे में पूछा, तो वे कहते हैं —

समुलिका नगरी के कुटिल बुद्धिवाला भवदत्त एवं सरल स्वभावी भवभूति तापस मरकर यक्ष हुए। फिर भवदत्त का जीव अन्यायपुर-पाटण में वंचनामति सेठ हुआ और भवभूति पाडलीपुर में महासेन नाम का क्षत्रिय हुआ। महासेन तीर्थयात्रा करते हुए अन्यायपुर पहुँचा। वहाँ उसने वंचनामति के यहाँ अपनी गठड़ी धरोहर के रूप में रखी, जिसमें पाँच बहुमूल्य रत्न भी थे। महासेन के तीर्थयात्रा करके लौटने पर सेठ उसे पहचानने और रत्न लौटाने से इंकार कर बैठा। आखिर उसने कपटकोशा नामक एक वेश्या का आश्रय लिया। वेश्या ने अपने दावपेच से महासेन को रत्न दिला दिये। वणिक, जो अब तक लोगों को ठगता रहा, एक वेश्या द्वारा स्वयं ठगा गया। एक बार महासेन के देश में दुष्काल पड़ा, जिसका चित्रण छठी ढाल में करते हुए कवि ने वि० सं० १६८७ के दुष्काल से उसकी तुलना की है।

महासेन ने इस अकाल के समय वे पाँच रत्न विक्रय कर धान्यादि से अकालग्रस्तों का बड़ा उपकार किया। उसकी पत्नी गुणसुन्दरी ने भी दीन-अनाथों की बहुत सेवा की। इसी काल में महाभयंकर व्याधिग्रस्त एक वृद्धा की शूश्रूषा की।

केवली भगवान् ने कहा — महासेन के भव में तुमने जो अनुकम्पादान दिया, उसके प्रभाव से तुम इस भव में बड़े भारी सेठ हुए और गुणसुन्दरी का पुनर्जन्म इस तिलोत्तमा के रूप में हुआ। जिस वृद्ध की तुमने सेवा की, उसने इस भव में तुम्हारा पोषण किया। वंचनामति ने तुम्हारे रत्न लिये, अब तुम उसके ९६ करोड़ के अधिपति बने। गत भव में तुमने कुल मद किया, अतः इस भव में दासी-पुत्र बने। वंचनामति को अपमानित किया। अतः उसने तीन बार तुम्हें मारने का प्रयत्न किया।

पूर्वभव सुन चम्पक और तिलोत्तमा ने प्रव्रज्या लेली। शुद्ध संयम पालकर देव हुए और भविष्य में चम्पक मोक्षगामी होगा।

अन्त में कवि ने लिखा है कि मैंने वि० सं० १६९५ में अपने शिष्य के आग्रह से जालोर में अनुकम्पादान पर इस दृष्टान्त-आख्यान का प्रणयन अप्रमत्त होकर किया —

अनुकंपा ऊपर कह्यो, चम्पक सेठिनो दृष्टान्तो रे।
 अनुकम्पा सह आदरो, एक थी छै मुगति एकान्तो रे ॥
 सम्वत् सोल पंचाणूरे, मैं जालौर मांहे जोड़ी रे।
 चम्पक सेठ नी चौपाई, अंग आलस ऊंघ छोड़ी रे ॥
 समयसुन्दर शिष्य तेहना, तिण चौपाई कीधी एहौ रे।
 शिष्य तणै आग्रह करी, जे ऊपर अधिक सनेहो रे ॥^१

१. चम्पक-श्रेष्ठि-चौपाई (२.८.१४-१५,१७)

इस चौपाई की हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आणन्दजीकल्याणजी एवं धोरा जी के ज्ञान भण्डार में भी इसकी प्रति है। इस कृति को भँवरलाल नाहटा ने सम्पादित करके सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर द्वारा प्रकाशित करवाया है।

४.१.१४ गौतम-पृच्छा-चौपाई

कर्म के मुख्यतः दो भेद हैं — १. पुण्य-कर्म और २. पाप-कर्म। सांसारिक सुखों का कारण पुण्य और दुखों का कारण पाप है। प्राणी जिन उपायों से पुण्य-कर्म एवं पाप-कर्म का संचय करता है, उनका जैनागमों में सविस्तार विवेचन हुआ है। पुण्य एवं पाप-कर्मों के विपाक के बोध के लिए यह कृति रची है।

प्रस्तुत कृति को गहराई से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कृति प्राकृत भाषा में किसी पूर्वाचार्य कृत 'गौतम-पृच्छा' का भावानुवाद है —

मधु पाडइ वनि आगि छइ त्रोडइ वनस्पति बाल।

डांभइ आंकइ जे जीवनइ कोढी हुवइ तत्काल ॥ ३.३० ॥

उपर्युक्त पद्य मूल 'गौतम-पृच्छा' की निम्न गाथा का कितना सुन्दर अनुवाद है —

महुघाय अग्गिदाहं अंकं वा जो करेइ पाणीणं।

बालाराम-विणासी कुट्टी सो जायइ पुरिसो ॥^१

दोनों में अन्तर यह है कि प्राकृत 'गौतम-पृच्छा' प्रश्नोत्तर-शैली में है जबकि प्रस्तुत 'गौतम-पृच्छा-चौपाई' में मात्र उन प्रश्नों के उत्तर ही पद्यबद्ध हुए हैं, जो मूल ग्रन्थ में उल्लिखित हैं। कवि ने स्वयं ने तो केवल इतना-सा संकेत दिया है —

पुण्य क्रतूत जिके करइ, ते आपणपुं निस्तारइ रे।

समयसुन्दर साचुं कहइ, गौतमपृच्छा अणुसारइ रे ॥^२

विवेच्य कृति में कुल ४८ प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। कवि ने यह भी सूचित किया है कि ये प्रश्न भगवान महावीर से उनके प्रधान शिष्य गौतम ने पूछे थे। कवि के शब्दों में —

प्रसन पडूतर परगड़ा, इह किण छई अठतालीसो रे।

गुरु महावीर उत्तर दीया, अनइ पूछ्या गौतम सीसो रे ॥^३

यह रचना पाँच ढालों में निबद्ध है, जिसमें सब मिलाकर ७४ गाथाएँ हैं। इसका रचना-काल वि० सं० १६९५ है। कवि ने इसकी रचना पालहनपुर से पाँच कोस उत्तर दिशा में स्थित चान्द्रेठ (या आंकेठ) नामक ग्राम के खरतरगच्छीय श्रावक जसवंत के

१. श्री गौतम-पृच्छा-वृत्तिः, गाथा ४५, पृष्ठ ९३

२. गौतम-पृच्छा चौपाई (५.७)

३. वही (४.२)

आग्रह से पन्द्रह दिन वहाँ रहकर की थी। कवि ने स्वयं लिखा है —
 पाल्हणपुर थी पाँचे कोसे, उत्तर दिसि चांद्रैट गामो रे।
 तिहां खरतर श्रावक वसइ, साह नीबउ जसवंत नामो रे।
 तेह नइ आग्रह तिहां रह्या, दिन पनरह सीम त्रिठाणुं रे।
 तिहां कीधी ए चउपइ, संवत् सोल पंचाणु रे ॥^१

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि 'गौतम-पृच्छा-चौपाई' की विषय-वस्तु कर्म-विपाक से संबंधित है। किस कर्म के कारण जीव शुभ फल पाता है और किस कर्म के कारण वह अशुभ फल पाता है, यही इस कृति का प्रतिपाद्य विषय है। जैसे —

जो जीव नी रक्षा करइ, हीयइ परम दयाल।

वे घणा वरस जीवइ वली, घणा हुयइ बाल ॥^२

'गौतम-पृच्छा-चौपाई' की पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से उपलब्ध हुई है। सम्प्रति, यह चौपाई अप्रकाशित है।

४.१.१५ धनदत्त-चौपाई

यह लघु कृति व्यवहार-शुद्धि एवं नैतिक सन्दर्भों से युक्त है। इस चौपाई की रचना कवि समयसुन्दर ने अहमदाबाद में वि० सं० १६९६ के आश्विन मास में की थी। चौपाई में प्राप्त रचनाकाल का निर्देश अधोलिखित है —

संवत् सोल छिन्नू समइ ए, आसू मासि मझारि।

अमदाबादइ ए कह्यौ ए, धनदत्त नउ अधिकारि ॥^३

कृति की प्रामाणिकता अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त हस्तलिखित पाण्डुलिपि के आधार पर स्पष्ट होती है। अहमदाबाद, धोराजी एवं पाटण के शास्त्र-भण्डारों में भी इसकी प्रति का अनुसन्धान मिला है। श्रीभंवरलाल नाहटा ने अपनी कृति 'समयसुन्दर-रास-पंचक' में इस चौपाई का सम्पादन भी किया है। 'समयसुन्दर-रास-पंचक' का प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर द्वारा हुआ है।

अमरचन्द्र, माणिक्यसूरि प्रभृति द्वारा लिखित धनदत्त-कथा साहित्य-लोक को प्राप्त है। अमरचन्द्र कृत धनदत्त-कथा सर्वाधिक प्राचीनतम मानी जाती है। समयसुन्दर रचित 'धनदत्त-चौपाई' में ढालें ९ हैं, गाथाएँ १६१ हैं और ग्रन्थाग्रन्थ २१८ श्लोक-परिमाण हैं। इसका कथानक व्यवहार-शुद्धि पर अवलम्बित है। श्रावक का कैसा शुद्ध व्यवहार होना चाहिये, उसे व्यंजित करना ही कृति का उद्देश्य परिलक्षित होता है।

समयसुन्दर तीर्थङ्कर शान्तिनाथ को नमन करके चौपाई का प्रारम्भ करते हैं।

१. गौतम-पृच्छा-चौपाई (१.५-६)

२. वही (३.२६)

३. धनदत्त-चौपाई (९.७)

चौपाई के आरम्भ में श्रावक व्रतोपयोगी २१ गुणों को बतलाया गया है, जिनमें व्यवहार-शुद्धि गुण सर्वप्रधान है।

अयोध्या नगरी में श्रेष्ठी धनदेव का पुत्र धनदत्त निवास करता था। बालवय में ही उसे माता-पिता का वियोग सहना पड़ा। एक बार उसने धर्मघोषसूरि के प्रवचन से प्रभावित होकर व्यवहार-शुद्धि का नियम स्वीकार किया कि वाणिज्य-व्यवसाय में न न्यून दे, न अधिक ले, अच्छी वस्तु को बुरी न कहे, बुरी को अच्छी न कहे, जिस समय देने का वायदा किया हो, उसी समय दे, मिथ्या भाषण न करे आदि।

अयोध्या में व्यवसाय न चलने से धनदत्त धनोपार्जन के लिए विदेश गया। उसकी पत्नी ने उसे विदेश में भी इस नियम का पालन करने को कहा। विदेश में उसने एक सेठ के यहाँ नौकरी की, लेकिन सेठ का अशुद्ध व्यवहार देख कर उसने नौकरी छोड़ दी। तत्पश्चात् एक गाँव में उसने एक श्राविका के यहाँ नौकरी की, किन्तु यहाँ भी उसके नियम का पालन न हो पाने के कारण धनदत्त अपना हिसाब लेकर साथियों से जा मिला। साथियों को स्वनगर जाते समय बिंजौरि के फल अपनी पत्नी को देने के लिए दिये। साथी प्रवहण से गये। मार्ग में उनके बिंजौरि के फल से एक राजकुमार का दाह-ज्वर समाप्त हो गया। तदर्थ उन्हें उसका प्रचुर धन मिला।

सभी साथी अयोध्या पहुँचे। धनदत्त के मित्र ने वह सारा धन उसकी पत्नी को दे दिया। पत्नी को शंका हुई कि उसके पति ने अपना व्रत भंग कर दिया है, परन्तु मित्र द्वारा द्रव्य-प्राप्ति का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर यह सन्तुष्ट हो गई। अब तो धर्म में उसकी रुचि और अधिक दृढ़ हो गयी। उसने नगर में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली और दान आदि धर्मकृत्य करने लगी।

इधर धनदत्त फटेहाल स्वदेश लौटा। पत्नी और मित्र से सारा वृत्त ज्ञातकर वह भी बहुत आनन्दित हुआ और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा। अन्त में उसने संयम-धर्म का पालन करके मोक्ष-पद प्राप्त किया।

४.१.१६ पुंजारत्नऋषि-रास

पुंजारत्नऋषि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का प्रतिपादन करती हुई प्रस्तुत कृति कवि की विनीतता, गुणग्राहकता तथा साम्प्रदायिक उदारता को अभिव्यक्त करती है। कवि ने इसकी रचना श्रावण शुक्ला ५, संवत् १६९८ में की थी। इस विषय में कवि ने स्वयं ही लिखा है —

संवत् सोल अठाणुवइ, श्रावण पंचमी अजुवालइ रे।

रास भण्यो रलियामणो, श्री समयसुन्दर गुण गायइ रे।^१

१. पुंजारत्न-ऋषि-रास (३७)

आलोच्य कृति में कवि समयसुन्दर पुंजारत्न (पुंजरत्न) ऋषि के संबंध में कहते हैं कि गुजरात राज्य के राजित ग्राम में करडुआ पटिल गोत्र के गोरा नामक श्रमणोपासक रहते थे। उनकी पत्नी का नाम धनबाई था। श्रमणोपासक गोरा पार्श्वचन्द्र-गच्छ के विमलचन्द्रसूरि से प्रतिबोध पाकर राजनगर में वि० सं० १६७० की आश्विन शुक्ला ९ को प्रव्रजित हो गया। तत्पश्चात् गोरा पुंजरत्न ऋषि के नाम से प्रख्यात हुआ। उसने अपने संयम-काल में उग्र तपस्या करके अपनी आत्मा को ग्रन्थियों से विमुक्त करने का अथक प्रयास किया। प्रस्तुत कृति में ऋषि के २८ वर्ष तक किये गये स्तुत्य तप का ही वर्णन है। कवि ने भाव-विभोर होकर इस ऋषि की तपस्या की अनुमोदना की है।

कवि ने ऋषि कृत सभी तपों का अलग-अलग उल्लेख किया है। अन्त में कवि ने यह भी निर्देश दिया है कि सम्प्रति ऐसा कोई अन्य तपस्वी नहीं है —

आज तो तपसी एहवो, पुंजा ऋषि सरीखो न दीसइ रे।

तेहने वंदता विहरावतां, हरखेकरि हियडो हींसइ रे ॥^१

इस कृति में ३७ गाथाएँ हैं। इसकी हस्तलिखित प्रति श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है तथा प्रस्तुत कृति 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित भी है।

४.१, १७ द्रौपदी-चौपाई

'द्रौपदी-चौपाई' समयसुन्दर की प्रतिभा से प्रसूत हुई, प्रौढतम कृतियों में से एक है। कवि की वृद्ध अवस्था में इस कृति का प्रणयन हुआ था। इसका रचना-काल विक्रम संवत् १७०० का माघ मास और रचना स्थल अहमदाबाद है, जैसा कि कवि ने लिखा है —

अहमदाबाद नगर माहे, संवत् सतरह सइ वरसइ रे।

माह मास थइ चउपई, हुंसी माणस ने हरषइ रे ॥^२

इस कृति के लेखन एवं इसके संशोधन में कवि के दो शिष्य सहायक बने — १. वाचक हर्षनन्दन और २. हर्षकुशल। कवि ने स्वयं उपर्युक्त तथ्य का स्पष्ट संकेत किया है — वाचक हर्षनन्दन वली, हरषकुसलइ सानिध कीधी रे।

लिखण सोझण साहाय्य थकी, तिण तुरत पूरी करि दीधी रे ॥^३

प्रस्तुत कृति में द्रौपदी की कथा निबद्ध है। इसका मूल कथानक 'ज्ञाताधर्म-कथांग' के 'दोवई' (द्रौपदी) नामक अध्ययन पर आधारित है। चौपाई तीन खण्डों में विभाजित है और इनमें सब मिलाकर ३४ ढालें हैं। सम्पूर्ण रचना १००१ श्लोक प्रमाण है। अभी तक इस कृति का प्रकाशन नहीं हुआ है।

१. पुंजारत्न-ऋषि-रास (३५)

२. द्रौपदी-चौपाई (३.७.५)

३. वही (३.७.६)

कवि ने प्रस्तुत कथा के माध्यम से कर्म-विपाक के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनुष्य सामान्य से लाभ या विषय-भोग की कामना से प्रेरित होकर कभी-कभी ऐसा कुत्सित तथा क्रूर कर्म कर बैठता है कि जिसका दुष्फल उसे सुदीर्घकाल तक भोगने के लिये बाध्य होना पड़ता है। द्रौपदी की कथा इस तथ्य को सहज रूप से प्रदर्शित करती है। 'द्रौपदी-चौपाई' की कथावस्तु संक्षेप में यों है —

द्रौपदी के पूर्वजीवन की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से प्रारम्भ करते हुए कवि ने लिखा है कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चम्पा नामक एक नगरी थी। उसमें तीन ब्राह्मण-बन्धु निवास करते थे — सोम, सोमदत्त और सोममूर्ति। उनकी तीन पत्नियाँ थीं — नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री। सभी एक साथ रहते थे और वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

एक दिन नागश्री ने अपने परिवार के लिए भोजन तैयार किया। भोजन में उसने उत्तम रीति से तूंबे की तरकारी बनायी, किन्तु जब उसने उसे चखा तो वह कडुआ एवं विषैला लगा। अतः उसने उपालम्भ से मुक्ति पाने के लिए उस तरकारी को एक स्थान पर छिपाकर रख दिया और दूसरी तरकारी बना ली। परिवार के सभी सदस्य भोजन करके अपने-अपने कार्य में संलग्न हो गए। नागश्री गृह में अकेली रह गई। उसी समय मासक्षमण के पारणे हेतु धर्मरुचि नामक एक मुनि भिक्षा के लिए उसके घर आए। नागश्री ने तपस्वी मुनि के पात्र में वह विषाक्त शाक उंडेल दिया।

मुनि उसी आहार को लेकर अपने गुरु धर्मघोष स्थविर के समीप पहुँचे। गुरु उसकी गन्ध से ही समझ गये कि यह भिक्षा विषयुक्त है। औपचारिक परीक्षण करके उन्होंने शिष्य को उसे किसी एकान्त स्थान में विसर्जित करने की आज्ञा दी। धर्मरुचि गये। उन्होंने उसमें से एक बून्द लेकर भूमि पर गिरा दिया और उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। गन्ध से चींटियाँ एकत्र हो गयीं। ज्यों ही वे उसके रस का आस्वादन करतीं, जीवन से हाथ धो बैठतीं। यह देख मुनि ने यह सोचते हुए उस तरकारी को स्वयं ही खा लिया कि यदि उस तरकारी की एक बून्द से इतनी चींटियाँ अपने प्राण खो बैठीं, तो ज्ञात नहीं, सम्पूर्ण तरकारी से कितनी चींटियों की हिंसा होगी। विष ने अपना प्रभाव दिखाया और मुनि ने समभावपूर्वक अपनी देह का विसर्जन कर दिया।

धर्मरुचि के न लौटने पर गुरु ने दूसरे शिष्य को उनकी खोज के लिए भेजा। उसने सारी वस्तुस्थिति स्पष्ट की। नागश्री का पाप छिपा न रहा। सर्वत्र उसकी चर्चा फैल गई। घरवालों ने ताड़ना-तर्जना करके उसे घर से बाहर निकाल दिया। वह भिखारिन बन गई। अन्तिम अवस्था में वह सोलह रोगों से ग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुई। नरकगति, तिर्यञ्चगति आदि विविध गतियों में जन्म-मरण करती हुई उसने तीव्र दुखों का अनुभव किया और पुनः मनुष्य-भव प्राप्त किया।

दक्षिण भारत की चम्पापुरी नामक नगरी में सागरदत्त नामक समृद्ध सार्थवाह की पत्नी भद्रा की कुक्षी से नागश्री के जीव ने जन्म प्राप्त किया। उसका नामकरण 'सुकुमालिका' हुआ।

जिनदत्त सार्थवाह ही धर्मपत्नी इन्द्रदत्ता के पुत्र सागर ने खेल-खेल में उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया। दोनों का विवाह हो गया, परन्तु विवाह होने पर भी पति द्वारा उसका परित्याग कर दिया गया, क्योंकि सुकुमालिका की देह का स्पर्श उसे तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण एवं पावक जैसा उष्ण लगा। आग्रह करने पर सागर कहता है कि मैं मृत्यु का आलिंगन कर सकता हूँ, लेकिन सुकुमालिका का तो स्पर्श भी सहन नहीं कर सकता।

सुकुमालिका का एक दिन भिखारी के साथ पुनर्विवाह किया गया, किन्तु वह भी उसका अंग-स्पर्श सहन न कर सका और सागर की तरह वह भी रात में ही उसे छोड़कर भाग गया। अन्त में उसके पिता ने निराश होकर उससे कहा, 'पुत्री! तेरे पाप-कर्म का उदय है, उसे सन्तोष के साथ भोग।' पिता ने दानशाला खोल दी। सुकुमालिका दान देती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी।

एक बार गोपालिका नामक साध्वी का भिक्षा के लिए उसके यहाँ आगमन हुआ। सुकुमालिका ने अपना दुःखित आत्म-वृत्त सुनाया और दुःख से मुक्ति की युक्ति पूछी। साध्वी ने उसे उपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर उसने साध्वी-दीक्षा ग्रहण कर ली। आतापना लेते हुए एक दिन साध्वी सुकुमालिका ने पाँच पुरुषों के साथ विलास करती एक वेश्या को देखा। उसके अन्तरतम में दबी वासना उद्दीप्त हो उठी। उसके मन में भी इसी तरह के सुखभोग की लालसा पैदा हुई। उसने निदान (संकल्प) किया कि 'मेरी तपस्या का फल हो, तो मैं भी इसी प्रकार पाँच पतियों से विलास करूँ।' निदान, साधक जीवन का शल्य है और शल्य से तीव्र कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार सुकुमालिका ने अपनी साधना को सांसारिक सुखभोग प्राप्त करने के लिए नष्ट कर दिया। आयुष्य पूर्ण होने पर वह देवगति में देव-गणिका के रूप में उत्पन्न हुई।

देव-पर्याय का अन्त होने पर उसका जन्म पंचाल-देश की कंपिला नामक नगरी के राजा द्रुपद की कन्या के रूप में हुआ। यौवन-वय में उसके स्वयंवर का आयोजन किया गया। स्वयंवर में वासुदेव कृष्ण, पाण्डुव आदि अनेक राजा उपस्थित हुए। द्रौपदी ने पाँचों पाण्डवों का वरण किया। इस पर किसी ने कोई आपत्ति नहीं की, मानो वह कोई विशेष घटना नहीं थी। इससे तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। (महाभारत में द्रौपदी के वरण का श्रेय अर्जुन को उसकी धनुर्विद्या के कौशल से प्राप्त होता है, जबकि जैन-परम्परा में द्रौपदी पाँचों पाण्डवों का एक ही साथ वरण करती है। इस वरण में उसके पूर्वभव का 'निदान' ही कारण है।)

द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों के साथ विधिवत् विवाह सम्पन्न हुआ और वह उनके साथ हस्तिनापुर जाकर आनन्दपूर्वक रहने लगी।

एक बार नारद ऋषि हस्तिनापुर आए। सबने उनका यथोचित सम्मान आदि किया, लेकिन द्रौपदी अपने आसन पर ही बैठी रही। नारद द्रौपदी से रुष्ट हो गए। उन्होंने उससे बदला लेने का विचार किया। वे आकाश-पथ से अमर-कंका के राजा पद्मनाभ के पास पहुँचे। द्रौपदी के सौन्दर्य की अतिशय प्रशंसा करके पद्मनाभ को उसके प्रति ललचाया। पद्मनाभ ने दैवी सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। (महाभारत में द्रौपदी का चीर-हरण होता है, किन्तु जैन-परम्परा में स्वयं द्रौपदी का ही अपहरण हो जाता है।) अब द्रौपदी का जीवन संस्कारित हो चुका था। पद्मनाभ ने जब उसे भोग के लिए निमन्त्रित किया, तो उसने छह मास की अवधि मांगी, क्योंकि उसे विश्वास था कि इस अवधि में श्रीकृष्ण यहाँ आकर उसका अवश्य उद्धार करेंगे। हुआ भी यही। कृष्ण पाण्डवों सहित अमरकंका पहुँच गये। सर्वप्रथम पद्मनाभ से पाण्डवों का युद्ध हुआ, किन्तु जब पाण्डव उसे हरा न सके, तो कृष्ण रणाङ्गण में उतरे। उन्होंने उसे पराजित किया और द्रौपदी का उद्धार किया। पद्मनाभ द्रौपदी की शरण में आया। द्रौपदी ने उसे कृष्ण द्वारा क्षमा दिलवाई। वहाँ से हस्तिनापुर लौटते समय पाण्डवों को कुछ शरारत सूझी। उन्होंने नौका से गंगा पार की, लेकिन यह सोचकर नौका वापस नहीं भेजी कि देखें कृष्ण बिना नौका के गंगा कैसे पार कर पाएंगे। चलो, आज उनकी शक्ति की परीक्षा की जाये। कृष्ण ने भुजाओं से तैरकर गंगा को पार किया। वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे और उन्होंने पाण्डवों को देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी। अन्त में कुन्ती के निवेदन पर कृष्ण ने दक्षिण-समुद्र के किनारे पाण्डु नामक नगरी बनाकर रहने की स्वीकृति दे दी। पाण्डवों ने वैसा ही किया। यथा समय द्रौपदी ने एक पुत्र का प्रसव किया। उसका नाम 'पाण्डुसेन' रखा गया। राज्य का संचालन करने योग्य होने पर उसे 'युवराज' बना दिया गया।

एकदा एक स्थविर मुनि के उपदेश से पाण्डव प्रतिबुद्ध हो गये। उन्होंने पाण्डुसेन को राज्य सिंहासन पर आसीन किया और स्वयं दीक्षित हो गए। द्रौपदी ने अपने पतियों का अनुसरण किया। अन्त में पाण्डवों ने कर्मक्षय करके शत्रुंजयगिरि पर मुक्ति प्राप्त की और द्रौपदी ने पाँचवाँ देवलोक प्राप्त किया। भविष्य में वह उत्तम अवतार ग्रहण करेगी।

४.२ छत्तीसी-साहित्य

कविप्रवर समयसुन्दरकृत कुल सात छत्तीसियाँ प्राप्त हुई हैं। समयसुन्दर को छत्तीस की संख्या से बड़ा प्रेम था। उन्होंने अपने छोटे-छोटे गीतों को भी छत्तीस-छत्तीस के रूप में संकलित कर उसे छत्तीसी नाम दे दिया था। इनकी चर्चा हम फुटकर-साहित्य के अन्तर्गत करेंगे। यहाँ हम केवल उनके मौलिक छत्तीसी-साहित्य का परिचय देंगे। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कृतियों का परिचय दिया जा रहा है —

४.२.१ कर्म-छत्तीसी

प्रस्तुत विवेच्य कृति में कर्म-सिद्धान्त का विवेचन है। कर्म की गति समझाने के लिए इसमें २७ प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कर्म-विपाक कितना भयंकर होता है, इसी को प्रस्तुत करना विवेच्य कृति का वर्ण्य विषय है। इसमें ३६ पद हैं। इसकी रचना मुलतान नगर में वि० सं० १६६८ में हुई थी — ऐसी सूचना कृति के अन्त में कवि ने स्वयं दी है। यह कृति 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

४.२.२ पुण्य-छत्तीसी

संवत निधि दरसन रस शशिहर, सिधपुर नगर मझार जी।

शान्तिनाथ सुप्रसादे कीधी, पुण्य छत्तीसी सार जी॥

इससे अवगत होता है कि यह कृति सिद्धपुर नगर में विक्रम संवत् १६६९ में रची गई थी। इसमें ३६ पद हैं। पुण्य-कर्मों के उदय के फलस्वरूप प्राप्त प्रशस्त तथा उत्तम अवस्था का वर्णन करना ही इस रचना का प्रतिपाद्य विषय है। इस कृति में कवि ने ३१ महापुण्यवान पुरुषों की जीवन-घटनाओं का निर्देश दिया है। यह कृति 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

४.२.३ क्षमा-छत्तीसी

क्षमा मानव का प्रथम धर्म है। यह जैनधर्म का प्राण है। क्रोध-शत्रु से विजय प्राप्त करने का यह अनुपम शस्त्र है। इसे समझाने के लिए कवि ने क्षमा-छत्तीसी में २६ महापुरुषों के दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है। क्षमा का माहात्म्य बताने की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत रचना जैन समाज में काफी प्रचलित है। इसमें ३६ पद हैं। इसकी रचना नागौर नगर में हुई थी। इसमें कवि ने कृति के रचना-काल का निर्देश नहीं दिया है। 'शत्रुञ्जय रास' में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर सूचना मिलती है कि कवि वि० सं० १६८२ के श्रावण माह में नागौर थे। इससे यह अनुमान किया जाता है कि इन्हीं दिनों में कवि ने क्षमा-छत्तीसी की रचना की होगी। इसका सम्पादन 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में हुआ है।

४.२.४ सन्तोष-छत्तीसी

समयसुन्दर ने इस रचना का निर्माण वि० सं० १६८४ के वर्षावास में लूणकरणसर के श्रावकों के हित के लिए किया था। रचना में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर विदित होता है कि उस समय लूणकरणसर के श्रावकों में पाँच वर्षों से परस्पर मन-मुटाव एवं असन्तोष व्याप्त था, जिसे समाप्त करने के उद्देश्य से कवि ने यह रचना लिखी थी। इसमें कवि को सफलता प्राप्त हुई और चारों तरफ आनन्द की लहरें छा गयीं। इसके कारण कवि को सम्मान और यश प्राप्त हुआ।

सन्तोष छत्तीसी में कवि ने सन्तोष-धर्म अंगीकार करने वाले २२ विशिष्ट पुरुषों के कर्तव्य का उल्लेख करते हुए सन्तोष-गुण का माहात्म्य प्रस्तुत किया है। यह माहात्म्य ३६ पदों में व्यंजित है। नाहटा-बन्धुओं द्वारा सम्पादित 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में यह कृति संग्रहीत है।

४.२.५ सत्यासिया दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी

कवि समयसुन्दर की यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें गुर्जर देश में हुए वि० सं० १६८७ के अकाल का वर्णन है। इसमें अकाल के कारण गुजरात के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों में कैसा परिवर्तन आ गया था, इसका कवि ने सजीव चित्रण किया है। इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है कि कवि ने इसका बड़ा ही हृदय-द्रावक और जीवन्त वर्णन किया है।^१

गुजरात के इस अकाल का कवि के व्यक्तिगत जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके इस वर्णन में इतनी सजीवता आने का मूलभूत कारण यह है कि कवि ने आत्मनिष्ठ होकर स्वयं इस पीड़ा को भोगा है। यहाँ तक कि उन्हें जीवन-रक्षा के निमित्त अपने पात्र और शास्त्र तक भी बेचने पड़े। इस दुष्काल में कवि की आप बीती घटनाओं का विस्तृत विवरण हम उनके जीवन का परिचय देते हुए प्रथम अध्ययन में दे चुके हैं। अतः यहाँ उस पर पुनः चर्चा करना पुनरावृत्ति ही होगी। फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि 'सत्यासिया दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी' कवि की एक सशक्त रचना है, जिसमें कवि के अन्तस् की पीड़ा मुखर हो उठी है।

प्रस्तुत रचना में रचना-स्थल एवं रचना-काल दोनों का ही निर्देश कवि ने नहीं किया है। 'चम्पक-श्रेष्ठि-चौपाई' के दूसरे खण्ड की छठी ढाल में कवि ने वि० सं० १६८७ में इस दुष्काल के होने की बात लिखी है। यही बात 'विशेष-शतक' की प्रशस्ति में भी सूचित है। कवि वि० सं० १६८७ में पाटण में थे। यह तथ्य 'जयतिहुअण-वृत्ति' और 'भक्तामर स्तोत्र' की 'सुबोधिका-वृत्ति' से स्पष्ट होता है। अतः स्पष्ट है कि कवि ने वि० सं० १६८७ में पाटण में इस छत्तीसी की रचना की होगी।

नाहटा-बन्धुओं को प्रस्तुत कृति के फुटकर वर्णनवाले पद्यों की कई प्रकार की प्रतियां मिली थीं। इसके आधार पर उन्होंने अनुमान लगाया है कि समय-समय पर उन छन्दों की रचना फुटकर रूप में हुई और अन्त में पूर्ति-स्वरूप कुछ पद्य बनाकर यह छत्तीसी रूप संकलन तैयार कर दिया गया।^२

यह कृति 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में संग्रहीत है।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, भूमिका, पृष्ठ ७
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, वक्तव्य, पृष्ठ १६

४.२.६ प्रस्ताव-सवैया-छत्तीसी

प्रस्तुत 'प्रस्ताव-सवैया-छत्तीसी' का वर्ण्य विषय देवगुरु और धर्म के सम्यक् स्वरूप का बोध कराना है। कवि ने प्रस्तुत कृति में यह बताने का प्रयास किया है कि आराध्य देव कौन हो सकता है? उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? इसी प्रकार गुरु किस प्रकार का होना चाहिये और धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? इस कृति में इन्हीं सब बातों की चर्चा की गई है।

इस कृति में कवि ने अपने युग में देव-गुरु-धर्म के नाम पर जो मिथ्या धारणाएँ प्रचलित थीं, उनका न केवल चित्रण किया है अपितु उनकी समीक्षा भी की है।

कवि ने प्रस्तुत कृति में धर्म के नाम पर प्रचलित आत्म-प्रवंचनाओं की भी खरी समीक्षा की है और यह बताया है कि साम्प्रदायिक व्यामोह और दुराग्रहों के कारण धर्म का यथार्थ स्वरूप किस प्रकार ओझल हो जाता है। प्रस्तुत कृति में कवि का उद्देश्य सम्प्रदायगत दुराग्रहों से ऊपर उठकर धर्म के शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन है। उनके युग में साम्प्रदायिक दुराग्रह कितने बढ़ गये थे, इसका सजीव चित्रण हमें इस कृति में मिलता है। कवि ने इस समग्र विवेचन में अपने को एक निरपेक्ष द्रष्टा के रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी इस कृति में कवि ने लिखा है —

खरतर तपा आंचलिया पासचन्द आगमीया पुँनमिया सार,
कडुयामती दिगम्बर लुंका, चउरासी गच्छ अनेक प्रकार।
आंप आपणउ गछ थापइ सगला, खवउं ठोकि आंणी अहंकार,
समयसुन्दर कहइ कह्या ज करउ षणि, भगवंत भाखइ ते श्रीकार ॥

× × ×

मोटउ गच्छ अम्हारउ देखउ, माणस बइसइं घणाँ बखांणि,
गर्व म करि रे मूढ गमारा, समय-समय अणंती हांणि।
सूत्र मांहि एक दंसवैकालिक, जती मांति दुपसह सूरि जांणि,
समयसुन्दर कहइ कुण जाणइ रे, कहउ गछ रहिस्यइ परिमांणि ॥^१

'प्रस्ताव-सवैया-छत्तीसी' में कुल ३६ पद्य हैं तो सवैया छन्द में रचित हैं। इसका निर्माण-स्थल खम्भात नगर एवं निर्माण-काल वि० सं० १६९० है। इस तथ्य का उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है —

संवल सोल नेउया वरषे, श्री खंभायत नयर मझारि ॥^२

यह छत्तीसी भी 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

१. प्रस्ताव-सवैया-छत्तीसी (१२, १३)

२. वही (२६)

४.२.७ आलोचना-छत्तीसी

जैनों के अनुसार अपने किये हुए पापों का विवेचन या प्रकाशन करना ही आलोचना है। कवि ने इस कृति में वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृत पापों की आलोचना करना अपरिहार्य बताया है। इस कृति में ३६ पद हैं। कृति में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि कवि ने वि० सं० १६९८ में अहमदपुर में इसकी रचना की थी। कवि स्वयं लिखते हैं —

संवत् सोल अट्टाणुए, अहमदपुर मांहि ।

समयसुन्दर कहइ मइं करी, आलोचना उच्छाहि ॥

प्रस्तुत आलोच्य कृति जैन-समाज में नित्य कर्म में प्रायः बोली जाती है। अतः इसका प्रकाशन भी अनेक ग्रन्थों में और अनेक स्थानों से हुआ है। इस कृति का सर्वप्रथम प्रकाशन 'आत्म-हितोपदेश' ग्रन्थ में हुआ है, जो कि शाह बालाभाई खुशाल हाजी, निशापोल, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

४.३ अन्य रचनाएँ

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम उन वृहत् भाषा-रचनाओं का समावेश करेंगे, जो पूर्वोक्त दोनों वर्गों से भिन्न हैं। ऐसी रचनाएँ हैं—

४.३.१ यति-आराधना

४.३.२ साधु-वन्दना

४.३.३ केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध

४.३.४ दान-शील-तप-भाव-संवाद

उपर्युक्त रचनाओं का परिचय नीचे प्रस्तुत है—

४.३.१ यति-आराधना

प्रस्तुत कृति 'यति-आराधना' तथा 'साधु आराधना' — दोनों नामों से प्रसिद्ध है, क्योंकि ग्रन्थारम्भ में 'साधु-आराधना' शब्द का प्रयोग किया गया है और ग्रन्थान्त में 'यति-आराधना' का। वस्तुतः यति और साधु दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, अतः शब्दों में अन्तर होते हुए भी दोनों के अर्थ में अन्तर नहीं है।

प्रस्तुत कृति गद्य में है। इसकी भाषा प्राचीन हिन्दी है, किन्तु कृति के आदि एवं अन्त में भूमिका व उपसंहार संस्कृत-पद्य में हैं। यद्यपि श्री अगरचन्द नाहटा ने इस कृति को संस्कृत-भाषा में विरचित माना है^१, किन्तु यह कृति संस्कृत-भाषा में रची हुई नहीं है, अपितु प्राचीन हिन्दी में है। इसका रचना-काल विक्रम संवत् १६८५ और रचना-स्थान रिणीनगर है। जैन साधुओं के आचार तथा साधना-पद्धति का निरूपण करना ही इसका प्रतिपाद्य विषय है।

यह भी उल्लेखनीय है कि 'श्रावकाराधना' एवं 'यति-आराधना' दोनों का वर्ण्यविषय एक-सा है। अन्तर केवल इतना ही है कि 'श्रावकाराधना' श्रावक की अपेक्षा

१. सीताराम-चौपाई, सम्पादकीय

से लिखित है और 'यति आराधना' साधु की अपेक्षा से। प्रस्तुत कृति के वर्ण्य विषय में जो भिन्नता है, उसे आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

कृतिकार ने विवेचन की सुविधा के लिए 'यति-आराधना' को छः अधिकारों में विभाजित किया है। वे हैं — १. सम्यक्त्व-शुद्धिः, २. अष्टादश-पाप-स्थानक-परिहारः, ३. चतुरशीतिलक्षजीवयोनिक्षामणम्, ४. संयम-विराधनायामिथ्या-दुष्कृतं दानम्, ५. दुष्कृत-गर्हा एवं ६. सुकृत-अनुमोदना।

सम्यक्त्व-शुद्धि नामक प्रथम अधिकार में आहार ग्रहण करने के पश्चात् वीतराग-प्रतिमा के समक्ष ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण, चैत्यवन्दन आदि करके सम्यक्त्व-शुद्धि की विधि या आराधना का वर्णन किया गया है। शेष विषय-वस्तु 'श्रावकाराधना' के प्रथम अधिकार के समान है।

'अष्टादश-पापस्थानक-परिहार' और 'चतुरशीतिजीवयोनिक्षामणम्' नामक द्वितीय एवं तृतीय अधिकार की विषय वस्तु 'श्रावकाराधना' के द्वितीय एवं तृतीय अधिकार के सदृश है।

प्राप्त पाण्डुलिपि में 'संयमविराधनायामिथ्यादुष्कृतदानम्' और 'दुष्कृत-गर्हा' नामक चतुर्थ तथा पंचम अधिकार से संबंधित पत्र त्रुटित एवं परस्पर अति संश्लिष्ट हैं। फिर भी जितना पढ़ा जा सका, उसके आधार पर यह ज्ञात होता है कि इनमें मुनियों की गोचरी (भिक्षा) के ४२ दोष एवं मांडले के पांच दोषों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार गोचरी के कुल ४७ दोषों में से जो दोष लगा हो, उसके निवारण के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' देने का निर्देश किया गया है, अर्थात् वे दुष्कृत मिथ्या हों, इसके लिए क्षमा-याचना करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त ज्ञान की विराधना और पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बारह तप, चरण सत्तरी एवं करण सत्तरी के प्रति हुए दोषों की भी आलोचना करने का निर्देश दिया गया है।

सुकृत अनुमोदना नामक षष्ठ अधिकार में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, निर्दोष-गोचरी, सविधि, तप, यात्रा, बारह भावना आदि व्रत के पालन की अनुमोदना करने का विधान किया गया है।

इसकी हस्तलिखित प्रति श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध हुई है।

४.३.२ साधु-वन्दना

जैन संघ में साधु-साध्वियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। पञ्च परमेष्ठी की वन्दना के अन्तर्गत साधु-साध्वियों की भी वन्दना की जाती है। प्रस्तुत कृति में भी विगत, वर्तमान और भावी साधु साध्वियों की वन्दना की गई है। इसमें कवि ने आगमों में वर्णित ५८३ प्रमुख साधु-साध्वियों के नामों का उल्लेख करते हुए उन्हें श्रद्धापूर्वक वन्दना की है। कवि ने कृति में भी उल्लेख किया है कि प्रस्तुत कृति की रचना करने की मेरी

बहुत समय से अभीप्सा थी। इससे ऐसा लगता है कि कवि ने इसकी रचना कर एक विशिष्ट आत्म-शान्ति का अनुभव किया होगा —

हूंस हुती मुझनइ घणी, घणा दिवस नी एह।
करिस्सुं साधु नइ वंदना, आज सफल थइ तेह ॥
ध्यान धरंता साधुनउ, चोखउ थायइ चित्त।
जीभ थायइ गुण जोडतां, सुणितां कान पवित्त ॥

प्रस्तुत रास में १८ ढालें हैं। इसकी रचना अहमदाबाद में वि० सं० १६९७ के चैत्र मास में पूर्ण हुई। कवि ने स्वयं निर्देश किया है —

संवत् सोल सत्ताणूये, चैत्र मास श्री अहमदाबादो रे।
समयसुन्दर कहइ मइ कीधी, साधु वन्दना गुरु परसादो रे ॥

आलोच्य रास की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ अभय जैन ग्रन्थालय और श्री खजांची संग्रह, बीकानेर में उपलब्ध हैं। यह रास अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

४.३.३ केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध

यह एक लघु प्रबन्ध है। इसमें कथा के माध्यम से आत्मा और शरीर की पृथक्ता को सिद्ध किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में कवि ने लिखा है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमण केशी श्वेताम्बिका नगरी के मन्त्री चित्त के निमन्त्रण पर श्रावस्ती नगरी से श्वेताम्बिका आए। वहाँ का राजा नास्तिक था। केशी और प्रदेशी में प्रश्नोत्तर हुए। प्रदेशी ने अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि शरीर से व्यतिरिक्त आत्मा का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। केशी ने उसके अभी उदाहरणों का पृष्ट प्रमाणों से खण्डन कर यह प्रमाणित कर दिया कि शरीर एवं आत्मा दोनों पृथक्-पृथक् हैं। कवि ने ये प्रश्नोत्तर बड़ी ही सटीक शैली में लिखे हैं। अन्त में श्रमण केशी से प्रतिबोधिक होकर राजा श्रमणोपासक बन गया और उसने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर लिये। वह धर्मारधना करता हुआ समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ और सूर्याभ नामक विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ से अपनी आयु शेष कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

कवि समयसुन्दर ने प्रबन्ध के अन्त में यह भी निर्देश दिया है कि यह केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध मैंने रायपसेणी (राजप्रश्रीय) सूत्र के आधार पर कहा है। प्रबन्ध चार ढालों में गुम्फित है। इसमें समग्र ५७ पद्य हैं। इसका लेखन-काल सं० १६९९, चैत्र सुदि २ है। समयसुन्दर से पूर्व जिन जैन मुनियों ने प्रस्तुत कथानक पर रचना लिखी, उनमें कुशलरुचि का नाम उल्लेख्य है। उनके परवर्ती काल में भी चारित्रोपाध्याय आदि ने इस कथा को निबद्ध किया है। विवेच्य कृति अहमदाबाद की हाजापटेल पोल के मध्यवर्ती खरतरगच्छ उपाश्रय में लिखी गई।

४.३.४ दान-शील-तप-भाव-संवाद

विवेच्य कृति के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें दान-शील-तप एवं भाव के संबंध में विवेचन है। ये चारों धर्म-रथ के चतुष्पङ्क हैं। कवि समयसुन्दर बताते हैं कि जब भगवान् महावीर राजगृह-उद्यान में देशना देने हेतु समवसरण पर आसीन हुए, तब दान, शील, तप और भाव क्रमशः प्रत्येक ने भगवान् से निवेदन किया कि सर्वप्रथम आपके प्रवचन में मेरी ही प्रशंसा की जाये। कवि ने जिस चातुर्य के साथ इन चारों के संवाद में अपने गुणों की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करवाई है, वह वस्तुतः ज्ञानवर्द्धक होने के साथ ही साथ मनोरंजक भी हो। अन्त में महावीर ने चारों को सान्त्वना देने के लिए स्वयं चतुर्मुख होकर इस चतुर्विध धर्म की प्ररूपणा की।

प्रस्तुत कृति में समग्र १०१ पद्य हैं, श्लोक-गणना के आधार पर १३५ श्लोक परिमाण है। यह कृति सांगानेर के पद्मप्रभ जिनालय में उनके प्रसाद से कवि ने निर्मित की। प्रस्तुत कृति जिस ग्रन्थ में मुद्रित है, उसमें इसका रचना-काल इस प्रकार दिया गया है —

सोलइ सइ छांसठि समइ रे, सांगानयर मझारि।

पदम प्रभु सुपसाउलइ रे, एह भण्यउ अधिकारो रे ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों से प्रस्तुत कृति का रचना-काल वि० सं० १६६६ सिद्ध होता है, किन्तु हमें इसकी मूल पाण्डुलिपियों में 'छासठि' शब्द के स्थान पर अधिकतर 'वासठि' शब्द का प्रयोग उपलब्ध हुआ है। मोहनलाल द० देसाई ने भी इसका रचनाकाल १६६२ उल्लिखित किया है।^२ अतः इसका रचना-काल वि० सं० १६६२ ही अधिक उचित लगता है।

विद्वानों ने प्रस्तुत कृति का अलग-अलग नामकरण किया है। महोपाध्याय विनयसागर के अनुसार इसका नाम 'दानादि चौढालिया' है और नाहटा-बन्धुओं के अनुसार 'दान-शील-तप-भावना-संवाद शतक' है, जबकि कविवर ने इसका नाम 'दान-शील-तप-भावना-संवाद' ही रखा है —

दान शील तप भावना रे, सरस रच्यउ संवादो रे।

भणतां गुणतां भावसुं रे, रिद्धि समृद्धि सुप्रसादो रे ॥

प्रस्तुत कृति में १०० या १०१ पद्य होने से यदि इसका नाम दान-शील-तप-भावना-संवाद-शतक रखा जाए, तो असंगति पूर्ण नहीं होगा।

दान-शील-तप-भावना-संवाद-शतक की हस्तलिखित पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है। इसका प्रकाशन 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' नामक ग्रन्थ में हुआ है।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दान-शील-तप-भाव-संवाद-शतक (५,६), पृष्ठ ५९३
२. आनन्द-काव्य-महोदधि, मौक्तिक ७, कविवर समयसुन्दर, पृष्ठ ३५

५. भाषा-टीका

महोपाध्याय समयसुन्दर ने भाषा में भी टीका लिखी है। सम्प्रति, केवल एक ही भाषा-टीका प्राप्त हुई है। वह है 'षडावश्यक-बालावबोध'। बालावबोध वस्तुतः सामान्य बुद्धिवाले लोगों को परिज्ञान कराने के लिए और उन्हें अध्ययन की ओर प्रवृत्त करने के लिए लिखा जाता है। प्रस्तुत है, षडावश्यक-बालावबोध का परिचयात्मक अध्ययन।

५.१ षडावश्यक-बालावबोध

प्रस्तुत कृति षट् आवश्यक-कर्म की लोकभाषा में एक व्याख्या है। षट् आवश्यक जैन धर्म के अवश्य करणीय कर्तव्य हैं। श्रमण और श्रावक — दोनों के लिए इनका पालन करना अनिवार्य है। दोषों के विशोधन एवं गुणों के प्रगटन के लिए षट् आवश्यक की साधना अपेक्षित है। ये छह आवश्यक निम्नांकित हैं —

सामाज्यं चउवीसत्थो वंदणयं।

पडिक्कमणं काउसग्गो पच्चक्खाणं ॥^१

अर्थात् सामायिक, चतुर्विंशति जिनस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान — ये छह आवश्यक हैं। इनका विवेचन 'आवश्यक सूत्र' में सविस्तार किया गया है, जिसे षडावश्यक सूत्र भी कहते हैं। आवश्यक का महत्त्व बताते हुए ज्ञानसार में लिखा है कि आवश्यक क्रिया आत्मा को प्राप्त भावशुद्धि से गिरने नहीं देती, गुणों की वृद्धि के लिए तथा प्राप्त गुणों से स्वखलित न होने के लिए आवश्यक-क्रिया का आचरण अत्यन्त उपयोगी है।^२ शास्त्र कहता है, जो श्रमण आवश्यक कर्म नहीं करता, वह चारित्र से भ्रष्ट है। अतः पूर्वोक्त क्रम से आवश्यक अवश्य करना चाहिये।^३

नन्दीसूत्र आदि शास्त्र-ग्रन्थों में आवश्यक को स्वतन्त्र आगम माना गया है। इस आगम पर निर्युक्ति, चूर्णि, वृत्ति, टीका, टब्बा, बालावबोध इत्यादि के रूप में अनेक व्याख्यात्मक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। विवेच्य कृति भी षडावश्यक की एक सुबोध एवं सरल व्याख्या है।

बालावबोध लिखने की एक लम्बी परम्परा रही है। हिन्दी-साहित्य में बालावबोध शैली का प्रारम्भ जैनाचार्यों ने ही किया है। इस शैली में लिखने वाले लेखकों में तरुणप्रभसूरि (वि० सं० १३६८) प्रथम थे। इनकी कृति 'षडावश्यक बालावबोध' प्राचीन हिन्दी-गद्य की प्रथम एवं प्रौढ़ कृति है। डा० सत्यनारायण स्वामी ने बालावबोध की पद्धति में लिखी कृतियों की एक दीर्घकालीन परम्परा का उल्लेख किया है।^४ षडावश्यक

१. अनुयोगद्वारसूत्र (७४)

२. ज्ञानसार, क्रियाष्टक, ५-७

३. नियमसार, (१४८)

४. द्रष्टव्य — महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ ४३७-४४०

पर बालावबोध लिखने वाले लेखकों में सोमसुन्दरसूरि (वि० सं० १४३०-९९), हेमहंसगणि (सं० १५०१), संवेगदेवगणि (सं० १५१४), राजवल्लभ (सं० १५३०), मेरुसुन्दर (१६वीं शती), महोपाध्याय समयसुन्दर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

समयसुन्दर कृत 'षडावश्यक-बालावबोध' अन्य कृत षडावश्यक-बालावबोधों की अपेक्षा अपना विशेष महत्त्व रखता है। इसकी भाषा आदि को देखने पर यह ज्ञात होता है कि यह कृति सामान्य पाठकों के लिए सहज बोधगम्य है। वस्तुतः व्याख्याकार ने इसे सरल से सरलतर और सरलतम बनाया है। रचना अधिक बोधगम्य हो, इसके लिए व्याख्याकार समयसुन्दर ने इसमें स्थान-स्थान पर अनेक उदाहरण एवं शब्दों के एकाधिक अर्थ भी दिए हैं।

'षडावश्यक-बालावबोध' का प्रणयन राउल कल्याण के शासन-काल में विक्रम संवत् १६८३ में हुआ था। कवि ने स्वयं यह निर्देश दिया है —

कल्याणमिधराउल क्षितिपतो राज्याश्रियं शासति।

श्रीमद्विक्रमभूतेस्त्रिवसुषट्ग्लो संख्यके वत्सरे ॥^१

यह कृति वि० सं० १६८३ के चातुर्मास-काल में जैसलमेर में निबद्ध हुई थी। समयसुन्दर ने इसकी रचना विमलशी शंखवाल, हरराज, धिरुनन्दन भणसाली, संघजी भणशाली, जवराजांगज, श्री द्वो गूजर फोफलिया इत्यादि धर्मप्रेमियों के निवेदन पर की थी। उन्होंने ही लिखा है —

साधुर्भाखरसीसुतो विमलसी श्री शंखवालान्वयः।

सद्धर्मा हरराज एष भणसाली श्री धिरुनन्दनः॥

तद्गोत्रः किल संघजी तिसू गुणः श्री जवराजांगजः।

श्री द्वो गूजर नामकः प्रवरथीः श्री फोफालीयन्वयः॥

श्री मज्जेसलमेरुदुर्गनगरे, पूर्व सदा वासित-

श्चत्वारश्चतुरा अमीकृत चतुर्मास्यां मया पाठिता ॥^२

विवेच्य कृति अभी तक अप्रकाशित है। इसकी पाण्डुलिपि श्री जिनकुशलसूरि ज्ञान भण्डार, रामघाट, वाराणसी एवं अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है।

६. प्रकीर्णक रचनाएँ

मौलिक संस्कृत रचनाएँ, संस्कृत-टीकाएँ, संग्रह-ग्रन्थ, भाषा-कृतियाँ और बालावबोध या भाषा-टीका — इन शीर्षकों के अन्तर्गत समागत रचनाओं के व्यतिरिक्त महाकवि समयसुन्दर का फुटकर साहित्य भी प्रचुर है। बृहत् रचनाओं के अलावा उन्होंने जो छोटी-छोटी रचनाएँ लिखी थीं, उन सबको 'प्रकीर्णक रचनाएँ' शीर्षक में रखा जा

१. षडावश्यक बालावबोध (प्रशस्ति)

२. वही, प्रशस्ति (१-२)

सकता है। समयसुन्दर की प्रकीर्णक रचनाओं का निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत परिचय प्रस्तुत किया जाएगा —

- | | |
|-------------------------------|--|
| ६.१ तीर्थङ्कर-संबंधित रचनाएँ | ६.२ तीर्थ एवं तीर्थाधिपतियों से संबंधित रचनाएँ |
| ६.३ मुनियों से संबंधित रचनाएँ | ६.४ सतियों से संबंधित रचनाएँ |
| ६.५ गुरु-गीत | ६.६ उपदेशपरक रचनाएँ |
| ६.७ विरह-गीत | ६.८ अन्य रचनाएँ |

उपर्युक्त उपशीर्षकान्तर्गत जिन प्रकीर्णक रचनाओं का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा, उनमें से अधिकांश रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध हैं और सभी रचनाएँ श्री अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

६.१ तीर्थङ्कर-संबंधित रचनाएँ

जैनागमों में यह माना गया है कि प्रत्येक 'अवसर्पिणी' तथा 'उत्सर्पिणी' नामक कालचक्र में चौबीस-चौबीस तीर्थङ्कर होते हैं। 'तीर्थते भवोदधिरनेन स्मात्, अस्मिन्निति या तीर्थम्, तत्करण शीलः तीर्थङ्करः'^१ से विदित होता है कि तीर्थ का कर्ता तीर्थङ्कर है और जिसके द्वारा भव-सागर को पार किया जाय, वह तीर्थ है अर्थात् जिन शासन ही वास्तविक तीर्थ है। वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय-चतुर्थ कालखण्ड में हुए २४ तीर्थङ्करों के नाम इस प्रकार हैं —

१. ऋषभ, २. अजित, ३. संभव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि, १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शान्ति, १७. कुन्थु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. अरिष्टनेमि, २३. पार्श्व तथा २४. वर्धमान (महावीर)^२

प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के लिए आदिब्रह्मा, आदिनाथ, आदीश्वर प्रभृति नाम भी उल्लिखित हुए हैं। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर को बौद्धागमों में निगंठनातपुत्र भी कहा गया है।^३ यों देखा जाय तो काल की अविच्छिन्न धारा में न तो ऋषभदेव प्रथम हैं और न महावीर अन्तिम। यह परम्परा तो अनादि अनन्त है — न जाने कितनी चौबीसियाँ हो गयी हैं और आगे होंगी।^४ ये तीर्थङ्कर वीतराग और सर्वज्ञ होते हैं, जो मानवीय सभ्यता एवं

१. उद्धृत — विश्व हिन्दी-कोश, भाग-५, पृष्ठ ३८९
२. चतुर्विंशतिस्तव (१-५)
३. (क) आगम और त्रिपिटकः एक अनुशीलन, भाग, पृष्ठ ४०२
(ख) संयुक्तनिकाय : एक अध्ययन, पृष्ठ २६८ से २७१ तक
(ग) जैनज्म इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, पृष्ठ २५
४. समणसुत्तं, भूमिका, पृष्ठ १२

संस्कृति के विकास में अपने-अपने समय में सदाचार का बीज-वपन करते हैं और धर्म तथा नीति का उपदेश देते हैं।

तीर्थङ्कर साधना-पथ के निरतिशय प्रकाशस्तम्भ हैं। इनकी स्तुति अथवा भक्ति करने से आत्म-स्वरूप का तथा आत्म-निहित परमात्म-स्थिति का साक्षात्कार होता है। तीर्थङ्करों की स्तुति या पूजा दो रूप में की जाती है — १. द्रव्य एवं २. भाव। पवित्र वस्तुओं के द्वारा तीर्थङ्कर-बिम्ब की पूजा करना द्रव्य-पूजा है और तीर्थङ्करों के महान् गुणों का कीर्तन करना भाव-पूजा है। श्रमणोपासक द्रव्य-पूजा करते हैं और श्रमण भाव-पूजा। कविप्रवर समयसुन्दर एक श्रमण थे। अतः उन्होंने भाव-पूजा अथवा भाव-स्तुति निमित्त तीर्थङ्करों की ललित गीतों में स्तुतियाँ की हैं। कवि के तीर्थङ्करों के स्तुतिपरक उपलब्ध स्तवनों, गीतों, भासों, स्तोत्रों आदि को आवश्यक विवरण के साथ यहाँ यथाक्रम दिया जा रहा है —

६.१.१ संस्कृत भाषा में निबद्ध रचनाएँ

६.१.१.१ ऋषभ-भक्तामर-स्तोत्रम्

मानतुङ्गाचार्य रचित 'भक्तामर-स्तोत्र' के मौलिक ४४ पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर कवि ने प्रथम तीन चरणों की स्वतः पूर्ति करते हुए विवेच्य स्तोत्र की रचना की है। कवि ने अपने भावों को मानतुङ्गाचार्य के भावों के साथ इस प्रकार से परस्पर संयोजित किया है कि इस स्तोत्र में कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों का चित्ताकर्षक संगम परिलक्षित होता है —

चिंतामणिर्मणिषु धेनुषु कामधेनुर्गङ्गानदीषु नलिनेषु च पुण्डरीके।

कल्पद्रुमस्तरुषु देव ! यथा तथात्र, व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोसि ॥^१

अतः यह रचना 'समस्या पूर्ति' अथवा 'पाद-पूर्ति' रूप रचना है। इसमें कुल ४५ पद्य हैं। इनमें अन्तिम पद्य में कवि ने उपसंहार मात्र किया है, शेष पद्य स्तोत्र रूप हैं।

प्रस्तुत स्तोत्र में कवि ने प्रथम जिनेन्द्र ऋषभदेव की स्तुति करते हुए यह वर्णन किया है कि उनकी कृपा से ही अत्यन्त साधारण व्यक्ति भी इस भव-सागर से मुक्त हो जाता है। अतएव वे अन्य सभी देवों में श्रेष्ठ हैं। इनके ध्यान से मानव की लौकिक और पारलौकिक सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इसलिए जिनकी भक्ति इनमें हो जाती है, वे कभी किसी दूसरे देवताओं में अनुरक्त नहीं होते।

स्तोत्र का रचना-स्थल व रचना-काल निर्दिष्ट नहीं है।

६.१.१.२ नानाविध श्लेषमयं श्री आदिनाथस्तोत्रम्

प्रस्तुत रचना में १४ पद्य हैं। पद्यों में प्रयुक्त छन्दों में एकरूपता नहीं है। इसमें इन्द्रवज्रा, उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित शार्दूलनिक्रीडित आदि छन्द

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ऋषभ-भक्तामर-स्तोत्रम् (२५)

प्रयोग किये गये हैं।

इस रचना में श्लेष-अलंकार की ललित छटा छलकती हुई दृष्टिगत होती है। इसमें तीर्थङ्कर आदिनाथ के गुणों एवं उनके माहात्म्य का वर्णन किया गया है। स्तोत्र का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.१.१.३ श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवन

इस स्तवन में कवि ने श्लेष के आधार पर व्याकरण-शास्त्र की रीति से भगवान् पार्श्वनाथ के स्वभाव की विलक्षणता बतलाई है। जहाँ एक ओर व्याकरण-शास्त्र विग्रह-प्रदर्शनपूर्वक प्रकृति (मूल शब्द) के साथ प्रत्यय (सुप्, तिङ् आदि) को जोड़कर शब्दों की सिद्धि करता है, वहीं दूसरी ओर भगवान् पार्श्वनाथ ने प्रकृति (जनसामान्य के स्वभाव) के बिना ही 'विग्रह' (शरीर अथवा कलह) की उपेक्षा करते हुए केवल 'प्रत्यय' (अध्यात्म-ज्ञान) से ही 'सिद्धि' (पूर्णता) प्राप्त की है। एक अन्य पद्य में भी कवि ने भगवान् पार्श्व की व्याकरण-शास्त्र से यह विलक्षणता बतलाई है कि व्याकरणशास्त्र 'आदेश' को 'स्थानी' के विघातक होने से शत्रुवत् और 'आगम' को 'स्थानी' का विकासक होने से मित्रवत् मानता है, किन्तु पार्श्वनाथ का 'आदेश' (उपदेश) मित्रवत् है और 'आगम' (आय=परिग्रह) शत्रुवत् है।

इसके अतिरिक्त भी कवि ने श्लेष द्वारा पार्श्वनाथ के विलक्षण स्वभाव का मनोहर वर्णन किया है।

स्तवन में ६ पद्य हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.१.१.४ श्री पार्श्वनाथ शृंगाटकबन्ध स्तवनम्

इस स्तोत्र में कवि ने भगवान् पार्श्वनाथ के गुणों का माहात्म्य 'शृंगाटक' बन्धमय पद्यों में प्रकट किया है। इसमें शब्दों की आलंकारिक छटा रमणीय है। इसमें १० पद हैं। इसका प्रणयन-काल अज्ञात है।

६.१.१.५ श्री पार्श्वनाथ हारबन्धचलच्छ्रुखला गर्भित स्तोत्रम्

यह रचना ८ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है। सभी पद्य 'हारबन्ध' में रचित हैं, किन्तु भाव की दृष्टि से सामान्य हैं। इसमें ललित शब्द-विन्यास करते हुए तीर्थङ्कर पार्श्व की प्रार्थना की गई है।

६.१.१.६ श्री पार्श्वनाथ यमकबद्ध लघु स्तवनम्

इस स्तवन में भगवान् पार्श्वनाथ की महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने उन्हें सर्व ऐश्वर्य-सम्पन्न, धर्म-प्रवर्तक, वीतराग और मोक्ष-प्रदायक कहा है। इस रचना में कवि ने यमक अलंकार का चमत्कार दिखलाया है। रचना में ८ पद्य हैं। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.१.१.७ श्री पार्श्वनाथ शृंगलामय लघु स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में ९ पद्य हैं। इसके रचना-काल की कवि ने सूचना नहीं दी है। इस स्तवन में तीर्थङ्कर पार्श्वप्रभु की स्तुति करते हुए उनके निरतिशय सदगुणों को प्रदर्शित किया गया है।

६.१.१.८ यमकमयं पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन ८ पद्यों में निबद्ध है। प्रथम सात पद्यों में भगवान् पार्श्व की स्तुति और आठवें में इस रचना का उपसंहार किया गया है। इसके सभी पद्यों में यमक अलंकार प्रयुक्त हैं। इसका रचना-काल एवं रचना-स्थल दोनों अज्ञात हैं। इसके सप्तम पद्य का प्रथम पाद त्रुटित है। इस स्तवन का मुद्रण भी कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण-सा लगता है, जिससे अर्थ-बोध में और कठिनाई होती है।

६.१.१.९ यमकमयं महावीर वृहदस्तवनम्

प्रस्तुत गीत भी यमकबद्ध है। इसमें कुल १४ पद्य हैं, जिनमें प्रथम तेरह पद्य में तो भगवान् महावीर का स्तवन किया गया है और अन्तिम पद्य उपसंहारात्मक है। इसमें भगवान् महावीर को सभी विघ्नों के विनाशक, ग्रहशान्तिकारक, जगत्वनन्द, समस्त गुणों के आकर, अप्रतिम सौंदर्यसम्पन्न, त्रिलोक के अज्ञान के निवारक, करुणानिधान, परम पवित्र, सज्जनों के सुखदायक और मोक्षदायक के रूप में चित्रित किया गया है। इस स्तवन का रचना-काल आदि अविदित है।

६.१.१.१० समस्यामयं पार्श्वनाथ वृहदस्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन समस्या की पूर्ति रूप है। इसमें कुल १३ समस्या-पूर्ति हैं। प्रत्येक पद्य में एक ही समस्या-पूर्ति हुई है। समयसुन्दर समस्या-पूर्ति में बड़े निपुण थे। अतः प्रत्येक समस्या-पूर्ति बहुत सुन्दर हुई है। १३ पद्यों में निबद्ध समस्या-पूर्ति रूप इस स्तवन में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की सुन्दरतम स्तुति की गई है।

प्रस्तुत स्तवन में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। स्तवन के प्रथम पद्य का तृतीय पाद, द्वितीय पद्य का प्रथम एवं द्वितीय पाद, दशम पद्य का प्रथम, तृतीय एवं चतुर्थ पाद, एकादश पद्य का प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ पाद, द्वादश पद्य का द्वितीय पाद, त्रयोदश पद्य का द्वितीय पाद त्रुटित है। रचना का रचना-काल एवं रचना-स्थल अज्ञात है।

६.१.१.११ श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम्

प्रस्तुत स्तोत्र में वीतराग के गुणों का वर्णन करते हुए उनका माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है। इस स्तोत्र की विलक्षणता यही है कि जिस पद्य की रचना जिस छन्द में की गई है, उस छन्द के नाम का उल्लेख उसी पद्य में है, किन्तु वहाँ उस शब्द का अर्थ भिन्न है। इसमें पृथक्-पृथक् २२ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसका रचनाकाल अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त प्रकीर्णक रचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में निबद्ध निम्नलिखित लघु गीत भी पाये जाते हैं —

६.१.१.१२ सीमन्धरस्वामिस्तवनम्, पद्य ५

६.१.१.१३ श्री शांतिनाथ गीतम्, पद्य ३

६.१.१.१४ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथश्लेषमयलघुस्तवनम्, पद्य ५, रचना-काल : सं० १७००, मार्गशीर्ष कृष्ण ५, रचनास्थल : अहमदाबाद।

६.१.१.१५ श्री पार्श्वनाथयमकबद्धस्तोत्रम्, पद्य ५

६.१.२ प्राकृत भाषा में निबद्ध स्तवन

६.१.२.१ यमकबद्ध पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में ९ गाथाएँ हैं। इसमें विविध उपमाओं से उपमित करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ की उत्कर्ष रूप में स्तुति की गई है। इस स्तवन का प्रत्येक पद्य यमक अलंकार से अलंकृत है, यथा —

परमपासपहू महिमालयं, जस विणिज्जिय सोमहिमालयं ॥

यहाँ प्रथम 'महिमालय' शब्द महिमा-गृह का द्योतक है और द्वितीय पर्वत का।

६.१.२.२ श्री पार्श्व लघु स्तवनम्

चार गाथाओं में निबद्ध इस स्तवन में भगवान् पार्श्वनाथ की वन्दना करते हुए 'ईर्यापथिक' सूत्र का भावानुवाद किया गया है।

इस स्तवन का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.१.३ मिश्रित भाषा में निबद्ध स्तवन

६.१.३.१ पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्

प्रस्तुत 'पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्' कवि की एक विशिष्ट रचना है। इसमें कवि ने प्रत्येक पद्य के प्रथम और तृतीय चरण प्राकृत-भाषा में और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण संस्कृत-भाषा में बनाये हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है —

मए वंदिया अज्ज तुम्हाण पाया,

नितान्त गता मेऽद्य सर्वेप्यपाया।

जहा सुट्ठु दट्ठूण दुट्ठुंच मोरा,

भुजङ्गा व्रजेयुर्भियात्यंत घोरा ॥ ७ ॥

यह स्तवन कवि की भाषा संबंधी योग्यता का परिचायक है।

इस रचना में कवि ने पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए यह बताया है कि जिस प्रकार कल्पवृक्ष की सेवा निरर्थक नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारी भक्ति भी निरर्थक नहीं होती। जो भी भक्त तुम्हारे पाद-पंकज की शरण लेता है, वह एकाग्रचित्त होकर समस्त सुखों का लाभ प्राप्त करता है। इसमें ९ पद्य हैं। रचना-काल तथा रचना-स्थान, दोनों

अनुपलब्ध हैं।

६.१.३.२ श्री पार्श्वनाथाष्टकम्

प्रस्तुत अष्टक राजस्थानी, गुजराती एवं संस्कृत भाषा मिश्रित है। यह अष्टक न केवल कवि के भाषा संबंधी ज्ञान का परिचय देता है, अपितु कवि की प्रशस्त भक्ति का भी परिचय देता है। पठन-पाठन में यह अष्टक अति रमणीय है।

इसमें कवि ने अपने आराध्य प्रभु पार्श्व के चरणों में अन्तर्प्रार्थना के सुष्ठुसुमन अर्पित किये हैं। कवि का कहना है कि जिसने पार्श्वप्रभु की भक्ति की है, वह धन्य है और उसने सर्वमुख प्राप्त किया है। मैंने भी उनकी भक्ति की है, जिससे मेरी आशाएँ फलीभूत हो गई हैं। मेरा दुःख दूर हो गया और मुझे बहुत सुख प्राप्त हुआ है। वास्तव में पार्श्वप्रभु त्रिलोकपूज्य एवं गुणनिधान हैं। उनके गुणों का वर्णन करने में इस कलिकाल में कोई कवि समर्थ नहीं है —

तुम्हारी बड़ाई न को वक्तुमीश, कलिकाल माहे कविर्वागरीशः।

कही एतली मया भूरि भक्त्या, सदा पाय सेवूं तवातीव शक्त्या ॥

प्रस्तुत गीत का रचना-काल आदि ज्ञात नहीं है।

६.१.४ भाषा में निबद्ध रचनाएँ

६.१.४.१ चौबीसी

जैन साहित्य में 'चौबीसी' रचना स्तुतिपरक साहित्य की एक उत्तम थाती है। इसमें गीतिकाव्य के रूप में चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है, जो कि कवि की असीम भक्ति की परिचायक है। इस कृति में कवि की आत्म-अनुभूति की ही अभिव्यंजना हुई है। अतः पाण्डित्य-प्रदर्शन की गन्ध का इसमें अभाव है। हर गीत में कवि की अगाध श्रद्धा उमड़ती हुई प्रतीत होती है। कवि सहजता से अपने हृदयोद्गार व्यक्त करता है —

ऋषभदेव मोरा हो, ऋषभदेव मोरा हो।

पुण्य संयोगइ पामीहा मइं दरिसण तोरा हो ॥

चउरासी लक्ष हूँ भम्यऊँ, भव का फेरा हो।

दुःख अनन्ता मइं सद्दा, स्वामी तिहां बहुतेरा हो ॥

चरण न छोडूं ताहरा, सामी अब की फेरा हो।

समयसुन्दर कहइ तुम्ह थइ, स्वामी कउण भलेरा हो ॥

इस कृति में जैन-धर्म के चौबीस तीर्थङ्करों में से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् गीत में स्तवन किया गया है। रचना के अन्त में कलश लिखकर उसका उपसंहार भी दिया है। यह कृति अहमदाबाद में वि० सं० १६५८, विजयादशमी को सम्पूर्ण हुई। यद्यपि कवि ने इसका 'चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-गीतानि' नाम दिया है, लेकिन सामान्यतया इसे 'चौबीसी' कहा जाता है।

६.१.४.२ चौबीसी जिनसवैया

विवेच्य कृति सवैयाँ और कवित्तों में निबद्ध है। प्रत्येक में एक-एक तीर्थकर की स्तुति की गई है, किन्तु इस स्तवन में छन्दों में व्यतिक्रम पाया जाता है। किसी तीर्थङ्कर की स्तुति सवैया में है, तो किसी की कवित्त में। तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्व की स्तुति इसमें उपलब्ध नहीं होती। उसके स्थान पर वसन्त का वर्णन किया गया है, जो कि अप्रासंगिक ही लगता है। यह संभव है कि समयसुन्दर ने शायद पार्श्वनाथ के संबंध में भी कोई सवैया/कवित्त बनाया हो, जो पाण्डुलिपि करते समय मूल में ही त्रुटित हो गया हो। वैसे जिस पाण्डुलिपि के आधार पर इस 'चौबीसी जिन सवैया' को प्रकाशित किया गया है, वह पाण्डुलिपि त्रुटित है। उदाहरण के लिए सातवें और आठवें सवैयाँ में शब्द त्रुटित पाये गये हैं।

तेईसवें सवैयाँ का प्रारम्भ 'बे बब्बीहा भाई' से होता है। इसमें वसन्त का वर्णन है, जो विरह से संबंधित है। अतः यहाँ बब्बीहा का अर्थ पपीहा हो सकता है। विश्लेष्य रचना में २५ चतुष्पद हैं। इसका रचना-काल एवं स्थल दोनों अज्ञात हैं।

६.१.४.३ ऐरावतक्षेत्र चतुर्विंशति जिन-गीतानि

'ऐरावतक्षेत्र-चतुर्विंशति जिन-गीतानि' का रचना-समय सं० १६९७ है। हाथीशाह के आग्रह से एवं जिनसागरसूरि की कृपा से समयसुन्दर ने प्रस्तुत कृति का प्रणयन किया। इसका कवि ने भी उल्लेख किया है —

संवत सोल सताणुया वरसे, जिनसागर सुपसाया।

हाथी शाह तणइ आग्रह कहइ, समयसुन्दर उवझाया रे।

प्रस्तुत कृति में ऐरावत-क्षेत्र में उत्पन्न चौबीस तीर्थङ्करों का गुणगान किया गया है। कवि ने अपने वर्णन का आधार 'समवायांगसूत्र' बताया है। सभी तीर्थङ्करों के संबंध में अलग-अलग राग में अलग-अलग गीत रचित हैं। उनके नाम अधोलिखित हैं —

१. चंदानन, २. सुचंद, ३. अग्गिसेण, ४. नंदिसेण, ५. इसिदिन, ६. सामचन्द, ७. बयधारि, ८. जुत्तसेन, ९. अजितसेण, १०. सिवसेन, ११. देवसेन, १२. नक्खत्तसत्त, १३. अस्संजल, १४. अनन्त, १५. उपशान्त, १६. गुत्तिसेण, १७. अतिपास, १८. सुपास, १९. मरुदेव, २०. श्रीसीधर, २१. सामकोठ, २२. अग्गसेण, २३. अग्गिपुत्त, २४. वारिसेण।

उपर्युक्त चौबीस तीर्थङ्करों के गीतों में प्रथम सात तीर्थङ्करों के गीत अभी तक अनुपलब्ध हैं।

इन रचनाओं से कवि समयसुन्दर परमात्मा के चरणों में पूर्ण समर्पित-से लगते हैं। वे भी कबीर, तुलसी, मीरा, सूर की तरह गाते हुए परिलक्षित होते हैं —

अहो मेरे जिन कुं कुण ओपमा कहूँ।

काष्ठ कलप चिन्तामणि पाथर, कामगवी पसु दोष ग्रहूँ॥

चन्द्र कलंकी समुद्र जल खारउ, सुरज ताप न सहूँ।
जलदाता पणि श्यामवदनघन, मेरु कृपण तउ हूँ किम सदहूँ॥
कमल कोमल पणि नाल कंटक नित, संख कुटिलता बहुँ।
समयसुन्दर कहइ अनन्त तीर्थङ्कर, तुम मइ दोष न लहूँ॥

६.१.४.४ विहरमान-वीसी-स्तवना:

कविवर समयसुन्दर ने 'विहरमान-वीसी-स्तवनाः' कृति का निर्माण हाथी साह नामक श्रावक की इच्छा के कारण किया। इसकी रचना वि० सं० १६९७, माघ कृष्णा ९ को सम्पूर्ण हुई। कवि ने स्वयं निर्देश दिया है कि —

संवत् सोलह सइत्राणु, माह वदि नवमी वखाणुं।
अहमदावादि मझारि, श्री खरतरगच्छ सार॥
श्री जिनसागरसूरि, प्रतापइ तेज पडूरि।
हाथी साह नी हूँसे, तीर्थङ्कर स्तव्या वीसइ॥

आलोच्य कृति में विहरमान अर्थात् विद्यमान तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है। जैन मान्यतानुसार विहरमान तीर्थङ्कर की स्तुति पृथक्-पृथक् गीत में की है। वे निम्नलिखित हैं —

१. सीमन्धर, २. युगमन्धर, ३. बाहु, ४. सुबाहु, ५. सुजात, ६. स्वयंप्रभ, ७. ऋषभानन, ८. अनन्तवीर्य, ९. सूरिप्रभ, १०. विशाल, ११. वज्रधर, १२. चन्द्रानन, १३. चन्द्रबाहु, १४. भुजंग, १५. ईश्वर, १६. नेमि, १७. वीरसेन, १८. महाभद्र, १९. देवयशा और २०. अजितवीर्य।

इन बीस गीतों के अतिरिक्त इस श्रुति के अन्त में कलश भी दिया है। कवि की भक्ति और समर्पण की भावना का संगम इसमें दृष्टिगत होता है।

६.१.४.५ बीस विहरमान जिन स्तवन

'बीस विहरमान जिन स्तवन' में कोई रचना-संवत् नहीं दिया हुआ है। इसमें कवि ने आद्य मंगल करके स्वयं ही रचना के वर्ण्य-विषय को स्पष्ट किया है —

प्रणमिय शारदमाय, समरिये सदगुरु, धर्मबुद्धि हियड़े धरी ए।
विहरमान जिन वीस, थुणिसुं मन थिरे, माय ताय लंछण करी ए॥

इस कृति में उन्होंने प्रत्येक विहरमान का नाम, उनके माता-पिता का नाम एवं उनके लांछन का भी उल्लेख किया है।

उक्त रचना ५ ढालों में पूर्ण हुई है। अन्त में 'कलश' रूप में रचना का उपसंहार भी दिया है।

६.१.४.६ श्री सीमन्धरजिन स्तवन

यद्यपि यह स्तवन मात्र १० कड़ियों में निबद्ध है, किन्तु कवि के भक्तिपरक

साहित्य का एक द्युतिमान हीरा है। इसमें कवि की प्रगाढ़ भक्ति अभिव्यंजित हुई है। कविवर सीमन्धर जिनेश्वर की स्तुति करते हुए कहते हैं कि —

नही माँगूँ प्रभ राज-ऋद्धि जी, नहीं माँगूँ ग्रन्थ भंडार।
हूँ माँगूँ प्रभो एतलो जी, तुम पासे अवतार ॥
देव न दीधी पांखडी जी, किम करि आवुं हजूर।
मुजरो म्हारो मानजो जी, प्रह ऊगमते सूर ॥

विश्लेष्य रचना का रचना-काल तथा रचना-स्थान, दोनों विदित नहीं हो पाए। यह रचना अनेक स्थानों से एवं अनेक ग्रन्थों में मुद्रित है।

६.१.४.७ सीमन्धरजिन-स्तवन

यह रचना ६ कड़ियों में लिखी गई है। इसमें विहरमान सीमन्धर प्रभु के जीवन-वृत्त को अंकित किया गया है। इसका रचना-स्थल एवं समय, दोनों अज्ञात हैं।

६.१.४.८ सीमन्धरजिन-गीतम्

इसमें परमात्मा की सेवा के रहस्य उद्घाटित करते हुए कवि ने परमात्म-दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा अभिव्यक्त की है। गीत ७ गाथाओं में आबद्ध है। इसका रचना-काल और रचना-स्थल, दोनों ही अनिर्दिष्ट हैं।

६.१.४.९ सीमन्धरस्वामी-गीतम्

इस गीत का रचना-काल अनिर्दिष्ट है। यह गीत छः गाथाओं में लिखित है। इस गीत में समयसुन्दर ने तीर्थङ्कर सीमन्धर के गुण, लांछन, प्रभाव और उनके माता-पिता, पत्नी प्रभृति का उल्लेख किया है। साथ ही साथ कवि ने उन भव्य आत्माओं को अभिनन्दित किया है, जो परमात्मा का नित्य दर्शन और उनका उपदेश श्रवण करते हैं।

६.१.४.१० श्री सुमतिनाथ बृहत्स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में समयसुन्दर ने सुमतिनाथ प्रभु की श्रद्धासिक्त स्तुति करते हुए उन्हें सुरतरु बताया है तथा उनसे 'सुमति' की याचना की है।

स्तवन में १३ गाथाएँ हैं। रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.१.४.११ श्री शान्तिजिनस्तवनम्

इस गीत में ६ पद्य हैं। इसका प्रणयन-काल अनुपलब्ध है। इस गीत में कवि ने शान्तिनाथ जिनेश्वर से शान्ति-फल प्रदान करने के लिए और आवागमन के चक्र से मुक्त करने के लिए प्रार्थना की है।

६.१.४.१२ श्री पार्श्वजिन दृष्टान्तमय लघु स्तवन

इस गीत में भव-भ्रमण से मुक्त होने की और परमात्मा के दर्शन की प्रबल पिपासा प्रकट हुई है। रचना का गुम्फन ९ गाथाओं में हुआ है। रचना का रचना-संवल अवर्णित है।

६.१.४.१३ श्री पार्श्वजिन पंच कल्याणक लघु स्तवनम्

यह स्तवन भगवान् पार्श्व के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष — इन पाँच कल्याणकों से संबंधित है। इसमें ८ कड़ियाँ हैं, शेष में 'कलश' भी लिखित है। इसका रचना संवत् अनुपलब्ध है।

६.१.४.१४ श्री चिन्तामणि पार्श्वजिन स्तवन

इसमें कवि समयसुन्दर ने चिन्तामणि पार्श्वनाथ से अपनी विविध चिन्ताएँ दूर करने की विनती की है। यह विनती ७ कड़ियों में है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.१.४.१५ श्री पार्श्वनाथ (प्रतिमा-स्थापन) स्तवन

'श्री पार्श्वजिन स्तवन' की ७ गाथाओं में जिनमूर्ति की महत्ता उद्घाटित करते हुए मूर्ति-विरोधकों पर मोठे व्यंग्य कसे गये हैं और भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। इसका निर्माण-काल कवि ने नहीं लिखा है।

६.१.४.१६ अष्ट महाप्रातिहायगर्भित पार्श्वनाथ स्तवनम्

विवेच्य रचना में 'कलश' सहित ९ गाथाएँ हैं। इसमें देवों द्वारा रचित तीर्थङ्करों के आठ प्रातिहार्य के स्वरूप का निदर्शन है। ये प्रातिहार्य इन्द्रजाल रूप होते हैं। रचना का रचना-काल और रचना-स्थान अज्ञात है।

६.१.४.१७ श्री महावीर गीतम्

श्री महावीर गीतम् में ६ कड़ियाँ हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। इसमें कवि ने भगवान् महावीर की एक अन्य माता देवानन्दा का परिचय दिया है। भगवान् महावीर ८२ दिन देवानन्दा की कुक्षी में रहे थे। महावीर के कैवल्य प्राप्त कर लेने पर देवानन्दा उनके दर्शनार्थ गई थी। 'भगवती-सूत्र' में उल्लिखित इसी घटना का चित्रण प्रस्तुत गीत में किया गया है।

६.१.४.१८ श्री महावीरदेव षट्कल्याणक गर्भित स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन भगवान् महावीर के छः कल्याणकों को मध्यस्थ बनाकर उनके जीवन-वृत्त को संक्षेप में प्रकट करता है। स्तवन की प्रथम ढाल में महावीर स्वामी के गर्भ, गर्भ-संहरण और जन्म — इन कल्याणकत्रय पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय ढाल में जन्म-कल्याणक-महोत्सव का सुन्दर वर्णन है। तृतीय ढाल में प्रभु के दीक्षा नामक चतुर्थ कल्याणक का उल्लेख है। चतुर्थ ढाल में महावीर के केवल ज्ञान और निर्वाण — इन दो कल्याणकों का विवेचन है। कृति के अन्त में 'कलश' के माध्यम से कृति का उपसंहार लिखा गया है। रचना का समय अनिर्दिष्ट है।

६.१.४.१९ अनागत चौबीसी स्तवन

प्रस्तुत रचना में कवि ने भावी चौबीस तीर्थङ्करों का नामोल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया है। यह रचना ६ कड़ियों में निबद्ध है। इसका रचना-काल ज्ञात नहीं हो पाया है।

६.१.४.२० श्री तीर्थङ्कर-समवशरण गीतम्

जहाँ तीर्थङ्कर का किसी प्रकार का धार्मिक उपदेश होता है, वह स्थान समवशरण कहलाता है। जैन-मान्यता के अनुसार यह समवशरण देवों द्वारा बनाया जाता है। इस गीत में तीर्थङ्करों के उक्त समवशरण के स्वरूप का निदर्शन है।

यह गीत १० गाथाओं में आबद्ध है। इसका रचना-समय अज्ञात है।

उपर्युक्त गीतों के अलावा भाषा में निबद्ध निम्नलिखित लघु गीत भी उपलब्ध होते हैं —

६.१.४.२१ वर्तमान चौबीसी स्तवन	पद्य ३
६.१.४.२२ अतीत चौबीसी स्तवन	पद्य ५
६.१.४.२३ बीस विहरमान जिन स्तवन	पद्य ४
६.१.४.२४ सीमन्धरजिन स्तवन	पद्य ३
६.१.४.२५ सीमन्धरजिन स्तवन	पद्य ३
६.१.४.२६ सीमन्धर स्वामी गीतम्	पद्य ३
६.१.४.२७ युगमन्धरजिन गीतम्	पद्य ५
६.१.४.२८ आदिदेवचन्द्र गीतम्	पद्य २
६.१.४.२९ श्री ऋषभदेव हुलरामणा गीतम्	पद्य ४
६.१.४.३० श्री शीतलनाथ जिनस्तवनम्	पद्य ३
६.१.४.३१ श्री शीतलजिन गीतम्	पद्य ३
६.१.४.३२ श्री शांतिनाथ हुलरामणा गीतम्	पद्य ४
६.१.४.३३ श्री शांतिजिन स्तवनम्	पद्य ५
६.१.४.३४ श्री शांतिजिन स्तवनम्	पद्य ३
६.१.४.३५ श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ भास	पद्य ३
६.१.४.३६ श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्	पद्य ४
६.१.४.३७ श्री महावीर देव गीतम्	पद्य ४
६.१.४.३८ श्री महावीर गीतम्	पद्य ३
६.१.४.३९ श्री महावीर जिन सुरियाभनाटक गीतम्	पद्य २
६.१.४.४० श्री श्रेणिक विज्ञप्ति-गर्भित श्री महावीर गीतम्	पद्य ४
६.१.४.४१ श्री सुरियाभसुर नाटक-दर्शन महावीर गीतम्	पद्य २
६.१.४.४२ श्री शाश्वत तीर्थङ्कर स्तवनम्	पद्य ५
६.१.४.४३ श्री सामान्य जिन स्तवनम्	पद्य ३
६.१.४.४४ श्री सामान्य जिन गीतम्	पद्य ३
६.१.४.४५ श्री अरिहंत पद स्तवनम्	पद्य ३

६.१.४.४६ श्री सामान्य जिन गीतम्	पद्य २
६.१.४.४७ श्री सामान्य जिन विज्ञप्ति गीतम्	पद्य ३
६.१.४.४८ श्री सामान्य जिन-आँगी गीतम्	पद्य ४
६.१.५ सिन्धी भाषा में निबद्ध जिनस्तवन	
६.१.५.१ श्री आदि जिन स्तवन	

प्रस्तुत गीत में माता मरुदेवी अपने पुत्र ऋषभदेव के हर अंग को शृंगारित करने की बात कहती है —

नयण वे तैंडे कज्जल पावां, मन्नभावदण्डतिलक लगावां ।

रुठड़ा कैदे कोल ऋषभ जी, आउ असाड़ा कोल ॥

गीत में शृंगार, वात्सल्य एवं हास्यरस मिश्रित है। गीत १० पद्य में है। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.२ तीर्थ एवं तीर्थाधिपतियों से संबंधित रचनाएँ

‘तीर्थ’ संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति ‘तृ’ धातु के साथ ‘थक्’ प्रत्यय संलग्न करने से हुई है — ‘तीर्थते, अनेन वा तृ प्लवन तरणयोः, पातृ तुदि इति थक् ।’^१ इस प्रकार तीर्थ का अर्थ है, तारने या पार उतारने वाला अथवा तिरने या पार उतारने में सहायक। इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए जिनसेनाचार्य ने लिखा है— ‘संसारब्धे पारस्य तरणे तीर्थमिष्यते’^२ — जो संसार-सागर से पार कर दे, वह तीर्थ है।

सभी धर्मों में तीर्थ-स्थानों को विशेष महत्त्व दिया गया है। जैनधर्म की पितृभूमि एवं पुण्यभूमि होने से सम्पूर्ण भारत में जैन-तीर्थ पाये जाते हैं। तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, दीक्षा, कैवल्य तथा मोक्षभूमि उनके जीवन की घटित घटनाओं के स्थल, साधक-मुनियों की साधना एवं निर्वाण-भूमि, अतिशयवान् जिन-मूर्तियों से विश्रुत हुए स्थान, शतवर्षाधिक प्राचीन जिनालय आदि स्थावर-तीर्थ माने जाते हैं। सिद्धक्षेत्र तथा अतिशयक्षेत्र के भेद से स्थावर-तीर्थ दो प्रकार के होते हैं — महापुरुषों के निर्वाण-स्थल सिद्धक्षेत्र कहलाते हैं और मूर्ति-मंदिर अथवा चमत्कारिक घटना-विशेष के कारण महत्त्वपूर्ण बने हुए स्थल अतिशयक्षेत्र कहलाते हैं।

जैन-तीर्थों का सर्वप्रथम उल्लेख मूल प्रतिक्रमण-पाठ के विसीह देडक में, कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत-भक्तियों एवं ‘निर्वाण-काण्ड’ प्रभृति में प्राप्त होता है। जैन तीर्थ-संबंधी स्वतन्त्र कृतियाँ मध्यकाल में प्रचुर मात्रा में लिखी गईं, जिनमें विविध तीर्थकल्प कृति उल्लेखनीय है। उन सभी कृतियों की सूची डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ने विविध तीर्थकल्प ग्रन्थ की प्रस्तावना में दी है।

१. उद्धृत — विविध तीर्थकल्प, प्रस्तावना, पृष्ठ ७

२. आदिपुराण, उद्धृत — विविध तीर्थकल्प, प्रस्तावना, पृष्ठ ७

वर्तमान में जैन-तीर्थों के संबंध में निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय है —

- (क) जैन तीर्थ सर्वसंग्रह^१
- (ख) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ^२
- (ग) तीर्थ-दर्शन^३

तीर्थ-यात्रा आत्म-विशुद्धि का कारण है। गृह के अशान्त वातावरण एवं गृह-मोह से मुक्त होकर धर्माचरण किया जा सके, इसलिए तीर्थ-यात्रा स्पृहणीय है। तीर्थ-दर्शन एवं वन्दन से पुण्य का संचय, कषायों का संवरण और तीर्थ-स्थल के पवित्र परिवेश से भावों में निर्मलता की प्राप्ति होती है। कविवर समयसुन्दर ने जैन तीर्थों एवं तीर्थाधिपतियों की मुक्त कण्ठ से स्तुति की है। उन्होंने अनेक तीर्थ-यात्राएँ कीं और आत्म-विभोर हो, अनेक स्तवन-स्तोत्र रचकर तीर्थनायकों के चरणों में श्रद्धा और भक्तिपूरित पुष्प बिखरे। यहाँ तीर्थ एवं तीर्थाधिपतियों से संबंधित गीतों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है —

६.२.१ संस्कृत भाषा में निबद्ध गीत

६.२.१.१ तीर्थमाला वृहत्स्तवनम्

तीर्थ-वन्दना संबंधी गीतों में समयसुन्दर का प्रस्तुत गीत विश्रुत है। यह गीत १९ गाथाओं में आबद्ध है। इसका मुद्रण अनेक स्थानों से और अनेक ग्रन्थों में हुआ है। किसी-किसी ग्रन्थ में इस गीत की केवल १७ गाथाएँ ही उपलब्ध होती हैं। इसका रचना-काल कवि ने नहीं दिया है।

६.१.१.२ तीर्थमाला वृहत्स्तवनम्

कविवर ने इसके रचना-काल का निर्देश नहीं किया है, यद्यपि उन्होंने इस कृति में एक संकेत अवश्य दिया है, जिससे इसके रचना-काल का अनुमान किया जा सकता है —

राणपुरे जिनमंदिर-मतिरम्यं, श्रूयते सदा मयका।

धन्यं मम जन्म तदायदा, करिष्यामि तद् यात्राम्॥

‘यदा करिष्यामि तद् यात्राम्’ से स्पष्ट संकेत मिलता है कि कवि ने इस रचना का प्रणयन राणकपुर तीर्थ की यात्रा करने के पूर्व ही किया होगा। कवि की अन्य कृति ‘राणकपुर आदि जिन स्तवन’ में प्राप्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि कवि ने वि० सं० १६७२ में राणकपुर तीर्थ की यात्रा की थी। अतः उससे पहले ही इस रचना का निर्माण हुआ था। नाहटा-बन्धु ने इसे सं० १६६६ के पश्चात् प्रणीत होने का अनुमान लगाया है।^४

१. सेठ आनन्दजी कल्याणजी, अहमदाबाद से प्रकाशित
२. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी, मुम्बई ४ से प्रकाशित
३. श्री महावीर जैन कल्याणक-संघ, चेन्नई से प्रकाशित
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ६

कवि समयसुन्दर ने इस कृति के माध्यम से जैनधर्म के मुख्य तीर्थ-स्थलों को नमस्कार किया है, जिनमें गिरनार, आबू, अष्टापद, सम्पेत शिखर, जैसलमेर, नन्दीश्वर, शंखेश्वर आदि प्रमुख हैं।

६.२.१.३ श्री अमीझारा पार्श्वनाथ पूर्वकविप्रणीत काव्यद्वयर्थकरणमय लघु स्तवनम्
प्रस्तुत रचना वस्तुतः स्वयं कवि की रचना नहीं है, अपितु कवि कालिदास, माघ आदि पूर्ववर्ती साहित्यकारों के काव्य के अंशों को लेकर उनके अर्थों को इस प्रकार करने का प्रयास किया है कि उनसे पार्श्वनाथ की स्तुति भी अभिव्यंजित हो सकती है। प्रस्तुत रचना में ७ पद्य हैं, जिनमें अन्तिम पद्य स्वयं कविकृत है। इसमें रचना-काल एवं रचना-स्थल का निर्देश नहीं है।

तीर्थ एवं तीर्थाधिपतियों सं संबंधित उपर्युक्त प्रकीर्णक रचनाओं के अलावा एक अन्य लघु स्तवन भी प्राप्त होता है —

६.२.१.४ श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्, पद्य ५

६.२.२ प्राकृत भाषा में निबद्ध रचना

६.२.२.१ श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तोत्रम्

प्रस्तुत स्तोत्र में कवि ने स्तम्भन तीर्थनायक पार्श्वप्रभु की प्रार्थना की है। कवि ने इसी गीत में धरणेन्द्र एवं पद्मावती का भी स्तवन किया है। गीत में पार्श्वनाथप्रभु का शारीरिक सौन्दर्य बहुत अच्छे ढंग से चित्रित किया गया है।

स्तोत्र ८ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.२.३ भाषा में निबद्ध रचनाएँ

६.२.३.१ तीर्थमाला-स्तवन

तीर्थङ्करों के कल्याणक-स्थल, समवसरण-स्थल, विहार-क्षेत्र, मुनि-पुंगवों की निर्वाण भूमि और शत वर्षाधिक प्राचीन मंदिर तीर्थ माने जाते हैं। कवि समयसुन्दर ने प्रस्तुत स्तवन में ऐसे ११ प्रसिद्ध तीर्थों की स्तुति की है।

इसमें १० कड़ियाँ हैं। इसका रचना-काल एवं रचना-स्थल अनिर्दिष्ट है।

६.२.३.२ तीर्थ-भास

समयसुन्दर ने इस 'तीर्थ-भास' में कतिपय जैन तीर्थों को मोक्षदायक समझते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। तीर्थ-यात्रा हेतु जाने के लिए दो सखियाँ परस्पर वार्तालाप करती हैं। उसे ही इस रचना में अंकित किया गया है।

यह रचना ६ चतुष्पदों में गुम्फित है। इसका रचना-समय विदित नहीं हो पाया है।

६.२.३.३ अष्टापदतीर्थ-भास

'अष्टापदतीर्थ-भास' रचना में अष्टापद नामक तीर्थ की यात्रा करने वाले और

उसका जीर्णोद्धार करने वाले पुरुषों का उल्लेख करते हुए कवि ने स्वयं अपनी ओर से तीर्थ की स्तुति की है। रचना में ६ गाथाएँ हैं। इसका भी रचना-संवत् अज्ञात है।

६.२.३.४ श्री शत्रुञ्जय आदिनाथ भास

प्रस्तुत रचना में समयसुन्दर ने शत्रुञ्जय तीर्थ को पुण्य-पवित्रता का केन्द्र बताते हुए उसे कला और सौन्दर्य से भी युक्त बताया है। कवि ने इस तीर्थ के प्रति अविरोध भक्ति-धारा प्रवाहित की है। रचना ९ कड़ियों में गुम्फित है। इसकी रचना वि० सं० १६४४, चैत्र कृष्णा ४, बुधवार को हुई थी।

६.२.३.५ श्री शत्रुञ्जय तीर्थ-भास

जैन मान्यता के अनुसार 'शत्रुञ्जय' तीर्थ पर अनेक आत्माओं ने मुक्ति प्राप्त की है। कवि ने विवेच्य रचना में उक्त तीर्थ ही महत्ता पर प्रकाश डाला है। इस रचना के निर्माण के दिन कवि ने स्वयं इस तीर्थ की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त किया। यह यात्रा उन्हें संघपति सोमजी ने करवाई थी। अतः कवि ने उनकी भारी अनुमोदना की है।

यह रचना ११ गाथाओं में निबद्ध है। इसकी रचना वि० सं० १६४४, चैत्र कृष्ण पक्ष में हुई थी।

६.२.३.६ श्री शत्रुञ्जय आदिनाथ-भास

जैन धर्म में 'शत्रुञ्जय' शाश्वत तीर्थ माना जाता है। 'शत्रुञ्जय आदिनाथ-भास' रचना में इस तीर्थ की यात्रा करते हुए कवि ने इसके प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। उन्होंने इस रचना में उक्त तीर्थ-स्थल की तत्कालीन लगभग सकल परिस्थितियों का क्रमपूर्वक निर्देश किया है। अतः यह रचना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। रचना में ९ चतुष्पद हैं। इसका निर्माण वि० सं० १६५८, चैत्री-पूर्णिमा को पूर्ण हुआ।

६.२.३.७ आलोचनागर्भित शत्रुञ्जयमण्डन-आदिनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन की रचना ज्ञात-अज्ञातवश हुए पापों की आलोचना करने के उद्देश्य से हुई है। ऐसी मान्यता है कि शत्रुञ्जय-तीर्थ जाकर अपने पापों की आलोचना करने से आत्मा पापमल से मुक्त हो जाता है या उसके पाप क्षीण हो जाते हैं। कवि ने भी इस तीर्थ की यात्रा करके अपने पापपंक को आलोचना की गंगा से प्रक्षालित किया था। रचना में ३२ गाथाएँ हैं। रचना के अन्त में 'कलश' द्वारा रचना का उपसंहार किया गया है।

यद्यपि कवि ने विश्लेष्य कृति का रचना-संवत् नहीं दिया है, किन्तु कवि की अन्य कृतियों से विदित होता है कि कवि वि० सं० १६४४ तथा वि० सं० १६५८ में शत्रुञ्जय गये थे। अतः इन्हीं में से किसी एक संवत् में प्रस्तुत रचना का प्रणयन हुआ होगा।

६.२.३.८ श्री आबू तीर्थ स्तवन

'आबू तीर्थ स्तवन' में समयसुन्दर ने अपनी भक्ति-भावना अभिव्यक्त करने के

साथ ही साथ आबू तीर्थ की अद्भुत कलाकृतियों का भी उल्लेख किया है। वि० सं० १६५७, चैत्र कृष्णपक्ष ४ को कवि ने इस तीर्थ की ससंघ यात्रा की थी और उसी दिन इस स्तवन की रचना की थी। रचना ७ गाथाओं में निबद्ध है।

६.२.३.९ श्री आबू आदीश्वर भास

‘श्री आबू आदीश्वर भास’ ७ गाथाओं में निबद्ध है। इसका रचना-काल कवि ने निर्दिष्ट नहीं किया है। कवि की अन्य रचना ‘श्री आबू तीर्थ स्तवन’ में प्राप्त उल्लेखों से अवगत होता है कि कवि वि० सं० १६५७, चैत्र कृष्णपक्ष ४ को आबू पहुँचे थे। अतः सम्भवतया प्रस्तुत रचना का निर्माण भी उक्त समय के लगभग हुआ होगा।

इस भास में आबू पर प्रतिष्ठित चार भव्य जिनालयों का वर्णन करने हुए कवि ने उनकी हृदयहारी वन्दना की है।

६.२.३.१० श्री राणकपुर आदिनाथ जिन स्तवन

समयसुन्दर वि० सं० १६७२, मार्गशीर्ष मास में राणकपुर तीर्थ के दर्शनार्थ गये थे। उसी समय उन्होंने यह रचना लिखी थी। इसमें उन्होंने राणकपुर के नलिनीगुल्म देवविमान तुल्य चित्ताकर्षक मंदिर का वर्णन किया है। रचना ७ गाथाओं में आबद्ध है।

६.२.३.११ बीकानेर चौबीसटा चिन्तामणि आदिनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन की रचना बीकानेर में सं० १६८३ के मार्गशीर्ष मास में हुई थी। स्तवन में १५ पद्य हैं, अन्त में ‘कलश’ भी है। स्तवन के प्रथम पाँच पद्यों में कवि ने जिस विधि और भाव से मंदिर में चैत्यवन्दन आदि किया था, उसका वर्णन किया है। शेष पद्यों में मंदिर का सुन्दर चित्रण किया गया है। कवि ने इस गीत में यह भी उल्लेख किया है कि उन्होंने इस मंदिर के तलघर में पाषाण और पीतल की सैकड़ों जिनप्रतिमाओं का दर्शन किया था। साथ ही मंदिर के ऊपरी तल में जिनदत्तसूरि तथा जिनचन्द्रसूरि की मनोहर मूर्तियों का भी।

६.२.३.१२ विक्रमपुर आदिनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन में १० पद्य हैं। इसमें कवि ने विक्रमपुर तीर्थ के तीर्थाधिपति आदिनाथ की भावभीनी स्तुति की है। स्तवन में कवि ने अपनी पूर्व में की गई प्रमुख यात्राओं का भी उल्लेख किया है। साथ ही यह बताया है कि मारवाड़ का विक्रमपुर-तीर्थ, शत्रुंजय तीर्थ का एक दूसरा अवतार है। जिनचन्द्रसूरि ने सं० १६६२, चैत्र वदि ७ को इस मंदिर की प्रतिष्ठा की थी। इस मंदिर में ४० जिनप्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गई थीं — इस तथ्य का स्पष्टीकरण प्रस्तुत गीत से होता है।

गीत का रचना-काल आदि अज्ञात है।

६.२.३.१३ गणधरवसही (जैसलमेर) आदिजिन स्तवन

प्रस्तुत रचना १२ ढालों में गुम्फित है। प्रत्येक ढाल में एक-एक पद्य निबद्ध है।

इसका रचना-काल वि० सं० १६८० तथा रचना-स्थल जैसलमेर है।

इसमें कवि ने जैसलमेर के गणधरवसही मुखमण्डन जिनालय के मूलनायक आदिनाथ प्रभु की स्तुति की है। गीत में कवि ने यह भी निर्देश दिया है कि इस मंदिर के निर्माण में धरमसी, जिनदत्त, देवसी और भीमसी — इन चारों का आर्थिक सहयोग था। जिनचन्द्रसूरि ने वि० सं० १५३६, फाल्गुन शुक्ला ५ को इस जिनालय की प्रतिष्ठा करवाई थी। इस मंदिर की कलाकृति प्रशंसनीय है। कायोत्सर्ग में खड़ी भरत-बाहुबलि की मूर्ति, गजसवार मरुदेवी माता की मूर्ति, शिखर, मण्डप, बिम्बावली, समवशरण इत्यादि दर्शनीय कलाकृतियाँ हैं।

६.२.३.१४ सेत्रावा-मण्डन श्री आदिनाथ जिन स्तवनम्

इस स्तवन की रचना सेत्रावापुर में हुई थी, लेकिन रचना-काल का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। इस गीत में कवि ने भाव-विभोर होकर आदि तीर्थकर आदिनाथ की स्तुति की है। कविवर प्रभु को ही अपना सर्वस्व बताते हैं —

तूँ गति तूँ मति तूँ धणी, तूँ भवतारण हार।

तूँ त्रिभुवनपति तूँ गुरु, तूँ मुझ प्राण-आधार ॥

कवि समयसुन्दर ने प्रभु-प्रतिमा के शारीरिक लावण्य का आलंकारिक चित्रण प्रस्तुत किया है —

प्रतिमा नो मुख चन्द्रमा, लोचन अमिय कचोल।

दीप सिखा जिसी नासिका, कंचण द्रपण कचोल ॥

कुंद कली रदनावली, अद्भुत अधर प्रवाल।

सोवन देह सुहामणी, निर्मल शशिदल भाल ॥

कवि ने यह भी उल्लेख किया है कि सेत्रावा में वि० सं० १६९५, फाल्गुन शुक्ला, रविवार को भूमि से अनेक प्रतिमाएँ प्रकट हुईं, जिनमें तीर्थङ्कर ऋषभ, शीतल, वासुपूज्य, शान्ति और महावीर की प्रतिमाएँ आकर्षक एवं शोभायमान थीं।

गीत १६ पद्यों में आबद्ध है। गीतान्त में 'कलश' भी है।

६.२.३.१५ पाल्हणपुर-मण्डन ४४ द्वयर्थरागगर्भित चन्द्रप्रभजिन स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में ४४ रागों का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है कि वे पदानुकूल अन्य अर्थ भी ध्वनित करते हैं। इससे कवि की कवित्व-शक्ति भी उजागर होती है। गीत में तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभस्वामी की स्तुति की गई है। गीत में १२ पद्य हैं। इसका रचना-काल सं० १६७१, भाद्रप्रद शुक्ला १२ है और रचना-स्थल पाल्हणपुर है।

६.२.३.१६ अमरसरमण्डन श्री शीतलनाथ वृहत्स्तवनम्

इस गीत में कवि ने शीतलनाथ प्रभु से विनती की है कि वह उसके हृदय की पुकार को ध्यानपूर्वक सुने। कवि ने लिखा है कि संसार-सागर में परिभ्रमण करता हुआ

आज वह प्रभु का दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर सका है। अब वह शीतलनाथ प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी भी देव को नहीं स्वीकार करेगा। कवि का कहना है कि भला चिन्तामणि प्राप्त होने पर कांच को कौन ग्रहण करता है? गीत में उपमा-अलंकार का मनोहर चमत्कार प्रदर्शित है। कवि समयसुन्दर भी कबीर, तुलसी के समान नामस्मरण की महिमा बताते हुए कहते हैं —

तुम दरसण हो मुझ आणंदपूर कि, जिम जगि चन्द चकोरड़ा।

तुम दरसण हो मुझ मन उछरंग कि, मेह आगम जिम मोरड़ा ॥ २ ॥

तुम नामइ हो मोरा पाप पुलाय कि, जिम दिन ऊगई चोरड़ा।

तुम नामइ हो सुख संपति थाय कि, मनवंछित फलइ मोरड़ा ॥ ३ ॥

अन्त में कवि ने प्रभु से प्रार्थना की है कि उसे प्रत्येक जन्म में उनके दर्शन और उनके चरणों की सेवा प्राप्त होती रहे। गीत में १५ पद्य हैं। गीत का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.२.३.१७ मेड़तामण्डन विमलनाथ पंच कल्याणक स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में तीर्थंकर विमलनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण — इन पंच कल्याणकों एवं उनके जीवन-वृत्त को संक्षेप में निबद्ध किया गया है।

स्तवन में कुल १५ पद्य हैं। स्तवन के अन्त में 'कलश' भी लिखित है। रचना-काल अज्ञात है।

६.२.३.१८ पाटण शान्तिनाथ पंचकल्याणकगर्भित देवगृह-वर्णनयुक्त दीर्घस्तवनम्

प्रस्तुत गीत का रचना-काल अनुपलब्ध है। गीत का रचना-स्थल पाटण है। गीत २५ पद्यों में निबद्ध है। इसके १६ पद्य और सत्रहवें का आधा पद्य अप्राप्य है। गीत के अन्त में लिखित 'कलश' एवं शीर्षक से यह अनुमान किया जाता है कि उन पद्यों में तीर्थङ्कर शान्तिनाथ के पंचकल्याणक का वर्णन होगा। प्राप्त पद्यों में पाटण के देवगृह का वर्णन है। उससे ज्ञात होता है कि वह मंदिर कला आदि की दृष्टि से उस समय काफी प्रसिद्ध रहा होगा।

६.२.३.१९ जैसलमेरमण्डन श्री शान्तिजिन स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में जैसलमेर के शान्ति जिनालय के नायक तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की स्तुति की गई है। स्तुति में कवि ने मंदिर का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय मंदिर में शत्रुञ्जय-पट एवं सतरह सौ जिनप्रतिमाएँ थीं। मंदिर के मूलनायक की प्रतिष्ठा जिन्समुद्रमूरि ने वि० सं० १५३६, फाल्गुन शुक्ला ३ को कराई थी। गीत में ७ गाथाएँ हैं। गीत का रचना-काल तथा रचना-स्थल अप्राप्य है।

६.२.३.२० श्री गिरनार तीर्थ भास

इसमें गिरनार-तीर्थ की वन्दना की गई है। गीत में यह भी सूचित है कि इसी

भूमि पर तीर्थनायक नेमिनाथ के दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण — ये कल्याणकत्रय हुए थे। संघपति भरतेसर ने इस तीर्थ पर सर्वप्रथम जिन-प्रासाद निर्मित करवाया था।

गीत ८ पद्यों में है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.२.३.२१ श्री नारंगा पार्श्वजिन स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में ९ गाथाएँ हैं। इसका रचना-काल कवि ने नहीं दिया है। श्री नारङ्गा तीर्थ पाटण में है। 'श्रवण-भूषण' ग्रन्थ के अनुसार कवि वि० सं० १६५९ में पाटण गए थे। संभवतः इसी वर्ष उन्होंने इस स्तवन की रचना की होगी। इस स्तवन में पार्श्वजिन के प्रभाव का वर्णन कर उनके चरणों में कवि ने आत्म-समर्पण किया है।

६.२.३.२२ श्री नारंगा पार्श्वनाथ स्तवनम्

इस रचना में नारङ्गा पार्श्वनाथ के नामस्मरण के महत्त्व पर प्रकार डाला गया है। इसके स्मरण से शान्ति, पुष्टि और तुष्टि मिलती है। यह नाम अचिंत्य महिमा से पूरित है। गीत ९ गाथाओं में गुम्फित है। इसका भी रचना-काल सं० १६५९ होना चाहिए। इसका स्पष्टीकरण हम 'श्री तारङ्गा पार्श्वजिन स्तवनम्' में कर आए हैं।

६.२.३.२३ सप्तदश रागगर्भित श्री जैसलमेरमण्डन पार्श्वजिन स्तवनम्

प्रस्तुत रचना का रचना-स्थल जैसलमेर है। रचना-समय निर्दिष्ट नहीं है। 'वल्कलचीरी चौपाई' से अवगत होता है कि कवि ने वि० सं० १६८१ में जैसलमेर में अपना वर्षावास पूर्ण किया। अतः यह रचना भी सम्भवतः उसी वर्षावास में निबद्ध हुई होगी।

इस रचना में ४७ पद्य हैं, जो १७ रागों में निबद्ध हैं। रचना की यह विशेषता है कि जिस 'राग' में जो राग प्रयुक्त हुई है, उसे प्रत्येक 'राग' (गीत) की अन्तिम पंक्ति में भी दिया गया है। रचना के निर्माण का उद्देश्य प्रभु पार्श्वनाथ के पंचकल्याणक का कीर्तन करना है। रचना के प्रारम्भ में रचना की भूमिका दी गई है, जिसमें रचना के प्रणयन का उद्देश्य बताया है और लिखा है कि जिनेश्वर के गुणों की स्तुति करने से सम्यक्त्व और तीर्थङ्कर-गोत्र की प्राप्ति होती है। रचना की विषयवस्तु इस प्रकार है —

वाराणसी में अश्वसेन राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम वामा था। चैत्रकृष्ण चतुर्थी को दसवें देवलोक से एक देव 'च्यव' कर वामादेवी की कुक्षि में अवतरित हुआ। वामा ने रात्रि में चौदह शुभ स्वप्नों के दर्शन किये। पौष कृष्णा दशमी को वामा ने एक नीलवर्णी बालक को जन्म दिया। बालक का जन्मोत्सव देवताओं तक ने भी सानन्द मनाया। बालक का नामकरण 'पार्श्वकुमार' किया गया। पार्श्व प्रज्ञावान् एवं प्रवीण थे।

उस समय तापस कमठ पंचाग्नि की साधना करने के लिए अपने चारों ओर लकड़ियाँ जलाकर कठिन तप कर रहा था। पार्श्व उनके पास गए और लकड़ियों में जलते

हुए नाग-युगल को बचाया। उन्होंने उस नाग-युगल को 'नमस्कार-मन्त्र' सुनाया, जिससे वह मरकर धरणेन्द्र एवं पद्मावती नामक देव-देवी हुए।

पौष कृष्णा एकादशी को पार्श्वकुमार ने दीक्षा अङ्गीकार की और साधना करने लगे। पूर्वभव के वैरवश कमठ ने अति धारासार जलवृष्टि आदि से उन पर उपसर्ग किये, परन्तु धरणेन्द्र देव ने इस दुष्कृत्य के लिए कमठ को धिक्कारा और उपसर्ग शान्त किये। चैत्र कृष्णा चतुर्थी को उन्होंने कैवल्य प्राप्त किया और तत्पश्चात् सम्पूर्ण आर्यक्षेत्र में धर्मनीति के बीज-वपन किये। श्रावण शुक्ला अष्टमी को उन्होंने सिद्धत्व प्राप्त किया।

इस प्रकार कवि ने पार्श्वप्रभु के पंचकल्याणक का वर्णन करते हुए अन्त में उनकी भावभीनी स्तुति की है।

६.२.३.२४ श्री फलवर्द्धि पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन कुल १० पद्यों में है। ९ पद्यों में स्तुति है और अन्तिम पद्य में 'कलश' किया गया है। इस स्तवन में फलवर्द्धि-पार्श्वनाथ-तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। गीत में यह भी निर्दिष्ट है कि फलवर्द्धि पार्श्व की प्रतिमा श्यामवर्णी, सप्तफणवाली, मनोहारी और चमत्कारी है। इस तीर्थ में पौष कृष्णा दशमी को भारी मेला लगता है। कवि ने भी पौष कृष्णा दशमी को ही इस तीर्थ की यात्रा की थी, लेकिन उन्होंने यह तीर्थयात्रा किस वर्ष में की थी, इसकी सूचना गीत में उपलब्ध नहीं है।

६.२.३.२५ श्री लौद्रवपुर सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में लौद्रवपुर पार्श्वनाथ की स्तुति एवं वन्दना की गई है। गीत में प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि जैसलमेर के सीहमल साह ने लौद्रवपुर तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया था। तीर्थ के मूलनायक पार्श्वनाथ की प्रतिमा सहस्रफणों से सुशोभित थी। कवि ने वि० सं० १६८१ की कार्तिक पूर्णिमा को इस तीर्थ की यात्रा की थी। गीत ९ पद्यों में है।

६.२.३.२६ श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवनम्

इस गीत में स्तम्भन पार्श्वनाथ की भावभीनी स्तुति की गई है। कवि ने लिखा है कि अभयदेवसूरि ने सेढिका नदी के तट पर इस प्रतिमा को प्रकट कर यहाँ तीर्थ स्थापित किया था।

गीत में ७ पद्य हैं। रचना-काल अनुलिखित है।

६.२.३.२७ श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन का रचना-स्थल मेवापुर है, किन्तु रचना-काल अज्ञात है। स्तवन ८ पद्यों में निबद्ध है। इसमें कवि ने नाकोड़ा पार्श्वनाथ के नाम की महिमा प्रदर्शित करते हुए उनके नाम का जाप करने की प्रेरणा दी है। कवि ने इस नाम को महाचमत्कारी बताया है।

६.२.३.२८ श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में गौड़ी पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। कवि का कहना है कि गौड़ी पार्श्वनाथ का तीर्थ चामत्कारिक एवं प्रसिद्ध है। यहाँ का अधिष्ठायक यक्ष भक्तों का मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध करता है। इस तीर्थ की यात्रा करने के लिए अनेक यात्री-संघ यहाँ आते हैं। कवि समयसुन्दर बताते हैं कि मेरे घुटने अस्वस्थ होने के कारण मैं इस तीर्थ की यात्रा नहीं कर पा रहा हूँ। अतः दूर बैठे ही मैं गौड़ी पार्श्वनाथ को सभक्ति वन्दन करता हूँ।

यह स्तवन ७ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.२.३.२९ श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम्

प्रस्तुत गीत में ७ पद्य हैं। इस गीत के रचना-काल का कवि ने उल्लेख नहीं किया है। इस गीत में कवि ने गौड़ी पार्श्वनाथ की प्रार्थना करते हुए यह बताया है कि यहाँ भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से यात्री-संघ यात्रा करने के लिए आते हैं। वे यहाँ भाव-भक्तिपूर्वक द्रव्यपूजा एवं भावपूजा करते हैं। कवि ने भी अपनी भक्ति-भावना प्रस्तुत गीत में व्यक्त की है।

६.२.३.३० श्री नागोरमण्डन पार्श्वनाथ स्तवनम्

विवेच्य गीत की रचना वि० सं० १६६१, चैत्र कृष्णा ५ को सम्पूर्ण हुई थी। इसमें ८ गाथाएँ हैं, अन्त में 'कलश' भी लिखा गया है। इस गीत में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की प्रार्थना की गई है।

६.२.३.३१ श्री सांचोर-तीर्थ महावीर जिन स्तवनम्

विश्लेष्य रचना में 'जिन प्रतिमा जिन सारखी जाणउ' की भावना व्यक्त करते हुए और प्रतिमा की शाश्वतता सिद्ध करने के लिए कतिपय आगमिक दृष्टान्तों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि ने तीर्थङ्कर की स्तुति करते हुए अपने जीवन को सफल माना है।

रचना 'कलश' सहित १४ गाथाओं में निबद्ध है। इसकी रचना वि० सं० १६७७ के माघ माह में हुई थी।

६.२.३.३२ जैसलमेर-मण्डन महावीर जिन विज्ञप्ति स्तवन

प्रस्तुत रचना 'महावीर विनती' के नाम से जैन समाज में प्रख्यात है। इस रचना में कवि समयसुन्दर प्रभुभक्ति में रंगे हुए दृष्टिगत होते हैं। परम तत्त्व के साक्षात्कार की इसमें तीव्र जिज्ञासा व्यक्त की गई है। कवि ने इसमें तीर्थङ्कर महावीर के लोकोद्धारक रूप का वर्णन करते हुए उनके द्वारा किये गये उद्धारों पर सम्यक् प्रकाश डाला है। कवि का भी उद्धार हो — यही प्रस्तुत रचना के प्रणयन का लक्ष्य प्रतीत होता है।

रचना १९ गाथाओं में निबद्ध है, अन्त में 'कलश' भी है। कवि ने इसकी रचना जैसलमेर में की थी। रचना-समय का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। 'मौन एकादशी

स्तवन' आदि रचनाओं से अवगत होता है कि समयसुन्दर ने वि० सं० १६८१ का वर्षावास जैसलमेर में पूर्ण किया था। अतः विवेच्य रचना भी उसी वर्षावास में निर्मित हुई होगी।

६.२.३.३३ श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम्

ऐतिह्य दृष्टि से प्रस्तुत कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें घंघाणी तीर्थान्तरगत अर्जुनपुर में जैन तथा जैनेतर मूर्तियों का कवि द्वारा आँखों देखा चित्रण है। सम्पूर्ण मूर्तियाँ ६५ थीं, जिनमें जैन मूर्तियाँ ३७ थीं। ये मूर्तियाँ घंघाणी ग्राम के दूधेला नामक तालाब के पृष्ठ भाग के खण्डहर की खुदाई के समय निकली थीं। खण्डहर के सम्पूर्ण वैभव का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। जिन-मूर्तियों पर अंकित अभिलेखों के आधार पर कवि ने लिखा है कि वे मूर्तियाँ वीर संवत् २७३ की थीं। ये जिन प्रतिमाएँ आर्यसुहस्तिसूरि द्वारा प्रतिष्ठित एवं राजा सम्प्रति द्वारा प्रतिष्ठापित थीं। इसके अतिरिक्त कवि ने घंघाणी तीर्थ का परिचय दिया है और इस तीर्थ को महाप्रभाविक बताया है।

प्रस्तुत कृति चार ढालों में गुम्फित है। कृति के अन्त में 'कलश' भी लिखा हुआ है। कृति का रचना समय वि० सं० १६६२ का माघ मास है।

ऊपर हमने तीर्थ एवं तीर्थाधिपतियों से संबंधित भाषा में निबद्ध रचनाओं का परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त बहुत से लघु गीत भी पाये जाते हैं, जिनका यहाँ नामोल्लेख किया जा रहा है —

६.२.३.३४	श्री अष्टापद तीर्थ भास	पद्य ५
६.२.३.३५	अष्टापदमण्डन शांतिनाथ गीतम्	पद्य ५
६.२.३.३६	शत्रुंजयमण्डन आदिनाथ भास	पद्य ५
६.२.३.३७	शत्रुंजय तीर्थ भास	पद्य ५
६.२.३.३८	शत्रुंजयमण्डन युगादिदेव गीतम्	पद्य ३
६.२.३.३९	विमलाचलमण्डन आदिजिन स्तवन	पद्य ३
६.२.३.४०	विमलाचल मण्डन आदिनाथजिन स्तवन	पद्य ४
६.२.३.४१	अर्बुदाचलमण्डन युगादिदेव गीतम्	पद्य ३
६.२.३.४२	पुरिमताल-मण्डन आदिनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.४३	इन्द्रवारि-मण्डन श्री चन्द्रप्रभ भास	पद्य २
६.२.३.४४	आगरा-मण्डन श्री विमलनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.४५	गिरनारतीर्थ नेमिनाथ उलंभा भास	पद्य ४
६.२.३.४६	श्रीसौरीपुर-मण्डन नेमिनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.४७	श्रीनडुलाई मण्डन नेमिनाथ भास	पद्य २
६.२.३.४८	गिरनार-मण्डन नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३

६.२.३.४९	श्री पार्श्वनाथ अनेक तीर्थ नाम स्तवन	पद्य ४
६.२.३.५०	श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन गीतम्	पद्य ३
६.२.३.५१	श्री फलवर्द्धि पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ४
६.२.३.५२	श्री लौद्रवपुर जिनालय स्तवनम्	पद्य २
६.२.३.५३	श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ५
६.२.३.५४	श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य ३
६.२.३.५५	श्री कंसारी त्रम्बावतीमण्डन भीड़भंजन पार्श्वनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.५६	श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम्	पद्य ५
६.२.३.५७	श्री भीड़-भंजन पार्श्वनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.५८	श्री भीड़-भंजन पार्श्वनाथ भास	पद्य ३
६.२.३.५९	श्री भीड़-भंजन पार्श्वजिन भास	पद्य ३
६.२.३.६०	श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम्	पद्य ५
६.२.३.६१	श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.६२	श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.६३	श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम्	पद्य ५
६.२.३.६४	श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ५
६.२.३.६५	श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.६६	श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन	पद्य ३
६.२.३.६७	श्री गौड़ी पार्श्वनाथ भास	पद्य ३
६.२.३.६८	श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.६९	श्री भाभा पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.७०	श्री भाभा पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.७१	श्री सेरीसा पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.७२	श्री कलोल पार्श्वनाथ भास	पद्य ३
६.२.३.७३	श्री सिकन्दरपुर चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ४
६.२.३.७४	अजाहरा पार्श्वनाथ भास	पद्य ४
६.२.३.७५	श्री अजाहरा पार्श्वनाथ स्तवन	पद्य ४
६.२.३.७६	श्री नारङ्गा पार्श्वनाथ स्तवन	पद्य ३
६.२.३.७७	श्री वाड़ी पार्श्वनाथ भास	पद्य ३
६.२.३.७८	श्री मंगलोर-मंडण नलपल्लव पार्श्वनाथ भास	पद्य ५
६.२.३.७९	श्री देवका पाटण दादा पार्श्वनाथ भास	पद्य ४

६.२.३.८०	श्री अमीझरा पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य ३
६.२.३.८१	श्री शामला पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य ३
६.२.३.८२	श्री अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य ३
६.२.३.८३	श्री बीबीपुर मण्डन चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन	पद्य ३
६.२.३.८४	श्री भड़कुल पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य ३
६.२.३.८५	श्री तिमरीपुर पार्श्वनाथ गीतम्	पद्य २
६.२.३.८६	श्री वरकाणा पार्श्वनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.२.३.८७	श्री भोडुयाग्राम-मण्डन वीरजिन गीतम्	पद्य ३

६.३ मुनियों से संबंधित रचनाएँ

मुनि-जीवन एक उच्चस्तरीय नैतिकता तथा आत्मसंयम का जीवन है। मुनिजन समभाव के साधक, प्रेरणा-सूत्र और व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में नैतिकता के सजग प्रहरी हुआ करते हैं।

जैनशास्त्रों में मुनियों के दो वर्ग हैं — १. जिनकल्पी मुनि और २. स्थविर कल्पी मुनि।^१ इनमें जिनकल्पी मुनि एकाकी रहकर आत्म-साधना करते हैं, जबकि स्वविरकल्पी मुनि संघ में रहकर साधना करते हैं। 'दशवैकालिक सूत्र'^२, उत्तराध्यय सूत्र^३ आदि जैनागमों में आदर्श मुनि का स्वरूप एवं उसके जीवन का परिचय वर्णित है। आदर्श मुनि नित्य कल्याणपथ में अपनी आत्मा को स्थिर रखकर नश्वर तथा अपवित्र देहावास को त्यागकर और जन्म-मरण के बन्धनों को सर्वथा काटकर अपुनरागति मोक्ष को प्राप्त करता है।^४

हमारे विवेच्य कवि समयसुन्दर स्वयं एक मुनि थे और अपने पूर्ववर्ती आदर्श मुनियों के प्रति नतमस्तक थे। उन्होंने आदर्श मुनि-जीवन का सश्रद्धा गुणगान किया है। यह बात उनके मुनियों से संबंधित गीतों से प्रगट होती है।

समयसुन्दर ने मुनियों से संबंधित स्वरचित गीतों का संकलन भी किया था। इस तरह के दो संकलन मिले हैं। प्रथम संकलन का नाम है, 'साधु गीत छत्तीसी'। इसके अन्तिम दो पत्रोंवाली पाण्डुलिपि अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है, जिसमें ३१ से ३६ तक के गीत सुरक्षित हैं। प्राप्त पाण्डुलिपि के अन्त में ३६ गीतों की सूची दी गई है, जिससे ज्ञात होता है कि समयसुन्दर ने इसमें ३६ गीतों का संकलन किया होगा। द्वितीय संकलन का नाम है, 'साधु-गीतानि'। इसमें भी मुनियों के जीवनी संबंधी गीत

१. विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति (७)
२. दशवैकालिकसूत्र ('भिक्खु' नामक दशम् अध्ययन)
३. उत्तराध्ययन सूत्र ('सभिक्खु' नामक पंचदशम् अध्ययन)
४. दशवैकालिक सूत्र (१०.२१)

संकलित किये गये हैं। इसकी समयसुन्दर लिखित दो प्रतियाँ और अन्य लिखित कई प्रतियाँ श्री अग्रचन्द नाहटा को मिली थीं। इनमें एक के तो केवल मध्य पत्र ही उन्हें प्राप्त हुए हैं, जिसमें संख्या २१ से ५१ तक के गीत हैं। सं० १६९५ में हरिराम का लिखा हुआ गीत भी इसमें हैं। प्रारम्भिक गीत स्वयं लिखित है और पीछे के गीत हरिराम के लिखित हैं। एक गीत में १ १/२ गाथा तो स्वयं की लिखित और पीछे का अंश हरिराम का लिखा मिला है। लींबड़ी भण्डार में 'साधुगीतानि' की जो दूसरी प्रति मिली है, उसमें ४९ गीत हैं। इनमें सं० १६९२, मिगसर सुदि १ अहमदाबाद के ईदलपुर में चातुर्मास करते हुए ४५ गीत लिखे और ४ गीत फिर पीछे से लिखे गये। ६ पत्रों की अपूर्ण अन्य प्रति में १३ गीत मिले हैं।^१

अब हम मुनियों सं संबंधित प्राप्त गीतों का स्वतन्त्र रूप में परिचय दे रहे हैं —

६.३.१ श्री शालिभद्रगीत

'श्री शालिभद्र गीत' रचना में कविवर लिखते हैं कि धन्ना और शालिभद्र ने प्रव्रजित होकर कठोर तप-साधना की। अन्तिम जीवन में उन्होंने वैभारगिरि पर संलेखना-व्रत धारण किया। शालिभद्र की माता भद्रा उनके दर्शन करने आई। माता ने उन्हें अपने पलक खोलने के लिए काफी अनुनय किया, लेकिन शालिभद्र ने माता के इस आग्रह को स्वीकार नहीं किया। अन्त में समाधिमरण प्राप्त कर देव बने, भविष्य में मुक्त होंगे।

इस गीत की हस्तलिखित प्रति के अन्त में लिखा है कि 'सं० १६९५ वर्षे मगसिरस्यामावास्यां जोडवाड़ा ग्रामे पं० हरिरामलिखितम्।' इससे स्पष्ट है कि यह रचना उक्त समय से पूर्व-ही प्रणीत हुई होगी। प्रस्तुत गीत में ८ पद्य हैं।

६.३.२ श्री धन्ना अनगार गीतम्

'श्री धन्ना अनगार गीतम्' १५ गाथाओं में गुम्फित है। रचना-स्थल एवं समय दोनों ही अनिर्दिष्ट है। इसका वर्णित विषय अधो-अंकित है —

काकन्दी नगरी में भद्रा नामक सार्थवाहिनी अपने पुत्र धन्ना के साथ रहती थी। धन्ना ने एक बार तीर्थङ्कर महावीर का उपदेश सुना और दीक्षा की भावना लेकर घर आया। पत्नियों ने उसे समझाया —

मयण दंत लोह ना चणा, किम चाबस्यै कंत।

मेरु माथइ करी चालवूं, खङ्गधार हो पंथ॥

पर उसने अपनी बत्तीस पत्नियों एवं धन-वैभव से संबंध तोड़कर प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। उन्होंने कठोर तपस्या की और साधु-शिरोमणि हो गए। उनके शरीर में केवल हड्डियाँ ही रह गईं, परन्तु आत्मा पर आभा खिल उठी। अन्त में उन्होंने अनशन कर परममृत्यु को वरण किया।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, वक्तव्य, पृष्ठ १६-१८

६.३.३ श्री ढंढण ऋषि गीतम्

श्री ढंढण ऋषि गीतम् में दो ढालें हैं। प्रथम ढाल में १२ गाथाएँ हैं और द्वितीय ढाल में ९ गाथाएँ हैं। इस गीत की रचना वि० सं० १६८२, मार्गशीर्ष शुक्ला १ को पूर्ण हुई थी। प्रस्तुत गीत का विवेच्य विषय अधो-लिखित है —

द्वारिका नगरी में कृष्ण राज्य करते थे। एक बार भगवान् नेमिनाथ द्वारिका पधारे। कृष्ण अपनी १६ हजार पत्नियों सहित उनका उपदेश सुनने गये। रानी ढंढण का पुत्र ढंढण प्रतिबोध को प्राप्त हुआ और उसने दीक्षा धारण कर ली। लेकिन उन्हें अलाभ-परीषह का काफी सामना करना पड़ा। ढंढण ऋषि ने प्रभु से इसका कारण पूछा, तो प्रभु बोले — पूर्वभव में तुम एक अधिपति ब्राह्मण थे। तुमने अपने ५०० सेवकों (हालियों) के अन्न-जल में अन्तराय की थी। यह उसी का फल है, जो बिना भोगे नष्ट नहीं हो सकता। हे ढंढण! परीषह एक कसौटी है। प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति को प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेना परीषह-जय है, तितिक्षा है। ढंढण ऋषि परीषह विजेता बन गये। इन्हें भगवान् ने अपने संघ का सर्वश्रेष्ठ रत्न बतलाया। अन्त में इन्होंने कैवल्य प्राप्त कर मुक्ति का वरण किया।

६.३.४ श्री बाहुबलि गीतम्

‘श्री बाहुबलि गीतम्’ के रचना-काल का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। यह गीत ७ कड़ियों में है। इसमें कवि ने लिखा है कि राज्य-लोभी भरत पर प्रहार करने के लिए बाहुबलि ने मुष्टि उठाई, लेकिन प्रतिबोधित होकर संयम अंगीकार कर लिया। किन्तु बाहुबलि मद-गज पर आरूढ़ होने के कारण केवल ज्ञान न पा सके। भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें उपदेश देने के लिए ब्राह्मी-सुन्दरी को भेजा। दोनों के इस कथन ने उन्हें केवलज्ञान दिला दिया —

वीरा म्हारा गज थकी ऊतरउ, गज चढ्यां केवल न होइ रे।

६.३.५ श्री शालिभद्र गीतम्

प्रस्तुत रचना का रचना-काल अनिर्दिष्ट है। इसमें १० कड़ियाँ हैं। इस गीत में कवि ने मुनि शालिभद्र का गुण-कीर्तन किया है। शालिभद्र का जीवन-वृत्त हम ‘धन्नाशालिभद्र गीतम्’ के अन्तर्गत वर्णित कर आए हैं।

६.३.६ श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि गीतम्

प्रस्तुत गीत में ७ कड़ियाँ हैं। इसका रचना-काल अनुलिखित है। इसमें प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के गुणों की स्तुति की गई है। राजर्षि का जीवन-चरित्र हम ‘वल्लकलचीरी चौपाई’ के वर्ण-विषय में वर्णित कर आए हैं।

६.३.७ श्री मेतार्य ऋषि गीतम्

राजगृह नगर में एक स्वर्णकार के यहाँ मेतार्य मुनि भिक्षार्थ गये। स्वर्णकार घर

में आहार लेने गया। आकस्मिक, एक क्रौंच पक्षी स्वर्णकार के स्वर्ण-जंवार को जवार-अन्न समझकर खा गया। स्वर्णकार को मुनि पर संदेह हुआ और क्रोधित होकर उसने उनके सिर पर भीगी चमड़ी की पट्टी बान्ध दी। पट्टी सूखने पर मुनि को अत्यधिक वेदना हुई। रहस्य को बता देने पर क्रौंच पक्षी को मार डाला जावेगा — यह विचारकर वे मौन रहे और समभाव से उस पीड़ा को सहन की। अन्ततः मुनि ने केवलज्ञान अर्जित किया और मुक्त हुए। इसमें ७ गाथाएँ हैं। इसका रचना-काल अनुल्लेखित है।

६.३.८ श्री मेघरथ (शान्तिनाथ दसम भव) राजा गीतम्

प्रस्तुत गीत २१ गाथाओं में आबद्ध है। गीत का रचना-काल अज्ञात है। इस गीत में तीर्थङ्कर शान्तिनाथ का पूर्व भव अर्थात् मेघरथ का जीवनवृत्त वर्णित है। गीत के प्रणयन का उद्देश्य दया का माहात्म्य प्रस्तुत करना है। कवि समयसुन्दर दया की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि —

दया थकी नव निधि हुवइ, दया ए सुख नी खाण रूड़ा राजा ।

भव अनन्त नी ए सगी, दया तो माता जाण रूड़ा राजा ॥

६.३.९ श्री भवदत्त-नागिला गीतम्

प्रस्तुत रचना में कविवर लिखते हैं कि भवदत्त मुनि अपने गार्हस्थिक भाई भवदेश को उपदेश देने के लिए उनके घर गये। उन्होंने भाई को दीक्षित होने का उपदेश दिया। नवविवाहित भवदेव, भाई के उपदेश को लज्जावश अस्वीकार न कर सका। उसने दीक्षा तो ले ली, लेकिन उसके मन में अपनी पत्नी नागिला का ही ध्यान रहता था। अन्त में वे अपनी पत्नी को पुनः प्राप्त करने के लिए घर गये, परन्तु नागिला ने वमित वस्तु को पुनः न ग्रहण करने के संबंध में भवदेव को समझाया। मुनि पुनः विरक्त हो गये और साधना करके देवगति प्राप्त की।

यह रचना ८ कड़ियों में निबद्ध है। इसका रचना-समय अनिर्दिष्ट है।

६.३.१० श्री मृगापुत्र गीतम्

प्रस्तुत रचना में मृगापुत्र श्रमण की स्तुति की गई है। मृगापुत्र सुग्रीव नगर में रहता था। उसके पिता का नाम बलभद्र था और उसकी माता का नाम मृगावती। एक बार मृगापुत्र ने महल के गवाक्ष से एक मुनि को द्रष्टव्य किया। इस मुनिवेश ने उसके जीवन को बदल दिया। उसने अपने माता-पिता से साधु बनने की आज्ञा मांगी। माता-पिता पुत्र को संयम से विमुख करने लगे, जबकि पुत्र संयम ग्रहण करने का आग्रह कर रहा था। अन्त में उन्होंने पुत्र को दीक्षा की अनुमति दे दी। मृगापुत्र मुनि बने और परमसाधना के बाद उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। कवि ने प्रस्तुत रचना की विषय-वस्तु का आधार 'उत्तराध्ययन सूत्र' बताया है। रचना में ७ गाथाएँ हैं। रचना-काल अनुल्लेखित है।

६.३.११ श्री जम्बूस्वामी गीतम्

‘श्री जम्बूस्वामी गीतम्’ रचना १२-१३ कड़ियों में निबद्ध है। इसकी विषयवस्तु इस प्रकार है —

राजगृह नगर में सेठ ऋषभदत्त के पुत्र जम्बू ने एक बार भगवान् महावीर की आर्ष-वाणी सुनी और ब्रह्मचर्य-व्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली। माता धारणी ने उनका ८ कन्याओं से विवाह कर दिया। उन्होंने अपनी पत्नियों को पूरी रात्रि उपदेश दिया। वे भी दीक्षित होने को तैयार हो गईं। रात में चौर्य-कर्म करने आए प्रभव आदि ५०० चोर भी जम्बू की उपदेशप्रद बातें सुनकर प्रतिबोधित हुए। अन्त में जम्बू के साथ उसकी ८ पत्नियाँ, पत्नियों के पिता-माता, उसके स्वयं के पिता-माता और प्रभव आदि ५०० चोरों ने अर्थात् ५२८ व्यक्तियों ने सामूहिक दीक्षा ली। जम्बू ने साधना करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा सिद्ध-गति को प्राप्त हुए।

इस रचना का रचना-काल ज्ञात नहीं हो पाया है।

६.३.१२ श्री चिलातीपुत्र गीतम्

कवि ने प्रस्तुत गीत में लिखा है कि सेठ धन्ना का सेवक चिलातीपुत्र उसकी पुत्री के प्रति आसक्त हो गया। सेठ ने उसे निकाल दिया। वह संयोगवश ५०० चोरों का स्वामी बन गया। एक दिन उसने सेठ के घर पर डाका डाला और सुषमा को उठा ले गया। सेठ ने उसका पीछा किया। उसने सुषमा को मार डाला। सुषमा का कटा हुआ सिर लेकर वह एक मुनि के समीप पहुँचा। उनका उपशम, विवेक, संवर का उपदेश सुना। उसने वैराग्य प्राप्त किया। मृत्यु के पश्चात् आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ।

प्रस्तुत गीत में ६ कड़ियाँ हैं। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.३.१३ श्री उदयन राजर्षि गीतम्

प्रस्तुत रचना का रचना-समय अनुल्लेखित है। इसकी लीम्बड़ी और अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर वाली हस्तलिखित प्रतियों में से लीम्बड़ीवाली प्रति में एक गाथा अधिक है। उसमें इसकी गाथा संख्या २१ है। रचना ३ ढालों में निबद्ध है।

प्रस्तुत गीत में यह उल्लिखित है कि पाटण-नरेश उदयन के मन में एक बार अभिलाषा उत्पन्न हुई कि यदि मेरी नगरी में भगवान् महावीर आ जायें, तो मेरी नगरी धन्य हो जाएगी। भगवान् वहाँ गये। उनका उपदेश सुनकर राजा विरक्त हो गया। राज्य संचालन में कर्म-बंधन अधिक होते हैं — यह सोचकर राजा ने अपने पुत्र अभीचकुमार को राज्यभार न देकर अपने भागिनेय केशी को दिया। राजा ने प्रव्रज्या धारण कर कठिन तपस्या की। वे व्याधिग्रस्त हो गये। औषधोपचार कराने हेतु वे पाटण आए। केशी राजा ने यह विचारकर मुनि को नगर में प्रवेश करने से रुकवा दिया कि ये मुझसे राज्य छीनने आए हैं। अन्त में एक कुम्हार ने मुनि को प्रश्रय दिया। केशी ने मुनि को औषधि में विष

पिला दिया। शुभध्यान का स्मरण करते हुए मुनि ने केवलज्ञान अर्जित किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

६.३.१४ श्री नमि-राजर्षि गीतम्

‘श्री नमि-राजर्षि गीतम्’ का रचना-काल अज्ञात है। गीत में ७ गाथाएँ हैं। प्रस्तुत गीत का वर्णित विषय ‘चार प्रत्येकबुद्ध-रास’ के तृतीय खण्ड के वर्णित विषय से संबंधित है, जिसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। अतः यहाँ इस संबंध में लिखना पुनरावृत्ति-दोष से ग्रस्त होना है।

६.३.१५ श्री इलापुत्र सञ्ज्ञाय

‘श्री इलापुत्र सञ्ज्ञाय’ इलापुत्र की जीवनी को प्रस्तुत करती है। इलापुत्र श्रेष्ठी-पुत्र होते हुए भी एक नटकन्या से कामासक्त होकर नगर-नगर भटकता है और नट-कला का प्रदर्शन करता है, लेकिन एक अनासक्त श्रमण को एक सुन्दरी से आहार लेते हुए देखकर वह भी विरक्त हो गया और उसने आध्यात्मिक विशुद्धि के द्वारा केवल-ज्ञान अर्जित किया। गीत ९ गाथाओं में निबद्ध है। इसका रचना-समय अनुपलब्ध है।

६.३.१६ श्री नमि प्रत्येकबुद्ध गीतम्

इस गीत में ‘नमि’ नामक ‘तृतीय प्रत्येकबुद्ध’ का संक्षेप में जीवन-वृत्त गुम्फित है, जिसका विस्तृत वृत्तान्त हम ‘चार प्रत्येकबुद्ध-रास’ का परिचय देते हुए दे आए हैं। प्रस्तुत गीत में ६ कड़ियाँ हैं। गीत का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.३.१७ श्री नग्गई चतुर्थ प्रत्येकबुद्ध गीतम्

विवेच्य रचना ६ गाथाओं में आबद्ध है। इसका रचना-काल कवि ने नहीं दिया है। इस रचना में नग्गति नामधेयक ‘चतुर्थ प्रत्येकबुद्ध’ का गुणानुवाद करते हुए उनकी जीवनी पर प्रकाश डाला गया है। नग्गति की जीवनी हमने ‘चार प्रत्येकबुद्ध रास’ के वर्णन में दी है।

६.३.१८ श्री आदीश्वर ९८ पुत्र-प्रतिबोध गीतम्

यह एक उपदेशात्मक रचना है। आदि तीर्थङ्कर ऋषभनाथ अष्टापद-गिरि पर विहरण कर रहे थे। वहाँ उनके ९८ पुत्र भी पहुँच गये। पुत्रों ने उन्हें अपनी गार्हस्थिक परिस्थितियों से अवगत कराते हुए कहा कि भरत भैया हमारा राज्य हस्तगत करना चाहते हैं। अब वे राज्यादि सुखों में मूर्च्छित हो गये हैं। इसके प्रत्युत्तर में प्रभु ने जो वैराग्यपरक उपदेश दिया था, उसे ही कवि ने प्रस्तुत कृति में मुख्य रूप से अंकित किया है।

उनके उपदेश से सभी पुत्र प्रतिबोधित हुए और प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

समयसुन्दर का कथन है कि उन्होंने यह रचना सूयगडांग (सूत्रकृतांग) सूत्र के आधार से प्रणीत की है। इस कृति में ४० गाथाएँ हैं। समयसुन्दर ने हाथी शाह की प्रेरणा एवं आग्रह से यह रचना लिखी थी। यह रचना कब लिखी गई— इसका कवि ने कोई

उल्लेख नहीं किया है।

६.३.१९ श्री दुमुह प्रत्येकबुद्ध गीतम्

प्रस्तुत गीत ७ गाथाओं में निबद्ध है। गीत का रचना-समय अज्ञात है। इसमें द्विमुख नामक 'द्वितीय प्रत्येकबुद्ध' का संक्षिप्त जीवन चित्रित है, जिसका विवेचन हमने 'चार प्रत्येकबुद्ध रास' के परिचयान्तर्गत कर दिया है।

६.३.२० श्री अरहन्नक साधु गीतम्

इस गीत का वर्ण्यविषय पथभ्रष्ट हुए अरहन्नक मुनि द्वारा संयम अंगीकार कर मोक्ष-गमन करने से संबंधित है। गीत में ७ गाथाएँ हैं। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.३.२१ श्री अरहन्नक गीतम्

प्रस्तुत गीत का रचना-काल विदित नहीं हो पाया है। गीत ९ गाथाओं में आबद्ध है। गीत में वर्णित विषय-निम्नांकित है —

मुनि अरहन्नक ने सूर्य की ग्रीष्म-किरणों से व्याकुल होकर और एक तरुणी के निवेदन पर अपना मुनि-वेश त्याग दिया। उनकी माता साध्वी भद्रा अरहन्नक के वियोग में पागल हो गई। कालान्तर, अरहन्नक अपनी माता की दीन अवस्था एवं माता का पुत्र के प्रति प्रेम देखकर पुनः विरक्ति को प्राप्त हुए। उन्होंने वापस प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और उत्कृष्ट साधना के द्वारा मोक्षपद प्राप्त किया।

६.३.२२ श्री अरहन्नक मुनि गीतम्

'श्री अरहन्नक मुनि गीतम्' में अरहन्नक मुनि के पूर्व में सन्मार्गगामी, फिर उन्मार्गगामी और पुनः सन्मार्गगामी जीवन-वृत्त को निबद्ध किया गया है। रचना में ८ कड़ियाँ हैं। इसका प्रणयन-काल अज्ञात है।

६.३.२३ अनाथी मुनि गीतम्

प्रस्तुत रचना का रचना-स्थल एवं रचना-समय — दोनों ही अज्ञात हैं। प्रस्तुत कृति के प्रणयन का उद्देश्य अनाथ और सनाथ की परिभाषा व्यक्त करना ही परिलक्षित होता है। कृति-सार इस प्रकार है —

मगध-सम्राट श्रेणिक ने मुनि अनाथी से मुनि बनने का कारण पूछा। मुनि ने कहा — मैं अनाथ हूँ, इसलिए मैं साधु बना हूँ। राजा ने कहा — मैं तेरा नाथ बनता हूँ। मुनि ने कहा — राजन्! तू भी अनाथ है। राजा इस उत्तर से चकित हुआ। मुनि ने अपने वैभव-सम्पन्न गृहस्थ-जीवन का परिचय दिया और कहा कि ऐश्वर्य एवं परिवार होने मात्र से कोई सनाथ नहीं होता। बाहर में सब कुछ पाकर भी व्यक्ति अनाथ ही रह जाता है, यदि वह अपनी विषय-वासनाओं का नियन्ता नहीं है।

विवेच्य रचना में ९ गाथाएँ हैं। इसकी कथा 'उत्तराध्ययन सूत्र' में आई है।

६.३.२४ धन्ना अनगार गीतम्

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से पूछा कि आपके १४ हजार शिष्यों में सर्वाधिक तपस्वी कौन है? महावीर ने कहा — धन्ना अनगार है। वह काकन्दी नगर की भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र है। उसने अपार वैभव को छोड़कर बड़े वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की है। उत्कट तप करने से उसका शरीर सूखकर अस्थि-पिंजर-सा हो गया है। यही प्रस्तुत रचना का सार है। इसमें ९ कड़ियाँ हैं। इसका भी निर्माण-स्थल तथा समय, दोनों अज्ञात हैं।

६.३.२५ इलापुत्र गीतम्

प्रस्तुत कृति मात्र १८ कड़ियों में निबद्ध है। इसका कथानक स्वतः रोचक है। इलावर्धन नगर में धनदत्त सेठ रहता था। उसके इलापुत्र नामक आत्मज था। इलापुत्र एक बार नाटक देखते हुए सुरूपा नामक नट-कन्या पर मोहित हो गया। उसने उसके साथ विवाह-संस्कार करना चाहा। नट ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया, 'हमारे संग रहने वाले निपुण नट के साथ ही नट-कन्या का विवाह होगा।' कामासक्त इलापुत्र ने इसे स्वीकार कर लिया। धन-वैभव टुकराकर वह नट-विद्या का प्रदर्शन करने लगा। एक बार नट-विद्या में निष्णात इलापुत्र जब एक नगर में राजा और जनसमूह के समक्ष अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा था, तब राजा भी सुरूपा के रूप-लावण्य को देख उसे पाने की योजना बनाने लगा। इलापुत्र के जीवित रहते यह कार्य हो पाना दुष्कर था। एक ओर राजा इलापुत्र के जीवन को समाप्त करने की सोचने लगा, तो दूसरी ओर इलापुत्र राजा से धन-प्राप्ति की। राजा ने दो-तीन बार इलापुत्र से कला का प्रदर्शन करवाया। राजा ने जब चौथी बार बांस पर चढ़कर कला-प्रदर्शन हेतु कहा, तो वह अन्यमनस्कता के साथ बाँस पर चढ़ा। उसी समय उसकी दृष्टि एक गृही के यहाँ भिक्षा के लिए आए हुए एक मुनि पर पड़ी। यद्यपि गृह-स्वामिनी सुरूपा से ज्यादा लावण्यवती थी, किन्तु मुनि ने उसकी ओर निगाह उठाकर नहीं देखा। भिक्षा ग्रहण की और चल दिये। यकायक इलापुत्र की विचार-दशा बदली। वैराग्य-भावना दृढ़ीभूत हुई, सम्यक् दृष्टि को प्राप्त कर कषायों का उच्छेद किया और उसी बाँस पर कैवल्य को प्राप्त कर लिया। अन्त में उसने सभी को उपदेश दिया। राजा और नटी, दोनों ही प्रतिबोध को प्राप्त हुए।

कवि ने भावना या भावशुद्धि के महत्त्व को बतलाने के लिए यह कथा सुन्दर रूप से अंकित की है। प्रस्तुत कृति की रचना कवि समयसुन्दर ने अहमदाबाद जनपद के ईदलपुर में लिखी है। इसका रचना-काल निश्चित नहीं हो पाया है।

६.३.२६ धन्ना-शालिभद्र सञ्ज्ञाय

यह ३६ कड़ियों में लिखी गई छोटी-सी रचना है। कवि ने इसके लेखन-काल और स्थल का उल्लेख नहीं किया है। विवेच्य-रचना का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है —

राजगृह में शालिभद्र नामक अपार समृद्धिशाली सेठ रहता था। एक बार एक रत्नकम्बल का व्यापारी अपनी रत्नकम्बलों को विक्रय करने हेतु राजगृह आया। राजा श्रेणिक उन रत्नकम्बलों को क्रय न कर सके, किन्तु माता भद्रा ने उन्हें क्रय कर शालिभद्र की पत्नियों को दे दिया। राजा श्रेणिक ने अपनी पत्नी के आग्रह पर दूसरे दिन एक रत्नकम्बल खरीदने हेतु व्यापारी की खोज करवाई। उससे ज्ञात हुआ कि वे सभी कम्बलों माता भद्रा क्रय कर चुकी हैं। यह जानकर श्रेणिक को माता भद्रा से मिलने की उत्कण्ठा हुई और वे उससे मिलने के लिए उसके घर आए। माता भद्रा ने पुत्र को कहलाया — पुत्र! अपने नाथ घर आए हैं, अतः नीचे आओ और उन्हें नमस्कार करो। पुत्र नीचे तो आया, पर 'नाथ' शब्द उसके मन में बारम्बार खटकने लगा। इसी एक शब्द ने उसके चिन्तन को मोड़ दिया और क्रमशः जीवन को भी। दूसरा कोई मेरा नाथ बने, इससे तो यही अच्छा होगा कि मैं स्वयं ही अपना नाथ बन जाऊँ। जो स्वयं का नाथ बन जाता है, वह सारे जगत का नाथ बन जाता है। अतः उसने संयम-ग्रहण करने का निर्णय कर लिया। उसके ३२ पत्नियाँ थीं। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी का त्याग करने लगा। शालिभद्र की बहन भद्रा का व्यंग्य सुनकर उसके बहनोई धन्ना सेठ भी दीक्षा लेने को प्रस्तुत हो गये। उन्होंने शालिभद्र की वैराग्य-भावना को सम्पुष्ट किया तथा दोनों अप्रमत्त होकर साधना-पथ पर चल पड़े। भगवान् महावीर से दोनों ने साधु-जीवन स्वीकार किया और उत्कृष्ट साधना कर समाधि-मरण प्राप्त किया।

६.३.२७ श्रीदशार्णभद्र गीतम्

अहंकार भी कभी-कभी आत्म-संस्कार करने में सहायक सिद्ध हो जाता है। कवि ने लिखा है कि दशार्णभद्र नामक राजा ने विचार किया कि मैं भगवान् महावीर को इतने वैभव के साथ वन्दन करने जाऊँ कि इसमें कोई भी मेरी बराबरी न कर सके। वह अत्यधिक आडम्बर के साथ भगवान् को वन्दना करने रवाना हुआ। इन्द्र ने उसका अहं नष्ट करने के लिए दशार्णभद्र से अनेक गुणा अधिक आडम्बर-सहित आकर भगवान् को वन्दना की। इन्द्र से इस तरह पराजित होने पर दशार्णभद्र के विचारों में परिवर्तन आया और उसने तत्काल मुनि-दीक्षा ले ली। इस प्रकार इन्द्र को अपने पैरों पर झुका लिया। इन्द्र ने उसकी प्रशंसा की। दशार्णभद्र क्रमशः कर्मक्षय करके सिद्ध-बुद्ध हुए। प्रस्तुत गीत ९ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचनाकाल अनुपलब्ध है।

६.३.२८ श्री सुकोशल साधु गीतम्

इस गीत में ६ पद्य हैं। इसका रचना-काल कवि ने सूचित नहीं किया है। इसकी विषय-वस्तु इस प्रकार है —

साकेत नामक एक नगर था। उसमें सहदेवी नामक एक महिला रहती थी, जिसके पुत्र का नाम सुकोशल था। सुकोशल ने संसार को असार समझकर प्रव्रज्या वरण

कर लो। एक दिन वह ध्यान में लीन था कि एक बाघ ने उस पर धावा बोल दिया, परन्तु वह सहनशील स्वभाववाला था। शुक्लध्यान में निरत रहकर उसने कैवल्य तथा मुक्ति प्राप्त की।

६.३.२९ श्री संयती साधु गीतम्

कांपिल्य नगर का राजा संजय एक बार शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। उसने हिरण का शिकार किया। जब उसकी दृष्टि मृत हिरणों के सामने ध्यानरत मुनि पर गयी, तो वह उनके अभिशाप के भय से बड़ा भयभीत हो गया। उसने मुनि से क्षमा मांगी, तो मुनि बोले, 'राजन्! मेरी ओर से तुम्हें अभय है। तुम भी अभयदाता बनो। जिनके लिए तुम यह अनर्थ रह रहे हो, वे स्वजन कोई भी तुम्हें बचा नहीं सकेंगे।' संजय प्रतिबोध पाकर मुनि बन गया। कवि ने लिखा है कि इसी तरह भरत, सगर आदि अनेक राजाओं ने राज्य का त्यागकर संयमव्रत ग्रहण किया था, जिनका 'उत्तराध्ययन सूत्र' में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है — यही प्रस्तुत गीत की विषय-वस्तु है।

इस गीत में ११ गाथाएँ हैं। इसका रचना-समय अज्ञात है।

६.३.३० श्री सनत्कुमार चक्रवर्ती गीतम्

प्रस्तुत गीत में कवि ने अख्यायित किया है कि सनत्कुमार ने अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि-समृद्धि का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की और अनेक परीषहों को सहकर शुद्ध संयम का पालन करते हुए सिद्धि प्राप्त की।

गीत में ७ पद्य हैं। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

ऊपर हमने मुनियों से संबंधित ३० रचनाओं का परिचय प्रस्तुत किया है। ये सभी रचनाएँ भाषा में निबद्ध हैं। उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त मुनियों से संबंधित निम्नलिखित लघु गीत भी उपलब्ध होते हैं —

६.३.३१ श्री अइमत्ता ऋषि गीतम्	पद्य ३
६.३.३२ श्री अइमत्ता मुनि गीतम् (अपूर्ण)	पद्य २ ^१ / _२
६.३.३३ श्री अयवंती सुकुमाल गीतम्	पद्य ५
६.३.३४ श्री आदित्यशशादि आठ साधु गीतम्	पद्य ४
६.३.३५ श्री खन्दक-शिष्य गीतम्	पद्य ५
६.३.३६ श्री गजसुकुमाल मुनि गीतम्	पद्य ५
६.३.३७ श्री थावच्चा ऋषि गीतम्	पद्य ५
६.३.३८ श्री करकण्डू प्रत्येक-बुद्ध गीतम्	पद्य ५
६.३.३९ चार प्रत्येकबुद्ध संलग्न गीतम्	पद्य ५
६.३.४० श्री जम्बूस्वामी गीतम्	पद्य ५
६.३.४१ श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि गीतम्	पद्य ५

६.३.४२ श्री बाहुबलि गीतम्	पद्य ४
६.३.४३ श्री मेघकुमार गीतम्	पद्य ५
६.३.४४ श्री रामचन्द्र गीतम्	पद्य ५
६.३.४५ श्री रामसीता गीतम्	पद्य ४
६.३.४६ श्री शालिभद्र गीतम्	पद्य ५
६.३.४७ श्री श्रेणिकराय गीतम्	पद्य ४
६.४ सतियों से संबंधित गीत	

सदाचारी, शीलवान् एवं पतिव्रता स्त्रियाँ सती कहलाती हैं। प्रचलित अर्थ में सती वह स्त्री है जो अपने पति के मरने पर उसके साथ ही जलकर अनुगमन करती थी। वस्तुतः यह प्रथा गृहित थी। मुगलों के आक्रमणकाल में शीलसुरक्षा की कठिनाई के कारण ही इसे प्रोत्साहन मिला था। सम्राट् अकबर ने भी इसे बन्द करना चाहा, परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। किन्तु राजा राममोहनराय के प्रयासों के लार्ड विलियम बेंटिङ्क के शासन-काल (१८२९ ई०) में यह प्रथा भारत में बन्द कर दी गयी।

जैनधर्म में अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली या पतिव्रता आदर्श स्त्री सती मानी जाती है। सती स्त्रियाँ अपने सतीत्व के रक्षण के लिए अनेक प्रतिकूल स्थितियों का सामना करती हैं और कष्ट उठाकर भी अपने शीलव्रत को सुरक्षित रखती हैं। जैन-साहित्य में ऐसी सती स्त्रियों का प्रचुर वर्णन उपलब्ध होता है। उदाहरण रूप में —

१. आवश्यक निर्युक्ति (गाथा १६९, ३४८, ५२०-२१, १०४८, १२८४, १३११ आदि)
२. दशवैकालिक-निर्युक्ति (१.७३-७६, २.८ आदि)
३. उत्तराध्ययन सूत्र (अध्ययन २२ आदि)
४. ज्ञातासूत्र (१६वाँ अध्ययन)
५. त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र (पर्व ७-८)
६. भरतेश्वर-बाहुबलि-वृत्ति आदि।

कविवर समयसुन्दर ने भी सतियों के चरित्र पर अनेक गीत निबद्ध किये हैं। उन गीतों से विदित होता है कि वे इन नारी-रत्नों के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा रखते थे। कवि समयसुन्दर के सतियों से संबंधित गीतों का सामान्य विवरण निम्नानुसार है —

६.४.१ श्री ऋषिदत्ता गीतम्

प्रस्तुत गीत में १७ कड़ियाँ हैं। इसकी विषयवस्तु निम्नांकित है —

राजा कनकरथ रुक्मिणी से विवाह करने के लिए रवाना हुआ। मार्ग में उसकी तापस-पुत्री ऋषिदत्ता से भेंट हुई। राजा उस पर मोहित हो गया। वह रुक्मिणी से विवाह करने के स्थान पर उससे विवाह करके लौट आया।

जब रुक्मिणी को उक्त घटना की जानकारी मिली, तो उसने एक योगिनी को उससे बदला लेने के लिए भेजा। उसने एक मनुष्य की हत्या कर उसका मांस ऋषिदत्ता के पास रख दिया और रक्त से उसका मुँह लिप्त कर दिया। राजा ने ऋषिदत्ता को राक्षसी समझकर मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दे दी। ऋषिदत्ता को गर्दभ पर सारे नगर में घुमाया गया। चण्डाल ने उसे मारने के लिए जैसे ही खड़्ग निकाला, वैसे ही वह अचेत होकर गिर पड़ी। चण्डाल ने उसे मृत समझकर छोड़ दिया।

ऋषिदत्ता सचेत होने पर अपने पिता के गृह चली गई। ऋषिदत्ता के आग्रह पर तापस-पिता ने औषधियों के प्रभाव से उसे पुरुष बना दिया। वह ऋषिदत्ता तापस के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

राजा कनकरथ रुक्मिणी से विवाह करने के लिए पुनः रवाना हुआ। मार्ग में राजा तापस के आश्रम में गया और ऋषिदत्त के प्रति स्नेह उदीप्त हो जाने से उसने उसे साथ ले लिया। राजा रुक्मिणी से विवाह कर वापस लौट आया।

एक दिन रुक्मिणी को अपने पूर्वकृत कार्य के लिए आत्म-ग्लानि हुई। उसने पश्चाताप करते हुए राजा को ऋषिदत्ता के साथ घटित की गई बात कही। राजा भी पश्चाताप की अग्नि में झुलसने लगा। उसने प्रण किया कि यदि ऋषिदत्ता उसे न मिली, तो मैं आत्महत्या कर लूँगा। राजा ने चिता जलवायी और उसमें प्रवेश करने लगा। उपर्युक्त अवसर समझकर तापस ने ऋषिदत्ता को पुनः स्त्री रूप में कर दिया। तापस ने राजा को कहा कि तुम्हारा मित्र ऋषिदत्त ही तुम्हारी पत्नी ऋषिदत्ता है।

अन्तिम जीवन में ऋषिदत्ता ने दीक्षा ग्रहण की, केवलज्ञान पाया और मुक्तात्मा बनी।

इस गीत में वर्णित रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी से भिन्न प्रतीत होती है। प्रस्तुत गीत का रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.४.२ श्री नर्मदासुन्दरी सती गीतम्

इस गीत में कविवर लिखते हैं कि नर्मदासुन्दरी दृढ़ शीलवती थी। एक बार वह अपने पति के साथ समुद्रमार्ग से कहीं जा रही थी। मार्ग में नर्मदा ने अपने पति को गीत-नृत्य के रहस्य-भरे लक्षण और उसके अंग बताए। पति को पत्नी पर संशय उत्पन्न हुआ। उसने राक्षस-द्वीप पर अपनी पत्नी को छोड़ दिया। नर्मदा ने अपने सतीत्व-रक्षण के लिए अनेक कष्ट सहे। वेश्या, राजा आदि अनेक के जाल में वह फँसी, पागल की तरह गली-गली में भटकी, परन्तु अपने पातिव्रत्य को सुरक्षित रखा। अन्त में भरुयच्छवासी श्रावक जिनदास ने उसे उसके पीहर पहुँचा दिया।

एक दिन नर्मदा ने प्रतिबुद्ध होकर संयममार्ग ग्रहण कर लिया। महान् तप करते हुए उसने अविधिज्ञान उपार्जित किया। नर्मदा ने अपने पति को स्वर-लक्षण ज्ञान का भेद

प्रकट किया तो उसे भारी पश्चाताप हुआ। नर्मदा ने उसे भी प्रतिबोध दिया। अन्त में अपनी साधना के द्वारा नर्मदा ने स्वर्ग प्राप्त किया।

प्रस्तुत गीत में ८ पद्य हैं। इसका रचना-काल एवं रचना-स्थल अज्ञात हैं।

६.४.३ चेलना सती गीतम्

यह गीत ७ गाथाओं में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनुलिखित है। गीत की विषय-वस्तु इस प्रकार है —

मगध-नरेश श्रेणिक रानी चेलना के साथ भगवान् महावीर को वन्दन करके जब लौट रहे थे, तो राह चलती हुई चेलना ने एक कायोत्सर्गस्थ मुनि को देखा। भयंकर सर्दी में भी वे मुनि निर्वस्त्र व निश्चल खड़े थे।

रात्रि में चेलना का एक हाथ खुला रह गया, जिससे वह सुन्न हो गया। उसे मुनि की स्मृति जागी और वह बोल बैठी — वे क्या करते होंगे? राजा ने इसे सुना और विचार किया — इसके मन में निश्चय ही किसी पर-पुरुष के प्रति प्रेम है। उसने अगले दिन अभयकुमार को उसका महल जलाने को आदेश दे दिया। अभय ने राजा को भ्रम हुआ समझकर खाली महल जलवा दिया। जब महावीर ने श्रेणिक का भ्रम दूर किया, तो उसे पश्चाताप हुआ और उसने अभयकुमार को निकल जाने की आज्ञा दी। अभय प्रव्रजित हो गया, उधर चेलना को जीवित देख राजा प्रसन्न हुआ।

६.४.४ श्री दवदन्ती सती गीतम्

इस गीत में नल द्वारा द्यूत-क्रीड़ा में राज्य हार जाने से लेकर दमयन्ती के पितृगृह पहुँचने तक की घटना संक्षेप में वर्णित है। इन घटनाओं का विस्तृत विवरण 'नलदवदन्ती-रास' की विषय-वस्तु का वर्णन करते हुए हम लिख चुके हैं। अतः यहाँ उसका वर्णन अपेक्षित नहीं है।

गीत ६ गाथाओं में रचित है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.४.५ अंजनासुन्दरी गीतम्

प्रस्तुत गीत में अंजनासुन्दरी के हृदयद्रावक जीवन-वृत्त का संक्षेप में चित्रण किया गया है। राजा पवनंजय की पत्नी का नाम अंजना था, लेकिन पूर्व कर्मों के संयोग वश पवनंजय उसके प्रति अन्यमनस्क रहे; यहाँ तक कि उससे कोई बातचीत भी नहीं की।

एकदा पवनंजय युद्ध के लिए रवाना हुए। प्रथम पड़ाव में उन्होंने चकवे के विरह में झुलसती चकवी को देखा। उसके मन में अंजना का विचार आया, जो बारह वर्षों से विरहग्रस्त थी। राजा रात्रि में ही गुप्त रूप से अंजना के पास गये। अंजना ऋतु-स्नाता थी, अतः गर्भ रहने पर भी कोई संदेह न करे, इसलिए पवनंजय के अपनी नामांकित मुद्रिका उसे दे दी थी; परन्तु उसकी सास ने अविश्वास करते हुए कलंक लगाकर उसे

निकाल दिया। अंजना ने वन में पुत्र का प्रसव किया, जो आगे चलकर हनुमान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अंजना के मामा प्रतिसूर्य उसे अपने नगर में ले गया।

पवनंजय को युद्ध से लौटने पर जब सारी स्थिति ज्ञात हुई, तो वह चिंता बना कर आत्महत्या करने लगा; लेकिन पवनंजय का मित्र अंजना को ले गया। चारों ओर आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। अन्त में दोनों ने संयम अंगीकार कर स्वर्गारोहण किया, भविष्य में मुक्त होंगे।

गीत में ११ पद्य हैं। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.४.६ मरुदेवी माता गीतम्

प्रस्तुत कृति १४ गाथाओं में लिखित है। रचना में कवि ने लिखा है कि मरुदेवी आद्य तीर्थङ्कर ऋषभनाथ की माता थी। ऋषभनाथ के प्रव्रजित होने के पश्चात् दीर्घकाल तक माता को पुत्र का दर्शन नहीं हुआ। वह पुत्र-अनुराग में राजा भरत को अनेक बार उपालम्भ देती, जिसका कवि ने ७ गाथाओं में मनोहर चित्रण किया है। ऋषभनाथ को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद वे विचरण करते हुए जब अयोध्या पधारे, तो माता उन्हें उलाहना देने गई। दूर से ही जब उसने समवसरण में पुत्र को चौंतीस अतिशयों से युक्त देखा तो उसके विचार बदल गये। उसका पुत्र-राग और पुत्र का वीतराग-भाव अद्भुत था। उसने अपने राग को धिक्कारा। क्षपक-श्रेणी का अवलम्बन कर शुक्लध्यान में आरूढ़ हुई, केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और मरुदेवी हाथी पर बैठे हुए ही सिद्ध हो गई।

प्रस्तुत गीत का निर्माण-स्थल तथा समय अनवगत है।

६.४.७ दवदन्ती गीतम्

नल-दवदन्ती कथा को लेकर विपुल साहित्य रचा गया है। समयसुन्दर ने भी इस कथा पर एक स्वतन्त्र रास निर्मित किया है, जिसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। प्रस्तुत रचना में दवदन्ती की विरह-वेदना का वर्णन है। नल, दवदन्ती को जंगल में अकेली सोयी छोड़कर चला जाता है। दवदन्ती विरह के कारण हुई अपनी दीन-दशा को नल तक पहुँचाने के लिए चन्द्रमा के निवेदन करती है, जो कि हृदयस्पर्शी है। दवदन्ती यहाँ तक कह उठती है कि —

हो दृष्टान्त थारउ नल दाखिस्यइ रे, दा० रे

हो कवियण केरी रे कोड़ी।

हो पुरुष कूड़ा घणुं कपटिया रे, हो क० रे,

हो खरी लगड़ी तई खोड़ी ॥

आलोच्य रचना ११ गाथाओं में बनायी गयी है। रचना-स्थान एवं समय, दोनों अज्ञात हैं।

६.४.८ श्री राजुल-रहनेमि गीतम्

‘श्री राजुल-रहनेमि गीतम्’ का रचना-स्थल और रचना-काल, दोनों ही अज्ञात हैं। इसमें ८ गाथाएँ हैं। रचना के कथानक का मूल उद्गम-स्रोत ‘उत्तराध्ययन सूत्र’ का २२वां ‘रहनेमिज्ज’ नामक अध्याय है। प्रस्तुत रचना में पथभ्रष्ट होते हुए रथनेमि को राजुल के द्वारा दिया गया उपदेश है।

सतियों से संबंधित उपर्युक्त सभी गीत भाषा में निबद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य लघु गीत भी प्राप्त होते हैं —

६.४.९ श्री चुलणी भास	पद्य ५
(चतुर्थ पद्य की द्वितीय पंक्ति तथा पंचम पद्य की प्रथम पंक्ति अप्राप्त)	
६.४.१० श्री मृगावती सती गीतम्	पद्य ४
६.४.११ श्री राजुल-रहनेमि गीतम्	पद्य २
६.४.१२ श्री राजुल-रहनेमि गीतम्	पद्य ५
६.४.१३ श्री राजुल-रहनेमि गीतम्	पद्य ५
(पंचम पद्य का अंतिम पाद अपूर्ण)	
६.४.१४ श्री सुभद्रा सती गीतम्	पद्य ५
६.४.१५ श्री द्रौपदी सती भास	पद्य ५

६.५ गुरु-गीत

कविवर्य समयसुन्दर का हृदय अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धाभिभूत था। उनकी गुरु-परम्परा में सभागत आचार्यों का परिचय हमने प्रथम अध्याय में दिया है। कवि ने अपने गच्छ के आचार्यों और गुरुजनों के चरणों में स्तवन रूप श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं।

यहाँ हम उनके गुरुओं से संबंधित गीतों का परिचय दे रहे हैं —

६.५.१ संस्कृत में निबद्ध गुरु-गीत

६.५.१.१ दादा श्री जिनकुशलसूरिगुरोष्टकम्

प्रस्तुत रचना कवि के गुरु-गीतों में प्रख्यात है। इसमें युगप्रधान आचार्य श्री जिनकुशलसूरि के अतिशयो अर्थात् अलौकिक शक्तियों का परिचय देते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है।

गीत में लिखित ‘शशधरस्मरबाणरसक्षति प्रतिमविक्रम भूपति संवति’ — पंक्ति से स्पष्ट है कि इसकी रचना वि० सं० १६५१ में हुई थी। गीत में ९ पद हैं।

६.५.१.२ श्री जिनसिंहसूरि पदोत्सव-काव्य

प्रस्तुत काव्य में कुल ७० पद्य हैं। इसमें कालिदास के रघुवंश के तृतीय सर्ग के सभी पद्यों के चतुर्थ पाद को लेकर कवि ने अन्य तीन पादों की पूर्ति करते हुए ग्रन्थ का निर्माण किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना महिमराज के आचार्य पदोत्सव के अवसर पर हुई थी। महिमराज समयसुन्दर के विद्या-गुरु थे और इनका परिचय हम प्रथम अध्याय में दे आए हैं। समयसुन्दर के उल्लेखानुसार सम्राट अकबर के आग्रह से आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने महिमराज को वि० सं० १६४९, फाल्गुन कृष्णा १० के दिन आचार्य-पद प्रदान किया था और उनका नाम महिमराज से जिनसिंहसूरि स्थापित किया था। इस पदोत्सव का सारा व्यय-भार मन्त्री श्री कर्मचन्द्र बच्छावत ने वहन किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि का काव्य-कौशल मुखरित हुआ है। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है। इस ग्रन्थ की प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में उपलब्ध है। यह ग्रन्थ सम्प्रति अप्रकाशित है।

६.५.१.३ श्री जिनसागरसूर्यष्टकम्

प्रस्तुत रचना के प्रथम तीन पद्यों में केवल नगरों के नामोल्लेख हैं। तृतीय पद्य का अन्तिम पाद अनुपलब्ध है। सम्भवतः उस पाद में पूर्वोक्त नगरों में जिनसागरसूरि द्वारा की गई पद-यात्राओं का उल्लेख रहा हो। शेष पांच पद्यों में जिनसागरसूरि के उत्कृष्ट गुणों का वर्णन करते हुए कवि ने यह भी लिखा है कि खरतरगच्छ में शताधिक आचार्यों के होने पर भी जिनसागरसूरि का स्थान अद्वितीय है। रचना का काल अनिर्दिष्ट है।

६.५.२ भाषा में निबद्ध गुरु-गीत

६.५.२.१ श्री गौतमस्वामी अष्टक

इस रचना में भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य और प्रथम गणधर गौतम स्वामी की प्रार्थना करते हुए उनके प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का संक्षेप में चित्रण किया गया है।

रचना का रचना-काल अनुलिखित है। रचना ८ कड़ियों में निबद्ध है।

६.५.२.२ श्रीगौतमस्वामी गीतम्

प्रस्तुत गीत में रचना-काल का निर्देश कवि ने नहीं किया है। गीत ७ गाथाओं में है। गीत की विषय-वस्तु अधो-अंकित है —

तीर्थङ्कर महावीर के अपना निर्वाण-काल ज्ञात कर अपने शिष्य गौतम को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए निकटवर्ती गाँव में भेजा। गाँव से लौटते समय गौतम ने जब सुना कि भगवान् का निर्वाण हो गया, तो वे शोकमग्न हो विलाप करने लगे तथा प्रभु को उपालम्भ देने लगे। अन्त में वे आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित हुए। उन्होंने राग की शृङ्खलाओं को तोड़ डाला और वीतरागता अथवा कैवल्य को प्राप्त कर लिया।

६.५.२.३ खरतर-गुरु-पट्टावली

प्रस्तुत रचना का काल अनिर्दिष्ट है। रचना ८ कड़ियों में है। इसमें कवि ने अपनी गुरु-परम्परा के आचार्यों का नामोल्लेख करते हुए श्रावकों को उनकी स्तुति करने

पर बल दिया है।

६.५.२.४ पाटण-मण्डण श्री जिनकुशलसूरि गीतम्

कवि ने जिनकुशलसूरि को इस गीत में 'दादा' उपनाम से अभिसंज्ञित किया है। इसमें सुख, सम्पत्ति, धर्म एवं सिद्धि प्रदान करने के लिए 'दादा' से विनती की गई है। सम्पूर्ण गीत ६ गाथाओं में है। इसकी रचना कब हुई, इसका कवि ने निर्देश नहीं दिया है।

६.५.२.५ अहमदाबाद-मंडण श्री जिनकुशलसूरि गीतम्

इसमें जिनकुशलसूरि को कल्पतरु का मूल-बीज बताया है। इनकी स्तुति करने वाला कल्पतरु के सदृश सर्वस्व प्राप्त करता है — यही प्रस्तुत गीत का प्रतिपाद्य विषय है। गीत में ७ गाथाएँ हैं। इसका रचना-काल अनुल्लेखित है। यह गीत भी 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' में प्रकाशित है।

६.५.२.६ युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि गीतम्

प्रस्तुत गीत के रचना-काल के संबंध में कवि ने मात्र यही उल्लेख किया है कि यह रचना 'लाहौर' नगर में हुए महोत्सव के पश्चात् रची गई। 'अष्टलक्षी' ग्रन्थ से वि० सं० १६४९ में कवि के लाहौर जाने का निर्देश मिलता है। यह रचना भी सम्भवतः उसी वर्ष रची गयी होगी। इस रचना में १९ चतुष्पद हैं। कवि ने रचना के अन्त में 'कलश' देकर रचना का उपसंहार भी किया है।

इस गीत में युगप्रधान भट्टारक जिनचन्द्रसूरि द्वारा किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों का एवं उनकी प्रभावकता का सम्यक् चित्रण किया है, जिसका विवेचन हम कवि की 'गुरु-परम्परा' के अन्तर्गत कर आए हैं।

६.५.२.७ युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूर्यष्टकम्

यद्यपि प्रस्तुत रचना मात्र ८ चतुष्पदों में निबद्ध है, लेकिन यह रचना ऐतिहासिक है। इसमें कवि जिनचन्द्रसूरि की विस्तृत प्रतिभा का यथातथ्य निरूपण करते हुए सम्राट अकबर द्वारा उनको दिये गये आमन्त्रण, लाहौर नगर में उनका प्रवेशोत्सव एवं सम्मान, अकबर को मन्त्रमुग्ध बनाना, अमारि (अहिंसा) का फरमान प्राप्त करना, खम्भात की मछलियों को जीवनदान दिलाना, सुलतान सलेम तथा मन्त्री कर्मचन्द आदि की उनके प्रति भक्ति और जिनसिंहसूरि के पट्टाभिषेक इत्यादि का चित्रण किया गया है।

रचना का रचना-काल अज्ञात है।

६.५.२.८ छः राग, छत्तीस रागिणी-नाम गर्भित श्रीजिनचन्द्रसूरि गीतम्

इस गीत के शीर्षक से ही प्रगट होता है कि इसमें ६ राग और ३६ रागिणी का नामोल्लेख किया गया है। ये नामोल्लेख जिनचन्द्रसूरि के गुण-कीर्तन के मध्य में किये गये हैं। गीत में कवि ने दोहरी प्रणाली अपनाई है। एक तो राग-रागिनियों का नामोल्लेख करना और दूसरे में गुरु की प्रतिभा पर प्रकाश डालना। कवि को दोनों में सफलता प्राप्त हुई है।

वि० सं० १६५२, विजया दशमी, गुरुवार को स्तम्भतीर्थ नगर में यह रचना पूर्ण की गई है। रचना में १५ चतुष्पद हैं।

६.५.२.९ श्री जिनचन्द्रसूरि-स्वप्न-गीतम्

इसमें एक सखी स्वप्न में हुए जिनचन्द्रसूरि के दर्शन का वर्णन दूसरी सखी से करती हुई कहती है —

सुपन लह्यं साहेलड़ी रे, निसि भरि सूती रे आज।
सुन्दर रूप सुहामणा रे, दीठा श्री गच्छराज ॥
संख सबद सखि मइं सुण्यउ रे, ऊभी जोऊं रे वाट।
आंगणि मोरी आविया रे, परिवर्या मुनिवर थाट ॥
धवल मंगल गायइ गोरड़ी रे, हीड़इ हरख न माय।
नारि करइ गुरु न्युंछणा रे, पड़िलाभइ मुनिराय ॥

प्रस्तुत गीत ६ कड़ियों में है। इसका रचना-काल अनुल्लेखित है।

६.५.२.१० श्री जिनचन्द्रसूरि छन्द

प्रस्तुत रचना का काल अनिर्दिष्ट है। यह रचना ७ गाथाओं में लिखी गई है। इसमें जिनचन्द्रसूरि द्वारा कृत विशिष्ट शासन-सेवा का यथार्थ निरूपण है। एक बार सम्राट अकबर ने किसी मुनि को दुराचार करते हुए देख लिया। अतः अकबर ने अपने राज्य में मुनियों का आगमन निषिद्ध कर दिया। जिनचन्द्रसूरि ने अकबर को प्रतिबोध देकर उसके राज्य में मुनियों का विहार पुनः प्रारम्भ करवा दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने 'युगप्रधान' विरुद्ध को सार्थक किया।

६.५.२.११ श्री जिनचन्द्रसूरि आलिजा गीतम्

प्रस्तुत रचना ११ पदों में है। यद्यपि इसके रचना-काल की सूचना कवि ने नहीं दी है, किन्तु रचना में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर अवगत होता है कि यह रचना जिनचन्द्रसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् ही लिखी गई। इस गीत में कवि ने जिनचन्द्रसूरि को दर्शन देने की विनती की है। उनके मंगल दर्शन करने की तीव्र उत्कण्ठा कवि को तो है ही, साथ ही साथ श्रीसंघ को भी है। कवि ने अपनी दर्शनोत्कण्ठा को शान्त करने के लिए उन्हें स्वप्न में दर्शन प्रदान करने का निवेदन किया है —

'सुपनि में आवि वंदावजो, हूँ जाणिस परतक्ष'।

६.५.२.११ श्री जिनचन्द्रसूरि आलिजा गीतम्

प्रस्तुत रचना अपूर्ण रूप में उपलब्ध हुई है, जिसमें १० पद प्राप्त हैं। इसमें कवि ने जिनचन्द्रसूरि के कतिपय महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करते हुए, उनके विरह में विकलता और दर्शन की उत्सुकता व्यक्त की है।

कवि के शब्द बड़े मर्मस्पर्शी हैं —

बाबा आदिम बाहूबलि, वीर गौतम ज्यूं विलाप ।
मेलउ न सरज्यउ माहरो, ते तउ रह्यउ पछताय ॥
मूयइ कहइ ते मूढ़ तर, जीवइ जिणचन्द सूरि ।
जग जंपइ जस जेहनउ, हो पुहवि कीरत पडुरि ॥

गीत का रचना काल निर्दिष्ट नहीं है ।

६.५.२.१३ श्री जिनसिंहसूरि सपादष्टका

इसमें जिनसिंहसूरि की महिमा का अंकन करते हुए कवि ने जिनसिंहसूरि की लाहौर-पदार्पण से लेकर आचार्य-पदारोहण पर्यन्त की सम्पूर्ण घटनाओं का आँखों-देखा चित्रण किया है, क्योंकि कविवर स्वयं उनके साथ थे । इस रचना से तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों की भी जानकारी मिलती है ।

यह रचना ८ चतुष्टपद में है । इसका प्रणयन-काल अनुलिखित है ।

६.५.२.१४ श्री जिनसिंहसूरि चौमासा गीतम्

इसमें ४ षट्पद हैं । रचना का काल अनंकित है । इसमें जिनसिंहसूरि द्वारा एक चातुर्मास में किये गये शासन-प्रभावक कार्यों की सूचना दी गई है ।

६.५.२.१५ श्री जिनसिंहसूरि स्तवनम्

इसमें जिनसिंहसूरि के महान् व्यक्तित्व का निदर्शन है । स्तवन ६ कड़ियों में निबद्ध है । इसका रचना-काल अनुपलब्ध है ।

६.५.२.१६ जिनसिंहसूरि गीतानि

समयसुन्दर जिनसिंहसूरि के प्रति दृढ़ आस्थावान् थे । यही कारण है कि वे इस गीत के माध्यम से उनके दर्शन कर तथा प्रवचन सुनकर स्वयं को धन्य-धन्य मानते हैं । इसमें कवि ने कबीर की तरह ही गुरु के माहात्म्य पर प्रकाश डाला है —

गुरु दीवउ गुरु चन्द्रमा रे, गुरु देखाइइ वाट ।

गुरु उपगारी गुरु बड़ा रे, गुरु उतारइ घाट ॥

गीत ६ गाथाओं में है । इसका रचना-समय अज्ञात है ।

६.५.२.१७ श्री जिनसिंहसूरि गीतानि

इस गीत में जिनसिंहसूरि की प्रतिभा, मन्त्री कर्मचन्द्र के निमन्त्रण पर लाहौर में पदार्पण, उनके द्वारा बादशाह अकबर को प्रभावित करना, अकबर के आग्रह से उसके साथ काश्मीर की ओर पद-विहार, उनके द्वारा हुई शासन-प्रभावना, एवं परीषह-सहन, अकबर के निवेदन पर जिनचन्द्रसूरि के स्वहस्त से आपको आचार्य-पद दिलाना, कर्मचन्द्र द्वारा किये गये पद-महोत्सव और सूरि का गार्हस्थिक परिचय इत्यादि का यथातथ्य निरूपण है ।

गीत का रचना-काल असूचित है । गीत में ५ षट्पद हैं ।

६.५.२.१८ श्री जिनसिंहसूरि ह्रींडोलणा गीतम्

प्रस्तुत गीत का रचना-समय अनुलिखित है। इसमें ९ कड़ियाँ हैं। इस गीत में एक युवती अपनी सहेली को जिनसिंहसूरि का जीवन-परिचय देती हुई उनके महान् गुणों की प्रशंसा करती है। जिनसिंहसूरि का जीवन-परिचय हम कवि की 'गुरु-परम्परा' में वर्णित कर आए हैं।

६.५.२.१९ वधावा गीतम्

इसमें जिनसिंहसूरि के सदगुणों का अभिनन्दन करते हुए उन्हें बधाई दी गई है। गीत में ६ गाथाएँ हैं। रचना-काल ज्ञात नहीं हो पाया।

६.५.२.२० गहूँली गीतम्

इस गीत में विविध गुणों से युक्त गुरु के बहुमुखी स्वरूप का विश्लेषण है। साथ ही साथ कवि ने गुरु के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा अभिव्यक्त की है। प्रस्तुत गीत ९ गाथाओं में निबद्ध है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

निम्नलिखित लघु गुरुगीत भी प्राप्त हैं —

६.५.२.२१ श्री गौतम स्वामी गीतम्	पद्य ३
६.५.२.२२ एकादश गणधर गीतम्	पद्य ४
६.५.२.२३ गुर्वावली गीतम्	पद्य ३
६.५.२.२४ दादा श्री जिनदत्तसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.२५ दादा श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.२६ देरावर-मण्डन श्रीजिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.२७ दादा श्री जिनकुशलसूरि गीत	पद्य ३
६.५.२.२८ अमरसर-मण्डण श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.२९ उग्रसेन-मण्डण श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.३० नागौर-मण्डन श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.३१ श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.३२ दादा श्री जिनकुशलसूरि गीतम्	पद्य २
६.५.२.३३ भट्टारक-त्रय गीतम्	पद्य ३
६.५.२.३४ श्री जिनचन्द्रसूरि चन्द्राउला गीतम्	पद्य ४
६.५.२.३५ श्री जिनचन्द्रसूरि छंद	पद्य ४
६.५.२.३६ श्री जिनचन्द्रसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.३७ श्री जिनचन्द्रसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.३८ श्री जिनचन्द्रसूरि स्तवनम्	पद्य ३
६.५.२.३९ श्री जिनसिंहसूरि गीतानि	पद्य ५

६.५.२.४०	श्री जिनसिंहसूरि हींङोलणा गीतम्	पद्य ५
६.५.२.४१	श्री जिनसिंहसूरि हींङोलणा गीतम्	पद्य ३
६.५.२.४२	वधावा गीतम्	पद्य ३
६.५.२.४३	चौमासा गीतम्	पद्य ५
६.५.२.४४	श्री जिनसिंहसूरि गीतानि	पद्य ४
६.५.२.४५	श्री जिनसिंहसूरि गीतानि	पद्य ३
६.५.२.४६	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.४७	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.४८	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य २
६.५.२.४९	श्री जिनसिंहसूरि गीत	पद्य ५
६.५.२.५०	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.५१	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.५२	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.५३	श्री जिनसिंहसूरि चर्चरी गीतम्	पद्य २
६.५.२.५४	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.५५	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.५६	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.५७	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.५८	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.५९	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.६०	श्री जिनसिंहसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.६१	श्री जिनसिंहसूरि तिथिविचार गीतम्	पद्य ५
६.५.२.६२	श्रीजिनसिंहसूरि गीतानि, गीत अपूर्ण	पद्य प्राप्त पद्य ४ ^१ / _२
६.५.२.६३	श्री जिनसागरसूरि गीतानि	पद्य ३
६.५.२.६४	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.६५	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.६६	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.६७	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.६८	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.६९	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.७०	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य २
६.५.२.७१	श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३

६.५.२.७२ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.७३ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.७४ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ३
६.५.२.७५ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.७६ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ४
६.५.२.७७ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.७८ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.७९ श्री जिनसागरसूरि गीतम्	पद्य ५
६.५.२.८० श्री जिनसागरसूरि सवैया	पद्य १
६.५.२.८१ श्री जिनसागरसूरि गीतानि	पद्य ४
६.५.२.८२ श्री जिनसागरसूरि गीतानि	पद्य ५
६.५.२.८३ गुरु दुःखितवचन	पद्य ५
६.५.२.८४ मणिधारी जिनचन्द्रसूरि गीतानि, गीत के तीन पद्य प्राप्त, समस्त पद्य अपूर्ण	
६.५.२.८५ श्री जिनकुशलसूरि गीतम्, प्राप्त पद्य ३, समस्त पद्य त्रुटित	
६.५.२.८६ श्री जिनकुशलसूरि गीत, पद्य संख्या अस्पष्ट, समस्त पद्य त्रुटित	
६.५.२.८७ मुलतान मण्डण जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि गीत, पद्य ५, सभी पद्य अपूर्ण	
६.५.२.८८ अजयमेरु मण्डन जिनदत्तसूरि गीतम्, पद्य ४, सभी पद्य त्रुटित, रचना-काल वि० सं० १६८८ मार्गशीर्ष ५	

६.६ उपदेशपरक रचनाएँ

कविवर्य समयसुन्दर का साहित्य मुख्यतः निवृत्ति-प्रधान है। वे पहले मुनि थे, बाद में कवि। साहित्य-साधना उनके लिए साध्य न होकर आत्म-कल्याण एवं जन-जन के सन्मार्ग के प्रदर्शन का साधन था। उन्होंने ग्रामानुग्राम विचरण कर धर्मोपदेश दिया और इसी हेतु उपदेशपरक रचनाओं का प्रणयन भी किया। यहाँ हम उनकी कुछ रचनाओं का परिचय देंगे, जो पूर्णरूपेण उपदेशपरक हैं। इनमें से भी उनकी कतिपय रचनाएँ तात्त्विक हैं, तो कतिपय रचनाएँ नैतिक या उपदेशपरक हैं। यहाँ दोनों प्रकार की रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत है —

६.६.१ जीव प्रतिबोध गीतम्

प्रस्तुत गीत में पाप से निवृत्त और पुण्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हुए संसार की असारता का चित्रण किया गया है। गीत ७ पद्यों में है। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.६.२ जीवन प्रतिबोध गीतम्

इस गीत में १० कड़ियाँ हैं। इसका रचना-काल असूचित है। इसमें कवि ने

लिखा है कि स्वजन आदि स्वार्थी हैं; धन, यौवन आदि चंचल हैं। मृत्यु निश्चित है, पाप दुःखदायक है; अतएव धर्मप्रकृतियों में प्रवृत्त रहना चाहिए, क्योंकि यही एकमात्र सुखदायक है।

६.६.३ जीव-काया गीतम्

प्रस्तुत गीत का रचना-काल अज्ञात है। इसमें ६ गाथाएँ हैं। इस गीत में जीव और काया का परस्पर सुन्दर वार्त्तालाप किया गया है। काया का कथन है कि हे जीव! तू मेरा त्याग मत कर। मैं तो तेरी प्रिया हूँ। मैंने तेरे लिए सुदीर्घकाल तक अपरिमित कष्ट सहे हैं। जीव काया को प्रतिबोध देता है कि हे काया! तू क्षणभंगुर है, मैं नित्य हूँ। तेरा त्याग ही मुझे मोक्ष दिलायेगा।

६.६.४ जीव-प्रतिबोध गीतम्

प्रस्तुत रचना में जीवन को जिनधर्म का आचरण करने का उद्बोधन दिया गया है। संसार अनित्य है, अतः धर्माचरण करना चाहिये, जिससे जीव शाश्वत सिद्ध हो सके - यही आलोच्य रचना का वर्ण्य-विषय है। इसमें ११ गाथाएँ हैं। इसका भी रचना-स्थल एवं रचना-समय अज्ञात है।

६.६.५ बारह भावना गीतम्

जैन धर्म में १२ प्रकार की भावनाओं की अवधारणा है। भावना का अर्थ है चिन्तन या विमर्श। यह मनोवृत्तियों का प्रेक्षण भी है। जीवन की बनती-बिगड़ती घटनाओं के तरंगित समुद्र में आत्म-नौका असन्तुलन की शिकार न हो जाये, इसके लिए निम्न लिखित १२ भावनाएँ बतायी गयी हैं -

१. अनित्य, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोकस्वरूप, ११. बोधिदुर्लभ और १२. धर्मस्वाख्यात भावना।

प्रस्तुत गीत में इनके चिन्तन करने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

गीत १५ पद्यों में निबद्ध है। गीत के रचना-समय की सूचना गीतकार ने नहीं दी है।

६.६.६ अध्यात्म सञ्ज्ञाय

प्रस्तुत गीत में ध्यान और प्राणायाम की चर्चा की गई है। प्राणायाम के द्वारा श्वाँस को जीतने की विधि बतलाते हुए उसके तीन भेद किये हैं - १. कुम्भक, २. रेचक और ३. पूरक। नाभि में श्वाँस का रोकना कुम्भक कहा गया है। नाभिकमल से श्वाय-वायु का निस्सरण करना रेचक बतलाया गया है एवं श्वाँस को बाहर रोकना पूरक संज्ञा से अभिहित किया गया है। श्वाँसविजय से ही मनोविजय की बात कही गई है। दृष्टि को नासाग्र-बिन्दु पर केन्द्रित करके उड्डयन बन्ध लगाकर बौर दृढ़ आसन में बैठकर अन्तर्यात्रा

की बात कही गई है। इसी से आत्मा रूपी हंस का दर्शन होता है।

गीत ८ पद्यों में है। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.६.७ श्रावक बारहव्रतकुलकम्

जिनोपदिष्ट मोक्षमार्ग पर चलने की जिनमें अभीप्सा है, वे श्रावक/श्राविका कहलाते हैं। श्रावक/श्राविका के चरित्र की श्रेष्ठता के लिए तीर्थङ्करों ने बारह व्रत प्ररूपित किये हैं। उनका आकलन इस प्रकार किया जाता है —

पांच अणुव्रत — स्थूल प्राणातिपात विरमण, स्थूल मृषावाद विरमण, स्थूल अदत्तादान विरमण, स्थूल मैथुन विरमण एवं स्थूल परिग्रह विरमण।

तीनगुणव्रत — दिक्परिमाण, भोगोपभोग विरमण और अनर्थ दण्ड विरमण।

चार शिक्षा व्रत — सामायिक, देशावकासिक, पौषधोपवास तथा अतिथि-संविभाग।

कवि ने प्रस्तुत गीत में प्रत्येक व्रत का विवेचन किया है। इस गीत की रचना वि० सं० १६८९ में बीकानेर में हुई थी। गीत में १५ पद्य हैं।

६.६.८ श्रावक दिनकृत्य कुलकम्

प्रस्तुत रचना में १५ गाथाएँ हैं। उनमें श्रावक की दिनचर्या और उसके पालनीय अन्य कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। रचना का रचनाकाल अज्ञात है।

६.६.९ शुद्ध श्रावक दुष्कर मिलन गीतम्

प्रस्तुत गीत का रचना-काल अनुल्लिखित है। यह गीत २१ पद्यों में गुम्फित है। इसमें शुद्ध श्रावक की दुर्लभता, श्रावक के इक्कीस गुण, श्रावक की दिनचर्या तथा उसके लिये आवश्यक करणीय कार्यों का विवेचन किया गया है।

६.६.१० क्रिया-प्रेरणा गीतम्

इस गीत में कवि ने अपने शिष्यों को साधनात्मक क्रियाएँ करने की प्रेरणा दी है, क्योंकि आचरण-शून्य ज्ञान पंगु है —

क्रिया करउ चेला क्रिया करउ, क्रिया करउ जिम तुम्ह निस्तरउ।

क्रियावंत दीसइ फूटरउ, क्रिया उपाय करम छूटरउ।

पांगलउ ज्ञान किस्यउ कामरउ, ज्ञान सहित क्रिया आदरउ ॥

कवि समयसुन्दर ज्ञानवादी होने के साथ-साथ क्रियावादी भी थे — यह प्रस्तुत गीत से सहज प्रकट होता है।

गीत में ८ पद्य हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.६.११ अन्तरंग-श्रृंगार गीतम्

प्रस्तुत गीत में एक तरुणी ने अपने आध्यात्मिक श्रृंगार का अपनी सखी के सम्मुख चित्रण किया है। कवि की यह रचना अध्यात्मरस-युक्त एवं सजीव है।

६.६.१२ देवगति-प्राप्ति गीतम्

प्रस्तुत गीत ६ गाथाओं में है। इसके रचना-काल का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। गीत में जिन कारणों से देवगति की प्राप्ति होती है, उनका उल्लेख किया गया है।

६.६.१३ नरकगति-प्राप्ति गीतम्

इस रचना में जिन-जिन दुष्कर्मों के कारण नरक-गति प्राप्त होती है, उनका उल्लेख करते हुए कवि ने धर्म करने के लिए निवेदन किया है, क्योंकि इसी से मनुष्य सद्गति को प्राप्त होगा।

रचना में १० पद्य हैं। रचना-काल एवं रचना-स्थान असूचित है।

६.६.१४ व्रत-पञ्चव्रत्तण गीतम्

प्रस्तुत गीत में कवि ने व्रत, प्रत्याख्यान ग्रहण करने पर बल दिया है। कवि ने अपनी समसामयिक धार्मिक परिस्थिति को व्यक्त करते हुए जैनियों पर व्यंग्य कसा है कि वृद्धजन प्रहर दो प्रहर पश्चात् भोजन ग्रहण करते हैं, तथापि 'नवकारसी' का प्रत्याख्यान नहीं लेते। लोग रात्रि में एक बार भी जल-सेवन नहीं करते, परन्तु फिर भी 'चउविहार' का प्रत्याख्यान नहीं करते। माह में १० तिथियों में सचित्त हरी वस्तुएँ नहीं खाते, लेकिन प्रत्याख्यान के अभाव में वे उनसे होने वाले पापों का भार ढोते हैं। लोग सभी कार्यों से निवृत्त रहते हैं, परन्तु परमेश्वर का नाम-स्मरण नहीं करते। तथ्य यह है कि विनय, विवेक, धर्म का अभाव होते हुए भी वे श्रावक कहलाते हैं अथवा चारित्रशून्य होकर भी साधु, 'साधु' कहलाते हैं।

यह गीत ११ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.६.१५ हित-शिक्षा गीतम्

'हित-शिक्षा गीतम्' १० पद्यों में निबद्ध है। इसमें जीवन-निर्माण की प्रेरणा और दुर्गुणों से दूर रहने की शिक्षा दी गई है। गीत का सातवाँ पद्य अर्द्धत्रुटित है। गीत का रचना-काल अज्ञात है।

६.६.१६ नववाड़ शील गीतम्

प्रस्तुत गीत की रचना वि० सं० १६७० के आश्विन मास में अहमदाबाद में हुई थी। गीत १३ पद्यों में आबद्ध है।

प्रस्तुत रचना में शील की उन नव वाड़ों का विवेचन किया गया है, जिनके आधार पर साधक का शील ठहरता है अर्थात् ब्रह्मचर्य सुरक्षित रहता है। ये नववाड़ इस प्रकार हैं — १. स्त्री जिस स्थान पर रहती है, ब्रह्मचारी वहाँ न उठें, (२) शृंगार-रसोत्पादक स्त्री कथा न करें, (३) स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठें, (४) स्त्रियों के अंगोपांग विषय-बुद्धि से न देखें, (५) आस-पास से आते हुए स्त्रियों के कुंजन, गायन, हास्य, क्रन्दित शब्द, रुदन और विरह से उत्पन्न विलाप को न सुनें, (६) गृहस्थावस्था

में भोगे हुए भोगों — रति क्रीड़ाओं का स्मरण न करें, (७) गरिष्ठ भोजन न करें, (८) मर्यादा से अधिक भोजन न करें, (९) शरीर का शृंगार न करें।

६.६.१७ आहार ४७ दूषण सञ्ज्ञाय

प्रस्तुत रचना में मुनि के आहार-संबंधी ४७ दोषों का विवेचन किया गया है। कवि ने आगमों में वर्णित इन दोषों का इस प्रकार विवरण दिया — (क) उद्गम के १६ दोष (ख) अपादान (उत्पादन) के १६ दोष (ग) एषणा (ग्रहणैषणा) के १० दोष और (घ) मांडला (ग्रासैषणा) के ५ दोष।

(क) उद्गम के १६ दोष संक्षेप में ये हैं —

(१) आधा कर्म, (२) औद्देशिक, (३) पूर्त्तिकर्म, (४) मिश्रजात, (५) स्थापना, (६) प्राभृतिका, (७) प्रादुगष्करण, (८) क्रीत, (९) प्रामित्य, (१०) परिवर्तित, (११) अभिहित, (१२) उद्भिन्न, (१३) मालापहत, (१४) आच्छेद्य, (१५) अनिसृष्ट व (१६) अध्यवपूर।

(ख) उत्पादन के १६ दोष संक्षेप में इस प्रकार हैं —

(१) धात्री, (२) दूती, (३) निमित्त, (४) आजीव, (५) वनीपक, (६) चिकित्सा, (७) क्रोध, (८) मान, (९) माया, (१०) लोभ, (११) पूर्व-पश्चात्संस्तव, (१२) विद्या, (१३) मन्त्र, (१४) चूर्ण, (१५) योग एवं (१६) मूलकर्म।

(ग) ग्रहणैषणा के निम्नलिखित १० दोष हैं —

(१) शंकित, (२) म्रक्षित, (३) निक्षित, (४) पिहित, (५) संहत, (६) दायक, (७) उन्मिश्र, (८) अपरिणत, (९) लिप्त और (१०) छर्दित।

(घ) ग्रासैषणाके ५ दोष निम्नानुसार हैं —

(१) संयोजन, (२) अप्रमाण, (३) अंगार, (४) धूम तथा (५) अकारण।

कवि ने रचना के अन्त में यह भी सूचित किया है कि उपर्युक्त दोषों का उल्लेख भद्रबाहु स्वामी कृत 'पिण्ड-निर्युक्ति' में उपलब्ध होता है।

इसका रचना-काल वि० सं० १६९१, दीपावली है और रचना-स्थान खम्भात। कवि ने अपने शिष्य मेघविजय के आग्रहवश इस रचना का निर्माण किया। रचना ५२ पद्यों में निबद्ध है।

६.६.१८ धर्म-महिमा गीतम्

इस गीत में दान-शील-तप-भाव-रूप चतुर्विध धर्म की महिमा का वर्णन किया गया है और यह बताया गया है कि दान के द्वारा श्रेयांस कुमार ने, शील के द्वारा सुभद्रा ने, तप के द्वारा धन्ना अनगार ने और भावना के द्वारा भरत चक्रवर्ती ने अक्षुण्ण यश को प्राप्त किया है।

गीत में ६ पद्य हैं। गीत का रचना-काल अज्ञात है।

६.६.१९ आत्म-प्रमोद गीतम्

प्रस्तुत रचना में मनुष्य-भव की प्राप्ति की दुर्लभता और संसार की नश्वरता का वर्णन है।

रचना ७ गाथाओं में निबद्ध है। रचना-काल अज्ञात है।

६.६.२० मन-सञ्ज्ञाय

यह गीत ७ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनुस्मिखित है। इस गीत में कवि ने मन को समझने तथा समझाने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने अनेक उपमाओं का प्रयोग किया है, जैसे कि —

मन तने कई रीते समझावुं।

सोनुं होवे तो सोगी रे मेलावु, तावणी ताप तपावुं।

लई फूंकणी ने फूंकवा बेसु, पाणी जेम पिगलावुं ॥

गीत के अन्त में मन की चंचलता का वर्णन करते हुए कवि ने ज्ञान-ध्यान से इसे पहचानने और संयम द्वारा उस पर विजय प्राप्त करने का निर्देश किया है।

६.६.२१ मन-धोबी गीतम्

प्रस्तुत गीत में कवि ने धोबी को मन रूपी धोती (वस्त्र) को धोने का निर्देश दिया है —

धोबीड़ा तू धोजे रे मन केरा धोतिया, मत राखे मैल लगार।

इण मइले जग मैलो कर्यउ रे, विण धोया तूँ मत राखे लगार ॥

मन रूपी धोती को तपादि के नीर से और आलोचना की साबुन से स्वच्छ करने का उल्लेख किया है। गीत ६ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.६.२२ माया-निवारण सञ्ज्ञाय

प्रस्तुत रचना में ७ गाथाएँ हैं। इसका रचना-समय अनुपलब्ध है। इसमें माया के कारण होने वाली कठिनाइयों का उल्लेख किया गया है। कवि ने लिखा है —

माया कारण देस देसान्तर, अटवी वन मां जावै रे।

प्रवहण बइसी धीर द्विपान्तर, सायर मांझपावै रे ॥

कवि ने लिखा है कि शिवभूति जैसे सत्यवादी भी माया के कारण दुर्गति को प्राप्त हुए। अतः माया से सदैव निवृत्त रहना चाहिए और उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

६.६.२३ स्वार्थ-गीतम्

व्यक्तियों का प्रत्येक कार्य संसार में आसक्त स्वार्थ से प्रेरित होता है — यही इस गीत का प्रतिपाद्य विषय है। गीत में पद्य ६ हैं। इसका रचना-काल अप्राप्य है।

६.६.२४ पर-प्रशंसा गीतम्

प्रस्तुत गीत में आदर्श पुरुषों और उनके विशिष्ट गुणों का स्मरण करते हुए कवि ने उनकी स्तुति की है एवं उनके प्रति श्रद्धाँजलि अर्पित की है। गीत में ७ पद्य हैं। गीत का रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.६.२५ सिद्धान्त-श्रद्धा सञ्ज्ञाय

कवि का मत है कि जिन की अनुपस्थिति में जिनवचन ही जिनवत् हैं। जिनवचन आगमों में निबद्ध हैं। कवि की दृष्टि में आगम प्रमाण हैं और 'पंचम आरे' के अन्त तक किसी न किसी रूप में इनका अस्तित्व बना रहेगा।

गीत में ६ पद्य हैं। गीत का रचना-काल अज्ञात है।

६.६.२६ श्रावक मनोरथ गीतम्

इस गीत में श्री पार्श्वनाथ प्रभु द्वारा प्ररूपित जिन-शासन का एवं श्रावक के धार्मिक मनोरथों का निदर्शन है। गीत ६ पद्यों में है। इसका रचना-काल अप्राप्य है।

६.६.२७ अन्त समये जीव-निर्जरा गीतम्

प्रस्तुत रचना १० पद्यों में निबद्ध है। इसमें कवि ने जीव को आत्म-निर्जरा करने का उद्बोधन दिया है। कवि ने लिखा है कि मरणान्त-काल में सांसारिक मोह, माया, लोभादि का त्याग कर संलेखना-सहित अपनी निर्जरा कर लेनी चाहिये, क्योंकि धन, कुटुम्ब कोई भी साथ नहीं चलेगा और मनुष्य-भव पुनः प्राप्त होना दुर्लभ है।

गीत के रचना-काल का कवि ने निर्देश नहीं दिया है।

उपर्युक्त सभी उपदेशपरक रचनाएँ भाषा में रचित हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित लघु रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं —

६.६.२८ जीव-प्रतिबोध गीतम्	पद्य २
६.६.२९ जीव-प्रतिबोध गीतम्	पद्य ३
६.६.३० जीव-प्रतिबोध गीतम्	पद्य ३
६.६.३१ जीव-नटावा गीतम्	पद्य ४
६.६.३२ वैराग्य-शिक्षा गीतम्	पद्य ५
६.६.३३ घड़ी लाखिणी गीतम्	पद्य ५
६.६.३४ सूता जगावण गीतम्	पद्य ४
६.६.३५ प्रमाद-त्याग गीतम्	पद्य ५
६.६.३६ प्रमाद-परित्याग गीतम्	पद्य ५
६.६.३७ माया-निवारण गीतम्	पद्य ४
६.६.३८ लोभ-निवारण गीतम्	पद्य ३
६.६.३९ पारकी होड़ निवारण गीतम्	पद्य ३

६.६.४० आरति-निवारण गीतम्	पद्य ३
६.६.४१ मरण-भय-निवारण गीतम्	पद्य २
६.६.४२ मनशुद्धि-गीतम्	पद्य ३
६.६.४३ कामिनी-विश्वास-निराकरण गीतम्	पद्य ३
६.६.४४ अन्तरंग-बाह्य निद्रानिवारण गीतम्	पद्य ४
६.६.४५ निद्रा-गीतम्	पद्य ३
६.६.४६ पठन-प्रेरणा गीतम्	पद्य ५
६.६.४७ जीव-व्यापारी गीतम्	पद्य ३
६.६.४८ घड़ियाली गीतम्	पद्य ३
६.६.४९ उद्यम-भाग्य गीतम्	पद्य ३
६.६.५० सर्वभेषमुक्तिगमन गीतम्	पद्य ३
६.६.५१ कर्मगीतम्	पद्य ३
६.६.५२ नावी गीतम्	पद्य २
६.६.५३ काया-जीव गीतम्	पद्य ४
६.६.५४ जीव-कर्म-संबंध गीतम्	पद्य २
६.६.५५ सन्देह-गीतम्	पद्य ३
६.६.५६ जग-सृष्टिकार परमेश्वर-पृच्छा गीतम्	पद्य ३
६.६.५७ कर्त्तार-गीतम्	पद्य ५
६.६.५८ दुषमाकाले संयम-पालन गीतम्	पद्य २
६.६.५९ निरंजन-ध्यान गीतम्	पद्य २
६.६.६० परब्रह्म गीतम्	पद्य ३
६.६.६१ जीव-दया गीतम्	पद्य ३
६.६.६२ कर्म-निर्जरा गीतम् (चौथा पद्य अपूर्ण)	पद्य ५
६.६.६३ वैराग्य सञ्ज्ञाय	पद्य ५
६.६.६४ क्रोध-निवारण गीतम्	पद्य ३
६.६.६५ हुंकार-परिहार गीतम्	पद्य २
६.६.६६ मान-निवारण गीतम्	पद्य ३
६.६.६७ मान-निवारण गीत	पद्य ३
६.६.६८ यति-लोभ-निवारण गीतम्	पद्य २
६.६.६९ विषय-निवारण गीतम्	पद्य ३
६.६.७० निन्दा-परिहार गीतम्	पद्य ३
६.६.७१ निन्दा-घारक गीतम्	पद्य ५

६.६.७२ दान-गीतम्	पद्य ४
६.६.७३ शील-गीतम्	पद्य ३
६.६.७४ तप-गीतम्	पद्य ३
६.६.७५ भावना-गीतम्	पद्य ३
६.६.७६ दान-शील-तप-भावना गूढा गीतम्	पद्य ३
६.६.७७ तूर्य वीसामा गीतम् (तीसरा पद्य अपूर्ण)	पद्य ३
६.६.७८ प्रीति दोहा	पद्य ४
६.६.७९ फुटकर सवैया	पद्य ३
६.६.८० सामायिक गीतम्	पद्य ५
६.६.८१ गुरु-वन्दन गीतम्	पद्य २
६.६.८२ अन्तरंग-विचार गीतम्	पद्य ४
६.६.८३ साधु-गुण गीतम्	पद्य ३
६.६.८४ वीतराग सत्यवचन गीतम्	पद्य ३
६.६.८५ ऋषि-महत्त्व गीतम्	पद्य २
६.६.८६ श्रीसंघ-गुण गीतम्	पद्य ३
६.६.८७ चार मंगल गीतम्	पद्य ५
६.६.८८ चार मंगल गीतम्	पद्य ५
६.६.८९ चार शरणा गीतम्	पद्य ३
६.६.९० अठारह पापस्थानक-परिहार गीतम्	पद्य ३
६.६.९१ चौरासीलक्ष जीवयोनिक्षामणा गीतम्	पद्य ३
६.६.९२ हीयाली गीतम्	पद्य ४
६.६.९३ हीयाली गीतम्	पद्य ५
६.६.९४ हीयाली गीतम्	पद्य ४
६.६.९५ राती जागी गीतम्	पद्य ४

६.७ विरह गीत

कविवर्य समयसुन्दर विरचित विरह गीत कुछ तो नेमि और राजीमती से संबंधित हैं और कुछेक स्थूलिभद्र एवं कोशा से। अतः हम विरह-गीतों का परिचय निम्नलिखित शीर्षकों में रखकर प्रस्तुत करेंगे —

६.७.१ राजुल के विरह गीत

६.७.२ कोशा के विरह गीत

६.७.१ राजुल के विरह गीत

नेमि और राजीमती से संबंधित घटना इस प्रकार है —

राजा समुद्रविजय के सुपुत्र नेमिनाथ की बारात जब राजा उग्रसेन के यहाँ उसकी कन्या राजीमती से विवाह करने के लिए पहुँची, तो नेमि को विवाह-भोज के लिए एकत्र किये गये पशुओं का करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ा। वे करुणाभिभूत हो उठे। उन्होंने विवाह-बन्धन में आबद्ध होने की अपेक्षा इस दुःखबहुल संसार को परित्याग करने का संकल्प किया। वे वैवाहिक वेश-भूषा का त्याग कर गिरनार-गिरि पर मुनि बन तपस्या करने चले गये। राजीमती, जिसके साथ नेमि का विवाह होने वाला था, उक्त समाचार से मूर्च्छित हो गई। हल्दी चढ़ी, मेहंदी रची, विवाहार्थ प्रस्तुत दुलहिन के रूप एवं विवाह की असफलता ने राजीमती के हृदय में हाहाकार के तूफान पैदा कर दिये। घूँघट-पट उठने से पूर्व यह निर्मम पटापेक्ष उसके लिए असह्य था। उसने दूसरा विवाह नहीं किया और वह नेमि के वियोग में जलती रही। अन्त में उसके हृदय में भी वैराग्य का दीप प्रज्वलित हो गया और उसने विरह-शोक त्यागकर नेमि के पास दीक्षा ले ली।

नेमि और राजीमती के विरह से संबंधित गीतों में समयसुन्दर ने राजीमती की विरह-व्यथा का इतना उदात्त रूप में वर्णन किया है कि पाठक का हृदय उत्तेजित हो जाता है। कवि ने नेमि और राजीमती के विरह से सम्बद्ध अनेक गीतों की रचना की थी, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

६.७.१.१ भाषा में निबद्ध गीत

६.७.१.१.१ श्री नेमिजिन स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में ६ पद्य हैं। प्रथम पाँच पद्यों में नेमिनाथ के विरह में राजुल संसार से विरक्त होकर तीर्थङ्कर नेमिनाथ के पास दीक्षित हो गई, यह उल्लेख है।

स्तवन का रचना-समय अनुल्लिखित है।

६.७.१.१.२ नेमिनाथ फाग

इसमें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के जीवन में घटित विशेष घटनाओं का वर्णन करते हुए उन्हें राजा कृष्ण की रानियों द्वारा खेलाये गये वसन्त-फाग का रुचिर चित्रण है।

यह गीत ८ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अज्ञात है।

६.७.१.१.३ नेमिनाथ सोहला गीतम्

प्रस्तुत रचना का रचना-काल अज्ञात है। रचना ८ पद्यों में आबद्ध है। इसकी विषय-वस्तु इस प्रकार है —

भगवान् नेमिनाथ विवाह करना नहीं चाहते थे, परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नियों के आग्रह से राजा उग्रसेन की कन्या राजुल से उनका विवाह निश्चित कर दिया। उनकी बारात उग्रसेन के द्वार पर पहुँची। वहाँ नेमि ने बन्दी पशुओं की भयार्द्र चीत्कार सुनी। वे करुणाभिभूत हो गये। 'यदि मेरे विवाह के निमित्त निरपराधी मूक पशुओं का वध होता है, तो मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं ऐसा हिंसाजन्य विवाह न करूँ, - नेमि के इन

विचारों ने उसका मार्ग बदल दिया। उन्होंने प्रव्रज्या अंगीकार की और गिरनार पर्वत पर तपस्या करके कैवल्य प्राप्त किया। उधर राजुल पति वियोग में झुलसती रही। अन्त में वह नेमि के पास दीक्षित हो गई। दोनों ने सिद्धत्व प्राप्त किया।

६.७.१.१.४ नेमिनाथ-फाग

इसमें नेमिनाथ क्रीडित फाग का मनोहर चित्रण है। कृष्ण की पत्नियाँ खेल-खेल में उन्हें विवाह करने के लिए विवश करती हैं। तंग आकर उन्होंने विवाह की स्वीकृति दे दी। गीत की कुछेक पंक्तियाँ तो बड़ी ही रसप्रद हैं —

आहे लाल गुलाल चिहूँ दिसइ, उड़त अवल अबीर।

आहे केसर भरि-भरि पिचकारा, छांटत सामि सरीर ॥

प्रारम्भिक ६ गाथाओं में फाग का वर्णन है और अन्तिम ७ गाथाओं में नेमिनाथ की जीवनी की प्रमुख बातों का। इनका वर्णन हम नेमिनाथ सोहलागीतम् में कर आए हैं। गीत का प्रणयन-काल अज्ञात है।

६.७.१.१.५ नेमिनाथ बारहमासा

प्रस्तुत गीत में चैत, वैशाख, जेठ आदि बारह महीनों की प्राकृतिक विशेषताओं का वर्णन विरहिनी राजुल के मुँह से कराया गया है। बारहमासा पर कवि की यही एकमात्र रचना है। द्रष्टव्य है आश्विन मास का चित्रण —

आसु अमी झरइ चंद, संयोगिनी सुखकंद।

निरमल थया सर नीर, नेमि बिना हूँ दिलगीर ॥

यह गीत १४ पद्यों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.७.१.१.६ श्री नेमिनाथ गीत

प्रस्तुत गीत ६ गाथाओं में गुम्फित है। नेमिनाथ श्यामवर्णी थे, तथापि अनेक गुणों के भण्डार थे। राजुल उन्हें हृदय से प्रेम करती थी और उन पर मुग्ध थी। नेमिनाथ को वही समझ सकता है, जो राजुल-सा हृदय रखता है। आँख में अंजन, वृन्दावन में श्री कृष्ण, कृषकों में मेघ आदि ये सभी काले होते हुए भी प्रिय और आनन्दप्रद होते हैं, उसी प्रकार राजुल को नेमिनाथ श्याम रंगी होते हुए भी प्रिय हैं।

गीत का रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.७.१.१.७ नेमिनाथ राजीमति सवैया

प्रस्तुत गीत त्रुटित और अपूर्ण रूप में उपलब्ध हुआ है। गीत के प्रथम ८ पद्य अप्राप्त हैं। नवमें पद्य में प्रथम, द्वितीय और अर्द्ध तृतीय पाद त्रुटित हैं। शेष तैंतीस पद्य पूर्ण हैं। चौतीसवें पद्य का डेढ़ पाद सुरक्षित है। इतना तो निश्चित है कि इस कृति में कम से कम ३४ पद्य थे, परन्तु कृति कितने पद्यों में रची गई, यह नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक पद्य के अन्तिम पाद में 'समयसुन्दर' का नाम उल्लिखित होने से कृति की प्रामाणिकता

असंदिग्ध रूप से प्रकट हो जाती है। कृति के अन्तिम पद्य अनुपलब्ध होने से इसका रचना-काल ज्ञात नहीं हो पाया है।

रचना के छन्दों में एकरूपता नहीं है। कवित्त, सवैया आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश पद्य सवैया में हैं। इस पद्य-रचना में क्रम एवं प्रवाह का भी अभाव है।

प्रस्तुत रचना में राजुल द्वारा उसकी चरम विरह-अवस्था का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। प्रकृति की विविध उपमाओं से उसके विरह-भाव को संयोजित किया गया है। रचना में राजुल का नेमिनाथ के साथ हुए आठ पूर्वभवों के पारस्परिक संबंधों का भी उल्लेख किया गया है।

ऊपर हमने राजुल के विरह-गीतों का परिचय प्रस्तुत किया है। इन गीतों के अतिरिक्त अन्य कुछ लघु गीत भी उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

६.७.१.१.८	श्री नेमिनाथ उलम्भा उतारण भास	पद्य ४
६.७.१.१.९	श्री नेमिनाथ राजीमती गीतम्	पद्य ५
६.७.१.१.१०	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ५
६.७.१.१.११	नेमिनाथ जिन गीतम्	पद्य ५
६.७.१.१.१२	श्री नेमिनाथ गीतम्	पद्य २
६.७.१.१.१३	श्री नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३
६.७.१.१.१४	श्री नेमिनाथ गीत	पद्य ३
६.७.१.१.१५	नेमिनाथ गीत	पद्य ३
६.७.१.१.१६	श्री नेमिनाथ गीतम्	पद्य २
६.७.१.१.१७	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३
६.७.१.१.१८	श्री नेमिनाथ गीतम्	पद्य ४
६.७.१.१.१९	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३
६.७.१.१.२०	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ४
६.७.१.१.२१	श्री नेमिनाथ स्तवनम्	पद्य ३
६.७.१.१.२२	श्री नेमिनाथ गूढा गीतम्	पद्य ३
६.७.१.१.२३	नेमिनाथ गीतम् (गीत की दो पंक्तियाँ प्राप्त हैं)	अपूर्ण
६.७.१.१.२४	नेमि शृंगार वैराग्य	पद्य ४
६.७.१.१.२५	चारित्र-चूनड़ी	पद्य ३
६.७.१.१.२६	गूढा गीत	पद्य ३
६.७.१.१.२७	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३
६.७.१.१.२८	नेमिनाथ गीतम्	पद्य ५
६.७.१.१.२९	श्री नेमिनाथ गीतम्	पद्य ३

६.७.१.२ सिन्धी भाषा में निबद्ध स्तवन

६.७.१.२.१ श्री नेमिजिन स्तवनम्

इस स्तवन में लिखा है कि नेमिनाथ विवाह-निमित्त राजुल के द्वार पर पहुँचे, परन्तु जैसे ही उन्होंने विवाह-भोज के लिए एकत्रित पशुओं की चीत्कार सुनीं, वे करुणार्द्र होकर प्रव्रजित होने के निश्चय के साथ वापस लौट गये। कवि ने लिखा है कि प्रीति हो, तो नेमि-राजुल की तरह ही, जिन्होंने एक ही साथ मुक्ति प्राप्ति की।

प्रस्तुत स्तवन में ९ पद्य हैं। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.७.२ कोशा के विरह-गीत

स्थूलिभद्र और कोशा से संबंधित विवेच्य रचनाओं में स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या के प्रसिद्ध कथानक को लेकर स्थूलिभद्र की ब्रह्मचर्य-साधना का वर्णन किया गया है। कोशा ने स्थूलिभद्र को शील से च्युत करने के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उन्हें विचलित नहीं कर सकी और अन्त में स्थूलिभद्र के उपदेशों से उसने स्वयं शीलव्रत धारण कर लिया।

उपर्युक्त उपशीर्षकान्तर्गत समागत रचनाओं का परिचय इस प्रकार है —

६.७.२.१ श्री स्थूलिभद्र गीतम्

प्रस्तुत गीत में कोशा के विरह का ज्वलन्त चित्रण है। कोशा कहती है कि स्थूलिभद्र से वियोग हुए ६ मास १५ दिन हो गये हैं, अब उनके बिना मेरा जीवित रहना अशक्य हो गया है। कोशा की प्रियतम-मिलन की तीव्र उत्कण्ठा प्रस्तुत गीत में प्रकट हुई है।

इस गीत में ६ पद्य हैं। यह गीत अकबरपुर में मीरमोजा के शासन में वि० सं० १६८९ में रचा गया।

६.७.२.१ श्री स्थूलिभद्र गीतम्

इस गीत में कोशा कहती है कि परदेशी से प्रीति कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि परदेशी का पुनः आना कठिन है। मैंने भी परदेशी से प्रीति की और अब विरह-ज्वाला में धधक रही हूँ। दिन में अन्न-जल ग्रहण न कर पाने के कारण दुःखी हूँ और रात्रि में नींद न आने के कारण। कोशा कहती है कि मैं अपने प्रेमी को पत्र भी नहीं लिख सकती, क्योंकि पत्र लिखते समय वह अश्रुनदी से आर्द्रित हो जाता है।

इस गीत के अन्त में कवि ने लिखा है कि स्थूलिभद्र जैसा प्रेमी प्राप्त होना अशक्य है, जो साधु बनने के पश्चात् भी अपनी प्रेमिका के घर आये और उसे प्रतिबोध देकर शील-चूनड़ी पहना गये।

इस गीत में ७ पद्य हैं। गीत का रचना-काल अज्ञात है।

६.७.२.३ स्थूलिभद्र गीतम्

प्रस्तुत गीत में ८ पद्य हैं। प्रथम ४ पद्यों में मुनि स्थूलिभद्र के कोशा के गृह-प्रांगण में आगमन होने पर कोशा द्वारा अभिव्यक्त बातों को निबद्ध किया गया है और शेष चार पद्यों में मुनि द्वारा वेश्या को प्रदत्त उपदेश एवं कोशा द्वारा श्राविकाव्रत अंगीकार करने का वर्णन किया गया है।

इस गीत का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

६.७.२.४ श्री स्थूलिभद्र गीतम्

प्रस्तुत रचना ६ पद्यों में गुम्फित है। इसमें लिखा है कि जब स्थूलिभद्रमुनि कोशा के गृह में साधना करने लगे, तो कोशा ने उन्हें भोग भोगने के लिए बहुत आग्रह किया, लेकिन मुनि विरक्त थे। उन्होंने कोशा को शीलव्रत अंगीकार करने के लिए उपदेश दिया, जिसे उसने स्वीकार कर लिया।

गीत का रचना-काल अवर्णित है।

उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त निम्नलिखित लघु गीत भी पाये जाते हैं —

६.७.२.५ श्री स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ५
६.७.२.६ श्री स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ४
६.७.२.७ श्री स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ३
६.७.२.८ स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ५
६.७.२.९ श्री स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ५
६.७.२.१० स्थूलिभद्र गीतम्	पद्य ४

कोशा के विरह गीत — इस उपशीर्षक में जिन गीतों का उल्लेख किया गया है, वे सब भाषा में निबद्ध हैं।

६.८ अन्य रचनाएँ

प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हम उन सभी फुटकर रचनाओं को समाविष्ट कर रहे हैं, जिनका समावेश पूर्वोक्त वर्गान्त में नहीं हुआ है।

६.८.१ संस्कृत में निबद्ध रचनाएँ

६.८.१.१ श्री चौबीस जिन-गुरु-नामगर्भित स्तोत्र

प्रस्तुत स्तोत्र में कवि ने जैन-धर्म के वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों एवं अपनी गुरु-परम्परा में हुए प्रमुख चौबीस आचार्यों की एक साथ स्तुति की है। विशेषता यह है कि तीर्थङ्करों के नामों के साथ जब आचार्यों के नामों को अर्थ रूप में ग्रहण करते हैं, तो वहाँ वे शब्द तीर्थङ्करों के विशेषण बन जाते हैं। इसी प्रकार आचार्यों के नामों के साथ तीर्थङ्करों के नामों को घटित किया जाता है, तो तीर्थङ्करों के नाम आचार्यों के विशेषण बन जाते हैं।

प्रस्तुत रचना भिन्न-भिन्न ७ छन्दों में निबद्ध है। नाहटा-बन्धुओं के उल्लेखानुसार

कवि समयसुन्दर ने प्रस्तुत रचना की स्वयं ही वृत्ति लिखी थी। जिसका नाम है - 'श्री चौबीस जिन-गुरुनामगर्भितस्तोत्रस्वोपज्ञ वृत्ति';^१ किन्तु वृत्तिसहित यह स्तोत्र हमें प्राप्त नहीं हो सका। अतः कल्पना की जा सकती है कि उस वृत्ति में कवि ने प्रस्तुत स्तोत्र में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के विशिष्ट अर्थों को स्पष्ट किया होगा।

६.८.१.२ गुरु दुःखित वचनम्

प्रस्तुत कृति कवि के अन्तर्संसार की पीड़ा को प्रकाशित करती है। कवि को अपने जीवन में बहुत ही सम्मान, आदर एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी; किन्तु जब उन्हीं के शिष्य वृद्धावस्था में उनका साथ छोड़ देते हैं, तो कवि का हृदय रो उठता है। प्रस्तुत रचना की प्रत्येक पंक्ति आन्तरिक पीड़ा को प्रकट करती है। प्रत्येक पद का अंतिम वाक्य 'यदि ते न गेरोर्भक्ताः शिष्यै किं तैर्निरर्थकैः' भी कवि की अन्तर्व्यथा को ही अभिव्यंजित करती है।

अन्त में कवि समयसुन्दर अपने कृत-कर्मों का दोष मानकर संतोष धारण करते हैं —

न शिष्य दोषो दातव्यो, ममकर्मैव तादृशम्।

परं भद्रकभावेन, लोला लोलायते मम॥

प्रस्तुत रचना में कुल १९ कड़ियाँ हैं। 'संवत्यष्टनवत्यग्रे, राजधान्यां स्वभावतः' से स्पष्ट है कि इसका रचना-काल सं० १६९८ है।

६.८.२ प्राकृत में निबद्ध रचनाएँ

६.८.२.१ अल्पबहुत्वविचारगर्भितश्रीमहावीरवृहत्स्तवनम् स्वोपज्ञवृत्तिसहितम्

मूल स्तवन प्राकृत भाषा में निबद्ध है, जिसमें महावीर स्वामी की स्तुति के माध्यम से जीवों के अल्प-बहुत्व पर विचार प्रस्तुत किया गया है। मूल कृति संक्षिप्त और मात्र १३ गाथाओं में निबद्ध है। इस पर कवि ने स्वोपज्ञवृत्ति लिखी थी, जो कि बहुत वर्षों पूर्व आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित हुई थी; किन्तु यह वृत्ति हमें देखने को प्राप्त नहीं हो सकी। मूल गाथाओं को देखने से ज्ञात होता है कि इस वृत्ति में जीवों के अल्प-बहुत्व से सम्बन्धित विचारों की गम्भीर चर्चा रही होगी। मूल-कृति का रचना-काल सं० १६५४, मार्गशीर्ष वदि १ है। प्रस्तुत रचना चौपड़ा पादेव जी की प्रार्थना पर श्री पत्तन के कंसारपाटक में की गई थी।

६.८.३ भाषा में निबद्ध रचनाएँ

६.८.३.१ श्री परमेश्वर-भेद गीतम्

प्रस्तुत गीत में १८ पद्य हैं। इस गीत में कवि ने अरिहन्त में ईश्वर के विविध स्वरूपों और नामों को घटित किया है। गीत का रचना-काल अनिर्दिष्ट है।

१. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५४

६.८.३.२ श्री पञ्च परमेष्ठी गीतम्

प्रस्तुत गीत का रचना-काल अवर्णित है। इस गीत में नवकार महामन्त्र की अचिन्त्य महिमा का वर्णन है। गीत में 5 कड़ियाँ हैं।

६.८.३.३ श्री जिनप्रतिमा-पूजा गीतम्

प्रस्तुत गीत का वर्ण्य-विषय प्रतिमा की पूजा को शास्त्रोक्त बताना है। इसके लिए कवि ने 'रायपसेणी' एवं 'भगवती सूत्र' नामक ग्रन्थों का प्रमाण दिया है। उन्होंने रचना में मूर्तिपूजक महापुरुषों का नामोल्लेख भी किया है।

इस गीत में ९ कड़ियाँ हैं। इसका रचना-समय अज्ञात है।

६.८.३.४ शाश्वत जिनचैत्यप्रतिमा वृहत्स्तवनम्

'शाश्वत जिन चैत्य प्रतिमा वृहत्स्तवनम्' के प्रणयन का उद्देश्य जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमा के प्रति भक्ति प्रकट करना है। कवि ने जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा की शाश्वतता को भी सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्-किन तीर्थों में कितने जिनालय एवं उनमें कितनी प्रतिमाएँ हैं, इस पर कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने वर्णन का आधार मुख्यरूप से 'जीवाभिगम सूत्र' बताया है। वे जिनप्रतिमा के सम्बन्ध में कहते हैं —

जिन प्रतिमा बोली जिन सारखी, हितसुख मोक्ष निदानो जी।

भवियण नइ भवसागर तारिवा, प्रवहण जेम प्रधानो जी॥

प्रस्तुत स्तवन १९ कड़ियों में निबद्ध है। इसकी रचना के समय और स्थल का कवि ने उल्लेख नहीं किया है।

६.८.३.५ उपधान तप स्तवनम्

जैनधर्म में श्रावकों के तप एवं व्रतों में 'उपधान तप' प्रमुख माना जाता है। प्रस्तुत स्तवन इसी तप से सम्बन्धित है। यह स्तवन ३ ढालों में निबद्ध है। इसमें कुल १८ पद्य हैं।

प्रथम ढाल में कवि ने उपधान तप की आगम-सम्मतता तथा उपधान तप एवं उसके कर्ता का माहात्म्य बताया है। उत्तराध्ययन, महानिशीथ आदि ग्रन्थों में इस तप का उल्लेख हुआ है, ऐसा कवि ने लिखा है; लेकिन उत्तराध्ययन सूत्र में निर्दिष्ट 'बहुश्रुत' अध्ययन में इस तप का नामोल्लेख तक भी नहीं पाया गया है।

द्वितीय ढाल में उपधान तप की विधि बतायी गयी है। तृतीय ढाल में उपधान तप में करणीय और अकरणीय बातों का उल्लेख हुआ है।

स्तवन का रचना-काल एवं रचना-स्थल, दोनों अज्ञात हैं।

७.८.३.६ उपधान गीतम्

इस गीत में गुरु-पूजा एवं उपधान तप के माल-महोत्सव पर प्रकाश डाला गया

है। गीत ९ कड़ियों में निबद्ध है। इसका रचना-काल अनुपलब्ध है।

६.८.३.७ ज्ञान पंचमी वृहत्स्तवनम्

ज्ञान-पंचमी जैनों का धार्मिक पर्व है। ज्ञान-पिपासुजन इसकी आराधना करते हैं। श्वेताम्बर-परम्परा में ज्ञानपंचमी का पर्व कार्तिक शुक्लपक्ष पंचमी को मनाया जाता है, जबकि दिगम्बर-परम्परा में ज्येष्ठ शुक्लपक्ष पंचमी को मनाया जाता है। इस स्तवन की लोकप्रियता भी काफी है। समयसुन्दर ने प्रस्तुत कृति में ज्ञान का माहात्म्य बताकर ज्ञान पंचमी की आराधना-विधि को प्रस्तुत किया है। ज्ञान की महिमा बताते हुए वे लिखते हैं —

न्यान बड़उ संसार, न्यान मुगति दातार ।
 न्यान दीवउ कह्यउ ए, साचउ सरदह्यउ ए ।
 न्यान लोचन सुविलास, लोकालोक प्रकाश ।
 न्यान विना पसू ए, नर जाणइ किसू ए ॥
 न्यानी सासोसास, करम करइ जे नास ।
 नारकी नइ सही ए, कोड़ि वरस कही ए ॥
 किरिया सहित जउ न्यान, हुयइ तउ अति परधान ।
 सोनउ नइ सुहत्तउ ए, सांख दूधइ भरयउ ए ॥

आलोच्य रचना तीन ढालों में गुम्फिल है। अन्त में 'कलश' के रूप में स्तवन का उपसंहार दिया है। इसका रचना-काल वि०सं० १६६६ की ज्ञानपंचमी है।

६.८.३.८ मौन एकादशी स्तवन

मौन एकादशी जैनों का एक धार्मिक पर्व है। यह प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को मनाया जाता है। इस दिन मौन रहने का माहात्म्य है। समयसुन्दर ने प्रस्तुत स्तवन में इस दिन की महत्ता का उल्लेख करते हुए इसकी आराधना-विधि आदि दिग्दर्शित की है। यह स्तवन प्रसिद्ध है। इसकी रचना जैसलमेर में वि० सं० १६८१ में हुई थी। कवि ने स्वयं लिखा है —

जेसल सोल इक्यासी समइ, कीधूं स्तवन सहू मन गमइ ।

समयसुन्दर कहइ ध्याहड़ी, मिगसर सुदि इग्यारस बड़ी ॥

६.८.३.९ पौषध-विधि गीतम्

कविवर समयसुन्दर ने इस 'पौषध-विधि-गीतम्' की रचना सं० १६६७, मार्गशीर्ष शुक्ला १०, गुरुवार को की थी। कवि ने जैसलमेर संघ के आग्रह से प्रस्तुत कृति का प्रणयन किया था। यह रचना पाँच ढालों में गुम्फित है। इसमें कवि ने गृहस्थ उपासकों के पौषध-व्रत की विधि का वर्णन किया है। आत्मगवेषणा, धर्माराधना और गार्हस्थिक प्रवृत्तियों से निवृत्ति का प्रयास — यही उक्त व्रत की आराधना का मुख्य उद्देश्य है। इस व्रत की आराधना में कवि ने अप्रतिलिखित एवं अप्रमार्जित भूमि, शय्यादि का उपयोग न

करना, निन्दा, विकथा, प्रमादादि का सेवन न करना, हिंसक उपकरणों तथा सभी दोषपूर्ण प्रवृत्तियों का त्याग करना अनिवार्य बताया है। 'गृहस्थों को पौषध-व्रत का पालन करना चाहिये' — बात को प्रमाणित करने के लिए कवि ने उत्तराध्ययन, निशीथ आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख भी किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने इसमें इस व्रत की आराधना करने वाले प्रमुख श्रावकों के नामों का निर्देश दिया है।

६.८.३.१० सतरह प्रकार जीव अल्प-बहुत्व गर्भितस्तवनम्

जैन-दर्शन में अनेक आत्माओं की सत्ता को स्वीकार किया गया है। जैविक दृष्टि से जैन-आम्राय में इन सत्ताधारियों के दो भेद बताये गये हैं — (१) सूक्ष्म और (२) बादर। सूक्ष्म जीव समस्त दिशा-विदिशा तथा लोकत्रय में एक समान होते हैं, लेकिन बादर जीव असमान। विभिन्न पक्षों, स्थलों इत्यादि की अपेक्षा से बादर जीवों के सतरह भेद किये गये हैं। प्रस्तुत स्तवन में उन सतरह भेदों का विश्लेषण किया है। कवि ने 'प्रज्ञापना सूत्र' का उल्लेख करते हुए उसमें कथि विषय की विस्तृत चर्चा उपलब्ध होना बताया है।

रचना में तीन ढाल और अन्त में 'कलश' के माध्यम से रचना का उपसंहार किया गया है। प्रथम ढाल में ४ चतुष्पद, द्वितीय ढाल में ८ चतुष्पद और तृतीय ढाल में ९ चतुष्पद हैं। अन्तिम 'कलश' में १ चतुष्पद है।

प्रस्तुत रचना का रचना-काल अवर्णित है।

६.८.३.११ 'चत्तारि-अट्ट-दस-दोय' पद विचार गर्भित स्तवनम्

प्रस्तुत स्तवन में 'चत्तारि अट्ट दस दोय' पद का सुन्दर विश्लेषण है। उक्त पद आवश्यक सूत्र नामक ग्रन्थ के 'सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र' का अन्तिम पद है। यह पद ४+८+१०+२=२४ तीर्थङ्करों की संख्या का सूचक है, लेकिन कविवर ने अपनी विशद् बुद्धि-प्रखरता के आधार पर तेरह प्रकार से उक्त तथ्य का विस्तार किया है और पश्चात् उनकी स्तुति भी की है, जिसे कवि ने शास्त्र-सम्मत बताया है।

इस गीत का रचना-काल भी अनुपलब्ध है। गीत में १७ गाथाएँ हैं तथा अन्त में 'कलश' भी है।

६.८.३.१२ संघपति सोमजी वेलि

प्रस्तुत गीत की रचना संघपति सोमजी के स्वर्गारोहण के अवसर पर हुई थी। सोमजी ने बिम्ब-प्रतिष्ठा, पद-यात्रा-संघ आदि अनेक स्तुत्य धर्म-कार्य किये थे। कवि ने उनका उल्लेख करते हुए कहा है कि ऐसे संघसेवक मृत्युंजय होते हैं, उनके कर्तृत्व की कीर्ति अमर हो जाती है। कवि ने तो यहाँ तक कल्पना की है कि सोमजी का निधन नहीं हुआ, अपितु वे जिनचन्द्रसूरि की भक्ति करने स्वर्ग गये हैं।

गीत में १० कड़ियाँ हैं। गीत का रचना-काल एवं रचना-स्थल अर्निर्दिष्ट है।

६.८.३.१३ मनोरथ गीतम्

‘मनोरथ गीतम्’ में आठ पद्य हैं। गीत में कवि ने अपनी आन्तरिक भावना व्यक्त करते हुए कहा है कि वह दिन कब आएगा, जब मैं सिद्धाचल की यात्रा करूँगा, तीर्थङ्कर के वचन सुनूँगा, सम्यक्त्व, समत्व और श्रमणत्व प्राप्त करूँगा, अरिहन्त के गुण-गान से निर्मल होऊँगा आदि। गीत का रचना-काल अनुलिखित है।

६.८.३.१४ मनारेथ गीतम्

कविवर चारित्र के प्रति दृढ़ आस्थान् थे। प्रस्तुत गीत में कवि ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए लिखा है कि कब ऐसा अवसर आएगा, जब मैं निर्ग्रन्थ बनकर सम्यक् प्रकार से मुनिचर्या का पालन करूँगा, शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्ध गौचरी ग्रहण करूँगा, ममत्व का परित्याग कर उग्र विहार करूँगा, आत्म-निन्दा करूँगा, प्रमाद त्यागकर स्वाध्याय करूँगा, स्वादलोलुपता से दूर रहूँगा आदि।

गीत में ८ पद्य हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित लघु रचनाएँ भी मिलती हैं —

६.८.३.१५ ज्ञान पञ्चमी लघु स्तवनम्	पद्य ५
६.८.३.१६ श्री पर्युषण-पर्व गीतम्	पद्य ३
६.८.३.१७ श्री रोहिणी-तप-स्तवनम्	पद्य ५
६.८.३.१८ गुरु दुःखित वचनम्	पद्य ५
६.८.३.१९ मनोरथ गीतम्	पद्य ३

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसुन्दर का साहित्य बहुआयामी एवं बहुव्यापी है। शायद ही ऐसा कोई विषय हो, जिसे समयसुन्दर की साहित्यिक लेखनी ने नहीं छुआ हो। इनके विशाल साहित्य को देखते हुए लगता है कि जैनधर्म के ये दूसरे हेमचन्द्राचार्य हुए, क्योंकि हेमचन्द्राचार्य के पश्चात् प्रत्येक विषय पर मौलिक एवं टीका ग्रन्थों के रूप में इतने विपुल साहित्य का निर्माण करने वाला शायद ही कोई हुआ हो।

समयसुन्दर का कृतित्व एक सागर की भाँति है, जिसका पार पाना कठिन-सा है। उनका साहित्य भारत के विविध जैन-ज्ञान-भण्डारों में उपलब्ध है। वास्तविकता हो यह है कि हमने जिस किसी भी ज्ञानभण्डार में समयसुन्दर के साहित्य के बारे में खोज की अथवा करवाई, वहीं हमें समयसुन्दर की रचनाओं के दर्शन हुए। हमें अनुसन्धान करते हुए जिस ढंग से कवि की रचनाएँ मिल रही हैं, उससे यह अनुमान लगता है कि उन्होंने हजारों रचनाएँ गुम्फित की होंगी। उनमें से कुछ काल-कवलित हो गयीं, कुछ उपलब्ध हैं और कुछ अभी भी ज्ञानभण्डारों में बन्द हैं। समयसुन्दर के प्रकीर्णक गीत-साहित्य के संबंध में परवर्ती कवियों का यह कथन प्रसिद्ध है —

समयसुन्दर ना गीतड़ा, कुम्भे राणा ना भीतड़ा।

* * *

समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुम्भे राणा रा चीतड़ा।

अर्थात् समयसुन्दर के गीतों की कोई थाह नहीं है, उनका पार पाना उतना ही दुष्कर है, जितना महाराणा कुम्भा द्वारा निर्मित स्तम्भों या चित्रों का पार पाना।

प्रस्तुत अध्याय में हमने समयसुन्दर की जिन रचनाओं का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, उनकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। कतिपय विद्वानों ने समयसुन्दर की कई अन्य रचनाओं का उल्लेख किया है, परन्तु नाहटा बन्धुओं को उनकी प्रामाणिकता पर संदेह है। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने उनकी निम्नलिखित अतिरिक्त रचनाओं का उल्लेख किया है —

१. पुण्याद्य रास, २. संवादसुन्दर, ३. गुणरत्नाकर-छन्द, ४. गाथालक्षण, ५. रेवती सज्जाय, ६. बीकानेर आदिनाथ वीनति आदि।

लालचन्द भ० गान्धी समयसुन्दर की रचनाओं में निम्नांकित आठ रचनाएँ भी सम्मिलित करते हैं —

१. शील छत्तीसी, २. बारह व्रत रास, ३. श्रीपाल रास, ४. प्रश्नोत्तर चौपाई, ५. हंसराज बच्छराज रास, ६. जम्बूरास, ७. नेमि-राजीमती रास, ८. अन्तरिक्ष गौड़ी छन्द।

हीरालाल रसिकदास के अनुसार समयसुन्दर ने 'जीवविचार वृत्ति' की रचना भी की थी। श्री पूरणचन्द नाहर ने उनकी 'जिनदत्तर्षि कथा' नामक एक अन्य कृति का उल्लेख किया है।^१

उक्त चारों विद्वानों का निधन हो जाने से हम उनके द्वारा उल्लिखित ग्रन्थों के बारे में कोई उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त नहीं कर सके। यद्यपि हमने इन विद्वानों के कौटुम्बिकजनों से भी सम्पर्क स्थापित किया, लेकिन वे इन ग्रन्थों के बारे में कोई जानकारी नहीं दे सके।

खैर! फिर कभी देव-संयोग से समयसुन्दर के अवशिष्ट ग्रन्थ मिले, तो हम उन पर शोध करने की जिज्ञासा रखते हैं और प्रस्तुत प्रबन्ध में रही अपूर्णता को पूर्ण करने का प्रयास करेंगे।

१. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ५७

तृतीय अध्याय

समयसुन्दर की भाषा

समयसुन्दर की भाषा का अनुशीलनात्मक अध्ययन

१. भाषा-परिचय
२. भाषा-शैली
३. भाषा -शक्ति

— इन तीन मुख्य शीर्षकों में रखकर किया जा रहा है।

१. भाषा-परिचय

भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार की संरचनाओं की एक व्यवस्था है। वाक्य उसकी सबसे बड़ी इकाई है। रूप (पद) वाक्य से छोटी इकाई है और ध्वनि उससे भी छोटी। वाक्यों की विशिष्ट प्रकार से की गई संरचना एवं व्यवस्था ही साहित्य का रूप ग्रहण करती है। समयसुन्दर भाषाविद् थे। उन्होंने 'रूपकमाला' नामक भाषा-शास्त्र पर अवचूरि भी लिखी थी।

महोपाध्याय समयसुन्दर का साहित्य अत्यन्त व्यापक है, साथ ही अनेक भाषाओं में निबद्ध है। उन्होंने निम्नलिखित भाषाओं में साहित्य लिखा है —

- १.१ संस्कृत-भाषा
- १.२ प्राकृत-भाषा
- १.३ मरु-गूर्जर भाषा (प्राचीन हिन्दी)
- १.४ सिन्धी-भाषा

समयसुन्दर की उक्त चारों भाषाओं का समीक्षात्मक परिचय आगामी पृष्ठों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.१ संस्कृत भाषा

संस्कृत विश्व की एक प्राचीन एवं श्रेष्ठ भाषा मानी जाती है। यह भाषा किसी समय जीवन्त और लोक-व्यवहार की भाषा रही है और अनेक वर्षों तक यह भारतीय समाज एवं शासन की भाषा बनी रही। यद्यपि यह भाषा मूलतः उदीच्य बोलियों पर आधारित थी, परन्तु पूर्व, दक्षिण तथा मध्य भारत के सभी अंचलों पर भी इसका अत्यधिक प्रभाव रहा। इसीलिए इस भाषा का संगठन एक अखिल भारतीय भाषा के रूप में हुआ और सभी प्रदेशों के विद्वानों एवं लेखकों द्वारा यह पोषित तथा पल्लवित होती रही। भारत की सांस्कृतिक चेतना एवं सभ्य जनों के विचार-विमर्श का माध्यम यही भाषा बनी। जैन आचार्यों एवं मुनियों ने यद्यपि जनभाषा (प्राकृत) का उपयोग किया, किन्तु वे भी संस्कृत

की अपेक्षा न कर सके और अपने धर्मप्रचार के लिए कालान्तर में उन्हें भी इसे स्वीकार करना पड़ा। परवर्तीकाल में तो जैन आचार्यों ने प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत में प्रचुर साहित्य का सर्जन किया। इनके द्वारा लिखित साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

हमारे आलोच्य जैन मुनि समयसुन्दर संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने अनेक उत्कृष्ट संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन एवं अध्यापन किया और स्वयं ने भी संस्कृत में लगभग ५० बृहत् ग्रन्थों का प्रणयन किया। यद्यपि जन्मजात वे मरुगुर्जर भाषी थे, किन्तु संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। संस्कृत में अष्टाक्षरों के दशलक्षाधिक (प्रास अष्टलक्षाधिक) अर्थ प्रस्तुत करना संस्कृत के बहुत बड़े भाषाविद् के ही हाथ की बात हो सकती है।

संस्कृत-शब्दावली और व्याकरण पर भी उनका अधिकार था। व्याकरण संबंधी नियमों के आधार पर एक शब्द के अनेक अर्थ उद्घाटित करने में वे सिद्धहस्त थे। उनकी संस्कृत भाषा में सरसता, प्रवाह तथा माधुर्य निहित है। उनकी गद्य-संस्कृत स्वाभाविक, सरल तथा सामान्य पाठक के लिए भी नितान्त रोचक और ग्राह्य है। पद्य-संस्कृत परिमार्जित एवं परिष्कृत है। छन्दोबद्ध होने के कारण उसमें कहीं-कहीं ऐसे शब्द भी समाविष्ट हुए हैं, जो प्रचलित-से प्रतीत होते हैं। उनकी संस्कृत परम्परागत संस्कृत जैसी ही है। शब्दावली भी परम्परागत है।

समयसुन्दर की संस्कृत-कृतियाँ बड़ी भावपूर्ण और प्रसादगुण से युक्त हैं तथा अलंकारों, सूक्तियों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों आदि के प्रयोग से वे ज्यादा प्रभावपूर्ण और हृदयहारी बनी हैं। विद्वत्समाज में भाषण, विवादास्पद विषयों के समाधान और विशिष्ट ग्रन्थों के निर्माण के लिए वे संस्कृत भाषा का ही आश्रय लेते थे। उन्होंने संस्कृत में विशाल साहित्य गुम्फित कर उसे जीवित बनाये रखने में अपना अविस्मरणीय सहयोग प्रदान किया।

१.२ प्राकृत भाषा

यद्यपि प्राचीन भारतीय भाषाओं में संस्कृत का स्थान शीर्षस्थ है, लेकिन जिस भाषा से यह संस्कारित हुई, उस मूल भाषा का नाम प्राकृत है। स्वयं संस्कृत शब्द भी अपने संस्कारित स्वरूप का परिचायक है। संस्कृत विद्वद्गर्ग या शिष्ट समाज की भाषा थी और प्राकृत जन-साधारण की भाषा। जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों एवं आचार्यों ने जनसाधारण में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए प्राकृत को ही अपनाया। कालान्तर में मूल प्राकृतों से, जो जन बोलियाँ थीं, साहित्यिक प्राकृत का विकास हुआ। यह साहित्यिक प्राकृत भी संस्कृत के समान सुगठित भाषा थी।

समयसुन्दर प्राकृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। जो भाषा बोलचाल की भाषा न हो, उसमें रचना लिखना दुष्कर होता है, लेकिन उन्होंने इस भाषा में अनेक रचनाओं का

प्रणयन किया। उन्होंने एक ऐसी रचना भी लिखी, जो यमकबद्ध है। प्रत्येक पद्य में यमक का चमत्कार उस भाषा का ज्ञाता ही दिखा सकता है।

समयसुन्दर ने प्राकृत में रचित अनेक ग्रन्थों की विशद् व्याख्या की है। यद्यपि उन्होंने प्राकृत में किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया, फिर भी प्राकृत में उनके कुछेक स्फुट गीत अवश्य प्राप्त होते हैं। इन गीतों की प्राकृत संस्कृत भाषा से प्रभावित लगती है। यद्यपि शब्दावली एवं रूपावली प्राकृत की ही है। उनकी प्राकृत रचनाओं में अपभ्रंश एवं देश्य (देशज) शब्दों का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता है। संस्कृत प्रभावित प्राकृत होने के कारण वह साहित्यिक प्राकृत है। उसमें आकर्षण क्षमता है, किन्तु वह स्वाभाविकता नहीं है, जो उनकी अन्य भाषाओं में रचित रचनाओं में प्राप्त होती है। जो रचनाएँ प्राकृत एवं संस्कृत प्राकृत एवं हिन्दी — दोनों भाषा में रची गई हैं, वे काफी रोचक प्रतीत होती हैं।

समयसुन्दर की प्राकृत सामान्य प्राकृत है, जिसे हम महाराष्ट्री कह सकते हैं। स्पष्टता के लिए नीचे एक-दो उदाहरण दिये जा रहे हैं —

शुद्ध प्राकृत भाषा —

कलिकसायकलंकमलावहं, निरुवमाणकलाकमलावहं।

अहिणुवामि तुमं समयालयं जयइदीव सम समयालयं॥^१

संस्कृत-प्रभावित प्राकृत —

नमिरसुरासुरखयर-रायकिन्नर-विज्जाहर !

महु यराइविराय-माणपयपंकय-सुन्दर !

महि अल-महि मामे यमणवंछिअ-दायक ।

जय जय थम्भण पासनाह ! भुवणत्तयनायग ॥

परुवयारपायव-पवर-सिंचणसमुइरसमाण ।

पुरिसादाणिअ पास जिण गुणगणरयण निहाण ॥

वामादेवी उअर सुत्तिमंजुल-मुत्ताहल ।

सयलकलावलिकलियकाय कलिमलिवसुहाहल ।

मोह-महाबल-नीरपंक-निप्फेडण-दिणयर ।

अरिकरि-निअरिनिरागरणपंचाणण ! जयदेव ।

थंभ (ण) पुरमण्डणमउड सुरनरवंछिअसेव ॥^२

सम प्राकृत-संस्कृत —

लसण्णाण-विन्नाण-सन्नाण मेहं,

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, यमकबद्धप्राकृतभाषायां पार्श्वनाथ लघुस्तवनम् (८)
२. वही, — श्री स्तम्भनपार्श्वनाथस्तोत्रम् (१, ३)

कलाभिः कलाभिर्युतात्मीय देहम् ।

मणुष्णं कलाकेलि-रूवाणुगारं,

स्तुवे पार्श्वनाथं गुणश्रेणिसारम् ॥^१

१.३ मरु-गूर्जर भाषा (प्राचीन हिन्दी)

हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएँ प्राकृत अपभ्रंश से विकसित हुईं। महोपाध्याय समयसुन्दर की भाषा भी प्राकृत-अपभ्रंश से ही विकसित है। इस भाषा से हमारा अभिप्राय उस भाषा से है, जो समयसुन्दर के समय जनसाधारण में व्यवहृत होती थी। समयसुन्दर की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी यह भाषा शौरसेनी प्राकृत-अपभ्रंश से विकसित है। शौरसेनी प्राकृत-अपभ्रंश से हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं का जन्म हुआ है। समयसुन्दर की भाषा इनमें से कौन-सी थी, इसके लिए विद्वानों में मतभेद हैं। राजस्थान के विद्वान् समयसुन्दर की भाषा को राजस्थानी भाषा मानते हैं और गुजरात के विद्वान् उनकी भाषा को गुजराती बताते हैं। अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा,^२ डॉ० सत्यनारायण स्वामी^३ के मतानुसार समयसुन्दर का भाषा-साहित्य राजस्थानी में निबद्ध है, जबकि मोहनलाल दलीचन्द देसाई^४, डॉ० रमणलाल चि० शाह^५ आदि ने उनके भाषा-साहित्य को गुजराती में गुम्फित बताया है। यद्यपि दोनों पक्षीय विद्वान् अपने-अपने भाषा-क्षेत्र के मूर्धन्य विद्वान् हैं, लेकिन किसी ने भी उनकी भाषा को राजस्थानी अथवा गुजराती बताने का कारण नहीं बताया है। वास्तविकता तो यह है कि जिस मूल भाषा से राजस्थानी और गुजराती दोनों का विकास हुआ, उसमें ऐसी कोई विभाजक रेखा अङ्कित कर पाना संभव नहीं है। अस्तु!

समयसुन्दर का जन्म-स्थान सांचौर है। यह स्थान राजस्थान और गुजरात की सीमा पर स्थित है। सीमावर्ती क्षेत्र होने से वहाँ की भाषा न तो विशुद्ध राजस्थानी है और न ही विशुद्ध गुजराती। यद्यपि सांचौर-क्षेत्र राजस्थान प्रान्तान्तर्गत है, किन्तु वहाँ की भाषा गुजराती से पूर्णतः प्रभावित है। वर्तमान में भी सांचौर एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में जो भाषा व्यवहृत होती है, वह राजस्थानी और गुजराती का मिश्रित रूप है। यों भी दोनों भाषाएँ एक-दूसरे से प्रभावित हैं और उनमें साम्यता के विविध आयाम देखे जा सकते हैं। समयसुन्दर के भाषा-साहित्य में भी दोनों भाषाओं का सम्मिश्रित रूप उपलब्ध है। ऐसे

१. वही, पार्श्वनाथलघुस्तवनम् (१)

२. द्रष्टव्य — सीताराम चौपाई, भूमिका, पृष्ठ १३-३१

३. द्रष्टव्य — महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ, पृष्ठ ७०

४. द्रष्टव्य — आनन्द काव्य महोदधि मौक्तिक ७ मु. कविवर समयसुन्दर, पृष्ठ ३४

५. द्रष्टव्य — मृगावती-चरित्र-चौपाई, भूमिका, पृष्ठ ८

भी अनेक पद्य हैं, जो विशुद्ध गुजराती भाषा में लगते हैं और ऐसे भी अनेक पद्य हैं, जो विशुद्ध राजस्थानी के लगते हैं। समयसुन्दर की गद्य-हिन्दी पूर्णतः बोलचाल की लगती है। गद्य में उन्होंने कुल दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिन्हें ग्रन्थकार ने बालावबोध की संज्ञा दी है। उन ग्रन्थों का वर्ण्य-विषय श्रावक के नित्य कर्म से संबंधित है। अतः अपने श्रावकों को सरलता से समझाने के लिए उन्होंने वही भाषा अपनाई है, जिसे अनेक पाठक नित्य व्यवहार में लाते थे। इन ग्रन्थों की भाषा गुजराती की अपेक्षा राजस्थानी अधिक लगती है, किन्तु गुजराती से अप्रभावित नहीं है। यदि यह कहें कि समयसुन्दर की भाषा राजस्थानी और गुजराती का मिश्रित रूप है अथवा उनकी राजस्थानी या गुजराती एक दूसरे से पूर्णतः प्रभावित है या उनकी भाषा गुजराती और राजस्थानी से काफी साम्यता रखती है, तो अधिक उचित होगा।

समयसुन्दर की पद्य-भाषा में संस्कृत-शब्दावली का बाहुल्य होने से वह आधुनिक हिन्दी से बहुत ही साम्यता रखती है। उनकी भाषा शौरसेनी प्राकृत अपभ्रंश से विकसित है, लेकिन उस पर महाराष्ट्री प्राकृत अपभ्रंश का भी अधिक प्रभाव दिखाई देता है। वास्तव में समयसुन्दर एक घुमक्कड़ संत थे। उन्होंने राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, सिन्ध आदि विविध प्रान्तों में पद-यात्राएँ की थीं। अतः इन सब प्रान्तों की भाषा का उनकी मौलिक भाषा पर प्रभाव पड़ा। दूसरे में वे एक विद्वान् व्यक्ति थे और उन्हें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी आदि भाषाओं का ज्ञान था। संभवतः वे उर्दू भाषा भी जानते थे। कारण, उन्होंने ऐसे अनेक संकेत दिये हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि उनका मुसलमान शासकों से घनिष्ठ संबंध था। इस तरह समयसुन्दर की हिन्दी भाषा में विभिन्न व्याकरण-संबंधी प्रवृत्तियों के बीज मिलते हैं। विदेशी भाषा की शब्दावली भी प्रयुक्त हुई है। देश्य-शब्दों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

इल्ला, बिल्ला^१, जोरू^२, हजूरी^३

अरबी —

काजी, मुल्ला^४, फकीर^५, खलक्क^६, हुकम्म^७, फोज^८

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री परमेश्वर-भेद गीतम् (७)
२. वही, ऋषि महत्त्वगीतम् (१)
३. वही, परमेश्वर-भेद गीतम् (१५)
४. वही, पद्मावती-आराधना (१३)
५. वही, ऋषि महत्त्व गीतम् (१)
६. वही, ऋषि महत्त्व गीतम् (२)
७. वही, ऋषि महत्त्व गीतम् (१)
८. सीताराम-चौपाई (६.४.१०)

फारसी —

तखत्त^१, पातसाह^२, मर्द^३, दुकाण^४, खूब^५

विविध भाषाओं के शब्द-प्रयोग से समयसुन्दर की शब्दावली समृद्ध हुई है। साहित्य और जन-जन से उनका निकटतम संबंध होने के कारण तत्सम, तद्भव और देशज — तीनों प्रकार का शब्द-समूह उनकी भाषा में प्रयुक्त है। यथा —

तत्सम —

आदित्य^६, डमरू^७, वृषभ^८, सुरतरु^९, राक्षस^{१०}, पुरुष^{११}, वन^{१२}, श्रावक^{१३}, भोगी^{१४}, शिष्य^{१५}, औषध^{१६}, वैद्य^{१७}, विमान^{१८}, साधु^{१९}, यौवन^{२०}, पुण्य^{२१}, माला^{२२}, महिषी^{२३}, कस्तूरी^{२४}, नारी^{२५}, समता^{२६}, विशेषता^{२७}, क्षमा^{२८} आदि।

१-२-३-४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ऋषि महत्त्व गीतम् (१)

५. वही, ऋषि महत्त्व गीतम् (२)

६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री आदित्ययशादि आठ साधु गीतम् (२)

७. वही, इलापुत्र गीतम् (१०)

८. वही, करकंडु प्रत्येकबुद्ध गीतम् (४)

९. वही, श्रीजिनसिंहसूरिगीतानि (२८.३)

१०. वही, नर्मदासुन्दरी गीतम् (२)

११. वही, दवदंती सती भास (८)

१२. वही, दमयन्ती सती गीतम् (१)

१३. वही श्रावकदिनकृत्यकुलकम् (१)

१४. वही, परमेश्वरभेद गीतम् (८)

१५. वही, गुरुदुःखितवचन (१)

१६-१७. वही, उदयनराजर्षि गीतम् (१७)

१८. वही, मेघरथराजागीतम् (२०)

१९. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१)

२०. वही, जम्बू स्वामी गीत (२)

२१. वही, पुण्य छत्तीसी (१)

२२. वही, जिनचन्द्रसूरि आलिजा गीतम्

२३. वही, दशार्णभद्रगीतम् (६)

तद्भव —

तक्षशिला > तखिसिला^६, श्वसुरालय > सासरे^७, स्वर्णकार > सोनार^८, द्विमुख > दूमह^९, स्वामी > साई^{१०}, मकखन > माखण^{११} अन्तःपुर > अंतेउर^{१२}, नगरी > नयरी^{१३}, यूका > जू^{१४} लिक्षा > लीख^{१५}, अग्नि > आगि^{१६}, जिह्वा > जीभ^{१७} आश्चर्य > अचरिज^{१८}, हस्त > हाथ^{१९}, आदि....आदि।

देशज —

चेला^{२०}, हाली^{२१}, उंदरि^{२२} आदि।

समयसुन्दर की हिन्दी भाषा में तद्भव शब्दों का बाहुत्य है। उनकी हिन्दी में मान्य सभी ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। लेखन पद्धति में कुछ अन्तर भी दिखाई पड़ता है। ङ्, ज्, ण्, न्, म् के स्थान पर अनुस्वार(ं); श्, ष् के लिए स्; ष् के लिए ख् भी; ऋ, ॠ के लिए रि; ज्ञ के लिए न्य का सामान्यतया प्रयोग हुआ है। क्वचित् स्थानों पर

१. वही, उपधान गीतम् (२)
२. वही, उदयनराजर्षि गीतम् (४)
३. वही, श्रावकबारहव्रत कुलकम् (१०)
४. वही, शुद्ध श्रावकदुष्करमिलन गीतम् (९)
५. वही, क्षमा छत्तीसी (१)
६. वही, बाहुबलि गीतम् (१)
७. वही, वैराग्य सञ्ज्ञाय (५)
८. वही, पारकीहोड़निवारण गीतम् (२)
९. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दुमुह प्रत्येकबुद्ध गीतम् (२)
१०. वही, परमेश्वरभेद (६)
११. वही, पद्मावती-आराधना (२१)
१२. वही, जम्बूस्वामी गीतम् (९)
१३. वही, चुलणी भास (१)
- १४-१५. वही, पद्मावती-आराधना (२५)
१६. सीताराम चौपाई (९.२.१)
१७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सुभद्रासती गीतम् (१)
१८. वही, कलावती सती गीतम् (६)
१९. वही, कलावती सती गीतम् (३)
२०. वही, गुरु दुःखित वचन (१)
२१. वही, पद्मावती-आराधना (१७)
२२. वही, पद्मावती-आराधना (२४)

अपवाद रूप में उक्त मूल ध्वनि-रूप भी विद्यमान है। 'ओ' लिए 'अउ' और 'ए' के लिए 'अइ' रूप उपलब्ध होते हैं।

समयसुन्दर की हिन्दी में कुछ ध्वनि-परिवर्तन और विलक्षण प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नीचे दिये जा रहे हैं —

स्वर-परिवर्तन —

समयसुन्दर के साहित्य में स्वर-परिवर्तन संबंधी विविध दिशाएँ हैं।

जैसे —

(क) स्वरागम

प्रमाद > परमाद^१, मार्ग > मारग^२, स्त्री > अस्त्री^३

क्रिया > किरिया^४, सृजनहार > सरजनहारा^५, मृषावाद > मिरषावाद^६

(ख) स्वरलोप

सेवा > सेव^७, हाथ > हथि^८, दुःख > दुख^९, माला > माल^{१०}

(ग) स्वर-संबंधी कुछ प्रमुख परिवर्तन द्रष्टव्य हैं —

ऋ > रि ऋद्धि > रिद्धि^{११}, ऐ > जय > वयरागी^{१२}

(घ) मात्रा-भेद : मात्रा की अनिवार्यता के कारण समयसुन्दर ने कहीं दीर्घ को ह्रस्व तथा

कहीं ह्रस्व को दीर्घ कर दिया है —

१. दीर्घ को ह्रस्व - माता > मात^{१३}

२. ह्रस्व को दीर्घ - उदार > उदारा^{१४}

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, क्रिया-प्रेरणा गीतम् (५)
२. वही, क्रिया-प्रेरणा-गीतम् (८)
३. वही, कर्म गीतम् (१)
४. वही, प्रमाद-त्याग गीतम् (३)
५. वही, करतार गीतम् (५)
६. वही, नरकगति-प्राप्ति गीतम् (१)
७. वही, अनागत चौबीसी स्तवन् (५)
८. वही, नेमिनाथ फाग (७)
९. वही, ऐरवतक्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि
१०. वही, मृगावती-चरित्र चौपाई (१.२.७)
११. वही, श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (४)
१२. वही, श्री नेमिनाथ-राजिमती स्तवनम् (१)
१३. वही, चौबीसी, सुपार्श्वजिन स्तवनम् (२)
१४. वही, मृगावती-चरित्र-चौपाई

व्यंजन परिवर्तन

तद्भव शब्दों में वर्तमान समय में प्रयुक्त शब्दों की तुलना में जो व्यञ्जनों में परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं, उनमें कुछ प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार हैं —

उ > व चउदह > चवद ^१ ,	क > य सकल > सयल ^२
घ > ह/य > न जघन्य > जहन्न, ^३	छ > ह अंगलूछन > अंगलूहण, ^४
ज्ञ > न्य ज्ञान > न्यान, ^५	द > य निदान > नियाणउ, ^६
न > ण भुवनेश्वर > भुवणेसर, ^७	प > व कोट्टपाल कोट्टवाल, ^८
प > ब पपीहा > बब्बीहा, ^९	ब > व तलाब > तलाव, ^{१०}
बात > वात, ^{११}	य > ज तिर्यच > तिरजंच, ^{१२}
ब्रह्मचर्य > ब्रह्मचरिज, ^{१३}	श > स शाश्वत > सासताए ^{१४}

निम्न व्यञ्जन-परिवर्तन भी दर्शनीय हैं —

प्रणाम > परणाम, ^{१५}	पार्श्व > पास, ^{१६}	उत्कृष्ट > उक्किट्ट, ^{१७}
नष्ट > नट्ट, ^{१८}	प्रत्यक्ष > परतिख, ^{१९}	हृदय > हीयइ, ^{२०}

१. वही, घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (३.४)
२. वही, चत्तारि-अट्ट-दस दोयपदविचार गर्भित स्तवनम् (६)
३. वही, चत्तारिअट्टदसदोय पदविचार गर्भित स्तवनम् (११)
४. वही, श्री ज्ञान पंचमी वृहत् स्तवनम् (१८)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ज्ञान पंचमी वृहत् स्तवनम् (३)
६. वही, सत्रह प्रकार जीव अल्पबहुत्वगर्भित स्तवनम् (३, १८)
७. वही, चत्तारिअट्टदसदोयपदविचार गर्भित स्तवनम् (७)
८. वही, पद्मावती आराधना (१४)
९. वही, श्री चौबीस जिन सवैया (२२)
१०. वही, श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (२)
११. वही, श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (१)
१२. वही, गति-आगति २४ दण्डक विचार स्तवनम् (५)
१३. वही, श्री ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम् (४)
१४. वही, चत्तारि अट्टदसदोयपद विचारगर्भित स्तवनम् (१४)
१५. वही, चत्तारिअट्टदसदोयपदविचार गर्भित स्तवनम् (१)
१६. वही, श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (४.१)
१७. वही, चत्तारि अट्टदसदोयपदविचार गर्भित स्तवनम्
१८. वही, चत्तारि अट्टदसदोयपदविचारगर्भित स्तवनम् (११)
१९. वही, सत्रह प्रकार जीव अल्पबहुत्व गर्भित स्तवनम् (कलश, २२)
२०. वही, श्रावकदिनकृत्यकुलकम् (१४)

कुम्हकार > कुंभार,^१शंख > सांख,^४यत्न > जतन्य,^२स्वधर्मी > साहमी,^३स्तुति > थुइ^५

व्यंजन-लोप —

नृत्य > नृत्त^६

पितृ/पितु > पिउ

'स्' के लोप की प्रवृत्ति अधिकांशिक देखी जाती है। जैसे —

स्थानक > थानक,^७स्तवन > तवन,^८स्थापना > थापना,^९स्नेह > नेह,^{१०}स्थूल > थूल^{११}

विचाराधीन भाषा में परिवर्तनशीलता स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है। एक ही अर्थ में अनेक शब्दों के दो या दो से अधिक रूप मिलते हैं। इसमें न केवल ध्वनि परिवर्तन हैं, अपितु शब्द या पद में भी परिवर्तन के संकेत दिखाई पड़ते हैं। समयसुन्दर की हिन्दी भाषा में हुए परिवर्तनों की यहाँ बहुत विस्तृत चर्चा करती अशक्य है। अतः विस्तारभय से यहाँ उदाहरणार्थ उनके संख्यावाचक शब्दों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हें उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग किये हैं। प्रायः सभी संख्यावाचक शब्दों के एकाधिक रूप प्राप्त होते हैं। इन रूपों में तत्सम, तद्भव एवं देशज — सभी प्रकार के रूप पाये जाते हैं —

एक, पढम, पडिमा, प्रथम, पहिलउ,
पहिलुं, पहिल, इकि, इक, एकइ, पहिलइ,
पिहुलउ, एकल, पहली, पहिला आदि।
बे, बेउ, बीजा, बीजी, बजउ, दुयं, बीजो,
बीजी, दो, बि, बीजइ, बिहुँ, दुग, दोय,
दोऊँ, द्वितीय, दोइ।

तृतीय, त्रिण्ह, त्रि, त्रय, त्रीजइ, त्रिण, त्रिहु,
त्रीजउ, त्रै, त्रिहुं, त्रीजी, त्रिक, त्रीजो, त्रीजुं,
त्रण, तिणि, तीजै, तीजइ, तीजी, तीजउ।
चउ, च्यार, च्यारि, च्यारे, चउथा, चतुर,
चतुर, चत्त, चत्तारि, चारि, चउथउ,
चउथइ, चतुर्थ, चार, चिहुँ, चौथी, चउथुं,
चौ, चारे।

१. वही, पद्मावती आराधना (१६)
२. वही, नेमिनाथ गीतम् (१)
३. वही, ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम् (१९)
४. वही, ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम् (८)
५. वही, ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम् (१४)
६. वही, नेमिनाथ फाग (४)
७. श्री घंघाणी तीर्थ स्तवनम् (१)
८. ज्ञानपंचमीवृहत्स्तवनम् (१४)
९. वही (१६)
१०. नेमिनाथ गीतम् (४)
११. पुण्य छत्तीसी (१९)

समयसुन्दर की भाषा

पंच, पाँचे, पाँचमा, पाचमउ, पाँचमइ,
पंचम, पाँचमा, पांचवाँ, पाँच, पंचमी,
पाचमि, पाँचा, पाँचमी ।

षट्, छ, छट्टउ, षट, छट्टम, छट्ट, छठि,
छट्टा, छह, छइ, छव, छट्टी, छठी ।

सप्त, सात, सातमउ, सत्त, साते, सातमो,
सातमी, सत ।

आठ, अष्टमी, आठे, आठमउ, अष्ट, अठ,
आठमा, आठमी ।

नवमउ, नव, नवमी, नवां ।

दश, दस, दसमी, दसमां, दशो, दसमउ,
दशवां ।

इग्यारमउ, इग्यारह, इग्यारमी, इग्यार,
ग्यारह, ग्यार, ग्यारमइ ।

बारो, बारसइ, बार, बारह, बारमां, बारमउ ।
तेर, तेरमो, तेरह ।

चउदह, चउदस, चवदमउ, चउद, चवदे,
चौदह ।

पनरह, पनरमउ, पनर, पन्नर ।

सोलइ, सोल, सोलमउ, सोलमां, सोलह,
सोलै, सोलस, सोलमा ।

सतर, सत्तरि ।

अठारइ, सद्धार, अठारह, अठार ।

उगणीस, उग्णीस ।

बीस, वीस, वीसमउ, वीसे, वीसा ।

इकईस, एकवीस, इकवीस, एकवीसमा ।

बावीस, बावीसमउ ।

तेवीस, त्रेवीस, त्रेवीसा ।

चउवीस, चौवीस, चउवीसी ।

पच्चीस ।

छब्बीस ।

अट्टावीस, अठावीस, अट्टावीसइ ।

गुणतीस, उणतीस ।

त्रीस, तीस ।

बत्तीस, बत्रीस ।

तेत्रीस, तेत्रीसइ, तेतीस ।

चउत्रीस ।

पांत्रीसइ, पांत्रीस, पैत्रीस ।

छतीस, छत्रीस, छतीसी ।

चालीस, च्यालीसा, च्यालीस ।

एकतालीस, इकतालीस ।

बइतालीस, बैतालीस ।

चिमालमइ चिमालीस ।

पैतालीस ।

सइतालीस, अढतालीस ।

पंचास, पचास ।

बावन ।

त्रेपन, त्रिपन ।

सत्तावन, सत्तावन सतावन ।

अठावनइ, अड़वन ।

साठ, सट्टि, साठि ।

बासठ ।

चउसठि, चउसट्टि ।

पांसठि ।

छासठि, छासठ ।

अड़सठ, अठसटा ।

सत्तरि, सित्तर, सितरा, सत्तर ।

इकांतरइ, एकोतरइ ।

बहुतरि, बिहुतरइ, बहुत्तरि ।

तिरोतरइ, तिहूत्तरइ ।

सत्योतरइ, सत्योत्तरइ ।

अट्टोत्तर, अट्टांतर ।

असी, आसी, अइसी, असिया ।

ब्यासीयइ, ब्यासी ।

त्रयांसी, तियासी ।

चउरासी, चउरासीय, चौरासी ।

सित्यासियइ, सित्यासीयौ, सत्यासीया,

सत्यासीयइ, सत्यासीयउ ।

अट्यासीया ।

नइयासी, नव्यासी, नव्यासी, नियासी,

निवासी ।

एकाणुं, इकाणु ।

त्राणुं, तिराणुं ।

चउराणुयइ, चउराणुं

पंचाणुत्तरे ।

छन्नु, छन्नुं ।

सताणुया, सताणु ।

अट्टाणुअइ, अट्टाणुए ।

निवाणुं, नवाणुं ।

सयां, सइ, सइं, सउ, सै, सय, से, सो,
शत ।

सहस्त्री, सहस, हजार, सहस्र, सहस्र ।

लाख, लख, लक्ष ।

कोड़ि, कोडी ।

अक्षोहिणी ।

सागर ।

पूरव, पूरब ।

असंख्य, असंख्यात् ।

अनंत, अनन्ता ।

पा ।

आधा, अध ।

पौण, पौन, पउण ।

अढ़ाई, अढ़ीय ।

सवा ।

साढ़ी (बारह), साढ़ा, सढ़ ।

१.४ सिन्धी भाषा

सिन्धी भाषा की उत्पत्ति पैशाची प्राकृत के ब्राह्मण अपभ्रंश से मानी जाती है। सिन्धी भाषा सिन्ध देश में बोली जाती है। कविवर्य समयसुन्दर ने सिन्ध देश में दो-ढाई वर्ष तक विचरण किया था। इस दीर्घकाल में उन्हें सिन्धी का भी ज्ञान हो गया था। यद्यपि सिन्धी उनकी मातृभाषा नहीं थी, तथापि उनकी सिन्धी अशुद्ध नहीं थी। उन्होंने सिन्धी में रचनाएँ भी लिखीं। 'श्री आदिजिन स्तवनम्' और 'श्री नेमिजिनस्तवनम्' - ये दो रचनाएँ सिन्धी में रचित प्राप्त होती हैं। मृगावती-चरित्र चौपाई के तृतीय खण्ड की नवमी ढाल भी सिन्धी भाषा में प्रणीत है।

समयसुन्दर की सिन्धी में प्राचीन हिन्दी का आंशिक प्रभाव अवश्यमेव है। उनकी सिन्धी, मुलतानी सिन्धी है, जो सिन्धी और पंजाबी का मिश्रित रूप है। 'मईकुं भावदा हे भइणा'^१ आदि पंक्तियाँ मुलतान में प्रचलित सिन्धी भाषा को ही प्रदर्शित करती हैं। ऐसे अनेक शब्द हैं, जो ठेठ सिन्धी भाषा के ही हैं। घोटू^२ (पति), नेहु^३ (स्नेह) आउ/

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिजिनस्तवनम् (१)

२. वही, श्री नेमिजिन स्तवनम् (६)

३. वही, श्री नेमिजिन स्तवनम् (८)

आव^१ (आओ), मिट्टा^२ (मीठा), वंजा^३ (जाऊँ), असा^४ (हम) इत्यादि शब्द आज भी सिन्धी में प्रचलित हैं। भावंदा^५ (भाता है), लावा^६ (लाऊँ), मइकुं^७ (मेरे को), कीता^८ (किया), चंगी^९ (अच्छा) आदि पंजाबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

समयसुन्दर की सिन्धी सुस्पष्ट एवं पठन में रमणीय है।

२. भाषा शैली

भाषा रूपी उपकरण के प्रयोग की विधि का नाम शैली है। भाषा और शैली, दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भाव या विचार भाषा से अनुस्यूत होकर शैली के रूप में स्थिर होते हैं। पहले भाव एवं विचार उदित होते हैं, तब उनके अनुकूल भाषा बनती है और उसके पश्चात् भाषा की काया में शैली की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। शैली विचारों को प्रकट करने का एक विशिष्ट ढंग है। साहित्य में, शैली के द्वारा साहित्यकार अथवा लेखक की प्रभावोत्पादकता तथा उत्कृष्टता का मूल्यांकन होता है। शैली वस्तुतः लेखक के मस्तिष्क और व्यक्तित्व की मुहर है। डॉ० जे० ब्राउन ने लिखा है कि यदि भाव सोना है, तो शैली मुहर है, जो इसे प्रचलन योग्य बनाती है और यह बताती है कि किस राजा ने इसे मुद्रित किया है।^{१०} शैली का अस्तित्व वस्तुतः इसमें निहित है कि यह प्रभावपूर्ण हो। उचित स्थल पर उचित शब्दों का प्रयोग — यही शैली की प्रभाविकता की पहचान है।

पौर्वात्य एवं पाश्चात्य रीतिशास्त्रियों ने शैली के भिन्न-भिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने शैलियों के वर्गीकरण के लिए विविध आधार बनाये हैं; लेकिन वास्तविक दृष्टि से शैलियाँ अनन्त हैं, अभिव्यक्ति के मार्ग अनेक हैं। आचार्य दंडी ने कहा है, 'अस्त्येनेको गिरां मार्गः सूक्ष्म भेदः परस्परम्।'^{११} यद्यपि दंडी स्वयं शैली के भेद कहते हैं, तथापि वे कहते हैं कि इनमें कविभेद से अनन्त अवान्तर प्रभेद हो सकते हैं और उन

१. वही, श्री आदिजिन स्तवनम् (७)
२. वही, श्री आदिजिन स्तवनम् (२)
३. वही, श्री आदिजिन स्तवनम् (८)
४. वही, मृगावतीचरित्र-चौपाई (३.९.२)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिजिन स्तवनम् (१)
६. वही, श्री आदिजिन स्तवनम् (२)
७. वही, श्री नेमिजिन स्तवनम् (१)
८. वही, मृगावतीचरित्र-चौपाई (२.९.१)
९. वही, श्री आदिजिन स्तवनम् (५)
१०. स्पेयर आवर्ज, थर्ड सिरीज, पृष्ठ २७७
११. काव्यादर्श, १.४०

भेदों का कथन करना अशक्य है।^१ वास्तव में विश्व में जितने साहित्यकार होंगे, उतनी ही शैलियाँ होंगी।^२ परिस्थिति, पात्र, व्यक्तित्व, और लक्ष्य के अनुसार उसकी शैली भी बदलती रहेगी। फिर भी, शैलियों का वर्गीकरण होता रहा है।

महोपाध्याय समयसुन्दर अपने युग के महान् साहित्यकार थे। इस एक ही व्यक्तित्व ने अपनी साहित्यिक कृतियों में अनेक शैलियाँ अपनाईं। उनकी भाषा-शैली को किसी विशेष शैली में समाहित नहीं किया जा सकता। उनका साहित्य बहु आयामी है। अतः स्वाभाविक है कि उनकी शैलियाँ भी विविध हों। वे सदैव परिस्थिति, पात्र, लक्ष्य आदि के अनुकूल शैली अपनाते हैं और उसमें यथानुकूल एवं यथानुरूप परिवर्तन कर लेते हैं।

कविवर्य समयसुन्दर की भाषा-शैली रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। अधिकांशतया उनकी रचनाओं की शैली सरल है। यद्यपि कुछेक रचनाओं में शैली की दुरूहता भी दृष्टिगोचर होती है, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वे रचनाएँ अच्छी नहीं हैं। उनमें भी आकर्षण है। वस्तुतः सरलता तथा दुरूहता, शैली के उत्कर्ष-अपकर्ष को आंकने हेतु उपयोगी प्रतिमान नहीं बन सकते हैं। कोई रचना सरल होकर भी नीरस एवं प्रभाव-रहित हो सकती है, तो दूसरी जटिल एवं मसृण भाषा में होकर भी प्रभूत आकर्षक हो सकती है। अतः कृतिकार की भाषा-शैली कितनी सरल है और कितनी दुरूह है, यह बात अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्व तो इस बात का होता है कि प्रयुक्त शैली मनोगत भावों को संप्रेषित करने में कितनी सफल हुई है? इस दृष्टि से पं० समयसुन्दर की भाषा-शैली को सफल कह सकते हैं। सामान्यतया उनकी शैली सरल एवं शीघ्रबोधगम्य है। जो रचनाएँ दुरूह हैं, वे श्लेषप्रधान, अर्थ-गौरव से संवलित, उत्प्रेक्षायुक्त और अक्षराडम्बर से मण्डित हैं। उनकी कुछेक रचनाओं में दुरूहता का जो समावेश हुआ है, उसका मुख्य कारण है, पाण्डित्य-प्रदर्शन। सम्भवतः उन्होंने यह भी चाहा होगा कि दुरूह ज्ञान की मशाल बुझे नहीं और आने वाली पीढ़ियों तक भी उसे पहुँचाया जाये। अस्तु।

महाकवि समयसुन्दर के समग्र साहित्य में मुख्यतः तीन शैलियों के दर्शन होते हैं —

२.१ गद्य शैली

२.२ पद्य शैली

२.३ गद्य-पद्य मिश्रित शैली

१. इति मार्गद्वय भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात्।

तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः ॥ — काव्यादर्श, (१.१०१)

२. ... expression of thought must vary with varieties of mind, and therefore.... every writer must have his own manner of expression,

— Graham, English style (London), P. 156.

२.१ गद्य-शैली

बोलचाल की भाषा में लिखने का यह वह प्रकार है, जिसमें अलंकार, मात्रा, वर्ण, लय आदि के बन्धन का विचार नहीं होता। कवि समयसुन्दर ने गद्य-शैली में प्रचुर साहित्य लिखा है। उनका अर्द्धाधिक साहित्य इसी शैली से निबद्ध है। उनकी गद्य-शैली सर्वत्र सरल और औचित्यपूर्ण है। यह बोलचाल की शैली से न तो बहुत दूर है और न बहुत निकट ही। कवि की गद्य-शैली में जितनी सरलता और स्पष्टता है, वह उनकी पद्य शैली में नहीं है। इसमें तो वे अपने वर्ण्य-विषय से सीधे जुड़ जाते हैं और प्रसादमयी सरल भाषा में अपने विचारों को सहज रूप से अभिव्यक्त कर देते हैं। पद्य का बाह्य शब्द-जाल, कल्पना की उड़ान आदि उनके गद्य में नहीं है। समयसुन्दर उसी भाषा-शैली को पसन्द करते हैं, जो पाठक के लिए दुर्बोध्य न हो। इसीलिए वे दार्शनिक ग्रन्थों की जटिल विषय-वस्तु को भी सरल से सरलतर रूप में प्रस्तुत करते हैं। यदि वे किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धरण उद्धृत करते हैं और वह दुर्बोध्य अथवा सामान्य भी कठिन है, तो उसकी वे स्वयं व्याख्या कर देते हैं। यह ठीक है कि पद्य को कलात्मक माना गया है, किन्तु गद्य-लेखन की अपनी विशेषता है। गद्य-लेखन को कवियों की कसौटी कहा है। गद्य सुन्दर हो तो, वह पद्य की अपेक्षा अधिक आवर्जक होता है। समयसुन्दर का गद्य लेखन दो प्रकार का है — १. शास्त्रीय गद्य और २. साहित्यिक गद्य। दर्शन विषयक ग्रन्थों में प्रायः गद्य को शास्त्रीय गद्य और साहित्यिक ग्रन्थों के गद्य को साहित्यिक गद्य कह सकते हैं। कुल मिलाकर गद्य-शैली में महोपाध्याय समयसुन्दर ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है —

- | | |
|-----------------------------|------------------------------|
| १. अष्टलक्षी | २. चातुर्मासिक व्याख्यान |
| ३. कालिकाचार्य-कथा | ४. श्रावकाराधना |
| ५. समाचारी-शतक | ६. विशेष-शतक |
| ७. विचार-शतक | ८. यति-आराधना |
| ९. विशेष-संग्रह | १०. दीक्षा-प्रतिष्ठा-शुद्धि |
| ११. विसंवाद-शतक | १२. खरतरगच्छ-पट्टावली |
| १३. कथा-कोश | १४. सारस्वत रहस्य |
| १५. रूपकमाला-वृत्ति | १६. दुरियर स्तोत्र-वृत्ति |
| १७. कल्पलता | १८. जयतिहुअण-वृत्ति |
| १९. भक्तामर सुबोधिनी वृत्ति | २०. नवतत्त्व शब्दार्थ-वृत्ति |
| २१. दशवैकालिक वृत्ति | २२. संदेह दोलावली पर्याय |
| २३. रघुवंश वृत्ति | २४. वृत्त-रत्नाकर-वृत्ति |
| २५. सप्तस्मरण वृत्ति | २६. कल्याणमन्दिर-वृत्ति |

२७. दण्डक-वृत्ति
२९. कल्याणमन्दिर-वृत्ति
३१. मेघदूत — प्रथम श्लोक
३३. लिंगानुशासन-चूर्णि
३५. वेरथय-वृत्ति
३७. कुमारसम्भव-वृत्ति
३९. दीवालीकल्प-बालावबोध

२८. वाग्भट्टालंकार-वृत्ति
३०. चत्तारि-परमंगाणि-व्याख्या
३२. माघ-काव्य-वृत्ति
३४. ऋषिमण्डल-टिप्पण
३६. मेघदूत-वृत्ति
३८. षडावश्यक-बालावबोध

२.२ पद्य शैली

पद्य छन्दोबद्ध रचना का नाम है। इस शैली में निबद्ध रचनाएँ पदों अर्थात् काव्य के रूप में हैं। समयसुन्दर महान् कवि थे। उनकी पद्य-शैली प्रौढ़ एवं समृद्ध है। उनके पद्य-साहित्य में जो विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, वे हैं — सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, प्रवाहशीलता और लयात्मकता। उनकी पद्य-शैली का एक और जो महत्त्वपूर्ण गुण या तत्त्व है, वह है औदात्य। इससे उनकी पद्य-शैली भी भव्य और चित्ताकर्षक बनी है।

संक्षेप में, कविप्रवर समयसुन्दर की पद्य शैली आवर्जक एवं सहृदयग्राही है। वह समस्त साहित्यिक तत्त्वों से सम्पृक्त है। इस शैली में लिखने के लिए उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, प्राचीन हिन्दी, सिन्धी आदि भाषाओं को माध्यम बनाया है। कवि की निम्नलिखित कृतियाँ पद्य-शैली में प्रणीत हैं —

- | | |
|-----------------------------------|-------------------------|
| १. भावशतक | २. ऋषभ भक्तामर |
| ३. वीर २७ भव | ४. मंगलवाद |
| ५. श्री जिनसिंहसूरि पदोत्सव | ६. चौबीसी |
| ७. चौबीस जिन-गुरुनामगर्भितस्तोत्र | ८. अल्पबहुत्वगर्भितस्तव |
| ९. शांभ-प्रद्युम्न-चौपाई | १०. दानादि चौढ़ालिया |
| ११. चार प्रत्येकबुद्ध-रास | १२. मृगावती-चौपाई |
| १३. सिंहलसुतप्रियमेलक-रास | १४. पुण्यसार -रास |
| १५. नलदमयन्ती-चौपाई | १६. सीताराम-चौपाई |
| १७. वल्कलचिरी-रास | १८. शत्रुञ्जय-रास |
| १९. वस्तुपाल-तेजपाल रास | २०. थावच्चासुत-चौपाई |
| २१. विहरमान वीसी स्तवन | २२. शुल्लककुमार-रास |
| २३. चंपकश्रेष्ठि-चौपाई | २४. गौतमपृच्छा-चौपाई |
| २५. धनदत्त चौपाई | २६. साधुवंदना |
| २७. ऐरवत क्षेत्र-चौबीसी | २८. पुंजरत्न ऋषि-रास |
| २९. केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध | ३०. द्रौपदी-चौपाई |

- | | |
|---------------------------|--------------------|
| ३१. क्षमा-छत्तीसी | ३२. कर्म-छत्तीसी |
| ३३. पुण्य-छत्तीसी | ३४. सन्तोष-छत्तीसी |
| ३५. दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी | ३६. सवैया-छत्तीसी |

और लगभग ५०० फुटकर गीत।

२.३ गद्य-पद्य मिश्रित शैली

महोपाध्याय समयसुन्दर की 'कालिकाचार्य कथा' आदि रचनाएँ गद्य शैली में निबद्ध होते हुए भी पद्य मिश्रित है। यद्यपि कवि ने ऐसी कोई रचना नहीं लिखी जो आद्यन्त गद्य-पद्य मिश्रित शैली में हो, लेकिन उन रचनाओं के अन्तर्गत ऐसे अनेक गद्यांश हैं, जो इस शैली से प्रभावित हों। ऐसे गद्यों में कवि ने कुछ भाव या भावनाएँ ऐसी कवित्वपूर्ण सुन्दरता से व्यक्त की हैं कि उनमें काव्य की-सी संवेदनशीलता तथा सरसता आ गई है। उदाहरणार्थ एक गद्यांश उद्धृत है —

अनेकगणनायक दण्डनायक मण्डलीक महामण्डलीक सामन्त महासामन्त चउरासिया, मुहता मुगटवद्धक संधिपाल दूतपाल सङ्गरणा वङ्गरणा देवगरणा यमगरणा संधिविग्रही सेठ सेनापति सार्थवाह व्यवहारिया अंगरक्षक पुरोहित वृत्तिनायक भारवाहक थईयायत पडुपडियायत टाकटमाली इन्द्रजाली फूलमाली यन्त्रवादी तन्त्रवादी मन्त्रवादी धर्मवादी ज्योतिर्वादी धनुर्वादी दंडधर खड्गधर धनुर्धर चामरधर दीवाधर पुस्तकधर प्रतीहार खबरदार गजपाल अश्वपाल अङ्गमर्दक आरक्षक साचाबोला कथाबोला गुणबोला समस्याबोला साहित्यबंधक लक्षणबंधक छन्दबन्धक अलङ्कारबन्धक नाटकबन्धक गीतबन्धक इत्यादि वर्णकविराजिता।^९

ऊपर हमने महाकवि समयसुन्दर की तीन मुख्य भाषा-शैलियों का संक्षिप्त उल्लेख किया है। चूँकि रचना के वर्ण्य-विषय आदि पर भी शैली का स्वरूप अवलम्बित होता है, अतः उसकी भी चर्चा करना नितान्त अपरिहार्य है। इन विविध शैलियों के आधार पर ही उनकी गद्य-पद्य शैली को परिष्कृत अनुशीलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। विवेच्य साहित्य में जिन शैलियों के दर्शन होते हैं, वे इस प्रकार हैं —

२.४ तार्किक शैली

समाचारी-शतक, विशेष-शतक, विसंवाद-शतक, विचार-शतक जैसे विशालकाय ग्रन्थ इसी शैली में आलेखित हैं। इस शैली में पण्डित समयसुन्दर किसी तथ्य, धारणा, विचार, विश्वास आदि की सत्यता जाँचने के लिए अथवा उसके समर्थन या विरोध में कोई तथ्यपूर्ण युक्तिसंगत तथा सुविचारित बात कहते हैं। वे प्रत्येक बात को तर्क-वितर्क के द्वारा गहराई से प्रस्तुत करते हैं। वे अपने विवेच्य विषय के अन्तस्तल तक पहुँच जाना चाहते हैं, ताकि सम्यक् निष्कर्ष निकल सके।

१. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ १९९

कविवर की तार्किक शैली इतनी सटीक एवं अकार्य है कि उसका प्रतिपक्षी निरुत्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ —

ननु - ये एकत्रिंशद् द्वात्रिंशद्वा सिद्धान्तान् मानयन्ति, न पञ्चचत्वारिंशत् ते स्वमानितसिद्धान्ताऽनुक्तान्यपि कर्त्तव्यानि कुर्वन्ति न वा? उच्यते-शतशः कुर्वन्ति, ततस्तेषां प्रत्यक्षं वचनोक्तो विरोधः, तत्रार्थे ते प्रष्टव्या इत्थं-भोः। श्रावका नमस्कारान् गुणयन्ति तत् कस्मिन् सिद्धान्ते प्रोक्तमस्ति? श्रावकाणां सांप्रतं क्रियमाणप्रतिक्रमणादिविध्यनुक्रमः क्रियते तत् कस्मिन्? श्रावकैर्मुखवस्त्रिका गृह्यते तत् कस्मिन्? साधुभिः पुस्तकादीनि रक्षयन्ते तत् कस्मिन्? ओष १. कल्प २. चोलपट्टक ३. मुखवस्त्रिका ४. मानं क्रियते तत् कस्मिन्? पात्रकाणां लेपनं तत् कस्मिन्? अलसेलरोगादिकूपिका रक्षयते तत् कस्मिन्? त्रिपणे दवरको दीयते तत् कस्मिन्? झोलिकायां ग्रन्थिः प्रदीयते तत् कस्मिन्? गोचरीगमने वामबाहौ झोलिका स्थाप्यते तत् कस्मिन्? साध्वादिभिर्मुखवस्त्रिकां पाशकदवरकाभ्यां कर्णयोर्धारयते तत् कस्मिन्? श्रावका यदा वन्दन्ते तदा साधुभिर्हुङ्कारः क्रियते तत् कस्मिन्? पटीप्रावरणे वामस्कन्धे आद्रियते, दक्षिण उद्धाटितो रक्षयते तत् कस्मिन्? ओषे उर्णादिदशिका बध्यन्ते तत् कस्मिन्? त्रिपणे कण्ठको बध्यते तत् कस्मिन्? कटौ साधुभिर्दवरको बध्यते तत् कस्मिन्? मषीभाजनं रक्षयते तत् कस्मिन्? गोचारीं कुर्वतां (पर्यटतां) साधूनां पश्चाद् गृहस्था भ्रमन्ति तत् कस्मिन्? आर्याः साधून् आपृच्छ्य विहरणार्थं यान्ति तत् कस्मिन्? आर्याणामुपकरणानि मानोपेतानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्? पानीयं प्रासुकं कियत् कालं तिष्ठति तत् कस्मिन्? पक्वान्नं कियत्कालमविनष्टं सत्तिष्ठति तत् कस्मिन्? छिम्पकादिधौतवस्त्रधावनं गृह्यते तत् कस्मिन्? जिनप्रतिमावन्दनपूजादीनां श्रावकाणां प्रत्याख्यानं कार्यते तत् कस्मिन्? चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायो गण्यते सूत्रपठनादो तत् कस्मिन्? श्रावका एकादशप्रतिमां विना भिक्षां याचन्ते तत् कस्मिन्? श्रावकाः प्रतिक्रमणादि कुर्वन्तः प्रथममीर्यापथिकीं प्रतिक्रमन्ति तत् कस्मिन्? श्रावकैः करेमि भन्ते! इत्यादि दण्डकोच्चारणं क्रियते तत् कस्मिन्? ईर्यापथिकी तस्सोत्तरी-लोकस्योम्योतकरवन्दकप्रभृतीनां पाठः कथ्यते तत् कस्मिन्? प्रत्याख्याने आकाराः कथ्यन्ते तत् कस्मिन्? श्रावकैः वंदितुसूत्रं प्रतिक्रमणे कथ्यते तत् कस्मिन्? प्रतिक्रमणादिक्रियां कुर्वद्भिः श्रावकैः उपवेश-नोत्थानादिकायचेष्टा क्रियते तत् कस्मिन्? उच्छिष्टान्नं गृह्यते तत् कस्मिन्? श्रावकैश्चोलपट्टको घ्रियते तत् कस्मिन्? शेषकाले पीठफलक पट्टिकापरिभोगः क्रियते तत् कस्मिन्? साधुश्राद्धानां आलोचनादिं प्रायश्चित्तं च प्रदीयते तत् कस्मिन्? पोषधादिग्रहण-पारणविधिः साम्प्रतं विधीयते तत् कस्मिन्? सामायिक दण्डके दुविहं तिविहेणमित्येवास्ति सिद्धान्ते, न तु मणेणमित्यादियुक्तिः परं साम्प्रतं क्रियते तत् कस्मिन्? कायमुखवस्त्रिकादीनां पञ्चविंशतिः प्रतिलेखना क्रियते तत् कस्मिन्? साधर्मिकाणां हस्ते गृहे वा खण्डपुटकाः प्रदीयन्ते द्रम्मादीनां वा लम्भनिका क्रियते तत् कस्मिन्?

श्रीपर्युषणापर्वणि लोकसमक्षं छेदग्रन्थरूपं श्री कल्पसूत्रं वाच्यते तत् कस्मिन्०? लौकिकटिप्पनकोपरि दीक्षामुहुर्तं गण्यते, द्वादशमासवृद्ध्या पर्युषणापर्वं क्रियते तत् कस्मिन्०? नव्योपाश्रयाः कार्यन्ते तत् कस्मिन्०? अन्यगच्छाद् उद्ग्राह्य यदात्मीयः श्रावकः क्रियते तदा पूर्वं देवपूजाशत्रुञ्जयादियात्राकरणस्य मिथ्यादुष्कृतं दाप्यते तत् कस्मिन्०? तैलचूर्णादिमध्ये वस्त्रादि मलिनानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्०? एवं शतशः कर्त्तव्यानि क्रियमाणानि दृश्यन्ते, अत्रेदं रहस्यम्-येषु आगमेषु एतानि सन्ति ते आगमास्तैर्न मन्यन्ते, मन्यमानागतेषु न सन्ति तानि, ततो यदि एतानि तैः क्रियस्ते, तदा एतद्गर्भिता आगमा अपि माननीयाः, नो चेदेतानि कार्याणि न करणीयानि तथा यानि दुष्टाचरणानि क्रियन्ते तानि कस्मिन् ग्रन्थे प्रोक्तानि सन्ति?९

ऊपर वर्णित उदाहरण में जो लोग पैतालीस आगमों को नहीं मानते हैं, उनसे ४५ प्रश्न किये गये हैं और यह पूछा गया है कि वे जिन क्रियाओं को करते हैं, उनका उनके द्वारा स्वीकृत बत्तीस आगमों में कहीं निर्देश नहीं है, फिर वे उन्हें किस आधार पर करते हैं? यदि वे उन क्रियाओं को अन्य आगमिक ग्रन्थों के आधार पर करते हैं, तो उन्हें उन आगम-ग्रन्थों को भी स्वीकार करना चाहिए। इस तरह हम देखते हैं कि समयसुन्दर के अकाट्य तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वे (मुख्यतः स्थानकवासी) जिन आधारों पर इन मान्यताओं को स्वीकृत करते हैं, उनके ही आधारभूत ग्रन्थों को अस्वीकार करना उनके लिए उचित नहीं है। अस्तु!

तार्किक शैली के अन्तर्गत हम समयसुन्दर की उस शैली को भी स्वीकार करते हैं, जिसमें वे किसी तर्क अथवा धारणा के सत्यासत्य पक्ष पर विचार करने के लिए ग्रन्थों के प्रमाण अथवा आगमिक वचन प्रस्तुत करते हैं। इस शैली में वे किसी तर्क या प्रश्न का उत्तर संक्षेप में सबसे पहले अपनी ओर से दे देते हैं और बाद में अपने तर्क या उत्तर की पुष्टि व प्रामाणिकता के लिए शास्त्रीय उद्धरण। इस शास्त्रीय उद्धरणों का प्रस्तुतिकरण कहीं-कहीं तो इतना अधिक विस्तृत होता है कि केवल उन शास्त्रों के नामों की एक लम्बी सूची बन जाती है। ऐसे प्रकरणों की शैली व्यासशैली-सी लगती है। समाचारी-शतक प्रभृति ग्रन्थों में ऐसे अनेक प्रकरण हैं, जिसमें एक तर्क की सिद्धि के लिए पचासों ग्रन्थों-शास्त्रों का मत दिया गया है। समयसुन्दर की इस तार्किक पद्धति के अवलोकन हेतु निम्नांकित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं —

ननु - केऽपि प्रवदन्ति मिथ्यादृष्टिविनिर्मितभारततर्कव्याकरणकाव्यादीनां पठने मिथ्याश्रुतत्वात् मिथ्यात्वं जायते ततः सम्यग्दृष्टिभिनं पठनीयम् इति तत् सत्यम् इतरत् वा? उच्यते तदवचो सत्यम् एव सम्भाव्यते, मिथ्याश्रुतस्यापि सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतत्वेन सम्यक्श्रुतत्वेन भणनात् तथा च पञ्चलिंगिविवरणेपि उक्तं तथाहि —

१. समाचारी-शतक, ४५

अंगाणंगपविट्टं सम्मसुयं लोइयं तु इत्थ मिच्छसुयं ।

आसज्जउ सामितं लोइयलोगुत्तरे भयणा ॥

व्याख्या — इह अङ्गप्रविष्टम् आचारादिश्रुतम् अनङ्गप्रविष्टं तु आवश्यकदिश्रुतम्, एतद् द्वितीयमपि स्वामित्वचिन्तायानिरपेक्षं स्वभावेन सम्यक्श्रुतं, लौकिकं तु भारतादि प्रकृत्या मिथ्याश्रुतं स्वामित्वम् आसाधु स्वामित्वचिन्तायां, पुनर्लौकिके भारतादौ, लोकोत्तरे च आचारादौ भजना विकल्पना अवसेया, सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतं भारतादि अपि सम्यक्श्रुतं सावद्य भाषित्व भवहेतुत्वादि यथावस्थितत्वरूपबोधतो विषयभागेन योजनात्, मिथ्यादृष्टिपरिगृहीतं तु आचारादि अपि मिथ्याश्रुतम् अयथावस्थितबोधतो वैपरीत्येन योजनात् इति भावार्थः। इति सम्यक्त्वपरिगृहीतं सर्वं भारतादि अपि सम्यक्श्रुतम्। इति ॥ यदुक्तं तथा तच्च सम्यक्त्वं पञ्चधा भवति इत्थम् एव श्रीआवश्यकवृहवृतौ सामायिकनिक्षेपाधिकारे-पि उक्तं तथापि-सर्वम् एव सम्यक्दृष्टिपरिगृहीतं परसमयसम्बन्धि अपि सम्यक्श्रुतमेव तस्य स्वसमयोपकारित्वाद् इति ।

पुनरपि श्री नन्दिस्त्रमे तत् साक्षिभूतं तथाहि से किं तं सम्मसुयं जं इमं अरहंतेहि भगवंतेहि उप्पन्नणाणदंसणधरेहिं तिलोक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं अइअपच्चूपण्णं अणागयजाणएहिं सव्वन्नूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिंडगं आयारो जाव दिट्ठिवाओ इच्चेइयाइं दुवालसुयं गणिपिंडगं चउद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं अभिन्नदस पुविस्स सम्मसुयंति ॥ से तं सम्मसुयं से किं तं मिच्छसुयं जं इमं अत्राणिएहिं मिच्छदिट्ठिहिं सच्छंद बुद्धिमयविगप्पियं, नवरं रामायणं—भारहं भीमासुरुक्ककोडिल्लयं सगडभदियाओ खोडगुहं कप्पासियं नागसुहमाकणगसतरीवयसेसियं बुद्धवयणं विसियं काविललोगायितं सट्ठितं तं माढरं पोरणं वायरणं नाडगाइं अथवा बावत्तरिकलाओचत्तारिवेयाणं संगोवंगाणं एयाइ मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छित्तपरिगगहियाइं मिच्छसुयं एयाणि चेव सम्मदिट्ठिस्स समत्तपरिगगहियाइ सम्मसुयं, अहवा मिच्छदिट्ठिस्स वि सम्मसुयं कम्हा सम्मतहेतुत्तणओ जहा ते मिच्छदिट्ठिणो तेहिं चेव गमएहिं चोइयासमाणासपक्खे दिट्ठाउ वमंति साम्प्रतं न केवलं स्वसमय एव मया लेखनीयः किं तर्हि परव्याकरणाद्यवबोधम् परतर्कादीनाम् अवगमं च विना साम्प्रतिकानां मन्दमतितया स्वसमस्यापि दुर्बोधत्वाद् अशक्यसमर्थनत्वाच्च परव्याकरणान्यपि साधुकृते लेखनीयानि । तथा पाठकसाधूनां वसत्याद्युपष्टम्भेन पुस्तकदानेन च कुतीर्थ्यां जयताम् आगते प्रवचने भव्यसत्त्वबोधोपि यदभिसन्धित्सतः सम्पत्स्यते इति चूतिचन्तां गाथापञ्चकेन आह 'छद्वरिसणगाहा' जिन सौगत-सांख्यजैमनीय नैयायिक लोकायतिकमतभेदात् षड्दर्शनानि प्रवादास्तेषां तर्काः तत्तन्मतव्यवस्थापक निप्रमाणशास्त्राणि तद्भिदः तद् रहस्याभिज्ञाः कुतीर्थिकानां द्विजातीनां सिद्धान्ताः श्रुतिस्मृतिपुराणादयः तज्ज्ञायकास्तकुशलाः धणियं, नितान्तां परतीर्थिकानां तर्कं सिद्धान्तावबोधं हि बिना प्रतिपक्षविक्षेपेण स्वपक्षसमर्थना योगात्, एतेन स्वसमयपरसमयविदस्ते इत्युक्तं भवति, न च परसमयानां मिथ्यात्वाङ्कितत्वात्

सम्यग्दृशान्तत्पाठो न संगच्छते इति वाच्यं, सम्यग्दृष्टिपरिग्रहेण तेषामपि तुष्टत्वप्रदर्शनेन स्वसमय व्यवस्थापनया समीचीनत्वाभिधानात्, यदुक्तं 'परसमओ उभयं वा सम्मद्द्विट्ठिस्स ससमओ चेव यत एवं विधा एवं जिनागमसाधनसमर्थाः तत्तस्मात् तेषां साधूनां कारणे इति निमित्तं सर्वम् एव सकलमेव स्वपरशास्त्रवृन्दम्, इह प्रवचने, भवति युज्यते, लेखनीयं पुस्तकेषुनिवेश्यम् इत्यर्थो गाथायाः ॥ एवं श्री हरिभद्रसूरिकृतावश्यकबृहदवृत्तौ अपि श्रुतज्ञानाधिकारे प्रोक्तं तथा सम्यक्श्रुतम् अङ्गनङ्गप्रविष्टम् आचारावश्यकदि, तथा मिथ्याश्रुतं पुराणरामायण भारतादि सर्वमेव वा दर्शनपरिग्रविशेषात् सम्यक्श्रुतम् इतरयं तेण परं भिन्नभयणाहिं सव्वत्रूहि सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंग गणिपिडगं आयारो जाव दिट्ठिवाओ इच्चेइयाइं दुवालसंगाणि गणिपिडगं चउद्दस्सपुव्विस्सं सम्मसुयं अभिन्नदसपुव्विस्स सम्मसुयं ति' मिथ्याश्रुतं भारतादिसम्यग्दृष्टिगृहीतं सम्यक्श्रुतम् भवति इति।^१

समयसुन्दर की उक्त तार्किक शैली में एक ही तर्क के प्रतिपादन के लिए एकाधिक प्रमाणों का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त पंक्तियों में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि मिथ्यादृष्टि से विरचित ग्रन्थों का भी अध्ययन यदि सम्यग्दृष्टि से किया जाए, तो उससे अध्येता को कोई नुकसान नहीं होता है।

२.५ अनेकार्थी शैली

शब्द, रूप, पदबन्ध और वाक्य कभी तो एकार्थी होते हैं और कभी अनेकार्थी। महापण्डित समयसुन्दर की रचनाएँ एकार्थी तो सभी हैं, लेकिन कुछेक ऐसी भी हैं, जो एकाधिकार्थी हैं। उनकी श्लेष एवं यमक प्रधान रचनाएँ अनेकार्थी शैली में ही निबद्ध हैं। ऐसी रचनाओं के प्रणयन का उद्देश्य ही शब्द, रूप, वाक्य आदि की बहुअर्थता को उद्घाटित करना है। यद्यपि सामान्य भाषा के लिए अनेकार्थता अवगुण है, परन्तु काव्य भाषा के लिए वही गुण है। भाषा-सम्बन्धी चमत्कार तो अनेकार्थता से ही होता है। समयसुन्दर भाषा की सार्थक इकाइयों के अनेक अर्थ प्रस्तुत करने में महाकुशल थे। अष्टलक्षी ग्रन्थ इस बात का सबल प्रमाण है। इस ग्रन्थ के ग्रन्थकार ने 'राजा नो ददते सौख्यम्' - इस अष्टाक्षरीय वाक्य के अष्टलक्षाधिक अर्थ किये हैं, जो कि अनेकार्थी शैली में विरचित ग्रन्थों में अद्वितीय एवं आश्चर्यजनक है। उन्होंने यह अनेकार्थता अनेक माध्यमों से की है। जैसे शब्दों की भिन्नस्रोतता, भिन्नघटकता, भिन्नार्थी प्रत्यय, अभंग एवं सभंग पदश्लेष आदि। यह अनेकार्थता शब्दस्तरीय भी है और वाक्यस्तरीय भी। प्रत्तिक, अन्योक्ति और समासोक्ति के माध्यम से भी एकाधिक अर्थ हुए हैं। यहाँ हम विस्तार भय से विविध उदाहरण न देते हुए केवल एक ही उदाहरण देते हैं, 'राजा नो ददते सौख्यम्'। इस पंक्ति के ग्रन्थकार ने जो आठ लाख अर्थ किए हैं, वे सभी अर्थ देने तो यहाँ असम्भव हैं, फिर भी कतिपय अर्थ द्रष्टव्य हैं —

१. विशेषशतकम् (१८)

१. राजा नो ददते सौख्यम्।

राजा—नृपतिः नः अस्मभ्यं अस्माकं (वा) सौख्यं—सुखं ददते। इदं सुरक्षितप्रजावचनम् ॥ १३९ ॥

२. राजा नो ददते सौख्यम्।

‘सावित्रीभाविता राजा, विसृजो विघृणो विराट्।

सप्तार्चिः सप्ततुरग सप्तलोकनमस्कृतः’ ॥

इति श्री स्कन्दपुराणे श्री सूर्यसहस्रनामान्तर्भणित्वाद् राजाए श्री सूर्यः नः - अस्माकं सौख्यं—सुखं ददते—ददाति। इदं श्री सूर्यदेवताभक्तजनानं वचनम् ॥ १ ॥

३. राजा अः नो ददते सौख्यम्।

‘अः स्यादर्हति सिद्धे च विष्णावपि’ इति वचनात् अः - अर्हन् नः - अस्मभ्यं सौख्यं ददते। किं विशिष्टः अः? ‘राजा’ स्वामी, त्रिजत्प्रभुरित्यर्थः। इदं जैनवचः।

४. रा-आजा नो अददत ईसौख्यम्।

रा-पर्यावेण श्रीः। ‘अ शिवे केशवे वायौ’ इति विश्वशम्भूवचनाद् अं -वायुं अजति—क्षिपति धातूनामनेकार्थत्वात् भक्षतीति अचि आजः—सर्पस्तेन आ—शोभा यस्य स आजाः। श्री (रा) पूर्वकः आजाः श्री (रा) आजाः— श्रीपार्श्वनाथः, सर्पलाञ्छनात्। स नः -अस्माकम् ईसौख्यम् अददत। इति चतुर्थोऽर्थः। सर्वे ॥ ९९ ॥

५. रा आ-जा नो ददते सौख्यम्।

आ—ब्रह्मा तस्या जा पुत्री आजा — सरस्वती नः - अस्माकं सौख्यं ददते^१। किं० आजा? रा शोभमाना ॥ ११३ ॥

६. ला ज ! आ नो ददते सौख्यम्।

‘ला च लक्ष्मीर्लमम्बरे’ इति विश्वशम्भु (श्लो० १०४) वचनात् ला-लक्ष्मीः। हे ज! हे जेतुपुरुष! आ इति सम्बोधने। नः अस्मभ्यं १ अस्माकं २ वा सौख्यं असौख्यं वा २ ददते। इदं भेगिनां योगिनां च वचनम् ॥ ४ ॥ सर्वे० ॥ ८१९

७. ऋ- आ- अजा नो ददते असौख्यम्।

ऋः - मेषस्तम् आ — सामस्त्येन अजन्ति क्षिपन्तीति रत्वे कृते राजाः - सिंहादयः नः - अस्माकम् असौख्यं ददते इदं मृगाणां वचनम् ॥ ३४ ॥^२

२.६ संवाद-शैली

समयसुन्दर के काव्यों में संवाद-शैली के भी दर्शन होते हैं। उनके काव्यों में ऐसे अनेक स्थल हैं, जहां वे दो अथवा दो से अधिक पात्रों में परस्पर वार्तालाप कराते हैं।

१. ममेति शेषः इत्यधिक क-पाठश्चिन्तनीय तस्यापि सम्भश्चेत् सरस्वती नो-न असौख्यं ददते इति पाठः।

२. अनेकार्थ रत्न मंजूषा, अर्थरत्नावली, (अष्टलक्षी)

यों तो उनकी समस्त रचनाओं में यह शैली अवतरित हुई है, लेकिन कतिपय रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें इस शैली की प्रधानता है अथवा वे इसी शैली में विरचित हैं।

‘थावच्चासुत रिषि चौपाई’ को हम संवाद-शैली के अन्तर्गत रखेंगे, क्योंकि उसमें इसी की प्रमुखता है। इसमें माता थावच्चा अपने पुत्र थावच्चासुत को दीक्षा ग्रहण न करने के लिए विविध प्रकार से समझाती है, संयममार्ग की कठोरता का विस्तृत वर्णन करती है और पुत्र संसार की असारता को सविस्तार प्रस्तुत करता है। इसी सम्बन्ध में थावच्चासुत का कृष्ण के साथ भी संवाद होता है। इसी तरह इस रचना में शुक्र परिव्राजक का थावच्चासुत ऋषि के साथ आहार-चर्या, क्रिया इत्यादि के संबंध में वार्त्तालाप हुआ। ये संवाद विस्तृत होने के साथ-साथ आकर्षक भी हैं। इस शैली से ही कृति में प्राण आया है।

‘दान-शील-तप-भाव-संवाद शतक’ नामक रचना संवाद शैली में ही निबद्ध है। यह रचना आरम्भ से अन्त तक इसी शैली में व्याख्यायित है। दान, शील, तप और भाव — चारों स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए आत्म-प्रशंसा करते हैं, परनिन्दा करते हैं। चारों के संवाद विस्तारपूर्वक हैं।

इसी तरह तरह ‘केशी-प्रदेशी-प्रबन्ध’ भी इसी शैली में आबद्ध है। ये संवाद प्रश्नोत्तररूप में हैं, जो श्रमण केशी एवं राजा प्रदेशी के बीच होते हैं। केशी प्रदेशी के सघन संशयों तथा उलझे विकल्पों का सही समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस कृति में निबद्ध छोटे-मोटे एवं व्यस्थित संवाद इस शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। यही कारण है कि यह कृति दार्शनिक होते हुए भी शीघ्रबोधगम्य है।

समयसुन्दर के फुटकर गीतों में भी इस शैली के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ एक लघु गीत प्रस्तुत है —

जीव प्रति काया कहइ, मुनइ मुकि कां समझावइ रे ।
 मइ अपराध न को कियउ, प्रियु को समझावइ रे ॥
 राति दिवस तोरी रागिणी, राखुं हृदय मझारि रे ।
 सीत तावड़ हूँ सहु सहूँ, तूँ छइ प्राण आधार रे ॥
 प्रीतड़ी वालंभ पालियइ, नवि दीजियइ छेह रे ।
 कठिन हियुं नवि कीजियइ, कीजइ सुगुण सनेह रे ॥
 जीव कहइ काया प्रति, अम्ह को नहीं दोस रे ।
 खिण राचइ विरचइ खिण, तेनहउ किर्सोय भरोस रे ॥
 कारिमउ राग काया तणउ, कूट कपट निवास रे ।
 गुण अवगुण जानइ नहीं, रहइ चित्त उदास रे ॥^१

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव काया गीतम् (१-५)

२.७ दृष्टान्त-शैली

विषय-वस्तु के सुस्पष्ट विवेचन के लिए दृष्टान्त-शैली अति लाभदायक है। इसके द्वारा वाचक को वाच्यार्थ आसानी से हृदयंगम हो सकता है। कवि समयसुन्दर की प्रतिपादन-शैली दृष्टान्तमयी भी है। वे अपने पाठक की बौद्धिक क्षमता से परिचित थे। अतः त्वरित बोधगम्यता के लिये उन्होंने विविध दृष्टान्तों, उपमाओं, उदाहरणों आदि का सहारा लिया। उनकी प्रतिपादन-शैली में दृष्टान्तों का प्रयोग वास्तव में मणि-कांचन का योग है। अधिकांशतः वे छोटे-मोटे दृष्टान्त प्रयुक्त करते हैं। ऐसे भी अनेक प्रयोग मिलते हैं, जहाँ वे एक ही मूल बात के निरूपण निमित्त बहुत बड़े दृष्टान्त देते हैं। कहीं-कहीं उन्होंने एक ही बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रयुक्त किये हैं। ये सभी दृष्टान्त प्रायः लोकप्रसिद्ध हैं।

‘चम्पक-श्रेष्ठी-चौपाई’ में एक ओर पुरुषार्थ से भाग्य की रेख में मेख मारने हेतु और दूसरी ओर भाग्य की अमिटता बताने के लिये अलग-अलग दृष्टान्त दिये गये हैं। दोनों दृष्टान्त अपने-आप में पूर्ण व मार्मिक हैं, साथ ही बहुत बड़े भी हैं। दान-शील-तप-भाव-संवाद शतक में भी दान-शील-तप-भाव — ये चारों अपनी बड़ाई को प्रकट करने के लिए अनेक दृष्टान्त देते हैं। कविवर का छत्तीसी-साहित्य दृष्टान्त-शैली में ही लिखित हैं। इनमें वे किसी एक तत्त्व को केन्द्रित करके उत्कर्ष-अपकर्ष को बताने के लिए विविध दृष्टान्त देते हैं। जैसे — ‘पुण्य छत्तीसी’— इसमें कविवर ने पुण्य का सामान्य विवेचन करके विविध पुण्यात्माओं के दृष्टान्त दिये हैं। इसी प्रकार से अन्य रचनाओं के बारे में भी जानना चाहिये।

समयसुन्दर के सभी रास, चौपाई आदि किसी एक विस्तृत दृष्टान्त को ही कहते हैं। वे अपने प्रमुख पात्रों के जीवन में घटित सुख-दुःखात्मक घटनाओं का कारण प्रदर्शित करने के लिए भी ‘केवली’ द्वारा उनके गत जन्म का दृष्टान्त बताते हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि कवि समयसुन्दर ने विविध प्रकार से दृष्टान्त शैली अपनाई है।

समयसुन्दर की दृष्टान्त शैली में पट्टा देखने के लिए हम एक उदाहरण नीचे देते हैं, जिसमें राजीमति अपने पति नेमि के श्यामवर्णी होने पर भी उसे गुणों से सराबोर बताती है। वह कहती है, लोक में ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो श्यामवर्णी होते हुए भी प्रिय हैं —

सामलियउ नेमि सुहावइ रे सखियां,
कालउ पणि गुणभरियउ रे लखियां।
आंखि सोहइ नहीं अंजण पारवइ,
कालउ मरिच कपूर नइ राखइ।

काली कीकी करइ अजुवालउ,
 रक्षा करइ रुड़उ चन्दलउ कालउ ।
 कालउ कृष्ण वृन्दावनि सोहइ,
 सोल सहस गोपी मन मोहइ ।
 नर नारी सहुको घणुं तरसइ,
 कालउ मेह घटा करि वरसइ ॥^१

२.८ व्याख्यात्मक-शैली

किसी कठिन या दुरूह उक्ति, पद, वाक्य या विषय की अधिक बोधगम्य, सरल, सुगम रूप से समझाने के लिए अपनाई गई शैली ही व्याख्या शैली है। महोपाध्याय समयसुन्दर का टीका या व्याख्या-साहित्य इसी शैली में लिखित है। इस शैली में लिखने का प्रमुख लक्ष्य ही किसी जटिल वाक्य आदि से अर्थ का स्पष्टीकरण अथवा किसी विषय का कुछ विस्तार से वर्णन करना है।

समयसुन्दर सुप्रसिद्ध टीकाकार अथवा व्याख्याकार हैं। उनका टीका-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। उनकी उपलब्ध रचनाओं में २५ रचनाएँ टीका-साहित्य के अन्तर्गत हैं, जिनमें २३ टीकाएँ संस्कृत में हैं और २ टीकाएँ प्राचीन राजस्थानी में। वे इन टीकाओं में मूल पाठों का सरल व शीघ्रबोधगम्य अर्थ प्रस्तुत करते हैं। इसे वे कहीं दण्डान्वय और कहीं खण्डान्वय-पद्धति से प्रस्तुत करते हैं। खण्डान्वय-पद्धति ही अधिक प्रयुक्त हुई है। अनेक रचनाओं में तो वे बिना अन्वय किये व्याख्या करते हैं। इसके अतिरिक्त वे व्याकरण-शास्त्र के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति, कभी-कभी किसी विशिष्ट शब्द की सिद्धि का निर्देशक 'सूत्र' और विशेष कठिन शब्दों के अर्थ के लिए किसी कोष का हवाला भी देते हैं। समासविग्रहपूर्वक शब्दार्थ बताते हुए व्याख्या करना — यह उनके टीका-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। आवश्यकतानुसार अन्तरकथाओं एवं मूल ग्रन्थ अथवा पाठ के निर्माण के कारण आदि का भी संक्षिप्त उल्लेख कर देते हैं। आवश्यकता पड़े तो विवेच्य विषय की स्पष्टता या पुष्टि के लिए मान्य शास्त्रादि के उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं। किसी वाक्य, कथन आदि का वे अपनी बुद्धि से या अपने दृष्टिकोण से भी नया अर्थ उपस्थित करते हैं। साथ ही साथ टीका में कुछ नवीन विलक्षणता लाने के लिए शब्द के एकाधिक अर्थ भी लिख देते हैं। अधिकांशतः समयसुन्दर अतिप्रचलित शब्दों या वाक्यों की व्याख्या नहीं करते हैं। जहाँ मूल अति सरल एवं स्पष्टबोधगम्य है, वहाँ वे उसका संक्षिप्त भावार्थ मात्र लिख देते हैं।

समयसुन्दर व्याख्या में कथंभूतम् कथंभूता आदि कीदृशः कीदृशी, कीदृशं आदि प्रश्नसूचक संकेतों द्वारा निर्देश करते चलते हैं कि वे किस पद के विशेषणों की

१. समयसुन्दर कृति कुसुमाजलि, पृष्ठ १२७, नेमिनाथ गीतम् (१-५)

व्याख्या कर रहे हैं। 'पुनः किं विशिष्टम्' आदि रूपों का प्रयोग तो उनकी प्रत्येक टीका में परिलक्षित होता है। कुतः, किमर्थम् प्रभृति प्रयोगों के द्वारा भी वे व्याख्या के पथ को सरल बनाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी व्याख्यात्मक शैली के उदाहरणार्थ उनकी टीकाओं का कोई भी अंश लिया जा सकता है। जैसे — 'सप्तस्मरणस्तव' के सप्तम स्तव 'उपसर्गहर स्तोत्र' की प्रथम गाथा की व्याख्या —

उवसग्गहरंपासं, पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।

विसहरविसनित्रासं, मंगलकल्लाणआवासं ॥

व्याख्या — अहमिति शेषः, 'पार्श्व श्री पार्श्वनाथं वन्दे' स्तवीमि इत्युक्तिः किं विशिष्टं पार्श्वं? 'उपसर्गहरं पार्श्वं' उपसर्गाः दिव्य? मानुष २ तैरश्वा-३ स्मीयवेदनीय ४ भेदाच्चतुर्विधाः तान् हरतीति उपसर्गहरः एवंविधः पार्श्वः पार्श्वनामा यक्षो धिष्ठायको यस्य स उपसर्गहरपार्श्वस्तम्। अत्र स्वर्णमस्तकस्थो नुस्वार आर्षत्वात् अलाक्षणिकः। यथा 'देवनागसुवन्नकिंनरे' इत्यादि। १ अथवा किं विशिष्टं पार्श्वं? उपसर्गहरा धरणेन्द्रादयः पार्श्वे समीपे यस्य स उपसर्गहर-पार्श्वः तं। कथं? धरणेन्द्रादीनां निरन्तरं श्री पार्श्वस्य संनिहितवर्तित्वात् २१ अथवा 'उपसर्गहरं' इति पार्श्वनाथस्य पृथक् विशेषणं। किंविशिष्टं पार्श्वं? 'पश्यं', पश्यति कालत्रयवर्तमानं वस्तुसमूहं इति पश्यः, तं पश्यं ३१ अथवा किंविशिष्टं पार्श्वं? प्राशं प्रगता आशाः कस्यापि वस्तुनः आकांक्षा यस्मात् सः प्राशः तं प्राशं ४, इति अर्थचतुष्टयं ज्ञेयम्। पुनः किंविशिष्टं पार्श्वं? 'कर्मघनमुक्तम्' कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि अष्ट तानि घना इव घना मेघाः कर्मघनाः, अयं भावः-जीवः चन्द्रः, कर्माणि मेघपटालानि तानि ज्ञानरूपकिरणान् आच्छादयन्ति ततः कर्मणां मेघेपमा दत्ता, तेभ्यः कर्मघनेभ्यो मुक्तः कर्मघनमुक्तस्तं। अथवा किंविशिष्टं पार्श्वं? प्राकृतत्वेन आर्षप्रयोगाद्वा विशेषणस्य परनिपातात् घनकर्ममुक्तं, घनानि दीर्घकालस्थितिकानि बहुप्रदेशाग्राणि वा यानि कर्माणि घनकर्माणि तैर्मुक्तम् उत्पन्नकेवलज्ञानमित्यर्थः। पुनः किंविशिष्टं पार्श्वं? 'विषधरविषनिर्नाशं' विषधराः अनन्त वासुकि-कर्कोट पद्म-महापद्म-शंखादय तेषां विषं पार्थिवादिभेदभिन्नं निर्नाशयतीति निश्चितम् अपहरतीति निश्चितम् अपहरतीति विषधरविष निर्नाशस्तं वि०। यतो भगवन्नाममंत्रजापो हि सर्वाविषधरविषनाशकृत् प्रतीत एवं मन्त्रिकादीनां। अथवा विषं पानीयं प्रस्तावत् मणिकर्णिकाजलं तत्र 'हर' इति गृहं निवासो यस्य स विषगृहः प्रायेण वाराणसी नगरवासिनः पञ्चाग्निपश्चरणं मणिकर्णिकातीरे एवं कुर्वाणा दृश्यन्ते, स च सामर्थ्यात् कमठमुनिः, तस्य वृषं-धर्म लौकिकैर्धर्मतया गृह्यमाणत्वात् पञ्चाग्निपश्चर्यालक्षणं निर्नाशयतीति यः स काष्ठान्तर्दह्यमानसर्पदर्शनेन मानभ्रष्टकरणात्तस्य, अनेन विशेषणेन श्री पार्श्वस्य गृहस्थावासः सूचितः। पुनः किंविशिष्टं पार्श्वं? मंगलकल्लाणआवासं मंगलानि आपदुपशमरूपाणि, कल्याणानि च संपदुत्कर्षरूपाणि, तेषां आवास इव आवासः क्रीडास्थानम् अयं च स्तवः श्री पार्श्वनाथ संनिधिभिः पार्श्वयक्ष १ पद्मावती २ धरणेन्द्रैः ३ अधिष्ठितः। ततः एतेषां पार्श्वयक्षादीनां त्रयाणामपि व्याख्यानं कर्तुं युक्तम्। अतः पूर्वं पार्श्व यक्षव्याख्यानम् अहमितिशेषः पार्श्वयक्षं वन्दे अभिवादयामि 'वद अभिवादस्तुत्योः' इत्युक्त्वात्, किंविशिष्ट

पार्श्व? उपसर्गहरं सम्यग्दृष्टीनां विभ्रोपशंमकर्तारम् । १ तथा पाशां पद्मावती वन्दे, पाशो स्या वामहस्ते अस्तीति अभ्रादित्वात् मत्वर्थीये अप्रत्यये पाशा तां पाशां । किंविशिष्टं पाशां? काम्यधनुमुक्तां काम्यः कमनीयो घनः शरीरं तेन करणभूतेन मुद् हर्षोर्थात् द्रष्टृनराणां यस्याः सकाशात् सा काम्यघनमुक्तादिव्यवषुषा लोकानां हर्षजनका इत्यर्थः तां २१ तथा 'विषधरविषनिर्नाशः' धरणेन्द्रं वन्दे अभिवादयामि, विषं पानीयं धरतीति विषधरां मेघं अर्थात्कमठासुरसंबंधी, तस्य विषं जलं निर्नाशयतीति निजफणरूपच्छत्रधरणेन वारयतीति विषधरविषनिर्नाशस्तं वि० । किंविशिष्टं धरणेन्द्रं 'मंगलकल्लाणआवासं' अर्थः प्राग्वत् । अथवा मंगलकल्याण श्रेयस्करणप्रगुणा या आज्ञा भगवच्छाशनं तथा आ समंतात् वासो भावना यस्य सः तं मं० कल्याणकारिभगवदाज्ञाभावितमानसमित्यर्थः ३१ इति अर्थत्रयकरणम् । अस्यां च गाथायां प्रथमायां जगद्वालभ्यकरं, सौभाग्यकरं, भूतादिनिग्रहकरं क्षुद्रोपद्रव द्रावणमिति (मित्यादि) यंत्राष्टकं, पार्श्वयक्षयक्षिण्यादिमन्त्राश्च सन्ति । इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

समयसुन्दर की व्याख्यागत विशेषता का उल्लेख करते हुए महोपाध्याय विनयसागर लिखते हैं, 'काव्य, अलङ्कार, छन्द, आगम, स्तोत्र आदि प्रत्येक साहित्य पर कवि ने टीकाओं की रचना की है । इन टीका ग्रन्थों को देखने से यह तो निर्विवाद है कि टीकाकार का जिस प्रकार का पाण्डित्य, बहुश्रुतज्ञता और योग्यता होनी चाहिये, वह सब कवि में मौजूद है । कवि, प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की अपेक्षा भी मूल काव्यकार के भावों की, अर्थगांभीर्य को सरस रस प्रवाहयुक्त प्रकट करने में सफल हुआ है ।'^१

२.९ मिश्रित भाषा-शैली

प्रस्तुत शैली से हमारा अभिप्राय समयसुन्दर की उस शैली से है, जिसमें मुख्यतः दो भाषाओं का मिश्रण हो । समयसुन्दर ने ऐसे अनेक गीत लिखे हैं, जिनमें एक साथ दो अथवा उससे अधिक भाषाएँ प्रयुक्त हुई हैं । वस्तुतः उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था । दो भाषाओं में संयुक्तरूप में रचना करना बहुत कठिन होता है । समसंस्कृत और प्राकृत भाषा में रचना करना वैदग्ध्य का सूचक है । उन्होंने संस्कृत और हिन्दी मिश्र भाषा में भी रचनाएँ लिखी हैं । सत्यतः कवि का भाषा कौशल इन रचनाओं से मुखरित होता है ।

मिश्रित भाषा शैली में लिखित रचनाओं के प्रत्येक पद्य के प्रथम और तृतीय पाद एक भाषा में हैं और द्वितीय एवं चतुर्थ पाद अन्य भाषा में । उदाहरणार्थ कुछ पद्य प्रस्तुत हैं —

समप्राकृत-संस्कृत
लसण्णाण-वित्राण-सन्नाण मेहं,
कलाभिः कलाभिर्युतात्मीयदेहम् ।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ७९

मणुण्णं कलाकेलिरूवाणुगारं,
 स्तुवे पार्श्वनाथं गुणश्रेणिसारम् ॥
 सुआ जेण तुम्हाण वाणी सहेवं,
 गतं तस्य मिथ्यात्वमात्मीयमेयम् ।
 कहं चंद मज्झिंल्ल पीउसपाणं,
 विषापोहकृत्ये भवेत्तं प्रमाणम् ॥
 — पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (१-२)

हिन्दी-संस्कृत

भलूँ आज भेटयुं प्रभो पादपद्मम्, फली आस मोरी नितान्तं विपद्मम् ।
 गयूं दुःख नासी पुनः सौम्यदृष्ट्या, थयूं सुख झाञ्जुं यथा मेघवृष्ट्या ॥
 जिके पार्श्वकेरी करिष्यन्ति भक्ति, तिके धन्य वारु मनुष्या प्रशवितम् ॥
 भली आज वेला मया वीतरागाः, खुशी मांहि भेट्या नमद्देवनागाः ॥
 — श्री पार्श्वनाथाष्टकम् (१-२)

२.१० पादपूर्ति-शैली

कवि समयसुन्दर की विविध प्रतिपादन शैलियों में पाद-पूर्ति-शैली एक है। इस शैली के अन्तर्गत हम समयसुन्दर की समस्यापूर्ति-शैली को भी समाहित करते हैं। पादपूर्ति शैली में किसी अन्य कवि की रचना के छन्द के एक चरण को लेकर उसी छन्द में शेष चरणों की पूर्ति की जाती है। इसी तरह समस्यापूर्ति शैली में किसी समस्या के आधार पर कोई छंद बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। कवि उक्त दोनों शैलियों में सिद्धहस्त थे। समस्यापूर्ति एवं पाद-पूर्ति करना उनके लिए सामान्य बात थी। साधारणतया इस शैली में लिखना कठिन होता है, केवल निष्णात कवि ही इस शैली में लिखने का साहस कर सकता है। वस्तुतः इस शैली में रचना करने के लिए प्रखर प्रतिभा तथा कवि सुलभ अचिन्त्य चेतना अनिवार्य होती है। जिस पाद या समस्या की पूर्ति करनी है, उसके भावों की रक्षा, रचना-माधुर्य, रस-प्रवाह आदि का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक होता है। समयसुन्दर इस कसौटी पर पूर्ण खरे उतरे हैं। श्री जिनसिंहसूरि पदोत्सवकाव्य (रघुवंश तृतीय सर्ग पाद पूर्ति), ऋषभ भक्तातर स्तोत्रम् (भक्तामर स्तोत्र पादपूर्ति) समस्याष्टकं समस्यामयं पार्श्वनाथ वृहत्स्तवनम् आदि रचनाएँ इन्हीं शैलियों में निबद्ध हैं। समस्यापूर्ति में तो समयसुन्दर इतने कुशल थे कि उन्होंने एक समस्या की पूर्ति भी भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। यथा - 'शतचन्द्रनभस्तलम्' समस्या पूर्ति -

प्रभुस्त्रात्रकृते देवानीयमानान् नभे घटान् ।
 रौप्यान् दृष्ट्वा नराः प्रोचुः शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 रामया रममाणेन कामोद्दीपनमिच्छता ।
 प्रोक्तं तच्चारु यद्येवं शतचन्द्रनभस्तलम् ॥

सर्वज्ञेन समादिष्टं सार्द्धद्वीपद्वये ध्रुवम् ।
 द्वात्रिंशताधिकं भाति शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 हस्त्यारोह शिरस्त्राणश्रेणिमालोक्य संगरे ।
 पतितो विह्वलो वादीत् शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 भुक्तधत्तूरपूरत्वाद् भ्रान्तदृष्टिरितस्ततः ।
 अपश्चत्कोपि सर्वत्र शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 दर्पणश्रेणिमालोक्य सौधाभ्रं लिहतोरणे ।
 स्माह सुप्तोत्थितः कोपि शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 नभः प्रकाशवद्भाति यथैकेन खरांशुना ।
 तथा सखि कदापि स्यात् शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 यत्र-तत्र जलस्थाने दृश्यते जलचन्द्रमाः ।
 तत्किं सखि संजातं शतचन्द्रनभस्तलम् ॥^१
 ग्रस्यते राहुणा नित्यमेक एकहि मत्प्रियः ।
 सृष्टमासात्तदा श्रेष्ठं शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 हीनाधिककलाभेदाद्द्विविधो दृश्यते विधुः ।
 वत्तीत सुभगं तत्के शतचन्द्रनभस्तलम् ॥
 न पश्येत्पुण्यहीनो हि निधानं पुरतः स्थितम् ।
 किमन्धः शतसूर्यं वा शतचन्द्रनभस्तलम् ॥^२

‘श्री जिनसिंहसूरिपदोत्सव’ काव्य एवं ‘ऋषभ भक्तामर’ पादपूर्ति-शैली में अपनी कुछ विशेषताएँ रखते हैं। प्रथम कृति में कवि ने कालिदास कृत् रघुवंश के तृतीय सर्ग को अपना रचना-आदर्श माना है। पादपूर्ति-शैली में होने के कारण उन्होंने रघुवंश के तृतीय सर्ग के प्रत्येक पद्य के चतुर्थ चरण को अपने ‘श्री जिनसिंहसूरि पदोत्सव’ काव्य का चौथा चरण बनाया है; किन्तु विशेषता यह है कि प्रत्येक पद्य की तीन पंक्तियाँ इस प्रकार रची गयी हैं कि उनके भाव का चतुर्थ पंक्ति के भाव से संबंध हो गया है। यद्यपि रघुवंश और ‘श्री जिनसिंहसूरि पदोत्सव’ काव्य — इन दोनों काव्यों के कथानक भिन्न हैं, तथापि समयसुन्दर के कालिदास के आदर्श की प्रत्येक पद्य में समस्यापूर्ति की है। और इस प्रकार पादपूर्ति-शैली में रघुवंश के तृतीय सर्ग के सम्पूर्ण कथानक को सफलतापूर्वक निभाया है। यही बात ‘ऋषभ भक्तामर स्तोत्र’ के बारे में भी जाननी चाहिये। इस कृति में आचार्य मानतुंग रचित भक्तामरस्तोत्र की पादपूर्ति है। दोनों कृतियों की शैली में माधुर्य है। निम्नलिखित अवलोकनीय है —

१. इदं द्वात्रिंशदांयुक्त

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ ४९७ (१-१६)

यदूर्ध्वरेखाभिधर्महिपंकजे, भवान्ततः पूज्यपदं प्रलब्धवान् ।
 प्रभो महामात्यवितीर्णकोटिशः सुदक्षिणा दो हृद! लक्षणं दधौ ॥
 अरे! महाम्लेच्छनृपाः पलाशिनः, पशुव्रजां, मां हत चेद्धितैषिणः।
 त्वमाच्छमैवं निशितान्, भृशं गुरो! नवावतारं कमला दिवोत्परम् ॥ ३८ ॥

—जिनसिंहसूरि पदोत्सव काव्य

नमेन्द्रचन्द्र! कृतभद्र! जिनेन्द्रचन्द्र!

ज्ञानात्मदर्श-परिहृष्ट-विशिष्ट! विश्व!

त्वन्मूर्तिरर्त्तिहरणी तरणी मनोज्ञे-

वालम्बनं भवजले पततां जनाम् ॥ १ ॥

केशच्छटां स्फुटतरां दधदङ्गदेशे,

श्री तीर्थराजविबुधावलिसंश्रितस्त्वम् ।

मूर्धस्थकृष्णलतिका सहित च शृङ्ग-

मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥ ३० ॥

— ऋषभ भक्तामर स्तोत्रम्

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि समयसुन्दर की भाषा-शैली बहुआयामी है। इसीलिए उपर्युक्त विवेचन में किसी एक प्रकार की शैली का उल्लेख न करके विविध शैलियों का विवेचन किया गया है। 'जैसी विषय-वस्तु वैसी शैली' यही उनकी शैलीगत विविधता का कारण है। कविवर की सभी शैलियाँ प्रभावपूर्ण हैं। वस्तुतः प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है।

समयसुन्दर की भाषा-शैली औदात्य एवं औचित्यपूर्ण है। उचित स्थलों पर उचित शब्दों का प्रयोग हुआ है। वे ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो प्रचलित हैं और व्यापक अर्थ को समेटे हुए हैं। शाब्दिक अलंकारों के प्रयोग में कवि ने संयम बरता है, मिथ्याप्रदर्शन से उनकी रचनाएँ दूर हैं। पण्डित पुरुष होने के कारण स्वभावतः जो अलंकारिकता का समावेश हुआ है, उससे उनकी भाषा-शैली अपने लक्ष्य की पूरक एवं प्रभावोत्पादक है। वह माधुर्यपूर्ण, ओजयुक्त और प्रसादमयी है।

३. भाषा-शक्ति

साहित्य वैयक्तिक अनुभूति की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। इसीलिए उसे सामान्य सर्वजनीन भाषा में व्यक्त करने की अपेक्षा कुछ कलात्मक भाषा में व्यक्त किया जाता है। वास्तव में विशिष्ट के प्रकाशन के लिए भाषा में भी कुछ विशिष्टता होनी चाहिये।

भाषा के मुख्य दो रूप होते हैं — १. सामान्य भाषा और २. काव्यभाषा। समयसुन्दर के साहित्य में यों तो दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है, किन्तु अन्तर को दृष्टि से काव्य-भाषा प्रयुक्त है। यथार्थतः तो सामान्य भाषा ही आधार भाषा है, काव्यभाषा उसी पर आधृत होती है। दोनों भाषाओं की ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि आधारभूत

भाषित सामग्री एक ही होती है। अन्तर इतना ही है कि सामान्य भाषा तो उसका यथावत् प्रयोग करती है, किन्तु काव्य भाषा उस कच्चे माल को अपनी कल्पनाशील सर्जनात्मकता के द्वारा नवीन आयाम और नवीन अर्थवत्ता प्रदान कर देती है। अतः मूलभाषा सामान्य भाषा ही है। उसी की नींव पर काव्य भाषा का प्रासाद खड़ा होता है। इन दोनों में प्रकृतिगत भेद न होकर केवल गुणात्मक भेद है।

समयसुन्दर की भाषा सामान्य भाषा की अपेक्षा काव्य-भाषा ही अधिक है। उसमें सामान्य भाषा की अपेक्षा नवीनता, प्रभविष्णुता, अर्थवत्ता, शक्ति-सामर्थ्य और आकर्षण है। उन्होंने अपने काव्यों में ग्राम्य-भाषा के शब्दों को भी इस तरह संजोया है कि वे स्वर्ण-मुद्रिका में जड़ित रत्न के समान चमकते हैं —

फलवर्धि मण्डण पास, एक करूँ अरदास।

कर जोड़ी करएि, हरख हियड़उ धरिए॥

कहने की जरूरत नहीं है, यहाँ द्वितीय पंक्ति में हर्ष और हृदय शब्द उतने नहीं फबते जितने लोक-भाषा के 'हरख', 'हियड़उ' फब रहे हैं; जबकि अन्य स्थानों पर कवि ने 'हरख' के लिए हर्ष और 'हियड़उ' के लिए हृदय शब्द ही प्रयोग किया है। समयसुन्दर की भाषा की आन्तरिक विशेषता यही है कि वे वर्ण्यविषयानुरूप अपनी भाषा को ढाल लेते हैं।

समयसुन्दर की भाषा-शक्ति अद्वितीय है। उसकी अपनी विशेषताएँ हैं। भाषा-शक्ति ने ही उनके काव्यों को सरस और सुबोध बनाया है। यह सत्य है कि काव्य-दृष्टि से काव्य-रचना समयसुन्दर का लक्ष्य नहीं था, फिर भी उनकी रचनाओं में उच्च कोटि का कवित्व विद्यमान है, जिसके अवलोकन से उनकी भाषा-शक्ति का परिचय देने वाली अनेक विशेषताएँ सामने आती हैं।

समयसुन्दर की भाषाशक्ति की प्रथम विशेषता है - अप्रस्तुत योजना अथवा सादृश्य योजना। अप्रस्तुत योजना अथवा सादृश्य योजना के द्वारा ही कवि के अभिव्यक्ति-कौशल को आंका जा सकता है। काव्य-क्लेवर की समृद्धि एवं भाव-व्यंजना के लिए इसकी योजना की जाती है। समयसुन्दर के साहित्य में इसकी अत्यन्त समृद्ध योजना हुई है। उन्होंने जिन उपमानों का प्रयोग किया है, वे अपने-आप में पूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं। उनके साहित्य में एक भी ऐसा उपमान दिखाई नहीं देता है, जो बिम्ब प्रस्तुत करने में असमर्थ हो। समयसुन्दर ने अपनी अभिव्यक्तियों को सशक्त एवं कलात्मक बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपमानों की योजना की है, जिसमें वे सफल हुए हैं। उदाहरण के लिए यहाँ केवल एक ही पद्य प्रस्तुत करते हैं, विशेष चर्चा हम पंचम अध्याय के अलंकारशिल्पान्तर्गत करेंगे —

प्राचीदिग्रमदा चक्रे विशाले भालपट्टके।

बालारुणरवेबिम्बं चारुसिन्दूरचन्द्रकम् ॥

कविवर्य समयसुन्दर की भाषा-शक्ति की दूसरी विशेषता है — चित्रात्मकता। यहाँ चित्रात्मकता से अभिप्राय है, शब्दों द्वारा चित्र-निर्माण करना। कवि ने अपने कथन को वाचकों तक पूर्णतः पहुँचाने हेतु विविध चित्र उपस्थित किये हैं। यही चित्र उनकी काव्यभाषा को चित्रमय बना देते हैं। कथ्य की स्पष्टता ही चित्र की स्पष्टता है। यदि कथ्य स्पष्ट नहीं होगा, तो चित्र भी धूमिल रह जायेगा। समयसुन्दर के चित्र स्पष्ट एवं आकर्षक हैं। कहीं-कहीं इन चित्रों में दार्शनिक शब्दावली भी प्रयुक्त हुई है। इससे उनमें दुरूहता अवश्य आयी है, किन्तु उन शब्दों का अर्थबोध हो जाए, तो अस्पष्टता सामान्य-सी भी नहीं रहती है। उसके स्थान पर और अधिक अर्थ-विस्तार होता है।

आलोच्य साहित्य में स्थूल एवं सूक्ष्म — दोनों प्रकारीय चित्र हैं। बृहद् रचनाओं में स्थूल चित्र एवं लघु रचनाओं में सूक्ष्म चित्रों का आधिक्य है। सूक्ष्म चित्र स्थूल चित्रों की अपेक्षा अधिक सजीव एवं संवेदनशील हैं, क्योंकि वे जीवन के अनुभवों को प्रकट करते हैं। ये चित्र पद्यबद्ध हैं। संक्षेप में, कवि इन चित्रों के द्वारा इच्छित भावों को पाठक तक प्रेषणीय बनाने में समर्थ हुए हैं।

समयसुन्दर की भाषा की तीसरी विशेषता है, स्वाभाविक अभिव्यक्ति। वस्तुतः काव्य में स्वाभाविकता का गुण जितना ज्यादा होगा, वह उतना ही ज्यादा प्रभावशाली बनेगा। यद्यपि यह सही है कि समयसुन्दर की भाषा काव्यभाषा है, लेकिन वह जन-भाषा से दूर नहीं है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश रचनाएँ सप्रयत्न श्रृंगारित नहीं हैं। स्वाभाविकता श्रृंगार तो काव्य को और अधिक मार्मिक बना देता है। देखिये, कवि की स्वाभाविक और भाषा-शक्ति —

कागद थोड़ो हेत घणउ, सो पिण लिख्यो न जाय ।
सायर माँ पाणी घणउ, गागर में न समाय ॥
प्रीत प्रीत ए सहु को कहइ, प्रीति प्रीति में फेर ।
जब दीवा बड़ा किया, तब घर में भया अंधेर ॥^१

‘प्रस्ताव सवैया छत्तीसी’ आदि रचनाओं में तो कविवर साधारण शब्दावली में भी गूढ़ रहस्यात्मक बातों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुए हैं। ऐसी रचनाओं में वे कबीर की भाँति पूर्ण उन्मुक्त है, कुण्ठा-रहित हैं। वे स्वयं दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल और वज्रादपि कठोर दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण वे न केवल दूसरों को अपितु अपने शिष्यों व श्रावकों को भी करणीय कार्य न करने पर फटकार देते थे। देखिये उनकी स्वाभाविकता और व्यंग्यात्मकता —

बूढ़ा ते पिण कहियइ बाल, व्रत बिना जे गमावइ काल ।
जीमइ पोहर बि पोहर प्रमाण, पण न करइ नोकारसी पचखाण ॥

१. प्रीति दोहा (१-२)

पाणी न पीवइ राते इकि वार, पण न करइ रात्रे चउ बिहार ।
नीलवण खावे नहीं दस के बार, पिए माथइ पाप भार अढार ॥
नवरा रहइ न करइ को काम, पण न लियइ परमेसर तुं नाम ।
गांठ रुपइया त्रण के चार, पिण न करइ सुंस पचास हजार ।
चउपद मांहे घरि छाली नहीं, हाथी नुं सुंस न सके ग्रही ।
विनय विवेक ने जाणे मरम, श्रावक होइ नइ न करे धरम ॥
पोषउ करइ ने दिवसे सूवै, ते धर्म फल पोषह नो खूवै ।
क्रिया न करइ कहावइ साध, नाम रतन दाम न लहइ आध ।
मनुष्य जन्म नवि हारो आल, तमे पाणी पहली बांधो पाल ॥^१

उपर्युक्त उदाहरण में लाक्षणिकता भी निहित है। कवि की भाषा की एक और जो विशेषता है, वह लाक्षणिकता ही है। विशेषतः मुहावरों के द्वारा काव्य में लाक्षणिकता आती है। समयसुन्दर की भाषा में यत्र-तत्र मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। स्थान-स्थान पर सूक्तियों के प्रयोग से भी उनकी भाषा प्रभावपूर्ण बनी है। पंचम अध्याय में समयसुन्दर के साहित्य में प्राप्त जिन साहित्यिक तत्त्वों का हम निरूपण करेंगे, वे सब उनकी भाषा की अन्तरंगीय एवं बहिरंगीय विशेषता की ही प्रकाशक हैं।

संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि समयसुन्दर की भाषा में भाव-प्रकाशन की योग्यता के लिए जितने गुणों की अपेक्षा है, वह उसमें समन्वित है। उनकी भाषा में सहज प्रवाह और भावानुकूल परिवर्तित होते चलने का सामर्थ्य है। माधुर्य, ओज एवं प्रसाद — इन तीनों काव्य-गुणों का समावेश उसमें उपलब्ध होता है। समयसुन्दर ने लक्षणा-व्यंजना के स्थान पर उसकी अभिधा-शक्ति से ही अधिकतर काम चलाया है। अलङ्कार प्रयोग से उनकी भाषा चमत्कारपूर्ण व ललित बन पड़ी है। रस-परिपाक उनकी भाषा की आत्मा है। आशय यही है कि समयसुन्दर की भाषा अनेक विशेषताओं को अपने में समेटे हुई है, फिर वह भाषा चाहे संस्कृत हो या प्राकृत, हिन्दी हो या सिन्धी। वह उस ग्राम्या नवयुवती के सदृश है, जो अपने सहज-सौन्दर्य, रूप-लावण्य और पद-विन्यास से पाठक या श्रोता को मुग्ध कर देती है, उसमें नागरी का हाव-भाव, वक्र-भंगी और रहस्यमयता का अभाव है।



चतुर्थ अध्याय

समयसुन्दर का वर्णन-कौशल

वस्तु-वर्णन काव्य का अनिवार्य अंग है। उसके द्वारा कवि के व्यापक अनुभव और अन्वीक्षण-शक्ति का पता लगता है। हमारे विवेच्य कवि समयसुन्दर का वर्णन-कौशल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी पद्य-कृतियों में तो उनका कौशल मुखरित हुआ ही है, गद्य कृतियों में भी इसे सहजतः देखा जा सकता है। 'कालिकाचार्यकथा' यद्यपि एक गद्यात्मक रचना है, परन्तु उसमें आद्योपान्त वस्तु-वर्णन के दर्शन होते हैं और सभी विस्तृत एवं प्रभावशाली हैं।

समयसुन्दर अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति और उसकी निकटतम एवं दूरतम परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देते हैं। वे अपनी वर्णनीय वस्तु का इतना सूक्ष्म और सप्राण वर्णन करते हैं कि उसमें सुन्दर-बिम्ब मूर्तरूप हो जाता है। अनुभूत जगत् से उठाए हुए बिम्ब ही उनके वर्णन-कौशल की नींव हैं। वे प्रसंग मिलते ही वर्णनीय वस्तु का बिम्ब ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। उन्होंने विभिन्न वर्णनों में विभिन्न प्रकार से अपनी पटुता प्रदर्शित की है। वर्णन-कौशल के कारण ही उनकी रचनाएँ निरन्तर मूर्तवस्तु का दर्शन कराती हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हम समयसुन्दर के वर्णन-कौशल की चर्चा करेंगे।

१. प्रकृति-वर्णन

आरम्भ से ही मानव-मन प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहा है। प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। चिन्तन-मनन एवं कलात्मक सृजन के लिए यह उसे सदैव प्रेरित करती रही है। काव्य का सृजन भी प्रकृति की गोद में होता है। कवि सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। वह प्रकृति की प्रत्येक घटना से साधारणीकरण कर लेता है।

महाकवि समयसुन्दर ने अपने काव्यों में प्रकृति का सुन्दर चित्रांकन किया है। उन्होंने प्रकृति-वर्णन साधन रूप की अपेक्षा साध्य रूप में प्रस्तुत किया है। काव्यशोभा के वर्द्धन के लिए कवि ने अलंकार के रूप में प्राकृतिक वस्तुओं एवं उसके उपकरणों का प्रयोग किया है। कविवर ने जड़ रूप तथा चेतन रूप प्राकृतिक उपकरणों पर मानवीय चेतना, उसके सजीव व्यक्तित्व एवं क्रिया-कलापों का भी स्थान-स्थान पर आरोपण किया है। कवि ने प्रकृति के यथातथ्य चित्र भी अंकित किये हैं, जिनमें प्रकृति अप्रस्तुत की व्यञ्जना की भी माध्यम बनी है।

यद्यपि प्रकृति-वर्णन के लिए महाकवि भवभूति की प्रसिद्धि है, किन्तु जब हम विवेच्य साहित्य का प्रकृति-वर्णन देखते हैं, तो लगता है कि इसका प्रकृति-वर्णन भवभूति के प्रकृति-वर्णन से कम नहीं है। समयसुन्दर की लगभग सभी काव्य-रचनाओं में प्रकृति का न्यूनाधिक रूप में मनोमुग्धकारी, सुकुमार एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

कविवर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के उपासक थे। अतः उनकी दृष्टि रमणीय और मधुर दृश्यों में भी गई है। उनकी अन्तः और बाह्य प्रकृति का सुन्दर समन्वय उनकी रचनाओं में दर्शनीय है। यथार्थता से मंडित प्राकृतिक वर्णनों का चमत्कार सरस हृदयों को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति के रूप वैभव में भी परिवर्तन आ जाता है। वसन्त ऋतु में प्रकृति का विशेष आवर्जक रूप प्रकट होता है। इसलिए वसन्त का वर्णन प्रायः प्रत्येक कवि करता है। कवि समयसुन्दर ने भी वसन्त का वर्णन कई बार किया है, उदाहरणार्थ —

एहवइ मास वसन्त आवियउ, भोगी पुरषां मनि भावियउ ।
 रूडी परि फूली वणराइ, मइकइ परिमलं पुहवि न भाई ॥
 सखर घणुं मउर्या सहकार, मांजरि लागी महकइ सार ।
 कोयलि बइठी टहुका करइ, साखा ऊपरि मधुरइ सरइ ॥
 छयल छबीला नर छैकाल, गायइं वायइं बाल गोपाल ।
 चतुर माणस ते हाथे चंग, मेघनाइ वाजइं मिरदंग ॥
 फुटरा गीत गायइं फागना, रसिक तेह कहइं रागना ।
 ऊडइं लाल गुलाल अबीर, चिहुँ दिसि भीजइ चरणा चीर ॥^१

अपि च-

तिण अवसर सोहामणो आयो वसन्त सुरंगा खेलणा ॥
 रसिया खेले बाग में गाइ राग वसन्त ॥
 वउलसिरी जाइ जूइ कुंद अनै मचकुंद ।
 चंपक पाडल मालती, फुल रहिया अरविंद ।
 मरुउ दमणउ मोगरो, सब फूली वनराय ।
 एक न फूली केतकी, पिउ बिन हरख न थाय ॥
 आंबा मउर्या अति भला, मांजरि लागा सार ।
 कोयल करे टहुकड़ा, चिहुँ दिस भमर मुंजार ।
 जुगबाहु रमवा चल्थो, मयणरेहा लेइ साथ ।
 बाग मांहि रमे रंग सुं, डफ बाजै निज हाथ ॥

१. सिंहलसुत चौपाई (१. ५-८)

निर्मल नीर खंडोखली, झीले राज मराल ।

प्रमदा सुं प्रेमे रमे, नाखे लाल गुलाल ॥^१

वर्षा काल के सजीव वर्णन की कमनीयता भी उल्लेखनीय है —

आयो वर्षाकाल, चिहुं दिसि घटा उमटी ततकाल । गडडाट मेह गाजइ, जाणे नालि गोला बाजइ । कालइ आभइ, वीजलि झबकइ, विहरणी ना हीया द्रवकइ । पपीहा बोलइ, वाणिया धान वखार खोलइ । बोलइ मोर, दादूर करइ सोर । अंधार घोर, पइसइ चोर । कंदर्प करइ जोर, मानिनी स्त्री भर्तारनइ करइ निहोर । चन्द्रसूरिज बादले छाया, पंथिजन आप आपणा घरनइ धाया । राजहंस मानसरोवरभणी चाल्या, लोके वस्तुवाना वखारमइ घाल्या । बगपंगति सोहइ, इन्द्रधनुष चित्त मोहइ । आभ थयो रातउ, मेह थयो मातउ । मोदी छाँट आवइ, लोकानइ मन भावइ । झड़ी लागी, करसणीरी भाग्यदसा जागी । मूसलधारइ मेह बरसइ, पृथिवी उर्णपूर्ण करिवानइ तरसइ । बहइ प्रणाल, खलखलइ खाल । चूयइ ओरा, भीजइ वस्तुवाना बोरा । टबकइ परसाल, चिंचूयइ बाल । नदी आवी पूर, कडणिरा रंख भांजी करइ चकचूर । वहइ वाहला, लोक थया काहला । जूना दूढा पडइ, लोक ऊँचा चडइ । हालीए खेत्र खड्या, वाडिसुं सेढा जड्या । मारग भागा, जे जिहां ते तिहां रहिवा लागा । प्रगट्या राता ममोला, धान थया सुंहगा मोला । नोली हरी उहडहीं, घणा हूया दूध नइ दही । नीपना घणा धान, सांभर्या धर्म नइ ध्यान । गयउ शेर, लोक करइ बकोर । गयउ दुकाल, आयउ दंदू दुकाल ॥^२

यहाँ कवि ने न केवल वर्षाऋतु की शोभा का चित्रण किया है, वरन् उसके तज्ज्जित प्रभाव को भी दर्शाया है ।

‘बारहमासा’ नामक रचना में समयसुन्दर ने समस्त ऋतुओं एवं मानव-प्रकृति के ऊपर होने वाले उसके प्रभाव का भी अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है, जिसका उल्लेख हमने ‘रस-परिपाक’ में शृंगार-रस के अन्तर्गत किया है ।

कविवर्य ने अपने काव्यों में प्राकृतिक सौन्दर्य को पुनः पुनः अभिव्यक्त किया है । राम, सीता और लक्ष्मण — तीनों एक गहन वन में से गुजरते हैं । कवि ने उस वन का वर्णन इस प्रकार किया है —

पंछी कोलाहल करइं, सीह करइं गुंजार ।

केसरि कुम्भ विदारिया, गजमोती अंबार ॥

चिहुं दिसि दीसइं चीतरा, वलि दावानल दाह ।

वानर वोंकारव करइं, वनमइ विढइ वराह ॥

१. चारप्रत्येकबुद्ध चौपाई (२.४.१-६)

२. कालिकाचार्य-कथा पृष्ठ २०४

व्यग्रचित्त वन लांघियउ, चालि गया चीत्रउडि ।

नाना विध वनराइ जिहाँ, चित्राँगदनी ठउडि ॥^१

रावण सीता को प्रसन्न करने के लिए उसे पुष्पक विमान में बैठाकर पुष्पगिरि के सुन्दर उद्यान में ले गया। उस उद्यान का चित्रण दर्शनीय है —

गयउ पुष्पगिरिनइ शृंगि, उद्यान तिहां अति चंग ।

नारेलनइं नारिंग, बहु फणस चंपक चंग ॥

बहु नागनइं पुन्नाग, जिहां घणा सरला लाग ।

आसोग तिलक उत्तंग, सहकार वृक्ष सुरंग ॥

कंचण तणा सोपान, जिहां जल अमृत समपान ।

एहवी वावडी नीर, सीता मुंकी दिलगीर ॥^२

प्रकृति-चित्रण में हाथी का चित्रण भी अनुपम है —

मद मत्त गंडस्थल मद्य झरइ, भमरा भमरी चिहूँ पासि भमइं ।

सिर लाल सिंदूर कीयउ सिणगार, सुंडा दंड उंचउ उलालइ नमइ ॥

घणणुं घणणुं गल घंट बगइं गज गर्ज करइ जाणै मेघ घुमइं ॥^३

कविवर ने प्राकृतिक वस्तुओं का मानवीकरण भी किया है। नल के दुःखों को देख पाना सूर्य के लिए भी असह्य है और इसीलिए वह अस्त हो जाता है —

सूरिज आथम्यउ हूँ नहीं रहुं रे । नल दुख देखस्यइ हूँ नहीं सहुं रे ॥^४

जब नरेश शतानीक मृगावती की खोज में मलयाचल प्रदेश के तापस-आश्रम में पहुँचता है, तो प्रकृति उसका भव्यतम स्वागत और अभिवादन करती है —

पवन कंपाव्या ब्रह्म नम्या, ते तुझ करइ प्रणाम ।

अभ्यागत आव्या भणी, विजय घणउ इण ठाम ॥

कोयल करइं टहुकड़ा, मोर करइ किंगार ।

स्वागत पूछइ तुझनइ, तरुवर पणि सुविचार ॥^५

वस्तुतः प्रकृति स्वयं अचेतन है, किन्तु कवि ने इसे चेतन बना दिया है।

उदाहरणार्थ — ‘तृष्णाष्टकम्’ रचना में कवि ने अचेतन तृण को जिस रूप में चित्रित किया है, उससे ऐसा नहीं लगता है कि तृण मानव के समान सचेतन न हो —

१. सीताराम-चौपाई (३. दू. १२. ३-५)

२. सीताराम-चौपाई (५.६.५१-५३)

३. नेमिनाथ सोहला गीतम् (२३)

४. नलदवदन्ती रास (२.३.४)

५. मृगावती-चौपाई (१. ८.३-४)

अच्छंदकविवादे त्वं भज्यमानं तु नाऽभनक् ।
 वीरोक्तिं कृतवान् सत्यां तद्धन्यं जन्म ते तृण ॥
 साधुचक्षुर्व्यथोद्भूत-पापशुद्धिकृते तृणम् ।
 पुनः पुनर्ज्वलत्याशु कृशानौ जनसाक्षिकम् ॥
 राज्यद्वित्यक्तवान् सर्वां निःस्पृहः करकण्डुराट् ।
 परं त्वां तृण नामो च द्वालभ्यं भुवि ते महत् ॥
 अहो ते तृण माहात्म्यं विवादे पतिते त्वयि ।
 सत्याय मस्तके न्यस्ते तत्क्षणं भज्यते कलिः ॥
 कृते पंचामृते भोज्ये ताम्बुले भक्षिते तृण ।
 वक्त्रशुद्धिकरन्तु त्वं वरांगस्थिति तन्महत् ॥
 अहो ते तृण सौभाग्यं शर्कराभः समं ततः ।
 अन्तरालिङ्गसे स्त्रीभिर्यथा सौभाग्यवान् नरः ॥
 तृणशक्तिरहोदर्भ - तृणझाटेन मन्त्रतः ।
 दुष्टस्फोटकभूतादिदोषा यान्ति यतः क्षयम् ॥
 छाया सद्मोपरिस्थस्त्वं दंतस्थो युधि जीवनम् ।
 गो जग्ध मसि दुग्धं तदुपकारि महत् तृण ॥^१

रज का मानवीकरण भी अवलोकनीय है —

देवगुर्वोरिव शेषां शीर्षत्वां स्थापयन्त्यमी ।
 हस्तेने हस्तिनो हर्षादहो ते धूलि मान्यता ॥
 स्वस्ति श्री मति लेखेपि यत्नतः प्रेषितेपि च ।
 परं सिद्धिस्तवाधीना शक्तिस्ते रज इदृशी ॥
 जगदाधारभूतेन जलदेन पुरस्कृताम् ।
 वातेनोढां निरीक्ष्यत्वां घनाशा जायते नृणां ॥
 सर्वसहा प्रश्रुतित्वात्मर्घमानं पदैरधः ।
 न कुप्यसि कदापि त्वं रजस्ते क्षान्तिरुत्तमा ॥
 यस्या नाम पदाधस्त्यां त्वां लात्वा रविवासरे ।
 मस्तके क्षिप्यते मंत्रात् सा स्त्रीवश्या रजो नृणाम् ॥
 गालिदाने न रुड् लज्जे यत्र स्वेच्छा कृतं सुखम् ।
 रजः पर्व यतो जज्ञे तत्मान्यं कस्य नो रजः ॥
 रथ्यासु रममाणानां शिशुनां पांसुशालिनाम् ।
 धूले त्वं स महर्घ्यापि शृंगारादतिरिच्यसे ॥

१. तृणाष्टकम् (१-८)

अप्रार्थ्याप्यनभीष्टापि सुलभापि पदे-पदे ।

अहो ते धूलि माहात्म्यं लक्ष्मीरित्वाभिधीयसे ॥^१

समयसुन्दर ने उदीयमान सूर्य का चित्रण अत्यधिक लालित्यपूर्ण किया है। इसमें एक ही सूर्य मण्डल की अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षा बहुत ही सहृदयग्राही एवं आकर्षक है। यथा —

चतुर्यामेषु शीतार्त्तायामिनी कामिनी किमु ।
 तापाय तपनोदगच्छदिग्म्बमङ्गैष्टिकां व्यधात् ॥
 दिनश्रीधिकृता यांती रुष्टा रात्रि निशाचरी ।
 वह्निज्वालावलीर्मुञ्चतीव भानुप्रकाशतः ॥
 प्राचीदिग्प्रमदा चक्रे विशाले भालपट्टके ।
 बालारुणरवेबिम्बं चारुसिन्दूरचन्द्रकम् ॥
 पश्यन्त्या वदनं प्राची पद्मिन्यां दर्पिणेऽरुणः ।
 प्रवालाधररागेण रविबिम्बमिव प्रगे ॥
 प्रतीच्याभिमुखं क्रीडोच्छालनाय नवाऽरुणः ।
 प्राचीकन्याकरस्थः किं रक्तद्युत्तरत्नकंदुकम् ॥
 जगद्ग्रसित्वा पापिष्ठः क्व गतोद्धांत राक्षसः ।
 तं द्रष्टुमिति बालार्को दीपिका दिनभूभुजः ॥
 प्राचीदिग्गन्तकी व्योमवंशाग्रमधिरोहति ।
 कृतरक्ताम्बराशीर्षं न्यस्तार्कस्वर्णकुम्भभृत् ।
 त्वत्कीर्त्तिं कान्तया दध्रे बालार्कस्तप्तगोलकः ।
 दिव्याय स्वेच्छया भ्रान्त्या कुसतीत्वहते नृप ॥^२

संस्कृत साहित्य में 'शिशुपालवध' का सूर्योदय वर्णन प्रसिद्ध है, पर जब हम प्रस्तुत कवि के उपर्युक्त सूर्योदय वर्णन को देखते हैं, तो कवि का काव्यत्व 'शिशुपालवध' के सूर्योदय वर्णन से भी उच्चकोटि का लगता है।

कवि की समस्या-पूर्ति की प्रतिभा भी अद्भुत है। जहाँ साधारणतः किसी समस्या की एक-दो पूर्तियाँ करने में ही सामान्य कवि को कठिनाई होती है, वहीं दूसरी ओर कवि समयसुन्दर समस्यापूर्ति में बहुत ही निपुण हैं। एक-एक समस्या की अनेक प्रकार से पूर्ति करने की प्रतिभा इनमें है। जैसे 'शतचन्द्रनभस्तलम्' इस प्रकृति से संबंधित समस्या की इन्होंने १६ प्रकार से पूर्ति की है और सभी पूर्तियाँ अत्यन्त रोचक हैं। उदाहरण के लिए हम एक-दो समस्या पूर्ति पद्य प्रस्तुत करते हैं —

१. रजोष्टकम् (१-८)

२. उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टकम् (१८)

दीपान् दीपालिकापर्वकृतानुच्चैस्तरं निशि ।
 वीक्ष्य विस्मयतो ज्ञानं, शतचन्द्रनभस्तलम् ।
 ग्रस्यते राहुणा नित्यमेक एकहि मत्प्रियः ।
 सृष्टमासात्तदा श्रेष्ठं, शतचन्द्रनभस्तलम् ॥^१

कवि समयसुन्दर ने प्रस्तुत के वर्णन में जिन अप्रस्तुतों का सहारा लिया है उसमें प्रकृति-संबंधी उपादान बहुत ज्यादा हैं। वे प्रकृति की क्रीड़ा में क्रीड़ा कर सुखद शान्ति का अनुभव करते हैं। प्रकृति के जिन-जिन तत्त्वों पर वे रीझते हैं, उनसे अपने काव्य को उपमित कर लेते हैं। निश्चय ही प्राकृतिक उपमानों के प्रयोग से उनकी रचनाएँ प्रभावोत्पादक एवं अधिक बोधगम्य बनी हैं।

समयसुन्दर की प्रत्येक रचना में प्राकृतिक उपादानों की बहुलता है। अंग-विशेष, कार्य-विशेष या घटना-विशेष को प्रभावयुक्त बनाने के लिए कमल, भ्रमर, सूर्य, प्रभात, मीन, बील, विद्युत्, हंस, पुष्प, मोती, मूँगा, खज्जन, तारा, सिंह, पशु-पक्षी, बिम्बाफल, विभिन्न पक्षियों का कलरव, ऋतु, चन्द्रमा, चांदनी, नाग, कुंभस्थल, कीर, विविध नदियाँ, तालाब, झरना, सिन्धु, रज, तृण, छाया, गिरि-प्रान्तर इत्यादि से सहायता ली है और आवश्यकतानुसार अनेक बार इन्हें अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। वस्तुतः कवि की प्रत्येक रचना प्राकृतिक उपमानों से उपमित है और कतिपय रचनाएँ तो प्राकृतिक सम्पदा और सुन्दरता से भरपूर हैं।

कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति एवं मूर्त्त-विधायिनी कल्पना आदि के माध्यम से अपनी रचनाओं में प्रकृति की मनोहर छवियाँ चित्रित कर दी हैं। कवि समयसुन्दर भगवान् के रूप-सौन्दर्य को विविध प्राकृतिक उपादानों से उपमित करते हैं—

पूरण चन्द जिसो मुख तेरो, दंतपंक्ति मचकुंद कली हो ।

सुन्दर नयन तारिका शोभत, मानु कमल-दल मध्य अली हो ॥^२

कवि ने विविध प्राकृतिक तत्त्वों से अपने इष्टदेव का सौन्दर्य उजागर किया है, किन्तु वे एक अन्य गीत में प्रकृति के सभी उपादानों को सदोष सिद्धकर यह बताते हैं कि उनका इष्टदेव जिनेश्वर तो दोषमुक्त है। देखिये —

अहो मेरे जिन कुं कुण ओपमा कहूँ ।

काष्ठ कलप चिन्तामणि पाथ, कामगवी पशु दोष ग्रहूँ ।

चन्द्र कलंकी समुद्र जल खारउ, सूरज ताप न सहूँ ।

जल दाता पणि श्याम वदन घन, मेरु कृपण तउ हूँ किम सदहूँ ॥

१. समस्याष्टकम् (५-१४)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अजितजिनस्तवन (२)

कमल कोमल पणि नाल कंटक नित, संख कुटिलता बहुँ।
 समयसुन्दर कहइ अनन्त तीर्थकर, तुम मई दोष न लहुँ ॥^१
 कवि अपने गुरुजनों के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् था। वह उनके और अपने बीच पारस्परिक मधुर सम्बन्ध प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से व्यक्त करता है—
 मुझ मन मोह्यो रे गुरु जी, तुम्ह गुणे जिम बाबीहड़उ मेहो जी।
 मधुकर मोह्यो रे सुन्दर मालती, चन्द चकोर सनेहो जी।
 मान सरोवर मोह्यो हंसलउ, कोयल जिम सहक ारो जी।
 मयगल मोह्यो रे जिम रेवा नदी, सतिय मोही भरतारो जी।
 गुरु-चरणे रंग लागउ माहरउ, जेहवउ चोल मजीठो जी ॥^२
 पशु-पक्षियों आदि की विरहजनित ध्वनियों तथा उनकी चेष्टाओं का वर्णन भी अवलोकनीय है —

कोकिल कुल मधुर ध्वनि कूजति, बोलति बप्पियरा प्रियु-प्रियु रे।
 मलय वात वज्जति गयणंगणि, गज्जति मेघ घटा कियु-कियु रे।
 रतिपति रयणि दिवस संतापति, व्यापति विरह दुक्ख दियु-दियु रे।
 दादुर मोर करइ अति सोर, प्रीयु-प्रीयु बोलइ ए बप्पीउरउ।
 मेहरउ टबकइ विजुरी झवकइ, कहउ क्यूं करि ठउर रहइ हियरउ ॥^३

कविवर ने अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति के विविध उपकरणों की शोध की है। लगता है कि कवि का अन्तरंग एवं बहिरंग — दोनों पक्ष प्रकृत से बहुत प्रभावित है। कविवर कहते हैं कि मैं अपने को धन्य तब मानता, जब मेरा जन्म प्रकृति के विविध तत्त्वों के रूप में होता। निम्नलिखित गीत में द्रष्टव्य है, कवि का प्रकृति-प्रेम —

क्यों न भये हम मोर विमलगिरि, क्यों न भये हम मोर ॥
 क्यों न भये हम शीतल पानी, सींचत तरुवर छोर।
 अहनिश जिनजी के अंग पखालत, तोड़त कर्म कठोर ॥
 क्यों न भये हम बावन चन्दन, और केसर की छोर।
 क्यों न भये हम मोगरा मालती, रहते जिनजी की ओर ॥
 क्यों न भये हम मृदंग झलरिया, करत मधुर धुनि घोर।
 जिनजी आगल नृत्य सुहावत, पावत शिवपुर ठौर ॥^४

उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त अन्य भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जो प्रकृति

१. वही, अनन्तजिनस्तवन (१-३)
२. वही, श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१-३)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नेमिनाथ सवैया (१५.२७)
४. वही, विमलाचलमंडन आदि जिनस्तवन (१-३)

चित्रण से ही संबंधित हैं। कवि के 'अलंकार-शिल्प' के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों में प्रदत्त उदाहरण इस परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि सौन्दर्यप्रेमी कवि समयसुन्दर ने इस अतलान्त व्याप्त प्रकृति की नानारूपिणी छवियों का चुन-चुन कर चित्रण किया है, जो कि नितान्त मनोरम एवं प्रभावशाली है। कवि का प्राकृतिक चित्रांकन उसके समृद्ध कवित्व का प्रकाशक है। अन्त में हम इतना अवश्य कहेंगे कि कविवर ने जिस कमनीयता एवं शालीनता के साथ प्रकृति का चित्रण किया है, उनसे उनकी रचनाओं में मणि-कांचन का संयोग प्रतिफलित हुआ है।

२. नगर-वर्णन

समयसुन्दर ने देश और नगरों का अनेक स्थानों में ललित वर्णन किया है। उपमा और उत्प्रेक्षा-युक्त होने के कारण सभी वर्णन मनोहर बन पड़े हैं। उदाहरण के लिए उनके कथा-परक साहित्य से किसी भी कथा का पूर्वांश लिया जा सकता है। यथा —

अस्मिन् जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे धारावासं नाम नगरमभूत्। परं तन्नगरं की दृशमस्ति?
यस्मिन् नगरे अङ्गदेश-बङ्गदेश-तिलङ्गदेश-कलिङ्गदेश-वराङ्गदेश-प्रयागदेश-सुयागदेश-
मुरुण्डदेश-पुलिन्ददेश-सुरेन्द्रदेश-समुद्रदेश-चित्रकूटदेश-लाटदेश-घाटदेश-नाट्यदेश-
विराटदेश, केलिवाटदेश - भाटदेश-वाटदेश-कुण्टदेश-बुंटदेश-घोडादेश-धाटदेश
मेदपाटदेश-मगधदेश-सोरठदेश-कच्छदेश-गूर्जरदेश-मालवदेश-काश्मीरदेश-काबलिदेश-
भूंतदेश-बदकसानदेश-बंगालदेश-कोङ्कणदेश-पञ्चभर्तृदेश-श्री राज्यदेश-परतकालदेश
हबसीदेश-फिरङ्गीदेश-पठाणदेश-जलमानसदेश-मरुस्थलदेश-पञ्चालदेश-सिन्धुदेश-
दक्षिणदेश-पूर्वदेश-पश्चिमदेश-उत्तरदेश-प्रमुखा नानादेशवास्तव्यव्यवहारिणो
विविधवस्तुक्रयाणकानि लात्वा आगत्य च व्यापारं कुर्वन्ति। पुनरिदं नगरं अष्टाविंशद्
वकारैः शोभितं वर्तते। ते चामी —

वापी-वप्र-विहार-वर्ण-वनिता वाग्मी वनं वाटिका,

वैद्य-ब्राह्मण-वैश्य-वादि-विबुध-वेश्या वणिग् वाहिनी।

विद्या-वीर-विवेक वित्त-विनयो वाचंयमो वल्लिका,

वस्त्रं वारण-वाजि-वेसर-वरं चैभिः पुरं शोभितम् ॥

पुनः यस्मिन् नगरे एवंविधा स्थिति —

यस्यां देवगृहेषु दण्डघटना, स्नेहक्षयो दीपके-

प्वन्तजङ्गलिकायं द्विरसना खड्गेषु मुष्टिर्यथा।

वादस्तर्कविचारणासु विपणिश्रेणीषु मानस्थितिः,

बन्धः कुन्तलवल्लरीषु सततं लोकेषु नो दृश्यते ॥

१. कालिकाचार्य-कथा-संग्रह, पृष्ठ १९७

इत्यादि ऋद्धिसमृद्धिसहितं सुरलोक सदृशं (नगर) ज्ञेयम्।^१

उपर्युक्त उदाहरण में हम देखते हैं कि कविवर ने धारावास नामक नगर को ५३ देशों की उपमा से उपमित किया है और उन सभी देशों के व्यापारी वस्तु-व्यापार के लिए इस नगर में आते हैं। अनुप्रास अलंकार के रमणीय प्रयोग से नगर-वर्णन में एक अद्भुत चमत्कार उद्घाटित हुआ है। उक्त सम्पूर्ण पंक्तियाँ तत्कालीन धारावास अर्थात् भारत की सम्पन्नता की द्योतिका हैं —

नीचे देखिये, देव-निर्मित द्वारिका नगरी का अत्यन्त रुचिर वर्णन —

सुस्थित सुर दृढ़ नगरी ठाम। कौस्तुभ रतन संख अभिराम।
 इंद आदेसइ धनद तिहां आवइ। बारबती नगरी नीपावइ ॥
 नव योजन नगरी विस्तारा। बार जोयण आराम अपारा।
 चामीकर प्राकार मनोहर। शत्रुकटक भट अगम अगोचर ॥
 पंच रतन मणिमय कोसीसा। राजसिरी जाणे आरीसा।
 तेज प्रकास प्रबल निसि दीसइ। अंधकार नउ लेस न दीसइ ॥
 धण कण कंचण माणिक धारा। धनइ भरइ कोठारा भंडारा।
 रिद्धि समृद्धि करी सुख सारा। जाणे अलकापुरी अवतारा ॥
 अति ऊँचा यादव आवास। दंड कलस धज पुण्य प्रकास।
 मणि कंचण प्रतिबिंब्या तारा। ग्रहण करइ मुगताफल दारा ॥
 उत्तुंग तोरण जिन प्रासादा। रणछण रणकइ घंट निनादा।
 आपण श्रेणि अनोपम सोहइ। चउरासी चउहटा मन मोहइ ॥
 वन वाडी मढ मन्दिर मण्डित, प्रमुदित लोक वसइ अति पण्डित।
 जोर वहइ यादवनउ वारउ, सरगपुरी सुरनउ अनु-कारउ ॥^१

यद्यपि उपर्युक्त वर्णन कवि की प्रथम भाषा कृति में हुआ है, तथापि यह अत्यन्त चारु एवं प्रभावशाली बना है।

राम, लक्ष्मण एवं सीता के वनवास-काल में एक समय किसी यक्ष ने उनके रहने के लिए एक समृद्धिशाली नगरी का निर्माण किया। इसमें राजभवन, मन्दिर और कोट्याधीशों के भवन सुशोभित थे। द्रष्टव्य है, नगरी का स्वाभाविक किन्तु कान्त चित्रांकन —

(रामचन्द्रनइ पुण्यइ करि, तिण यक्षइ तत्काल।)
 देवनीमी नगरी नवी, नीपाई सुविसाल ॥
 गढमढ मन्दिर मालीया, ऊँचा बहुत आवास।
 राजभुवन रलियामणा, लखमी लील विलास ॥

१. सांब-प्रद्युम्न चौपाई (१.६.१२)

कोटीधज विवहारिया, वसई लखेसरी साह ।

गीतगान गहगट घणां नरनारी उछाह ॥^१

एक और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कम्पिल नगर का वर्णन कवि की तत्कालीन संस्कृति पर किंचित् प्रकाश डालता है। वर्णन की सुगमता एवं अनायासता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह वर्णन अन्य नगर-वर्णनों की अपेक्षा विलक्षण है —

हार बीच जिम पदक विराजे, तिम तिहां देश पंचाल री माइ ।

नगर कम्पला जाण नगीनो, रिद्ध समृद्ध रसाल री माइ ॥

देहरा विन किहां दण्ड न दीसे, लोक ने सबल असान री माइ ।

दीवा विण नहिं स्नेह तणो क्षय; हाट विना मान री माई ॥

सर्प विना नहिं को दो-जीभो, असि विण नहिं दृढमूठि री माइ ।

मांहों मांहे न द्यइ को केह ने, धनुष विना निज पूठि री माइ ॥

अन्ध नहीं नारी वेणी विण, सारी विण नहिं भार री माइ ।

तर्क विना नहि वाद विवाद नगर मां, पुत्र विना नहिं नारी री माइ ॥

दान बिना को व्यसन न दीसे, धर्म बिना नहिं लोभ री माइ ।

न्याय निपुण राजा धरमीजन, सुन्दर नगर ससोम री माइ ॥^२

इसी तरह कवि ने काशांबी, अयोध्या^३, चम्पानगरी^४ आदि का भी परम्परागत किन्तु अत्यन्त सुष्ठु वर्णन किया है। चम्पानगरी के वर्णन में कवि की समसामयिक सामाजिक स्थिति का भी उल्लेख हुआ है। कौशांबी का कवि ने जो वर्णन किया है, उसमें से दो पद उद्धृत करते हैं। देखिये, कितनी कुशलता से कवि ने नगर के दो अंगों की समृद्धि का वर्णन किया है —

जमुना नदी बहइ जसु पासि, जाणि जलधि मुकी (क) हइ तास ।

रतन माहरा लींथा मथी द्यउ मुज तुज्झ अणूरति नथी ॥

प्रासाद सुँग ऊपरि पूतली नेत्र नई कटि पातली ।

जाणिनगर रिधि जोवा भणी, अमर सुन्दरी आवी घणी ॥^५

यद्यपि यह सत्य है कि इन वर्णनों में प्राचीन परम्परा का निर्वाह हुआ है, तथापि उनमें तत्कालीन लोक-जीवन की झलक एवं देश की समृद्धि का आभास अवश्य मिलता है।

१. सीताराम चौपाई (४.१ दूहा ९-११)

२. चार प्रत्येकबुद्ध चौपाई (२.१.३-७)

३. नलदवदन्ती रास (१.२.१-१८)

४. चम्पक श्रेष्ठी चौपाई (१.१.१-२३)

५. मृगावतीचरित्र-चौपाई (१.१)

३. वैभव-वर्णन

यों तो नगर वर्णन में उल्लिखित बातें नगरों की समृद्धि एवं वैभव का परिचय देती हैं, किन्तु कतिपय ऐसे भी वर्णन प्राप्त होते हैं, जिनमें विवेच्य वस्तु अथवा व्यक्ति के वैभव को ही प्रदर्शित करना प्रमुख है। जैसे — दशार्णभद्र भगवान् महावीर को वन्दन करने जाता है, उसका वैभव दर्शनीय है —

नगर सिणगार चतुरंग सेना सजी, पांच सड़ महुल परिवार सेती।

आप आगइ बतीस बद्ध नाटक पड़इ, तूर वाजइ कहूँ बात केती ॥^१

परन्तु इन्द्र ने जिस ऐश्वर्य और शान के साथ जाकर प्रभु को वन्दन किया, वह तो विलक्षण है —

इन्द्र चउसट्टि एकठा मिली संस्तवइ, पार न लहइं तउ गान केहइ।

एक हाथी तणइ आठ दंत सूला दन्त दन्त आठ आठ वावि सोहइ।

वावि वावि आठ-आठ कमल तिहां, आठ आठ पांखड़ी पेखतां मन्नमोहइ।

पत्र पत्रइ बतीस बद्य नाटक पड़इ, कमल बिचि इन्द्र बइठउ आनन्दइ।

आठ वलि आगलिं अग्र महिषी खड़ी, वीर नइं एण विध इन्द्र वांदइ ॥^२

‘चम्पक सेठ चौपाई’ में चम्पक सेठ की ऋद्धि का विवरण देते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि उसके ९६ कोटि मुद्राएँ निधान में, ९६ कोटि व्यापार में एवं ९६ कोटि ब्याज में लगती थी। उसके १००० वाहन, १००० शकट, १००० सप्त मन्जिल घर, १००० दुकानें, १००० भण्डशालाएँ, ५०० हाथी, ५०० अंगरक्षक, ५००० अश्व, ५००० सुभट, ५०० ऊँट, १०,००० पोठिये, १ लाख बैल, १०० गोकुल, १०,००० व्यापारी थे —

छिन्नू कोडि निधान गत, वलि छिन्नू व्यापारन रे।

छिन्नू वलि व्याजे फिरै, ऐ ऐ पुण्य प्रकारन रे ॥

पुण्य तणा फल भोगवै, चम्पक सेठ सुजाणन रे।

अचरिज सुणतां ऊपजै, पूरब पुण्य प्रमाणन रे ॥

सहस वाहण वहै सासता, सहस वहै सकट नित्यन रे।

सहस सेह सातभूमिया, सहस हाट पणि सत्यन रे ॥

भांडशाला इस सहस ते, पाँच सै गज परवारन रे।

पाँच सै सुभट पासे रहै, हय भण पांच हज्जारन रे ॥

पांच सहस बीजा सुभट, पांच सै ऊँट प्रधान रे।

दस हजार पणि पोठीया, लाख बलद नो गामन रे ॥

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री दशार्णभद्र गीतम् (३)

२. वही, श्री दशार्णभद्र गीतम् (४-६)

सौ गोअल दस दस सहस गोअल गोअल गाइन रे ।
व्यापारी सेवा करै दस हज्जार घर आइन रे ॥
लाख द्रव्य लागै जिणे, एहवौ अंग नौ भोगन रे ।
मन वंछित सुख भोगवै, पूरव पुण्य संयोगन रे ॥^१

लङ्का नामक समृद्धिपूर्ण नगरी के स्वामी त्रिखण्डाधिप रावण के वैभव का वर्णन अवलोक्य है —

राज करै तिहां राजीयौ, राणौ रावण दूठौ रे ।
इन्द्रजित मेहनाद एहवा, पुत्र पूरै जसु पूठौ रे ॥
ऊँघ छमासी एहनी, कुम्भकरण कहिवायौ रे ।
विभीषण थी सहु को बीहै, बांधव सबल सहायो रे ॥
अढार कोड़ि अक्षौहिणी साथ चढै सनूर रे ।
त्रिण्ह खण्ड नो ते धणी, पृथिवी मांहि पडूर रे ॥
बत्रीस सहस अन्तेउरी, पामी पुण्य संयोगो रे ।
अपछर सेती इन्द्र जिम, भोगवै सगला भोगो रे ॥
जसु घर विह को दप दलै, जम राणौ वहै नीरो रे ।
पवन बुहारै आंगणै, सबल हटक नै हीरो रे ॥
नव ग्रह सेवा नित करै, खड़ातड़ा जसु खाटो रे ।
इन्द्र तिके डरता रहै, नांख्या रिपु निरघाटो रे ॥^२

इसी प्रकार कवि ने अपने स्थानों पर ऋद्धि और वैभव का सरस वर्णन किया है। विस्तार-भय से अधिक उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

४. स्वप्न-दर्शन

विवेच्य रचनाओं में स्वप्नों का भी यथास्थान अङ्कन हुआ है। तीर्थङ्करों या अन्य महापुरुषों की माताओं को स्वप्न-दर्शन होते हैं। उनका फल तीर्थङ्कर के पिता या ब्राह्मण पण्डित बतलाते हैं। समयसुन्दर ने रास-काव्यों में इन स्वप्नों का प्रसंगोचित वर्णन किया है। 'कल्पलता' में उन्होंने तीर्थङ्कर-माता द्वारा दर्शित चौदह स्वप्नों का बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

५. नख-शिख-वर्णन

साहित्य में नव-शिख-वर्णन की परम्परा प्राच्य काल से ही चली आ रही है। कविवर्य समयसुन्दर ने अपने काव्यों में नायिका के अंग प्रत्यंगों का वर्णन प्रचुर परिमाण में किया है। यद्यपि कवि ने विशिष्ट पात्रों के नख-शिख-वर्णन में परम्परागत उपमानों की

१. चम्पक श्रेष्ठ चौपाई (२.१.१-७)

२. चम्पक श्रेष्ठ चौपाई (१.४.१-७)

सहायता ली है, तथापि उन स्थानों में सुन्दरतम कल्पना की सृष्टि हुई है। नीचे हम कुछ चुने हुए नख-शिखों को उपस्थित कर रहे हैं —

‘मृगावती चरित्र-चौपाई’ में कवि ने मृगावती के देहलावण्य का वर्णन किया है। मृगावती ने अपने सुनहरे बालों को दोनों तरफ इस तरह से गूँथे थे कि मानो मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को उसमें बान्ध लिया था। (मिथ्यात्व समाप्त होने पर सम्यक्त्व प्रकट होता है।) भाल के ऊपर बीच में लगा सिन्दूर ऐसा लग रहा था, मानो धर्मसूर्य उदित हुआ है। उसके नयन-कमल की पंखुड़ियाँ अणियाली एवं उसके सौन्दर्य के अनुरूप थीं। उसके नयनरूपी कमल की पंखुड़ियाँ हठ करके आगे बढ़ने से रुक गईं, क्योंकि यदि आगे बढ़े तो वहाँ श्रवण रूपी दो कूप थे। कर्ण-कूप देखकर भय के मारे वह वहीं स्थिर हो गयीं। मृगावती की नासिका की तिर्यक् आकृति दीप-ज्योति के समान थी; किन्तु नासिका और दीपक में अन्तर परिलक्षित होता था। दीपक में तेल जलता है और कालिमा भी निकलती है, लेकिन मृगावती के नासिका रूपी दीपक में न तो तेल जलता है और न ही कालिमा दिखाई देती है। मृगावती का कण्ठ कोकिल के कण्ठ से भी अच्छा था। कोकिल का कण्ठ तो केवल वसन्त ऋतु में ही सुमधुर होता है, जबकि मृगावती का कण्ठ तो बारहों महीने सुमधुर होता है। कण्ठ के उपरान्त रूप के संबंध में तो दोनों में अनन्त अन्तर है। कविवर ने मृगावती के नख-शिख का वर्णन इस प्रकार किया है —

स्याम वेणी दण्ड सोभतउ रे, ऊपरि राखडि ओप रे मृगावती,
अहि रूप देखण आवियउ रे लाल, मस्तकि मणि आटोप रे।
बिहुं गमा गुंथी मीढली रे, बान्ध्यउ तिमर मिथ्यात रे मृगावती,
विचि समथउ सिंदूरीयउ रे लाल, प्रगट्यउ धरम प्रभात रे।
ससि दंल भालि जीतउ थकउ रे, सेवइ ईसर देव रे मृगावती,
गंगा तटि तपस्या करइ रे लाल, चिंतातुर नितमेव रे मृगावती।
नयन कमलनी पांखड़ी रे, अणिआली अनुरूप रे मृगावती,
हठि वधती हटकी रही रे लाल, देखि श्रवण को कूप रे मृगावती।
निरमल तीखी नासिका रे, जाणे दीवा धार रे मृगावती,
कालिमां किहां दीसइ नहीं रे लाल, नबलइ स्नेह लगाए रे मृगावती।
अति रूयडी रदनावली रे, अधर प्रवाल विचाल रे मृगावती,
सरसति वदन कमल वसइ रे लाल तनु, मोतियण की माल रे मृगावती।
मुख पुनिम कउ चन्दलउ रे, वाणी अमृत समान रे मृगावती,
कलंक दोष दूरि टल्यउ रे लाल, सील तणइ परभावि रे मृगावती।
कंठ कोकिल थी रूडयउ रे, ते तउ एक वसंत रे मृगावती,
ए बारे मास सारिखउ रे लाल, रूपइं फेर अनन्त रे मृगावती।

कुंयली बांह कलाविका रे, कमल सुकोमल हाथ रे मृगावती,
रिद्धि अनइ सिद्धि देवता रे लाल, नित्य बसई बे साथ रे मृगावती ।
हृदय कमल अति रूयडुं रे, धर्मबुद्धि आवास रे मृगावती,
कटि लङ्क जीतउ केसरी रे लाल, सेवइ नित वनवास रे मृगावती ।
चरण कमल ना काछबा रे, ते तउ अति सुकमाल रे मृगावती,
नख राता अति दीपता रे लाल, दरपण जिम सुविसाल रे मृगावती ॥^१
सीता का नख-शिख वर्णन भी दर्शनीय है —

सीता अति सोहइ, सीता तउ रूपइ रूडी ।
जाणे अम्बा डालिं सूडी हो ।
बेणी सोहइ लांबी, अति स्याम भमरकडिआंबी हो ।
मुख ससि चांद्रणउ कीधउ, अन्धारइ पासउ लीधउ हो ॥
राखड़ी सोहइ माथइ, जाणे सेष चूडामणि साथइ हो ।
ससिदल भाल विराजइ, विचि विंदली शोभा काजइ हो ॥
नयन कमल अणियाला, विचि कीकी भमरा काला हो ।
सूयटा नी चाँच सरेखी, नासिका अति तीखी निरखी हो ॥
नकवेसर तिहां लहकइ, गिरुया नी संगति गहकइ हो ।
कांने कुंडल नी जोड़ी, जेह नउ मूल लाख नइ कोडी हो ॥
अधर प्रवाली राती, दंत दाडिम कलिय कहाती हो ।
मुख पुनिम नउ चंदउ, तसु वचन अमीरस विंदउ हो ॥
कंठ कंदलवली त्रिवली, दक्षणाव्रत संख ज्युं सबली हो ।
अति कोमल बे बांहां, रत्तोपल सम कर तांहा हो ॥
घण थण कलस विसाला, ऊपरि हार कुसुम नी माला हो ।
कटि लंक केसरी सरिखउ, भावइ कोइ पंडित परिखउ हो ॥
कटि तट मेखला पहिरी, जोवन भरि जायइ लहरी हो ।
रोम रहित बे जंघा हो, जाणे करि केलि ना थंभा हो ॥
उन्नत पग नख राता, जाणे कनक कूरम बे माता हो ।
सीता तउ रूपइ सोहइ, निरखंता सुर नर मोहइ हो ॥^२

हम देखते हैं कि उपर्युक्त वर्णन में कवि ने सीता के नख-शिख-सौन्दर्य का कवित्वमय ढंग से चित्रण किया है। वस्तुतः नख-शिख मध्ययुगीन काव्य का प्रिय विषय रहा है। समयसुन्दर के काव्यों में भी नख-शिख वर्णन उपलब्ध होता है।

१. मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.२.१-१२)

१. सीताराम चौपाई (१.५.१-९)

६. नर्तकी वर्णन

नर्तकी शब्द नाचने का पेशा करने वाली तथा वेश्यावृत्ति करने वाली — दोनों स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होता है। कविवर ने नर्तकी और वेश्या — दोनों का वर्णन किया है। वेश्या का वर्णन करते हुए वे कहते हैं —

वेश्या नी टोली रे मिली विलसती रूप रूढ़ी रे

हाँ रे वारू चतुर चउसठि कला जाण।

कंचन वरण तनु कामिनी, बोलति अमृत वाणि ॥

रंगीली रे वंगीली रे, जीवन लहरे जाइ।

गजगति चालइ गोरी मलपंती, विभ्रम लील विलास।

लोचन अणियाला लोभी लागणा, पुरुष बंधण मृग पास ॥^१

नृत्य और नर्तकी दोनों का मनोहर चित्रांकन किया गया है, यथा —

राजा हुकम कीयो नाटक कउ, नटुई बाल कुमारि।

चंदबदन मृगलोयणि कायिणी, पगि झांझर झणकार ॥

ततत्थेई नाचत नटुई नारि, पहिर्या सोल शृंगार।

राम नायक मन रंगी नचावते, अपछर के अणुहारि ॥

गीत गान मधुर ध्वनि गावति, संगीत के अनुहारि।

हाव भाव हस्तक देखावति, उर मोतिण कउ हार ॥

सीस फूल काने दो कुण्डल, तिलक कीयो अतिसार।

नकवेसर नाचति नक ऊपरि, हुं सबमइं सिरदार ॥

ताल खाव बजावति बांसुली, अरु मादल धोंकार।

अंग भंग देसी देखावत, भमरी छइ बार-बार ॥

ताल उपरि पद ठावति पदमिनि, कटि पातलि थणभार।

रतन जडित कंचूकी कस बांधति, ऊपरि ओढणिसार ॥

चरणाचीरि चिहूँ दिसि फरकइ, सोलसज्या सिणगार।

मुख मुलकति चलति गति मलपति, निरखति नजरि विकार ॥^२

७. स्वयंवर-मंडप-वर्णन

प्राचीन काल में ऐसे उत्सव या समारोह भी होते थे, जिनमें कन्या स्वयं उपस्थित व्यक्तियों में से अपने लिए वर का वरण करती थी। समयसुन्दर की कुछेक नायिकायें स्वयंवर करती हैं। इसके लिए एक समारोह आयोजित किया जाता है। जिस स्थान अथवा मंडप में ये समारोह होता है, उसका कविवर ने प्रकृष्ट वर्णन किया है।

१. वल्कलचीरी-चौपाई

२. सीताराम-चौपाई (४.५.१-७)

दमयन्ती के स्वयंवर के लिए भीम राजा ने एक विशाल एवं अभिराम मंडप की रचना करवाई। ललाम चित्र, परवाल मोती की बनी जालियाँ, स्वर्ण के झूमके, ऊँची ध्वजायें, उस मण्डप की शोभा में चार चांद लगा रहे थे। वह पुष्प, चन्दन, कपूर, धूप आदि की सुगन्ध से सुगन्धित था। मण्डप इतना रम्य था कि देव भी उससे मोहित हो जाते। कवि ने इस मण्डप का आलेखन इस प्रकार किया है —

आणंदसुं राजा आवइ, संबरा मण्डप मण्डावइ ।
 सरिषी धरती समरावइ, निरमल नीरसुं छंटावइ ॥
 जाजिम जरबाप विछावइ, सकलातिकथी पऊसुहावइ ।
 पाटम्बर पणि पथरावइ, फूल पगर विच्छित्ति वणावइ ॥
 वींटावी चिहुंदिसि वाडी, दरसाउ भांति दिषाडि ।
 चीतर्या फूटरा चित्राम, नारी कुंजर अभिराम ॥
 तिहां ताण्यां ऊँचा तम्बू कसबी जरबाप कदम्बू ।
 नीलक मुखमल नवरंग, चिहुंदिसि चंद्रुया चंग ॥
 मनोहर मोतीयांरी जाली, प्रोई विचिमइ परवालि ।
 झबझब-झबझब कंइ झाबा, बालक मांगइ दे बाबा ॥
 ललकण सोनारा लटकइ, गुण पांम्या ते भणी गटकइ ।
 मोतीयांरी झामर झोल, झाबक झुंब करम झोल ॥
 लांबी लहकइ फूलमाल, परिमल महकइ सुविसाल ।
 ऊपरि ऊँची धज सोहइ, सुर कित्रर ना मन मोहइ ॥
 कृष्णागर अगर कपूर, सेलारस चीडनउ चर ।
 धूपधांण गंध सुवास, ऊछलई परिमल आगास ॥
 पूतली थांभे सिणगारी, ग्रहणे गांठे करि सारी ।
 जाणे अपछर जोवा आई, जायइ नहीं रही लपटाई ॥
 सिंहासन मण्डप मांहे, अति ऊँचा मांड्या उछाहे ।
 परवाली कनकमय पाया, विचि लाल दुलीचा विछाया ।
 मणि माणिक मोती झडिया, घणुं षांति संघाति घडिया ॥^१

८. विवाह-वर्णन

समयसुन्दर के साहित्य में विवाह-वर्णन भी हुआ है। उनके नायक पराक्रम, रूप अथवा गुणों के कारण विविध प्रसंगों पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अनेक युवतियाँ प्राप्त करते हैं। प्राचीनकाल में माता-पिता भी अपने पुत्र-पुत्री के योग्य आयु पाने पर उनके विवाह के लिए योग्य वधु या वर की खोज करते थे। योग्य वर की प्राप्ति के लिए स्वयंवर

१. नल-दवदंती रास (१.३.१-११)

भी रचा जाता था, जिसमें अनेक राजा निमन्त्रित होते थे। कन्या अपनी सहेलियों सहित वरमाला हाथ में लिए हुए स्वयंवर-मंडप में प्रवेश करती थी। राजा लोग उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते थे। कोई एक सहेली उस कन्या को प्रत्येक राजा का परिचय देती थी। अन्त में कन्या योग्य वर के गले में वरमाला डाल देती या जो कन्या की प्रतिज्ञा को पूर्ण करता था, वह उसे प्राप्त कर लेता था। सीता के विवाह का प्रसंग इसी प्रकार का है। उपस्थित राजा-महाराजाओं में से कोई भी धनुष चढ़ाने में सफल न हुए। रामचंद्र ही सफल हुए, उन्होंने सीता प्राप्त की —

विद्याधर नर सहु देखतां, रामइ चाद्यूंउ चाप।

टंकारव कीधउ ताणी नइ, प्रगट्यउ तेज प्रताप ॥

× × ×

उपसांत थया खिण मइ उपद्रव वरत्या जय जयकार।

देव दुंदुभि आकासइ वाजी पुष्पवृष्टि परकार ॥

सीता पणि हरषित थइ पहुती राम समीप सलज्ज।

× × ×

विद्याधर रंज्या गुण देखी सबल सगाई कीधी।

रूपवंत अट्टारह कन्या रामचन्द नइ दीधी ॥

विद्याधर किन्नर सुर सहु को पहुता निज निज ठाम।

पाणीग्रहण करायउ राम नइ सीधा वंछित काम ॥^१

यद्यपि कवि ने उक्त प्रसंग को अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णित किया है, लेकिन यहाँ उसे विस्तार से देना उचित नहीं है।

'नल-दवदंती-रास' में दमयन्ती के विवाह का वर्णन भी विस्तृत एवं सुन्दरतम है। कवि ने दमयन्ती का विवाह-वर्णन कुल ४३ पद्यों में किया है। वेत्रिणी, अंग, मगध, कलिंग, कंबोल, वच्छ, कासमीर, कासी, मलयाचल, पंचाल, लाट आदि देशों के राजाओं का क्रमशः परिचय कराती है, किन्तु दमयन्ती को कोई पसन्द नहीं आया। आगे नल राजा को देखकर वह हर्षित हुई और उसने नल को वरमाला पहना दी —

दवदंती मन मानियऊ, नलराय सुं हरषेण।

वरमाला कण्ठइ ठवी, सुरगिरि तारां नी श्रेणि ॥^२

बाद में भीम राजा ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक दमयन्ती का विवाह किया। देखिये, विवाह वर्णन —

१. सीताराम-चौपाई (१.७.१७-१९)

२. नलदवदन्ती-रास (१.४.२४)

हिव भीम राजा मांडियरु, वीवाह सबल वित्थिन्नि ।
 जामीनइ मानी मिल्या, भोजन भगति जुगत्ति ॥
 वरकन्या बइसारिया, अति चतुर चउरी मांहि ।
 आरिम कारिम सहु कीया, बिहुं मनि अधिक उछाह ॥
 गीत गांन मंगल गाइया, बाइया मंगल तूर ।
 सगासणीजा सहु मिल्या, प्रगट्यरु आणंद पूर ॥
 हाथ मेलावइ हरष सुं, प्रगटियउ बहु परसेद ।
 प्रेम रस अमातउ भीतरइ, बाहिर नीसर्यरु भेद ॥
 जिमणउ हाथ बेउ दीयरु, बन्ध कीयउ दोय ।
 चन्द सूरिज छइ साषीया, कहि विहडई नहीं कोय ॥
 हाथ मुंकावण हाथिया, घोड़ा घणा असवार ।
 दाइजउ दीधउ अति घणउ, द्रव्यतणा भण्डार ॥
 बिहुं तणा छेहडा बांधिया, जाणे बंध कीयउ एह ।
 हुं थारइ तुं माहरइ, जीव एक जुजूई देह ॥^१

इसी प्रकार 'द्रौपदी-चौपाई' में सागर कुमार का विवाह-वर्णन भी अत्यन्त रोचक है। 'पुण्यसारचरित्र-चौपाई' में भी पुण्यसार और लम्बोदर सेठ की पुत्रियों के विवाह का वर्णन भी प्रभावोत्पादक है। वास्तविकता तो यह है कि प्रायः सभी कथा-साहित्य में विवाह-वर्णन न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है।

विवाह के समय वधु का वर्णन तो प्रायः सभी कवि करते हैं, लेकिन वर का वर्णन बहुत कम। कवि समयसुन्दर ने वर का भी मनोरम वर्णन किया है। यथा —

सीस वणायउ, सेहरउ, कानि दोय कुंडल लोल रे ।
 हीयइ हार पहिरायउ, दीपती दीसइ अंगुली गोल रे ॥
 बंध्या बिहुं बांहे बहरखा, मोती तणी कण्ठे माल रे ।
 हाथे हथसांकली, भलउ तिलक कीयउ वलि भाल रे ॥
 चोवा चंपेल लगाविया, फूटडा पहिराया फूल रे ।
 कारिम आरिम कीया, काइक कीधउ अनुकूल रे ॥^२

१. युद्ध-वर्णन

समयसुन्दर ने युद्ध-वर्णन भी रस लेकर किया है। कथा-साहित्य में प्रायः युद्ध प्रसंग भी होते हैं। 'सीताराम-चौपाई' में सर्वाधिक युद्ध-वर्णन हुआ है। युद्ध से पूर्व की तैयारियों एवं योद्धाओं की गर्वोक्तियों का भी स्थान-स्थान पर चित्रण हुआ है। योद्धाओं

१. नलदवदन्ती-रास (१.४.२६-३२)
२. वल्कलचीरी-चौपाई (६.३-५)

की वीरांगनाओं की गर्वीक्तियों का वर्णन भी बहुत सरस बन पड़ा है। द्रष्टव्य है, लक्ष्मण और खरदूषण की सेना के साथ हुए युद्ध का वर्णन — लक्ष्मण ने उसकी विशाल सेना को कितनी शूरवीरता से परास्त किया —

सुभटे हथियार बाहिया रे, मोगर नइ तरवारि रे ।
 लखमण नइ लगा नहि रे लाल, जिम गिरि जगधर धार रे ॥
 तीर सडासड मुकिया रे, लखमण वज्राकार रे ।
 सुभट कटक उपरि पडइ रे, करइ यम भड ज्युं संहार रे ॥
 मस्तक छेदइं केहनो रे, केहनी दाढ़ी मूँछ रे ।
 वलि छेदइं रथनी धजा रे, केहना हय नी पूँछ रे ॥
 चपल तुरंगम त्रासवइं रे, नीचा पडइ असवार रे ।
 रथ भांजी कुटका करइं रे, कायर करइ पोकार रे ॥
 ऊंची सूँडि उल्लालतां रे, हाथी पाडइं चीस रे ।
 पायक-दल पाछा पडइं रे, आधा नावइं अधीसरे ॥
 लखमण परदल भांजियो रे, एकलइ अडिग अवीह रे ।
 हत प्रहत करि नांखीयो रे, हस्ति घटा जिमि सीह रे ॥^१

राम-पक्ष और रावण-पक्ष का परस्पर युद्ध-वर्णन तो बहुत विस्तृत है। इस वर्णन को कवि ने बड़ी ही उत्साहपूर्ण शैली में किया है। इस युद्ध-वर्णन से कुछेक पद्य उद्धृत हैं —

हो संग्राम राम नइ रावण मंडाणा, जलनिधि जल ऊछलिया ।
 इन्द्र तणा आसण खलभणिया, शेषनाग सलसलिया ॥
 प्रबल बेउं दल दीसइं पूरा, अणिए अणिए मिलिया ।
 सूरवीर ऊँचा उछलिया, हाक बुंब हूंकलिया ॥
 समुद्रवेलि सारिषउ राक्षंस बल, दीठउ साम्हउ आयो ।
 राम तणउ पणि वानर नउदल, त्रूटिनइ साम्हो धायो ॥
 सरणाइं वाजइ सिंधुडइ, मदन भेरि पणि वाजइं ।
 ढोल दमांमां एकल धाई, नादइं अंबर गाजइं ॥
 सिंहनाद करइं रणसूरा, हाक बूंब हुंकारा ।
 काने सबद पड्यो सुणियइ नहीं, कीधा रज अंधारा ॥
 युद्ध मांहोमांहि सबलो लागो, तीर सडासडि लागी ।
 जोर करीनइं घा मारंतां, सुभटे तरुयारि भागी ॥

१. सीताराम-चौपाई (६.३-५)

कुहक बाँण छूटइ नालि गोला, बिंदूक वहइ बिहुं पासे ।
 रीठ पडइ मोगर खडगां री, अग्नि ऊडइ आकासे ॥
 साम्हे धाए झूझइ सूरा, धड बिण राणी जाया ।
 दल रांवण रउ भाजत देखी, हत्थ विहत्थ भड धाया ॥
 तुरगी तुरगी सुं तरुयारे, रथी रथी सुं प्रहारे ।
 गजी गजी सुं जंग मंडाणो, पालिहार पालिहारे ॥^१

वास्तव में 'सीताराम-चौपाई' में युद्ध की घटनाएँ स्थान-स्थान पर वर्णित हैं, यद्यपि उनमें विशेष नवीनता नहीं दिखाई देती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समयसुन्दर का युद्ध-वर्णन नीरस है या केवल परम्परा-पालन के लिए किया गया है, अपितु हर बार वे कुछ न कुछ नई विशेषता तो पैदा करते हैं। प्रस्तुत है, लव-कुश का राम-लक्ष्मण के साथ हुए युद्ध का वर्णन —

लागो सबल संग्राम, बेदल हो बेदल झूझइ नगरी बाहिरइ हो ।
 वहइ गोला नालि तीरे हो तीरे हो, वरसइ मेह तणी परइ हो ॥
 भाला मारइ भीम भा, भेदइ हो । भे० बगतर टोप विहुँ गमा हो ।
 करि लंबकइ करिबालक क० कालइ हो, कालइ आभइ बीजलि ऊपमा हो ॥
 ऊडइ लोहडे अगि ऊ० हाथी हो, हा० पाडइ चीस चिहुं दिसा हो ॥
 हाक बूब हुंकार, हा० सुभटा हो, सु० ऊपर सुभट पडइ धस्या हो ॥
 अन्धारउ आकास, अ० छाया हो, छा० रवि ससी बहुली रज करी हो ।
 बूहा रुधिर प्रवाह, बू० मार्या हो, मार्या माणस तिरजंच बहुपरी हो ॥
 पडइ दमामां रोल, प० एकल हो, एकल घाई बाजइ ऊतावली हो ।
 सिंधुडइ वलि राग, सि० सरविं हो, सरणाइ चहचहइ भली हो ॥
 धरती नर संग्राम, ध० गयणे हो, ग० खेचर संग्राम तिम थयो हो ॥^२

इसी तरह 'मृगावती चरित्र चौपाई' आदि रचनाओं में भी कवि ने युद्ध-वर्णन करते हुए अपना काव्य-कौशल दिखाया है। अन्त में हम चण्डप्रद्योत और द्विमुख के मध्य हुए युद्ध-वर्णन की अवतारणा कर रहे हैं, जिसमें युद्ध के साथ गज, अश्व, पायक, रथ आदि के वर्णनों का भी एक साथ दर्शन होता है —

चढ्यो रण झुझवा चंडप्रद्योत नृप, चढतरा तुरत वाजा वजाया,
 सुभट भट कटक झट मटक भेला थया, वडवडा वेगीया वेगधाया ।

१. सीताराम-चौपाई (६.४.१-३,११-१५,२९)

१. सीताराम-चौपाई (८.६.१-६)

(गज-वर्णन)

सीस सिंधुरीया प्रबल मद पूरीया, भमर गुंजार भीषण कपोला,
सुंडि उलालता शत्रु रल पालता, हाथीया करत हालक हलोल।
घंट वाजे गले रहे एकठा मिले, मेघ काली घटा जाणि दीसे,
ढलकती ढाल ने सीस चामर ढले, मत्तमातंग रहे भर्या रीसे।
हालता चालता जाणिकरि पर्वता, मुहिर गंभीर गरजार करता,
चंडप्रद्योतराजा तणै कटक में, लाख दो हस्ति मदवारि झरता।

(अश्व-वर्णन)

देश काश्मीर कंबोज काबिल तणा, खेत्र सुरसान सेंधा सुचंगा,
अचल उत्तरपथा पवन पाणी यथा, भलभला कच्छि तेजी तुरंगा।
नीलडा पीलडा सबज कंबोजना, रातडा रंगि कविलाकिहाडा,
किरडीया कालुया घुसरा दूसरा, हांसला वांसिला भागजाडा।
पवन वेग वारवर्या फोज आगेधर्या, चालता जाणि चित्रामलिख्या,
एहवा अश्व उज्जैणिराजा तणे, कटक शतसहस पांच संख्या।

(पायक-वर्णन)

सिर धरे आंकुडा बाहि पहरे कडा, भाजणी परतरा बोल चाल्या,
एकथी एकडा कटक आगलि खडा, सूरवीर बांकडा सुभटपाला।
सबल कांधाल मूंछाल जिन सालिया, लोहमय टोप आटोप धारा,
पंच हथियार हाथे लइ बाथेभिडइ, भीमसम भलभला पालिहारा।
तीरती कसघरा अभंग भट आकरा, सहस्र जोधार संग्रामशूरा,
चंडप्रद्योत राजा तणे एहवा, सातकोडि साथि पायवक पूरा।

(रथ-वर्णन)

निज निजे नाम नेजा धजा फरहरे, घरहरे घोर नीसाण वाला,
जाहजोसण कीया लाख बे रथ कीया, साथ में चंडप्रद्योत राजा।
चालीया कटकदल जाणि चक्रवर्तिका धुसरी धूलि उडि गयणी लागी,
समुद्रजल उछल्या सेष पणि सलसल्या, गुहिर गोपीनाथ की नौद भागी।
इंद्रनै चंद्र नागेंद्र पण चमकीया, लंकगढ पौल ताला जडाया,
सबल सीमाल भूपाल भाजी गया, चंडप्रद्योत राजानराया।
आवीयउ चंडप्रद्योत उतावलउ, देश पंचालरी सीम माहे,
दुमहराजा न पिण देइ दमामा चड्यो आवी साम्हो अड्यो मन उछाहे।
फौज फोजे मिली भाटभट उछली, सबल संग्राम भारथ मंडाणो,
भलभला अभंग भड भूप भूपे भिड्या, सुभट सुभटे अड्या देखी टाणो ॥^१

१. चार प्रत्येकबुद्ध चौपाई (२.५.१-१५)

१०. शकुन-वर्णन

कोई काम आरम्भ होने के समय घटित होने वाली कोई ऐसी विशिष्ट घटना, जो उस कार्य के भविष्य के संबंध में शुभ अथवा अशुभ परिणाम सूचित करने वाली मानी जाती हो, शकुन कहलाती है। समयसुन्दर को शकुनों का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने प्रसंग आने पर शुभ या अशुभ शकुन का अनेक स्थानों पर संकेत किया है, किन्तु दो शकुन-वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजा शतानीक मृगावती की खोज के लिए प्रस्थान करता है, तो उसे विविध शुभ शकुन दिखाई देते हैं —

आगइ चाल्यउ पारधी रे, पूठइ चाल्यउ राय रे।
 मारगि सउण भला हुआ रे, आणंद अंगि न माय रे॥
 तिलक कियइ साम्हउ मिल्यउरे, पहिलउ पुरुष प्रधान रे।
 कुंआरी कन्या मिली रे, पीछइ रांध्यउ धान रे॥
 वेद भणंतइ वेदियइ रे, दीधउ आसीरवाद रे।
 भेरीनाद सुण्यउ भलउ रे, साम्हउ संखनंत नाद रे॥
 रास बंधा मिल्या बलधीया रे, वलिय सवच्छी गाय रे।
 पूरणकुंभ साम्हउ मिल्यउ रे, दरपण दरसण थाय रे॥
 दीठी दहीनी आथणी रे, फल दीधउ किणि आण रे।
 निरधूम अगनि साम्ही मिलि रे, पुण्य तणइ परमाण रे॥
 सपलांगउ घोडउ मिल्यउ रे, गज दरसण श्री कार रे।
 वेश्या दीठी विलसती रे, मच्छ युगम अति सार रे॥
 डावा ऊपरि बोलियउ रे, जिमणउ खर ततकाल रे।
 माल्हाली परभातिनी रे, डावी देवि रसाल रे॥
 माल्हाला मृगला हुआ रे, वामी कालिका वाच रे।
 दहिया पूछी दाहिणी रे, तीतर बोल्यउ साच रे॥
 स्यांल हूवा वलि सावडू रे, पूठइ प्रेरइ वाय रे।
 जिमणां नाहर ऊतर्या रे, दरसण नउल दिखाय रे॥
 नील चास तोरण बाधियउ रे, मोरह कीधउ छत्र रे।
 सउण कहइ सगला सही रे, मिलस्यद पुत्र-कलत्र रे॥^१

इसी प्रकार उन्होंने राम, लक्ष्मण आदि का लड्डा की ओर प्रयाण करते समय शुभ शकुनों का विस्तृत विवरण दिया है। इनसे पाठक को यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कौन-कौन से शकुन-शुभ माने जाते थे।

१. मृगावती-चरित्र-चौपाई (१. ८.५-१४)

११. नगर-प्रवेशोत्सव वर्णन

समयसुन्दर की तूलिका आनन्द और उल्लास के स्थलों में अपनी रुचि के अनेक रंग भरती है।

राजा नल, दमयन्ती से विवाह करके अपने नगर को लौटता है। दोनों के नगर प्रवेश का उत्सव धूमधामपूर्वक होता है। नागरिकजन हर्षपूर्वक नल-दमयन्ती को बधाई देते हैं, उनका स्वागत और अभिवादन करते हैं। उनके सत्कार में मन्त्रियों ने सुन्दर प्रवेशद्वार तैयार कराये। कोटवाल ने नगर को स्वच्छ कराया, निर्मल नीर छिड़कवाया, गली-गली में फूल बिखेरे, तोरण-द्वार बन्धवाये, घर-घर में पतंगें उड़ाई गईं, हाट श्रृंगारित किये गये, पोल (मुख्य द्वार) में दर्पण का सूर्य चमक रहा था, मद झरते हाथी, जिनकी पलाण स्वर्ण-मणि जड़ित थीं और मस्तक सिन्दूर पर्वत के समान दिखाई दे रहे थे, आगे-आगे चल रहे थे। तूर, भेरी, नफरी अर्थात् डफली आदि वाद्य बज रहे थे। सधवा स्त्रियाँ मस्तक पर पूर्णकुम्भ लिए सामने से चली आ रही थीं। सरस गीतों का गान हो रहा था। लोग मोती उछाल-उछाल कर उन्हें बधा रहे थे। सभी लोगों ने उन्हें मंगल आशीर्वाद दिया।^१ कवि समयसुन्दर के शब्दों में देखिये राम, सीता और लक्ष्मण का वनवास-काल-निर्गमन के बाद अयोध्या नगर में प्रवेश-उत्सव का सुखदायी वर्णन —

भरत महोच्चव मांडियउ, बहुरावी हे गली नगर मझारि।
 अयोध्या राम पधारिया, पधार्या हे वलि लखमण वीर॥
 गन्धोदक छांटी गली, विखेर्या हे फूल पंच प्रकार।
 केसर रइ गारइ करी, लीपाव्या हे मन्दिर तणा बार।
 मोती चउक पूरावीया, बारि बांध्या हे तोरण तिण वार॥
 घरि-घरि गूडी ऊछलइ, हाट छाया हे पंचवरण पटकूल।
 छतउ बाजार छायाविउ, चन्दूवाहे चिहुं दिसि बहुमूल॥
 बांध्या मोती झुंबखा, मणि माणक हे, रतनां तणी माल।
 लम्बी बांधी लहकती, ठाम-ठाम हे वलि लाल परवाल॥
 केलि थांभा ऊँचा किया, सोना ना हे तिहाँ कलस विसाल।
 वनमाल बांधी वली, लोक वोलइ हे आयो पृथिवी नो पाल॥
 इण अवसरि विद्याधरे, आवीनइ हे विभीषण आदेश।
 रतनवृष्टि कीधी घणी, घरे-घरे हे त्रिक चउक प्रदेश॥
 उचुंग तोरण देहरा, अति ऊँचा हे अष्टापद गिरि जेम।
 कंचणमय कीधा तिहां, कोसीसा हे मणि-रतन ना तेम॥

१. द्रष्टव्य — नलदवदन्ती रास (१.७)

जिन-मन्दिर महोछव घणा, मण्डाव्या हे पूजा सतर प्रकार ।
 नगरी अयोध्या एहवी सिणगारी हे सुरपुरी अवतार ॥
 सुभट विद्याधर सहु मिल्या, सहु हरपया हे नगरी नर नार ।
 ढोल दमामां दुडबडी, भेरि वाजइ हे भला भुंगल सार ॥
 ताल कंसाल-नइ बांसुली, सरणाई हे चह-चहइ सिरिकार ।
 सर मंडल मादल घुमइ, वीणा बाजइ हे झालरि झणकार ॥
 बत्रीस बद्ध नाटक पडइ, गीत गायइ हे गुणियण अतिचंग ।
 बंदी जण जय-जय भणइ, रुडी बोलइ हे विरुदावली रंग ॥
 आकास मारिग आवता, देखीनई हे लोक हरष अपार ।
 पूरणकुंभ ले पदमिनी, बधावइ हे गायइ सोहलउ सार ॥^१

यह नगर-प्रवेश-वर्णन अत्यन्त सजीव लगता है। उस युग में राजा-महाराजाओं का नगर प्रवेशोत्सव कितने आनन्द और उत्साहपूर्वक सम्पन्न होता था, इसकी झलक हम उक्त वर्णन से सहजतः पा सकते हैं। नगर-प्रवेश का उत्सव परम्परागत ढंग से होता है, अतः उसके वर्णन में भी किंचित् परम्परागतता का समावेश होना कृत्रिम नहीं है।

इसी तरह 'शांबप्रद्युम्न-चौपाई' में प्रद्युम्न का नगर-प्रवेश-उत्सव एवं 'मृगावती-चरित्र-चौपाई' में राजा शतानीक, रानी मृगावती और उसके पुत्र का नगर-प्रवेश-उत्सव अनेक विशेषताओं को लिए हुए है।

१२. आलेखन-वर्णन

'मृगावती-चरित्र-चौपाई' में कविवर ने एक महान् चित्रकार की चित्र आलेखन-कला का वर्णन किया है। चित्रकार ने राजा शतानीक के राजमहलों में चौदह स्वप्न, अष्टमङ्गल, राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, शंकर, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण, गणेश आदि के अत्यन्त मनोहर चित्रों का अंकन किया है। अवलोक्य है, कवि के द्वारा कृत उस चित्रांकन का वर्णन —

चतुर चीतारउ रूप चीतरइ रे, राजमहल तणी भीत रे ।
 न्यान विज्ञान वारु केलवइ रे, रंजिवा राजा नउ चीत रे ॥
 चउद सुपन पहिला चीतर्या रे, चीतर्या आठ मंगलीक रे ।
 राम सीता रूप चीतर्या रे, लखमण राम निजीक रे ॥
 वली रे वानर हनुमंत चीतर्यउ रे, जेहनउ लांबउ पूंछ रे ।
 रूप वसिष्ठ तणउ लिख्यउ रे, मोटी दाढी मूँछ रे ॥
 रूप लिख्यउ रावण तणउ रे, दस माथा जसु दीस रे ।
 खड्ग चंद्रहास जे हाथ में रे, श्रवणनयनभुज बीस रे ॥

१. सीताराम-चौपाई (७.६.१-८, १४-१७)

ईसरनउ रूप चीतर्यउ रे, अहि आभ्रण रूडमाल रे।
 चंद्रकला गंगा सिरइ रे, वृषभ वाहन कंठे माल रे ॥
 रूप ब्रह्मा तणउ चीतर्यउ रे, चतुर्मुख बूढ़उ जटाल रे ॥
 हाथ कमंडल जल भर्यउ रे, जनोई जपमाल रे ॥
 रूप लिख्यउ श्रीकृष्णनउ रे, मुरली मनोहर श्याम रे।
 संख गदा चक्र हाथमइ रे, चतुर्भुज अति अभिराम रे ॥
 चन्द्र सूरिज नव ग्रह चीतर्या रे, चीतर्यउ गणेशनउ रूप रे।
 पेट मोटउ सुंडि गज तणी रे, उंदिर वाहन अनूप रे ॥
 भलानइ भारुंड पंखी चीतर्या रे, एक उदर गाबडि दोय रे।
 जुगति भखइ फल जूजुवा रे, जीव जुदा बेउ होय रे ॥
 गरुड़ मयूर शुक सारिका रे, पंखी रूप अनेक रे।
 निपुण चीतारइ सगला चीतर्या रे, वारू जाणइ विवेक रे ॥
 मुगल काबिली सुधा चीतर्या रे, मुख राता चूची आंखि रे।
 माथइ मोटा पाघड ढूंमणा रे, ते जाणइ तीर नांखि रे ॥
 रूप फिरंगी कीधा फूटरा रे, मोडइ माथइ टोप रे।
 ढीला पहिरइ सूथण कोथला रे, छेड्या करइ बहु कोप रे ॥
 हबसी चीतर्या काला अति घणुं रे, पांडुर वरण पठाण रे।
 गरढा काजी चीतर्या रे, बांचता कतेब कुराण रे ॥
 पंचवरण आभा चीतर्या रे, चीतर्या पोलि प्राकार रे ॥
 चतुर चीतारउ जाणपणुं घणुं रे, चीतर्या सकल प्रकार रे ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने जो वर्णन किया है, उसमें कुछेक चित्रों, आकारों और प्रसंगों में काल-व्यतिक्रम दोष है। जैसे अन्तिम चार पद्यों में वर्णित मोगली, काबुली, फिरंगी, हबसी आदि का लगभग दो हजार पांच सौ वर्ष पूर्व की मृगावती के समय में चित्रांकन करना काल-व्यतिक्रम दोष ही माना जाएगा। यदि हम पूर्व-पर प्रसंग को ध्यान में रखते हुए विचार करें, तो किसी एक सीमा तक इनका प्रयोग अयोग्य नहीं है, क्योंकि चित्रकार को यक्ष-कृपा से ऐसी शक्ति प्राप्त थी, जिससे वह अनागत घटनाओं का चित्रांकन कर सकता था। कवि ने यह रचना आगरा में निर्मित की थी और उस समय आगरा में मुसलमान-शासकों का साम्राज्य था। अतः हमें तो यह लगता है कि कवि ने जो दृश्य अपनी आंखों के सामने दृष्टिगत किया था, उसी का चित्रांकन कर दिया है। अस्तु! वर्णन-कौशल की दृष्टि से देखें, तो उपर्युक्त वर्णन सरस है।

१. मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.५.२-१५)

१३. षोडश रोग-वर्णन

समयसुन्दर ने रोगों का भी सुन्दर वर्णन किया है। नागश्री सोलह रोगों से उत्पीड़ित थी। कवि ने इन रोगों का वर्णन कवित्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है —

खास घणउ खुं खुं करइ, सास हीयइ न समाय ।
ताव तउ तनु छोड़इ नहीं, दाघ ज्वर दुख दाय ॥
कुक्षि सूल पणि कस्ट थइ, भलका जाणि भालोड ।
भगन्दर पणि नहीं भलउ, सीजण माहे खोडि ॥
अरस रोग ते हरस नउ, प्रापइ प्राण तां सीम ।
खाधउ धान जरइ नहीं, ते पछइ जीवइ केम ॥
दृष्टि दोष ते दोहिलउ, माथइ आवइ सूल ।
रुचि भागी अन्न उपरि, जे अन्न जीवन मूल ॥
आंखि वेदन कान वेदना, कहूं खाजूवइ काय ।
पेट वध्युं पीली थई, जलोदर रोग जाय ॥
कोढ़ रोग काया भली, सहु मय भुंडउ एह ।
वालहेसर पणि आंपणउ, ढूकड़इ नावइ तेह ॥^२

उपर्युक्त वर्णनों के अतिरिक्त कवि ने तपस्वी, दुष्काल, मनोविनोद, साधना, मुनिदर्शन, दीक्षा, समवशरण, मोक्ष, कामिनी, काम, राजसभा, विलाप, वृद्धावस्था आदि का भी सजीव एवं प्रभावशाली वर्णन किया है। विस्तार-भय से एक-दो उदाहरण दिये जा रहे हैं —

१४. तपस्वी-वर्णन

हाड हींडतां खड़खडइ, काया काग नी जंघ ।
सरीर संतोषे सूकयूं, न कीधउ व्रत भंग ॥
नसा जाल सवि जूजुई, सूक्यउ लोही नइ मांस ।
बावीस परिसह जीपवा, रहवुं वनवास ॥
आंखि ऊंडी तारा जगमगइ, सुरतरु सुरुआं कान ।
सूकी आंगली मगनी फली, पग जिम सूकू पान ।
सूकुं खोखुं जेहवुं सर्प नुं, तेहवुं दीठ सरूप ॥^२

१५. समवशरण-वर्णन

विरचइ समवसरणा, भव भय दुख हरणा ।
त्रिगढउ विविध प्रकार, रूप सोवन वसुसार ॥

१. द्रौपदी-चौपाई (१.५.२-७)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री धन्ना (काकंदी) अणगार गीतम् (७-९,१२)

च्यार धरम चक्र दीपइ, गगन मंडलि रवि जीपइ ।
 अद्भुत वृक्ष अशोक, निरखइ भवियण लोक ॥
 छत्र त्रय सिरि छाजइ, विहुँ दिसि चामर राजइ ।
 देव दुंदुभी प्रभु वाजइ, नादइ अंबर गाजइ ॥
 जानु प्रमाण पुष्प वृष्टि, विरचइ समकित दृष्टि ।
 ऊँची इन्द्रधज लहकइ, प्रभु जस परिमल महकइ ॥
 सिंहासन प्रभु सोहइ, त्रिभुवन ना मन मोहइ ।
 भामंडल प्रभु भासइ, चिहुँ मुख धर्म प्रकासइ ॥^१

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि महाकवि समयसुन्दर ने प्राकृतिक तथ्यों, वस्तुओं एक घटनाक्रमों के वर्णन में विशेष रुचि ली है। कवि के वर्णन-कौशल को ज्ञात करने के लिए सम्भवतः इतना पर्याप्त होगा।

इन वर्णनों में समसामयिक परिस्थितियों की झलक भी मिलती है। भाषा, भाव, ध्वनि तथा बिम्ब का ललित सामञ्जस्य इन वर्णनों की निजी विशेषता है। रसपरिपाक, आलंकारिकता तथा अवसरोचित भाषा का प्रयोग इन सभी वर्णनों में उपलब्ध होता है।



पंचम अध्याय

समयसुन्दर की रचनाओं में
साहित्यिक तत्त्व

आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रकाश में लिखा है —

नियतिकृतनियमरहितां, ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्नाम्।

नवरसरुचिरां निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ॥^१

अर्थात् — नियति-विरचित नियमों से जो आबद्ध नहीं है, आह्लाद ही जिसका सर्वस्व है, जो किसी अन्य कारणादि के परतन्त्र नहीं है तथा नव रसों से युक्त होने के कारण जिसकी रचना परम मनोहारिणी है, वैसी कवियों की वाणी सदैव विजय प्राप्त करती है।

उपर्युक्त पद्य में आचार्य मम्मट ने कविता की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है, वे सभी महोपाध्याय समयसुन्दर की कविताओं या रचनाओं में प्राप्त होती हैं। विवेच्य रचनाओं में इन तत्त्वों की उपस्थिति से विलक्षण रमणीयता आ गई है, जो सहृदय पाठक को चमत्कृत किये बिना नहीं रहती। कवि की इस साहित्यिक सुषमा का आधार उसके काव्य में विद्यमान अलङ्कार, रस, छन्द, लोकोक्ति, मुहावरे आदि हैं। वास्तव में इनकी विद्यमानता से कवि की रचनाएँ संप्राण बन गयी हैं। लाङ्गफैलो के अनुसार हर महान् कविता नियम से बन्धी होती है, किन्तु अपने संकेतों में निस्सीम और अनन्त होती है।^२ समयसुन्दर की कविताएँ भी नियमों से आबद्ध हैं, परन्तु अपने संकेतों में वे असीम का स्पर्श करती हैं।

समयसुन्दर ने अपने कृतित्व को सँवारने का प्रयत्न नहीं किया है, अपितु वह स्वभावतः सँवर गया है, साहित्यिक तत्त्वों से सज्जित हो गया है। समालोच्य कवि एक अध्यात्म साधक थे और आध्यात्मिक कवि के काव्य में वे स्वानुभूतियाँ सहज ही अभिव्यक्त होती हैं, जो काव्य के साहित्यिक सन्दर्भ का आधार होती हैं। कविवर समयसुन्दर की रचनाएँ इसी का अनुकरण करती हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम कवि की रचनाओं का साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करेंगे। महाकवि समयसुन्दर की रचनाओं में जो साहित्यिक तत्त्व हैं, उन्हें हम अग्रिम पृष्ठों में प्रस्तुत कर रहे हैं —

१. काव्यप्रकाश (१)

२. उद्धृत — विश्व सूक्ति-कोश, भाग २, पृष्ठ ६५

१. रस-परिपाक

शब्द तथा अर्थ काव्य की काया है, तो रस उसकी आत्मा। जैसे आत्मशून्य काया निष्प्राण है, वैसे ही रसशून्य काव्य निष्प्राण है। रसात्मक वाक्य ही काव्य है। आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यंरसात्मकं काव्यम्'^१ कहकर इस सिद्धान्त का अत्यधिक महत्त्व पल्लवित किया है। भरत मुनि का निम्नलिखित सूत्र रस विवेचन का प्रस्थानबिन्दु है —
'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।'^२

रस की परिकल्पना अति सूक्ष्म और विलक्षण है, साथ ही अपरिभाष्य भी; क्योंकि यह आस्वाद्य और अनुभवमात्र है। तथापि यदि शब्दों में इसकी परिभाषा व्यक्त करना चाहें, तो कह सकते हैं कि वह आनन्दात्मक चित्तवृत्ति अथवा अनुभव, जो काव्य की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के पठन या श्रवण के परिणाम स्वरूप विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी से युक्त स्थायीभावों के व्यञ्जित होने पर उत्पन्न होता है, रस है। आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसे सत्त्वगुण के उद्रेक की स्थिति में आविर्भूत, अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तर-स्पर्श-शून्य, ब्रह्मानन्द-सहोदर^३ और लोकोत्तर-चमत्कारमय बतलाया है।^४ उद्भट ने निम्नांकित नव प्रकार के रसों का कथन किया है —

भृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः।^५

यद्यपि मनुष्य के भाव अनन्त हैं, अतः रस भी अनन्त हैं, परन्तु अभिनव गुप्त ने 'एवं ते नवैव रसाः'^६ उद्घोषित कर रस नव ही माने हैं, जिनमें अन्य समस्त रस निहित हो जाते हैं। सभी प्रकार की उद्भावनाओं को मिलाकर रसभेदों का सर्वयोग ३२ होता है^७, परन्तु प्रायः सर्वस्वीकृत रस उपर्युक्त ९ हैं। उक्त नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य और भक्ति आदि ऐसे रस हैं, जिन्हें अनेक आचार्यों ने स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार किया है। इन सभी रसों का संक्षिप्त विवेचन हम कवि की रस-व्यञ्जना का अध्ययन करते समय प्रस्तुत करेंगे।

१. साहित्य-दर्पण

२. नाट्यशास्त्र, काव्यमाला ४२, पृष्ठ ९३

३. 'ब्रह्मानन्द सहोदर' के स्थान पर 'ब्रह्मास्वाद सहोदर' का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। डॉ० नगेन्द्र ने 'रस सिद्धान्त' में 'ब्रह्मास्वाद सहोदर' की ही व्याख्या की है।

४. साहित्य-दर्पण (३.२.३)

५. काव्यालङ्कार-संग्रह (४.४)

६. हिन्दी अभिनवभारती, पृष्ठ ६४०

७. रस-सिद्धान्त, पृष्ठ २५२

समयसुन्दर रस-रसिक कवि हैं। उन्होंने काव्यों में रस का परिपाक होना अनिवार्य माना है। वे स्वयं अपने काव्यों में रसानुभूति कराने का प्रयत्न करते थे, ताकि पाठक या श्रोता उद्दीप्त भावों की प्रबलता से सहृदयता की अनुभूति कर सके। यों तो समयसुन्दर की रचनाओं का प्रत्येक वाक्य रसयुक्त है, किन्तु कतिपय वाक्यों का विन्यास इस प्रकार से हुआ है कि वे 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' की पुष्टि करते हुए प्रतीत होते हैं।

यद्यपि कवि समयसुन्दर यह मानते हैं कि रचना छोटी, सारगर्भित और रसपूर्ण होनी चाहिए, तथापि उन्होंने वृहद् रचनाएँ भी रची हैं, लेकिन वे पाठकों या श्रोताओं की मनोभावनाओं को ध्यान में रखते हुए कहते हैं कि तुम यह मत कहो कि कवि ने इतने विशद ग्रन्थ की रचना क्यों की! तुम इसे पढ़ोगे, तो लोकोत्तर स्वाद प्राप्त करोगे और नवनवीन रसों से परिपूर्ण नवनवीन कथाओं का पठन कर रचनाकार को 'शाबासी' दोगे, साधुवाद दोगे।^१

यद्यपि कवि के साहित्य में शृंगारादि नव रसों की सजीव अभिव्यञ्जना हुई है, लेकिन उसमें प्रधानता शान्तरस की ही है। शृंगारादि रसों से शान्त-रस का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। कविवर की यह अद्भुत कवित्व-शक्ति ही है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में इस प्रकार से रस का परिपाक किया है कि वे पाठकों और श्रोताओं को क्रमशः एक-एक रस का आस्वादन कराते हुए अन्त में निमग्न कर देते हैं। इस प्रकार कवि भोग से योग की ओर ले जाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यद्यपि यह निर्भ्रान्त सत्य है कि कवि की प्रत्येक रचना का समापन विरक्ति और आत्मशान्ति की गोद में होता है, परन्तु वे अपनी रचनाओं में अन्य सांसारिक रसों की उपेक्षा भी नहीं करते हैं। कवि की साहित्य-साधना का लक्ष्य मनुष्य को लौकिक दुःखों से छुटकारा दिलाकर मोक्ष के आनन्द की प्राप्ति कराना है। अतः कवि समयसुन्दर प्रमुख रूप से शान्त-रस को ही अंगीकृत करते हैं। संक्षेप में कहें, तो समयसुन्दर के साहित्य का शान्तरस अंगीरस है और शेष अंगरस हैं।

अब हम विविध रसों के आश्रय से विवेच्य कवि के कृतित्व का मूल्यांकन करने का प्रयत्न करेंगे।

१.१ शृंगार-रस

जिसमें प्रेमी एवं प्रेमिका पारस्परिक प्रेमपूर्ण व्यवहारों की चर्चा होती है, शृंगार-रस कहलाता है। शृंगार रस का स्थायीभाव रति है। शृंगार का शाब्दिक अर्थ ही है- ऐसी स्थिति, जिसमें कामवासना की वृद्धि हो। मानव की कामवासना से सम्बद्ध बातों से होने वाला आनन्द ही इस रस का प्राण है। प्रत्येक सांसारिक व्यक्ति का इस रस के प्रति विशेष आकर्षण होता है। अतएव काव्य के क्षेत्र में भी इसे शीर्षस्थ स्थान प्राप्त हुआ है।

१. सीताराम-चौपाई (१.७.५)

भोज ने 'शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः'^१ घोषित कर इस रसनीयता के आधार पर ही शृंगार को एकमात्र रस माना है। इसके भेद-उपभेदों की भी अत्यधिक विस्तार से चर्चा हुई है। डा० नागेन्द्र ने शृंगार रस के ५२ उपभेदों का विवेचन किया है;^२ लेकिन मुख्यतः इसके दो भेद किये गये हैं —

१. संयोग-शृंगार और २. विप्रलम्भ-शृंगार।

नायक-नायिका के संयोग के समय जो रति हो, वह संयोग-शृंगार है और वियोग-काल में जिस रति का आविर्भाव हो, वह विप्रलम्भ-शृंगार है।

महाकवि समयसुन्दर के साहित्य में हमें शृंगार रस के अनेक मनोहारी चित्र तथा मार्मिक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। अध्यात्म-प्रधान साहित्य में शृंगार रस की सशक्त शब्दों में अभिव्यञ्जना, समयसुन्दर की अपनी विशेषता है; लेकिन उनका शृंगार रस रीतिकालीन शृंगार की तरह अश्लील न होकर संयमित और स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, गर्भवती सीता का कवि ने कितना सजीव एवं अकृत्रिम चित्रण किया है —

वज्रजंघ राजा घरे, रहती सीता नारि।

गर्भ लिंग परगट थयो, पांडुर गाल प्रकारि ॥

थणमुख श्यामपणो थयो, गुरु नितंब गति मंद।

नयन सनेहाला थया, मुखि अमृत रसबिंद ॥^३

कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों — संयोग और वियोग को अपनी रचनाओं में पर्याप्त स्थान दिया है।

१.१.१ संयोग-शृंगार

संयोग-पक्ष के अनेक उत्कृष्ट चित्र आलोच्य रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। संयोग-शृंगार का चित्रण मुख्यतया वहाँ हुआ है, जहाँ संयम ग्रहण करने से पूर्व नायक या नायिका भौतिक और लौकिक भोगों में अनुरक्त है अथवा उनके दीर्घ विरह के समाप्त होने पर मिलाप हुआ है।

दमयन्ती बारह वर्षों से पतिवियोग की व्यथा सहन कर रही थी। एक बार दधिपर्ण राजा के संग आए कूबड़ रूपधारी नल से दमयन्ती का स्पर्श हो जाने से दमयन्ती को रोमांच हुआ। नल का रूप प्रकट होने पर दोनों जल-धाराओं के संगम की तरह एक हो गये। कवि ने इसका चित्रकारी चित्रण किया है —

१. उद्धृत — रससिद्धान्त, पृष्ठ २५७

२. रससिद्धान्त, पृष्ठ २४६-२४८

३. सीताराम-चौपाई (८.४ दूहा १-२)

हा रंग रलिआं, हो रंग रलिआं। नलदवदन्ती बेऊँ मिलियां ॥
 कुं बडउ हुकम लेई नई हरसई। कुमरी हीयऊँ हाथसुं फरसई ॥
 ततषिण रोम राय तनु विहसी। दवदन्ती नी छाती उलसी ॥
 कहई दवदन्ती प्रिय तुं जाण्यऊ। कूबडउ हाथ झाली नई ताण्यऊ ॥
 प्रीतम अब तुं नइ नहि छोडुं। तुजसुं जोर करी प्रीति जोडुं ॥
 नलनई हे जि मिली दवदन्ती। प्रीतम प्रेम नजरि निरषंती ॥
 हिब हुआ आणंद लील विलासा। रोम-रोम प्रगट्या प्रेम उलासा ॥
 बारे बर से जे दुख सहि या। ते नहु बीसरिया सुख लहिआ ॥^१

सुकुमालिका का विवाह सागरदत्त से होता है। सुकुमालिका उससे भोग भोगना चाहती है। उसकी मिलन-उत्सुकता को कवि ने एक सहज भाव से अभिव्यक्त किया है —

भरतार सुं सुख भोगवुं रे हुंस घणी घणउ हेज रे।
 सुण हइ सखर समारीयउ रे, सखरी सजी सुख सेज रे।
 दीवा कीधा तिहाँ दीपता रे, फूटरी पहिरी फूलमाल रे।
 परिमल महकइ महुल मइ रे, वारु गंधोटी विचाल रे ॥^२

राह में चकवी को चकवे के विरह में व्यथित देख राजा पवनंजय को अपनी पत्नी के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। वह वहाँ से लौटता है और चुपचाप अञ्जना से मिलने चला जाता है। कवि ने दोनों के संभोग-श्रृंगार का कितना संयमित एवं संक्षिप्त वर्णन किया है —

राति छानउ पाछउ आयउ, अञ्जनासुन्दरी सुं सुख पायउ ॥^३

राजा शतानीक अपनी रानी मृगावती का दोहद पूर्ण करने के लिए उसके साथ सरोवर में स्नान करता है। इस सुखद संयोग में रानी मानस-हंस-सी तैरकर परमानन्द प्राप्त करती है। कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ इस रोचक प्रसंग को उद्घाटित करती हैं —

गीतगान करइ गोरडी, अद्भुत सर्व उपाय।
 चतुरंग सेना परवर्यउ, साथि सतानीक राय ॥
 आवी राणी बावड़ी अति सुन्दर सोपान।
 राणी पइठी झील्लिवा, मानस हंस समान ॥^४

इसी तरह संयोग-श्रृंगार में ओतप्रोत करने वाले एक-दो और उदाहरण देखें।
 मदनरेखा जब गर्भ धारण करती है, तब वह स्वप्न में चन्द्र-दर्शन करती है। वह रात्रि में ही

१. नलदवदन्ती-रास (५.५.१०-१३, २०-२२)

२. द्रौपदी-चौपाई (१.९.१, ८)

३. अञ्जना सती गीतम् (५)

४. मृगावती-रास (१.४.९-१०)

अपने पति जुगबाहु से अपना स्वप्न-दर्शन कहने को प्रस्तुत होती है —

इक दिन मयणरेहा तिन अवसर, निस भर सूती आपणे मन्दिर ।
सुपन फेरवे पुनमचन्दा, जागत प्रगट्यो परमानन्दा ॥
चन्द सुपन मनमाहे धरती, चाली निज प्रियु पासे निरती ।
राजहंस जिम लीला करती, ठमठम अंगण पगला धरती ॥
आपण प्रिउ ने पासे आवे, कोमल वचने कंत जगावे ।
मयणरेहा बोली अति मीठी, चन्दस्वपन स्वामी मैं दीठी ॥^१

लड्डा विजय पर राम-सीता के मिलाप को कवि ने जिस सजीव शब्दावलि में अवतरित किया है, वह कवि के रचना-कौशल का परिचायक है —

जाणे सींची चन्दनइ रे, झीली अमृत कुण्ड रे ।
छांटी कपूर पाणी करी रे, इम सुख पाम्यो अखण्ड रे ॥
सीता राम साम्हो जोयो रे, राम थया अति हृष्ट रे ।
चक्रवाक जिम प्रह समइ रे, चक्रवाकी नी दृष्टि रे ॥
राम सीता बेऊँ मिल्या रे, जे थयो सुख सनेह रे ।
ते जाणइ एक केवली रे, के वलि जाणइ तेह रे ॥^२

१.१.२ विप्रलम्भ शृंगार

आलोच्य साहित्य में विप्रलम्भ की दशों दशाओं का चित्रण हमें उपलब्ध होता है। कवि का विरह-वर्णन बिहारी आदि की तरह ऊहात्मक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण न होकर वेदनात्मक और अकृत्रिम है। कवि की अधिकांश विरह-पात्राएँ विरह के प्रारम्भिक काल में तीव्र वेदना की अनुभूति करती हैं, लेकिन बाद में वे इसे कर्मफल आदि समझकर धर्मपूर्वक जीवन बिताती हैं। विवेच्य रचनाओं के विप्रलम्भ शृंगार पक्ष की एक और विशेषता है कि ये विरह पात्राएँ कृष्ण की गोपिकाओं की भांति मात्र वियोग-पीड़ा से छटपटाती ही नहीं हैं, अपितु उसे दूर करने के लिए स्वयं पुरुषार्थ भी करती हैं। 'पुण्यसार-चरित्र' की नायिका इसका उत्तम उदाहरण है। यद्यपि विवेच्य काव्य की भूमि सिमटकर शान्त रस में केन्द्रित हुई है, पर विप्रलम्भ-शृंगार का जो जीवन्त रूप प्रस्तुत हुआ है, वह भावपक्षीय रमणीयता का सृजन कर रसोद्रेक में सहायक बनता है।

स्थूलिभद्र तथा कोशा से संबंधित सभी रचनाएँ विप्रलम्भ शृंगार की दाहक-ज्वाला का दर्शन कराती हैं। कोशा कहती है कि परदेशी से प्रीति कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसका पुनः आना कठिन है। मैंने भी परदेशी से प्रीति की और अब विरह ज्वाला से धधक रही हूँ। दिन में अन्न-जल ग्रहण न कर पाने के कारण दुखी हूँ और रात्रि

१. चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३.३.१-३)

२. सीताराम-चौपाई (७.५.१४-१६)

में नींद न आने के कारण। इसके अलावा मैं अपने प्रेमी को पत्र भी नहीं लिख सकती, क्योंकि पत्र लिखते समय वह अश्रुनदी से आर्द्र हो जाता है —

प्रीतड़िया न कीजइ हो नारि परदेसियां रे, खिण खिण दाइइ देह।
 वीछड़िया वालहेसर मलवो दोहिलउ रे, सालइ अधिक सनेह ॥
 राति नइ तउ नावइ वाल्हा नींदड़ी रे, दिवस न लागइ भूख।
 अन्न नइ पाणी मुझ नइ नवि रुचइ रे, दिन-दिन सबलो दुःख ॥
 मन ना मनोरथ सवि मन मां रह्या रे, कहियइ केहनइ रे साथि।
 कागलिया तो लिखतां भीजइ आंसुआं रे, आवइ दोखी हाथि ॥^१

कोशा की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी उपर्युक्तवत् अत्यन्त मार्मिक हैं —

पर दुक्ख जाणइ नहीं पापिया रे, दुसमण घालइ विचइ घात रे।
 जीव लागउ जेहनउ जेहस्युं रे, किम सरइ कीथां विण वात रे ॥
 त्रोट्टी नवि प्रीति जुटइ नहीं रे, त्रोटतां ते त्रूटइ माहरा प्राण रे।
 कहउ केही परि कीजीयइ रे, तुम्हें जउ चतुर सुजाण रे ॥^२

नल के बिछुड़ जाने पर दमयन्ती को जो विरह-व्यथा होती है, उसे कवि ने मूर्त्तिमन्त बना दिया है। यहाँ तक कि सूर्य के लिए भी दमयन्ती की विरह-वेदना का अवलोकन कर पाना असह्य हो गया है, अतः वह भी अस्ताचल की ओर गतिमान् हो जाता है —

रवि जाण्युं ए विरहणी, मत मुझ मरइ हजूर।

देखी न सकुं हुं नजरि, तिण आथमीयउ सूर ॥^३

चन्द्रोदय होने पर दमयन्ती चन्द्र के माध्यम से अपने प्रिय को हृदयस्पर्शी विरह-सन्देश कहलाती है। कवि ने यह विरह-सन्देश विस्तारपूर्वक वर्णित किया है।^४

पुण्यसार जब वल्लभी की सप्त श्रेष्ठि-पुत्रियों से विवाह कर उन्हें छोड़ कर चला जाता है, तो वे पति-वियोग में रोती-रोती मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। उनके विरहोद्गार पाठक के हृदय को विचलित कर देते हैं।^५

रुद्र पुरोहित ने रत्नवती के प्रति कामासक्त होकर सिंहलसिंह को समुद्र में धकेल दिया। प्रियतम के विरह-पाश में जकड़ी रत्नवती की दशा असह्य है। वह देव तक को भी उपालम्भ देती है —

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री स्थूलिभद्र गीतम् (१, ३-४)

२. वही, स्थूलिभद्र गीतम्, ३-४

३. नल-दवदन्ती रास, खण्ड ३, ढाल ४ से पूर्व, दोहा २

४. द्रष्टव्य — वही, ३-४

५. द्रष्टव्य — पुण्यसारचरित्र चौपाई (१०.१-८)

है है वज्र मोरु हियउ रे लाल, पाथर थीय प्रचंड ।
 वालहेसर थी वीछड्यां रे लाल, खिण न थयउ सतखंड ॥
 रे रे देव तुं कां रुठउ रे लाल, कुण अपराध मई कीध ।
 किहां पीहर किहां सासरउ रे लाल, दुख मांहे दुख दीध ॥^१

लंका में राम के वियोग में सीता की दयनीय अवस्था विप्रलम्भ-शृंगार से सराबोर है —

जेहवी कमलनी हिमबली, तेहवी तनु विछाय ।
 आंखे आंसू नाखती, धरती दृष्टी लगाय ॥
 केस पास छटइ थकइं, डावइ गाल दे हाथ ।
 नीसासां मुख नांखती, दीठी दुख भर साथि ॥^२

निर्वासित सीता के महान् गुणों की स्मृति होने पर रुदन करते हुए राम द्वारा अभिव्यक्त मार्मिक उद्गार भी विप्रलम्भ-शृंगार को ही प्रकट करते हैं —

प्रिय भाषिणी, प्रीतम अनुरागिनी, सधउ घणुं सुविनीत ।
 नाटक गीत विनोद सह मुझ, तुझ विण नावइ चीत ॥
 सयने रम्भा विलास गृह काम-काज, दासी माता अविहड़ नेह ।
 मंत्रिवी बुद्धि विधान धरित्री क्षमा निधान, सकल कला गुण गेह ॥^३

नेमिनाथ राजिमती (राजुल) से संबंधित लगभग ३५ गीतों का वर्ण्य विषय ही नेमि के प्रति राजिमती की विरह-पीड़ा को प्रगट करता है। विरहवर्णन में 'बारहमासा' का वर्णन अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। स्थानाभाव के कारण केवल उसी को ही यहां अवतरित किया जा रहा है, जिसमें बारह मासों में राजिमती के विरह तथा तज्जनित उसकी समस्त क्रियाओं की झांकी परिलक्षित होती है —

सखि आयउ श्रावण मास, पिउ नहीं मांहरइ पासि ।
 कंत बिना हूँ करतार, कीधी किसी भणी नारि ॥
 भाद्रवइ वरसइ मेह, विरहणी धूजइ देह ।
 गयउ नेमि गढ़ गिरनारि, गिर वही न सकी नारि ॥
 आंसू अमीझरइ चंद, संयोगिनी सुखकंद ।
 निरमल थया सर नीर, नेमि बिना हूँ दिलगीर ॥
 कातियइ कामिनी टोल, रमइ रासइइ रंग रोलि ।
 हूँ घरि बइसी रहि एथि, मन माहरउ पिउ जेथि ॥

१. सिंहलसुत प्रियमेलक रास (५.१०-११)

२. सीताराम-चौपाई (खण्ड ६, ढाल २ से पूर्व, दूहा २४-२५)

३. वही (८.३.३-४)

मगसरइ वाजइ वाय, विरहणी केम खमाय ।
 मंड किया के अंतराय, ते केवली कहिवाय ॥
 पापियउ आवयउ पोष, स्यउ जीविवा नउ सोस ।
 दिन घट्या बाधी राति, ते गमुं केण संघाति ॥
 माह मास विरही मार, शीत पड़इ सबल ठठार ।
 भोगी रहइ तन मेलि, मुझ नइ पियु मन मेल ॥
 फूटरा फागुण बाग, नर नारी खेलइ फाग ।
 नेमि मिलइ नहीं जां सीम, तां सीम रमिवा नीम ॥
 चैत्र आम मउर्या चंग, कोयली मिली मन रंग ।
 बाई माहरउ भरतार, की मेलस्यइ करतार ॥
 वैशाख वारु मास, नहीं ताढ़ि तड़कउ तास ।
 ऊँची चढ़ि आवास, वइसयइ केहनइ पास ॥
 जेठ मासि लू नउ जोर, मेहनइ चितारइ मोर ।
 हूँ पिण चितारूँ नेमि, पणि नेमि नाणइं प्रेम ॥
 आषाढ उमट्या मेह, गया पंथि आपणि गेह ।
 हूँ पणि जोउं प्रियु वाट, खांति वछाउं खाट ॥^१

इस तरह हम पाते हैं कि विवेच्य साहित्य में शृंगार-लीला बड़ी रमणीयता के साथ मुखरित हुई है ।

१.२ हास्य-रस

हास्य-रस का स्थायी भाव 'हास' है । आचार-व्यवहार तथा वेश-भूषा की अनुपयुक्तता, असंगति, भद्दापन, विकृति, धृष्टता, चपलता, प्रलाप, व्यंग्य आदि इसके विभाग माने गये हैं । भरत ने हास्य के दो उपभेद किये हैं — (१) आत्मस्थ, जहाँ विदूषक या पात्र स्वयं हँसता है और (२) परस्थ, जहाँ वह दूसरों को हँसाता है ।^२ अभिनव ने इसका परिष्कृत रूप इस प्रकार दिया है— (१) स्वगत हास्य और (२) अन्यत्रसंक्रान्त हास्य ।^३

कवि ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर हास्य भावनाओं की सुन्दर सृष्टि की है । इस रस के पल्लवन के लिए कवि ने रचना अथवा अन्य किसी के रूप-रंग, आकार-प्रकार, बोलचाल आदि में कोई ऐसा विलक्षण विकार प्रदर्शित किया है, जो आह्लाद का उत्पादक होता है । अन्यायपुर के राजा की न्याय-पद्धति इस रस का अचूक

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, बारहमासा गीतम् (१-१२)

२. हिन्दी अभिनव भारती, पृष्ठ ५७२

३. वही, पृष्ठ ५७३

उदाहरण है। कथा यह है कि एक चोर ने किसी के घर में सेंध लगायी। संयोग से दीवार गिर गई और चोर की मृत्यु हो गई। चोर की मां ने राजा ने न्याय मांगा। राजा ने, जिसके घर चोर ने सेंध लगायी, उसे बुलाया। गृहस्वामी ने कारीगर को दोषी बताया, जिसने दीवार कच्ची बनाई। कारीगर ने एक युवती को अपराधी कहा, जिसने उसका ध्यान आकृष्ट किया। युवती ने परिव्राजक को दोषी ठहराया, जो नग्न था। परिव्राजक ने राजकुमार को अपराधी सिद्ध किया, जिसने उसकी ओर घोड़ा दौड़ाया। राजकुमार ने विधाता पर दोषारोपण किया। राजा व मन्त्री ने विधाता को खोज के लिए अपने सारे कर्मचारी भेजे।^१ इस तरह यह सम्पूर्ण कथा ही हास्य-लोक से अवतरित हुई है। मजे की बात तो यह है कि इस नगर का नाम और नगर के पदाधिकारियों एवं प्रमुख नागरिकों के नाम तक भी हास्य-रस के ही पोषक हैं —

अन्यायपुर पाटण इसो, तेहनो सुणो तमासौ रे ।
 सरखे सरखुं सहु मिल्युं, सुणतां आवै हासौ रे ॥
 निर्विचार राजा इहाँ, सर्वलूटाक तलारो रे ।
 सर्वगिल मुंहतो इहाँ, प्रधान इहाँ अनाचारो रे ॥
 अज्ञान राशि गुरु है तिहाँ, राजवैद्य जंतुकेतो रे ।
 उषध रस छै एहने, कुटुंब कोलाहल ते-तो रे ॥
 नगरसेठ वंचनामती, पुरोहित ते सिलापातो रे ।
 कपटकोशा वेश्या सही, घाले ते सहु ने घातो रे ॥^२

‘दान-शील-तप-भावना-संवाद’ में दान-शील-तप-भाव — चारों का व्यंग्यपूर्ण संवाद जहाँ एक ओर शान्त-रस प्रधान है, वहीं दूसरी ओर हास्यरस से सराबोर है। इसी तरह सांब-प्रद्युम्न चौपाई के तीसरे खण्ड की सम्पूर्ण घटनाएँ एवं प्रसंग हास्यरस से पूर्ण हैं। उसमें प्रद्युम्न द्वारा कही गई बातें, बनाये गये विविध रूप और किये गये धृष्टतापूर्ण कार्य सब के सब हास्योत्पादक हैं। उसी का एक प्रसंग हम यहाँ उद्धृत करते हैं। सत्यभामा रुक्मिणी से द्वेष रखती है। प्रद्युम्न एक पण्डित का रूप बनाकर सत्यभामा के पास पहुँचता है। सत्यभामा उससे निवेदन करती है कि वह उसे रुक्मिणी से अधिक सुन्दर होने का उपाय बतावें। प्रद्युम्न द्वारा निर्दिष्ट उपाय और सत्यभामा द्वारा उस उपाय की क्रियान्विति को पढ़ते हुए हँसी के मारे पाठक के पेट में दर्द हो उठता है —

१. देखिये — चम्पक-श्रेष्ठी चौपाई (२.४)
२. चम्पक-श्रेष्ठी चौपाई (२.४.१-४)

मस्तक मुंडि तुं आपणुं रे, आभरण सवि उतारि ॥
 खंडित दंडित अति जर्यारे, पहिर पुराणा चीर ।
 मस्तक मुखि आखि संसि घसी रे, सगलुं लेपि सरीर ॥
 जिम कहं तिम भामा कर्यउ रे, अरथी न देशइ दोष ।
 दीसइ रूप बीहामणुं रे, जाणे भूत प्रदोष ॥
 'रुंड बुंड स्वाहा', 'रुंड बुंड स्वाहा' रे, आठोतर सउ वार ।
 मंत्र गुणे अणबोलती रे, होस्यइ रूप अपार ॥^१

कवि ने नारद के रूप को जिस रीति से चित्रित किया है, वह हँसी के इन्द्रधनुष बिखेरता-सा प्रतीत होता है —

दंड कमंडल हाथ ले लीधुं, जटाजूट सिर टोप ।

गलइ जनोंई मुंजनी मेखला, गणे त्रिका आटोप ॥^२

द्रौपदी के हरण हो जाने पर उसकी अत्यधिक खोज करवाई गई, परन्तु जब उसका कहीं पता न चल सका, तो कुन्ती कृष्ण के पास गई। कृष्ण ने जब कुन्ती से आने का कारण पूछा तो वह व्यंग्यमिश्रित भावों में कहने लगी - क्या कहूँ, कहने जैसी बात नहीं है, किन्तु कहे बगैर काम भी नहीं बनेगा। कृष्ण! यहाँ तुम इतनी रानियों के पति होकर भी उन सबकी रक्षा करते हो और वहाँ पाँच पति होते हुए भी एक पत्नी की रक्षा नहीं कर सके यानि द्रौपदी का अपहरण हो गया। यहाँ मधुर हँसी आनी स्वाभाविक है।

१.३ करुण-रस

आलोच्य कवि के साहित्य में करुण-रस का परिपाक उच्च कोटि का हुआ है। करुण अत्यन्त कोमल रत्न है। इसका स्थायीभाव शोक है। कवि की रचनाओं में करुणरस-पूरित प्रसंगों के पर्यवेक्षण से ही ज्ञात हो जाता है कि इष्ट ही हानि, अनिष्ट की प्राप्ति एवं प्रेम-पात्र के वियोग आदि शोक के समुचित अवसरों पर यह रस निष्पन्न होता है।

कवि का हृदय करुणार्द्र था। उनके हृदय की यही भावुकता उनकी रचनाओं के करुणमय प्रसंगों में अन्ततः अभिव्यक्त हुई है। इसीलिए वह पाठक के हृदय को छूती व मर्म को बेधती है। सचमुच, कवि की अन्तर्पीड़ा को उजागर करने में करुण रस के प्रसंग सहायक सिद्ध हुए हैं। इसी कारण भवभूति ने 'एको रसः करुण एव'^३ कहकर करुण को सर्वरसों का मूल स्वीकार किया।

रुक्मिणी ने प्रद्युम्न नामक पुत्र को जन्म दिया। श्री कृष्ण उसे अपनी गोद में खेला रहे थे। आकस्मिक एक शत्रु-देव आया और रुक्मिणी का रूप बनाकर कृष्ण से

१. सांब-प्रद्युम्न चौपाई (१०.१६-१९)

२. द्रौपदी-चौपाई (२.९.५)

३. उत्तरराम-चरित (३.४७)

प्रद्युम्न को लेकर चम्पत हो गया। रहस्य खुलने पर रुक्मिणी पुत्र-वियोग में आकाश-पाताल एक करती हुई विलाप करने लगी। उसके इस शोकपूर्ण क्रन्दन से भला, किसका चित्त द्रवीभूत नहीं होगा —

जीवन प्राण अम्हारइ ए पुत्र, पुत्र बिना प्राण छूटइ रे।
 हासी थी वेषासी थायइ, अति ताणुं पिण त्रुटइ रे ॥
 रे रे देव दुष्ट दोषी जन, मइ तुझ स्युं अपराध्युं रे ॥
 पुत्र वियोग कियउ कां पापी, स्युं कहिनइ तइ साध्यउ रे ॥
 नयणे देव निधान दिखाडी, हाथ थी झड़पी लीधुं रे।
 अनुपम पुत्र रतन उदाल्युं, आवडुं दुख कां दीधुं रे ॥^१

नल और दमयन्ती जब अयोध्या का त्याग करके जाते हैं, उस समय परिजन, प्रजाजन, दासियाँ इत्यादि उन्हें पहुँचाने के लिए आते हैं। उन सभी लोगों की शोक-विह्वलता के प्रसंग को कवि ने अत्यन्त करुण बना दिया है।^२ इसी प्रकार नेमि एवं राजुल से संबंधित गीतों में नेमि के विवाह में सम्मिलित स्वजनों के भोजन निमित्त बन्दी बनाये निरपराध पशुओं की करुण-चीत्कार सुनकर नेमि करुणाभिभूत होकर बिना विवाह किये ही वापस लौट जाते हैं और राजुल विलाप करने लगती है।^३ पाठक का हृदय भी उनके इस चित्रण से करुणाप्लावित हो जाता है। भगवान् महावीर के निर्वाण हो जाने पर गणधर गौतम द्वारा किये गये शोक का तो कवि ने अत्यधिक हृदयग्राही चित्र उपस्थित किया है।^४ इसी तरह पुत्र-वियोग में माता मरुदेवी द्वारा व्यक्त निम्नांकित वचन भी मर्मस्पर्शी हैं —

सुरनर कोड़ि सुं परिवरयउ, हींडतउ वनिता मझार रे।
 आज भमइ वन एकलउ, ऋषभ जी जगत् आधार रे ॥
 राज लीला सुख भोगियउ, म्हारउ रिषभ सुकुमाल रे।
 आज सहइ ते परिषहा, भूख तृषा नित काल रे ॥
 हस्ति ऊपर चड्यउ हींडतउ, आगलि जय-जयकार रे।
 आज हींडइ रे अलवाहणउ, चिहुं दिसि भमर गुंजार रे ॥
 सेज तलाइ में पउढतउ, वर पटकूल विछाइ रे।
 आज तउ भूमि संथारइउ, बइठड़ा रयणी विहाइ रे।

१. सांब-प्रद्युम्न चौपाई (१.४.४, ७-८)
२. द्रष्टव्य — नलदवदन्ती रास (२.२)
३. द्रष्टव्य — नेमि व राजुल से संबंधित समस्त गीत (समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पृष्ठ १११ से १४२ तक प्रकाशित)
४. द्रष्टव्य — श्री गौतम स्वामी गीतम् (१-६)

मस्तकि छत्र धरावतउ, चामर वींजता सार रे ।
आज तउ मस्तकइ रवि तपइ, डांस मसक भणकार रे ॥
इम मुझ दुख करंतड़ा, रोवंता रात नइ दीस रे ।
नयणे अंध पडलवल्य्या, मोहनी विषम गति दीस रे ॥^१

द्रौपदी-चौपाई में एक भिखारी की दयनीय अवस्था के चित्रण में भी ऐसा ही करुण-रस का परिपाक हुआ है —

डीलइ माखी अणबणइ, हाथे लाकड़े लीध रे ।
पगि बांध्या पाटा घणा, माथइ ठीकरुं दीध रे ॥
घरि-घरि भिक्षा मांगतउ, खंडित दंडित चीर रे ।
दीसइ दीन दयामणउ, सुन्दर नहीं सरीर रे ॥^२

‘सीताराम चौपाई’ में आद्यन्त ऐसे अनेक स्थल हैं, जो करुण-रस से ओतप्रोत हैं। रावण द्वारा सीता का हरण करने से लेकर राम द्वारा सीता को पुनः प्राप्त करने पर्यन्त सारी घटनाएँ करुणरस का आस्वाद कराती हैं। सीता का तो विवाह-पश्चात् का अधिकांशतः जीवन करुण प्रसंगों को लिए हुए है। सीता-हरण पर राम का विलाप दुःखद्रवित है —

हाहा प्रिया तू किहां गई, अति ऊतावलि एह ।
विरह खम्यो जायइ नहीं, मुझनइ दरसण देहि ॥
प्राण छूटइं तो बाहिरा, तूं मुझ जीवन प्राण ।
तुझ पाखइ जीवुं नहीं, भावइं जांणि म जाणि ॥^३

रावण के शस्त्र से मृतप्रायः लक्ष्मण को देखकर राम की मन-स्थिति का जो चित्रण कवि ने किया है,^४ उसे पढ़कर तो पाठक शोकाकुल होकर आँसू बहाने को विवश हो जाता है। लक्ष्मण के निधन पर रानियों का प्रलाप^५ तथा शंबूक के वध पर चन्द्रनखा का विलाप^६ एवं रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी आदि रानियों का रुदन^७ तो इतना अधिक करुणा से अभिभूत है कि पाषाण-हृदय भी पिघल जाता है। प्रस्तुत है, लक्ष्मण की रानियों द्वारा किये गये करुण-प्रलाप से संबंधित एक पद्य —

१. श्री मरुदेवी माता गीतम् (२-७)
२. द्रौपदी-चौपाई (१.१०.३-४)
३. सीताराम-चौपाई (५.८. दूहा २, ४)
४. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (६.५.१७-२८)
५. वही (९.५)
६. द्रष्टव्य — वही (५.३)
७. द्रष्टव्य — वही (७.३.८-१२)

पोकार करतां हीयो फाटई, हार त्रौडइ आपणा।

आभरण देह थकी उतारइ, झरई आंसू अति घणा।^१

रावण के महलों में विरहिनी सीता वर्णन करुण-सागर में डूबा देने वाला है —

दीठी सीत दयामणी, दुरबल क्षीण सरীর ॥

जेहवी कमल नी हिमबली, तेहवी तनु विछाय।

आंखें आंसू नाखती, धरती दृष्टि लगाय ॥

केसपास छूटइ थकई, डावई गाल दे हाथ।

नीसांसां मुख नाखती, दीठी दुख भर साथि ॥^२

कवि कृत 'सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी' भी आदि से अन्त तक करुणरस प्रधान है। 'सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी' और 'चम्पक श्रेष्ठी चौपाई' में दुष्काल का किया गया चित्रण, हमारी हृत्तन्त्री को झकझोर डालता है। उदाहरणार्थ —

मृतकै रस्थग्रामे जाते श्रीपत्तने नगरे ॥

भिक्षुभयात् कपाटे जटिते व्यवहारिभिर्भशं बहुभिः।

पुरुषैर्माने मुक्ते सीदति सति साधु वर्गेऽपि ॥

जाते च पञ्च रजतैर्धान्यमाणे सकलवस्तुनि महर्ध्वे।

परदेशगते लोके मुक्त्वा पितृमातृबन्धुजनान् ॥

हाहाकारे जाते मारिकृतानेकलोकसंहारे।

केनाप्यदृष्टपूर्वं निशि कोलिक लुण्टते नगरे ॥^३

अधोलिखित पद्य में निर्दिष्ट स्थिति कितनी दयनीय है —

जे पंचामृत जीमता रे, खाता द्राख अखोड़।

कांटी खाये खोरड़ी रे, के खेजड़ ना छोड़ ॥^४

कविवर का अन्तिम जीवन अत्यन्त दुःखमय रहा। एक ओर वृद्धावस्था, दूसरी ओर दुर्भिक्ष से जर्जरित देह देखकर कवि का मन व्यथित हो जाता है। कवि के अनेक शिष्य थे। उन्होंने अपने शिष्यों के लिए बहुत-कुछ किया, किन्तु ऐसे समय में सभी उनका साथ छोड़ गये। 'यदि ते न गुरोर्भक्ताः शिष्यै किं तैर्निरर्थकैः',^५ कहते हुए कवि का हृदय रो उठता है। शोक-सिन्धु में निमग्न कवि दूसरों को भी सचेत करता है —

१. वही (९.५.१२)

२. सीताराम-चौपाई (६.१.२३-२५)

३. विशेष-शतक, प्रशस्ति (१-४)

४. चम्पक-श्रेष्ठी चौपाई (२.९.६)

५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, गुरु-दुःखितवचनम् (१-संस्कृत)

चेला नहीं तउ म करउ चिन्ता, दीसइ घणै चले पणि दुक्ख।

संतान करंमि हुआ शिष्य बहुला, पणि समयसुन्दर न पायउ सुक्ख ॥^१

इस प्रकार इस देखते हैं कि समयसुन्दर ने अपने साहित्य में ऐसे करुण दृश्य उपस्थिति किये हैं, जो हमें भी करुणार्द्र बना देते हैं। विवेच्य रचनाओं में धर्मोपघातज, अर्थापचयोद्भव, शोककृत, चित्त-ग्लानि-जन्य^२ आदि करुण-रस के समस्त उपभेदों के प्रसंग उपलब्ध होते हैं, जिनका संक्षिप्त उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं।

१.४ रौद्र-रस

कविप्रवर समयसुन्दर ने रौद्र-रस का उपयोग अधिक नहीं किया है। उन्होंने रौद्रता के प्रसंगों को भी अधिकांशतया शान्त या अन्य रसों में घटित कर दिया है, तथापि जहाँ पर रौद्र-रस की निष्पत्ति विशेष आवश्यक थी, वहाँ उन्होंने इस रस का आलम्बन लिया है।

रौद्र-रस का स्थायीभाव क्रोध माना गया है। यह रस किसी प्रकार का अन्याय, अपमान, अशिष्टता, अत्याचार और अनुचित व हानिकारक व्यवहार देखकर उनके प्रतिकार करने के विचार से चित्त में उत्पन्न होने वाले क्रोध से उद्दीप्त होता है। इसके तीन उपभेदों का संकेत भरत ने किया है —

(१) आंगिक या क्रियात्मक, (२) वेषात्मक तथा (३) वचनात्मक।^३

समयसुन्दर के साहित्य में तीनों ही प्रकार के रौद्र-रस के उल्लेख हमें प्राप्त होते हैं, जिन्हें हम नीचे प्रस्तुत करेंगे।

दुर्भिक्ष ने अपना रौद्र रूप प्रकट किया। प्रजा के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में इसकी प्रचण्ड रौद्रता मुखरित हुई। जनता की दीन अवस्था देख कवि ने दुर्भिक्ष के अन्याय तथा अत्याचार का जमकर विरोध किया। कवि की प्रतिकार की भावना इतनी प्रबल थी कि वे उस पर विविध दोषारोपण करने के अलावा गालियाँ देते भी नहीं चूकते —

दोहिलउ दंड माथइ करी, भीख मंगावि भीलडा;
 'समयसुन्दर' कहइ सत्यासिया, थारो कालो मुंह पग नीलडा ॥
 कूकीया घणुं श्रावक किता, तदि दीक्षा लाभ देखाडीया;
 'समयसुन्दर' कहइ सत्यासीया तइ कुटुम्ब बिछोहा पाडीया ॥
 सिरदार घणोरा संहर्या, गीतारथ गिणती नहीं,
 'समयसुन्दर' कहइ सत्यासीया, तू हतियारउ सालो सही ॥

१. वही, गुरु-दुःखितवचनम् (१-हिन्दी)

२. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, पृष्ठ ५७

३. नाट्यशास्त्र (६.६८)

‘समयसुन्दर’ कहइं सत्यासीयउ, तूं परहो जा हिव पापीया ॥^१

नागश्री ने धर्मरुचि मुनि को भिक्षा में तूम्बे का साग दिया, जिसे खाने से मुनि कालधर्म को प्राप्त हो गये। नागश्री के इस कुकृत्य पर उसके पति एवं जेठ आदि को अत्यधिक क्रोध आता है। वे उसे धिक्कारते हैं।^२ इस प्रसंग में कवि ने रौद्र-रस को अभिव्यक्ति दी है।

इसी प्रकार रुक्मिणी की अपेक्षा अधिक लावण्यवती बनने की इच्छा से सत्यभामा ने जब प्रद्युम्न द्वारा बताई हुई विधि को क्रियान्वित किया, तब उसका रौद्र स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है। जब वह आग बबूला होकर ब्राह्मण रूपधारी प्रद्युम्न को गालियाँ देती है, तो रौद्र के उत्तेजक-पक्ष का साक्षात्कार होता है।^३

राजा पद्मनाभ द्वारा अपहृत द्रौपदी को मुक्त कराकर पाँच पाँडव और कृष्ण लवण समुद्र पाकर गंगा-तट पहुँचे। पाँडवों ने नौका द्वारा गंगा पार की। कृष्ण की शक्ति देखने के लिए उन्होंने नौका वापस नहीं भेजी। कृष्ण भुजाओं से तैरकर नदी पार करते हैं। पाँडवों द्वारा नौका न भेजने का कारण ज्ञात होने पर श्रीकृष्ण बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने उन्हें फटकारा और अपने देश से उन्हें निकाल दिया।^४ यह प्रसंग रौद्र-रस का परिचायक है।

सार्ववाहों पर चोर-डाकुओं ने हमला किया, तो दमयन्ती इस अत्याचार को सहन न कर सकी और उसने —

दमयन्ती कहइ एम, बांह ऊँची करी, रे रे चोर चरड जणाए।

मइ राष्यउ ए साथ, कुण लूटी सकइ, निकल प्रयास ए तुम्ह तणा ए ॥

ए बाऊली करइ वात, चोर चिहुं दिसि, साथ लूटण ततपर थया ए।

सती कीयउ हुंकार, सींहणिनी परिं, तस्कर मृग त्रासी गया ए ॥^५

हनुमान राम का सन्देश लेकर लङ्का पहुँचे। सीता से मिलकर जब वे उस स्थान से बाहर निकले, तो राक्षसों ने उन्हें तत्काल घेर लिया। इससे हनुमान ने क्रोधावेश में वृक्ष उखाड़-उखाड़कर उन्हें मारना शुरु किया —

रिपुदल त्रुटि पइया समकालइं, हनुमंत उपरि तत्क्षण।

हनुमंत रिपुदल भांजी नाख्या, वृक्ष प्रहार विचक्षण ॥

वलि सहु सुभट मिलीनइं धाया हनुमन्त ऊपर असिधर।

हनुमंत हण्या गदा हथियारइं, अन्धकार जिमि दिनकर ॥^६

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सत्यासिया दुष्काल-वर्णन छत्तीसी (५,१०,१८,२८)

२. द्रष्टव्य — द्रौपदी-चौपाई (प्रथम खण्ड)

३. द्रष्टव्य — शांब-प्रद्युम्न चौपाई (ढाल १०-१२)

४. द्रौपदी-चौपाई (तृतीय खण्ड)

५. नलदवदन्ती-रस (३.५.९-१०)

६. सीताराम-चौपाई (३.२.४०-४१)

फिर तो हनुमान का रोष उबलने लगा। उसने विकराल वानर का रूप धारण कर लङ्का को तहस-नहस कर दिया।^१ हनुमान के प्रत्येक कार्य से क्रोध व्यंजित रौद्र-रस का परिपाक हो जाता है। इसी तरह इन्द्रजित द्वारा नागपाश में आबद्ध हनुमान का और रावण का परस्पर संवाद क्रोध को उद्दीप्त करता है।^२

भामण्डल द्वारा भरत को लक्ष्मण की मूर्च्छा का पता लगते ही उसे रावण पर बड़ा क्रोध आता है और वह रावण को मौत के घाट उतारने के लिए यह कहते हुए तलवार लेकर दौड़ता है —

रे रे किहां रावण तिको, ते देखाडो मुज्झ।

जिण मुझ बांधव नइ हण्यो, तिण सेती करूँ झुज्झ ॥^३

रण में राम-पक्ष की ओर विभीषण को देखते ही रावण क्रोधाभिभूत हो जाता है। रावण और विभीषण का संवाद एक-दूसरे की सुप्त रौद्रता को जागृत करने वाला है।^४ इसी प्रकार कवि ने संग्रामादि के प्रसंगों में रौद्ररस की सुन्दर अवतारणा की है। विस्तार-भय से उन सभी का यहाँ उल्लेख करना अशक्य है।

१.५ वीररस

वीररस का स्थायीभाव उत्साह है। मन में इस रस का सञ्चार उस विकट परिस्थिति के कारण होता है, जो उत्साह वीरता, साहस इत्यादि गुणों से उत्पन्न होता है। साहित्य-दर्पण में वीर रस के चार भेद किये गये हैं — १. युद्धवीर, २. दानवीर ३. दयावीर और ४ धर्मवीर।^५ आलोच्य साहित्य में उक्त चारों प्रकार के वीररसों का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

१.५.१ युद्धवीर

राजा पद्मनाभ का पाँच पांडवों से युद्ध होता है, किन्तु जब पाण्डव उसे और उसकी विशाल सेना पर विजय पाने में समर्थ न हो सके, तब कृष्ण वीरोचित उत्साह से भर जाते हैं। वे रथारूढ़ होकर शंखनाद करते हैं, साथ ही धनुष टंकार भी —

हुं निश्चय करी झुझस्यां रे, जीपस्युं रण करी जोर।

हम कही रथ ऊपरि चडी रे, संख बजाडयउ चोर ॥^६

और भी —

१. द्रष्टव्य — वही (६.२.३९-६९)
२. द्रष्टव्य — वही (६.२.६१-६४)
३. सीताराम-चौपाई (६.७ से पूर्व दूहा ५)
४. द्रष्टव्य — वही (६.५ से पूर्व दूहा १४-१८)
५. साहित्य दर्पण (३.२३४)
६. द्रौपदी-चौपाई (३.२.१८)

नरसिंह रूप किसण कीयुं, पग ने दादरे जेण ।

पोल प्राकारि भुरज भला, भुवन पाड्या सह तेण ॥^१

‘सीताराम-चौपाई’ में किया गया संग्राम का वर्णन असाधारण रूप से वीररस का परिचय देता है। इसमें ऐसे अनेक पद्य हैं, जिनमें शूरवीरता-पूर्ण कृत्यों का वर्णन है। राम-रावण के संग्राम में वीररस का निम्नांकित चित्रण ओजवर्धक है —

सरणाइं बाजइं सिंधुडइ, मदन भेरि पणि बाजइं ।
ढोल दमांमां एकल धाई, नादई अंबर गाजइ ॥
सिंहनाद करइं रणसूरा, हाक बुम्ब हुंकारा ।
काने सबद पड्यो सुणियइ नहीं, कीधा रज अंधारा ॥
युद्ध मांहोमाहि सबल लागो, तीर सडासडि लागी ।
जोर करी नइं धा मारंतां, सुभटे, तरुयारि भागी ॥
कुहक बांध छूटइ नालि गोला, बिंदूक वहइ बिहुं पासे ।
रीठ पडइ मोगर सडगांरी, अगनि अडइ आकासे ।
साम्हे धाए झूझइ सूर, धड बिण राणी जाया ।
दल रांवण रउ भाजत देखी, हत्थ विहत्थ भड धारा ॥^२

वीर प्रसूता भारत-भू का वीर-काव्य मात्र वीरपुरुषों की वीर-गाथाओं से ही गौरवान्वित नहीं है, अपितु वीरांगनाओं के बलिदान, त्याग और पराक्रम-पूर्ण कृत्यों से अलंकृत भी है। कवि ने भी वीर-ललनाओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है। वीर-पत्नियाँ क्षात्रधर्म का पालन करने हेतु अपने पतियों को उत्साहित करती थीं। संग्राम-वेला इनके लिए आनन्द-वेला के समान होती थी। रण-क्षेत्र में आत्म-बलिदान करना सच्ची शूरवीरता और क्षात्रधर्म का पालन माना जाता था। जो वीर यह महोत्सव सम्पन्न करता, उसकी पत्नी अपने को धन्य मानती थी। वीर-बालाओं के उद्गार उनके पतियों का उत्साह बढ़ाने वाले और उनके स्वयं के उत्साह को प्रदर्शित करने वाले हैं। कवि के अनेक वर्णन ऐसे हैं, जिनमें वीर नारियाँ अपने-अपने पतियों को युद्धभूमि में शौर्य-प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। उदाहरणार्थ —

काचित नारी इम कहइं, प्रीतम कंठइ लागि ।

साम्हे घाये झूझिजे, पणि मति आवइं भागि ॥

काचित नारी इम कहइं, तिउम करीज्ये तूं कंत ।

घा देखी तुझ पूठिनउ, सखियण मुझ न हसंत ॥

१. वही (३.३ से पूर्व दूहा १)

२. सीताराम-चौपाई (६.४.११-१५)

काचित नारी इम कहइ, जय पामी घरि आवि ।

एक अस्त्री वीर भारिजा, मुझनइ विरुद कहावि ॥^१

वीरों द्वारा अपनी रमणियों को प्रदत्त उत्तर भी उनके रोम-रोम में वीरोचित उत्साह का सर्जन करता है, जिससे उनमें वीररस की सिद्धि होती है —

सुभट तिके ज सराहियइं, जे रण पहिलो भेलि ।

सेना भांजइ सत्रुनी, अणिए अणिए मेलि ॥

अरि करि दंत उपरि चडी, हणइ ऊपरि सिरदार ।

घड़ विण घा मारइ धसी, ते साचा झुझार ॥^२

१.५.२ दानवीर

दान के प्रसंगों में भी उत्साह गुण दृष्टिगत होता है। भगवान् नेमिनाथ से ढंढण ऋषि की प्रशंसा सुनकर कृष्ण प्रफुल्लित हुए। महल की ओर लौटते समय कृष्ण को ढंढण ऋषि के दर्शन हो जाते हैं। वे ऋषि को वन्दन करते हैं, जिसे देखकर भद्रक सेठ के मन में उन्हें दान देने की भावना उत्पन्न होती है। सेठ ने उन्हें मोदक दान दिया —

त्रैलोक्यनाथ तीर्थकर ताहरुं, श्री मुख करइ वखाणो जी ।

तूं धन्य तूं कृतपुण्य मोटो जती, जीवित जन्म प्रमाणो जी ॥

कृष्ण नी मनियावट देखि करी, भद्रक नइ थयो भावो जी ।

सिंह केशरिया मादक सूझता, पड़िलाभ्या प्रस्तावो जी ॥^३

राम, सीता और लक्ष्मण जब दण्डकारण्य में निवास कर रहे थे, तब दो गगनगामी मुनि वहाँ पधारे। उनके दर्शनों से तीनों को आनन्द हुआ। उन्होंने मुनियों को वन्दना की और उन्हें पवित्र आहार-दान देकर स्वयं को कृतकृत्य किया —

वंदना कीधी रे लखमण राम, बे कर जोड़ी ताम ।

आनन्द पाम्यो रे दरसण देखि, चंद चकोर विशेषि ।

सीता थइ रे रोमंच सरीर, सखर वहिरावी खीर ।

नारंग केला रे फणस खजूर, फासू दिया रे भरपूर ॥^४

‘सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी’ में अनेक दानवीरों का उल्लेख है। प्रस्तुत है, एक-दो दानवीरों की दानवीरता का चित्रण है —

साबास शांतिदास, परघल अपणां गुरु पोष्या,

पात्रा भरि भरपूर, साधनइ घणा संतोष्या ।

१. वही, (६.४. से पूर्व दूहा ९.११, १५)

२. सीताराम-चौपाई (६.४ से पूर्व दूहा २४-२५)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री ढंढण ऋषि गीतम् (५-६)

४. सीताराम-चौपाई (५.१.२, ४)

उसा पाणि आणि, वस्त्र पिण भला वहराव्या,
 सखर कीया लघु शिष्य, गच्छपिण गरुयडि पाया ॥
 श्रीमाली श्रावक, गच्छ कडूआमती गिरुयउ,
 पूजा करइ प्रधान, चढावइ चांपउ ने मरुयउ।
 दानबुद्धि दातार, पड्यउ ते दुरभिक्ष पेखी,
 खोल्या धानभखार, अन्न द्यइ अवसर देखी ॥^१

१.५.३ दयावीर

कवि के साहित्य में 'दयावीर-रस' का पोषण करने वाले अनेक प्रसंग हैं, जैसे राजा मेघरथ, मेलार्य मुनि, पार्श्वनाथ आदि।

मेलार्य मुनि ने क्रौंच पक्षी को बचाने के लिए अनेक यातनाएँ सहन की थीं।^२ दयावीरता की पराकाष्ठा के ऐसे उदाहरण इतिहास में कम ही हैं। भगवान् पार्श्वनाथ ने अग्नि में जलते नाग-नागिन के युगल को बचाया। कवि ने इस प्रसंग का उल्लेख पार्श्वनाथ से संबंधित अनेक गीतों में किया है। एक ऐसा ही प्रसंग राम के जीवन में भी मिलता है। रावण ने सीता-हरण के समय जटायु को आहत कर दिया था। विरह के जख्मों से अति व्यथित होते हुए भी राम ने मरणासन्न जटायु की परिचर्या की।^३ मेघरथ की दयावीरता तो सर्वप्रसिद्ध है, जिन्होंने शरणागत कबूतर की रक्षा हेतु बाज को अपने शरीर का मांस काट-काट कर दिया था। यह घटना आज भी दयावीरता के लिए प्रेरणा-सूत्र है। कवि ने उनकी दयावीरता का वर्णन इस प्रकार किया है —

काती लेई पिण्ड कापी नइ, ले मांस तू सींचाण रूड़ा पंखी।
 त्राजुए तोलावी मुझ नइ दियउ, एह पारिवा प्रमाण रूड़ा राजा ॥
 त्राजु मंगावी मेघरथ राय जी, कापी-कापी नइ मूकइ मांस रूड़ा राजा।
 देव माया धारण समी, नावइ एकण अंस रूड़ा राजा।
 तराजुए बइठउ राजवी, जे भावइ ते खाय रूड़ा पंखी।
 जीव थी पारेवउ अधिकउ गण्यउ, धन्य पिता तुझ माय रूड़ा राजा ॥^४

१.५.४ धर्मवीर

धर्मवीरता तो कवि से सम्पूर्ण साहित्य में सहज देखी जा सकती है। वास्तविकता तो यह है कि कवि की प्रत्येक रचना का नायक धर्मवीर है।

रावण जैसे धर्मवीर की धीरता-वीरता से कौन प्रभावित नहीं होगा, जिसने

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सत्यासिया दुष्काल-वर्णन-छत्तीसी (२१, २५)
२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री मेलार्य ऋषि गीतम् (३-६)
३. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (५.५.५-७)
४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, मेघरथ राजा गीतम् (७-८, ११)

बलात्कारपूर्वक किसी स्त्री के साथ संभोग न करने का व्रत लेकर मृत्यु पर्यन्त उस व्रत का पालन किया।^१ जम्बूकुमार किशोरावस्था में ही चारित्र्य के प्रति अपार उत्साह दिखाता है।^२ वैराग्य के प्रति थावच्चापुत्र का उत्साह भी दर्शनीय है। माँ का करुण विलाप, शिक्षा, चारित्रिक कठिनाइयों का निदर्शन भी उसे अपने निश्चय से विचलित नहीं कर सका।^३ साधक साधुओं से संबंधित रचनाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके पात्र उच्चतम धर्मवीरता से ओतप्रोत हैं। इन पात्रों पर जैसे-जैसे उपसर्ग, परीषह आदि आते, वैसे-वैसे उनकी धर्मवीरता दृढ़-दृढ़तर से दृढ़तम होती जाती। सतियाँ भी विकट से विकट परिस्थिति में अपने सतीत्व पर अडिग रहती हैं— यह तथ्य सतियों से संबंधित रचनाओं से स्पष्ट हो ही जाता है।

१.६ भयानक-रस

भयानक-रस का स्थायीभाव 'भय' स्वीकृत है। किसी की शारीरिक विकृति, अपराधिक प्रवृत्ति अथवा अनिष्ट या संकट-सूचक सम्भावना की अभिव्यक्ति में भयानक-रस का परिपाक होता है। भरत ने इस रस के तीन भेद स्वीकार किये हैं—

१. व्याज जन्य अर्थात् कृत्रिम, २. अपराधजन्य और ३. वित्रासितक अर्थात् खतरे की शंका इत्यादि से उत्पन्न।^४

कवि ने भय का परिपाक अनेक स्थलों पर किया है, जिनमें से यहाँ कुछ विशिष्ट स्थलों को ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

अतुल बलशाली राम ने जब धनुष तोड़ दिया, तब उसके भयंकर टंकार से पृथ्वी एवं पर्वत कांपने लगे, शेष-नाग विचलित हो गये, अप्सराएँ भय से आतंकित होकर अपने पतियों से आलिंगित हो गईं, आलानस्तम्भ उखाड़कर हाथी मदनमत्त हुए दौड़ पड़े और सभी हाहाकार करने लगे। देखिये कवि के शब्दों में—

धरणी धूजी पर्वत कांप्या, शेषनाग सलसलिया।
गल गरजारव कीधउ दिग्गज, जलनिधि जल ऊछलिया॥
अपछर बीहती जइ आलिंग्या, आंप आंपणा भरतार।
राखि राखि प्रीतम इम कहती, अम्हनइ तूं आधार॥
आलान थम्भ उथेड़ी नांख्या, गज छट मयमत्त।
बन्धन त्रोड़ि तुरंगम नाठा, खलबल पडीय तुरन्त॥^५

१. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (पंचम-षष्ठ खण्ड)

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जम्बू स्वामी गीतम् (५-९)

३. द्रष्टव्य — थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (खण्ड १, ढाल ५-१०)

४. नाट्यशास्त्र (६.८१)

५. सीताराम-चौपाई (१.७.१७-१८)

वंशस्थल नगर में एक मुनि आत्म-साधना कर रहे थे, परन्तु उन पर दैविक उपसर्ग हो रहे थे। उपसर्गदायक देव का भीमकाय रूप और उसकी क्रियाएँ वीभत्स मित्रित भयानक रस की अनुपम सृष्टि करती हैं —

अग्नि सीरीषा केस, आँखि बिली जिसी, निपट नासिका चीपडीए।
काती सरिखी दाढ़, अति बीहामिणी, भाल उपरि भृकुटी चडीए॥
काती नइ करवाल, करि झालि करी, नाचइं कूदइं आफलइए।
काया मनुष्य नी कोटि मांस खायइं मुखि, हसइ धणुं नइं हूकलइए॥
मूकइ अंगिनी झाल, खांड खांड, खांड करइ, भूतप्रेत अम्बर तलइए।
कूर महा विकराल, भीम भयंकर काल, कृतांत रीसइं बइइए॥^१

इसी प्रकार दमयन्ती को भक्षणार्थ उपस्थित राक्षस की भैरवता का चित्रांकन अल्प शब्दों में होते हुए भी कितना डरावना है —

काल रूप विकराल, भीम भयंकर, मुण्ड रुण्ड माला धरइ ए।
अग्नि तणी मुख जाल, दाढ़ काती जिसी, यम सरिखउ खाउ खाउ करइ ए॥^२

अकाल की भयानक स्थिति का वर्णन तो हम प्रथम अध्याय में विस्तारपूर्वक कर ही चुके हैं; अतः इससे संबंधित प्रसंग को वहाँ देखा जा सकता है।

सीता से विवाह करने के लिए राजाजन धनुष चढ़ाने में सक्षम न हो सके, क्योंकि धनुष प्रतिभय उत्पन्न कर रहा था —

अभिमानी राजा उट्या, धनुष चढ़ावा लागा।
बलती आगि नी झाला ऊठी, ते देखी नइ भागा॥
अति घोर भुजंगम अट्टहास पिशाच उपद्रव होई।
रे रे रहउ हुसियार आंपानइ, कूड मांड्यउ छइ कोई॥^३

राम-रावण के युद्ध की भयंकरता का चित्रण करते हुए कविवर कहते हैं —

रुधिर तणी बूही नदी, नर संहार निसीम।
रामायण सबलो मच्यो, महाभारत राण भीम॥^४

सीता के शील की अग्नि-परीक्षा हेतु एक विशाल अग्निकुण्ड तैयार किया गया। दर्शकों के लिए उसमें प्रज्वलित अग्नि का कराल रूप अति भयकारी था। कवि समयसुन्दर कहते हैं —

१. सीताराम-चौपाई (४.६.१०-१२)
२. नल-दवदन्ती रास (३.५.१७)
३. सीताराम-चौपाई (१.७.१५)
४. वही, (खण्ड ७.२ से पूर्व दूहा ४)

रामनई एम विमासतां आगि बधी सुप्रकास रे ।
झालोझाल मिली गई, धूम छायो आकास रे ॥
धग-धग सबद बीहामणो, अगनिनो ऊछल्यो ताम रे ॥
एक गाऊ नो चांद्रणो, चिहुँदिसि थयो ठाम-ठाम रे ॥
बाय डंडुल वायोवली, जे बाली करइं खंभ रे ।
कायर ना कांप्या हिया, सुरनर पाम्या अचंभ रे ॥^१

१.७ वीभत्स-रस

वीभत्सरस का स्थायीभाव 'जुगुत्सा' है। किसी वस्तु के दर्शन, स्मरण या स्पर्श करने से चित्त में जो घृणा उत्पन्न होती है, उसे जुगुप्सा कहते हैं। इसी जुगुप्सा या घृणा की पूर्णपुष्टता को वीभत्स-रस कहते हैं। वीभत्स के दो भेद स्वीकृत किये गये हैं — १. रक्त आदि से उत्पन्न होने वाला शुद्ध या क्षोभण और २. विषा, कृमि आदि से उत्पन्न होने वाला अशुद्ध या उद्वेगी।^१ विवेच्य रचनाओं में वीभत्स के दोनों भेदों का रसोद्दीपक वर्णन उपलब्ध है।

खन्दक मुनि के ५०० शिष्यों को पालक मन्त्री ने जीवित ही कोल्हू में तिल की तरह पिसवा दिया।^२ कवि के इस वर्णन में वीभत्स की पूर्ण व्यञ्जना हुई है। इसी तरह साधनामग्न सुकोशल मुनि के शरीर को जब एक व्याघ्र नोंच-नोंच कर खाने लगा^३, तो इसे देखकर सहज ही जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है।

रुक्मिणी ने ऋषिदत्ता के पास एक योगिनी को भेजा। उसने एक व्यक्ति की हत्याकर उसका मांस ऋषिदत्ता के निकट रख दिया और रुधिर से उसका मुँह लिप्त कर दिया। राजा कनकरथ ने इस घृणित दृश्य को देखा, तो उसका मन घृणा से भर गया।^४

इन्द्रध्वजा मलमूत्र में पड़ी सड़ रही थी। उसे देखकर द्विमुख राजा प्रतिबुद्ध बन गया।^५ यहाँ भी वीभत्स का स्पष्ट रसाभास होता है।

वि० सं० १६८७ में दुर्भिक्ष के कारण अनगिनत मनुष्य काल के ग्रास बने। उनके शव सड़कों और गलियों में पड़े सड़ रहे थे। उनसे भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी, पर उन्हें उठाने वाला कोई नहीं था। कवि का इस सम्पूर्ण दृश्य का चित्रण वीभत्स रसोत्पादक है —

१. वही, (९.२.२३-२५)

२. नाट्यशास्त्र (६८२)

३. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री खंदकशिष्य गीतम् (१-३)

४. द्रष्टव्य — वही, श्री सुकोशलसाधु गीतम् (४)

५. द्रष्टव्य — वही, श्री ऋषिदत्ता गीतम् (३-५)

६. द्रष्टव्य — चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई (२.७)

मूआ घणा मनुष्य, रांक गलीए रडवडिया,
 सोजो वल्यउ सररी, पछइं पाज मांहे पडिया।
 कालइ कवण वलाई, कुण उपाडइ किहां काठी,
 तांणी नाख्या तेह, मांडि द्यइ सगली माठी।
 दुरगंधि दशोदिशि ऊछली, मडा पड्या दीसइ मूआ।
 'समयसुन्दर' कहइ सत्यासीया, किण घरि न पड्या कुकुआ ॥^१

पुनर्यथा —

रडवडिता गलीए मूआ रे, मडा पड्या ठाम ठाम।
 गलिमांहे थइ गंदगी रे, द्यै कुण नांखण दाम ॥^२

रानी मृगावती बावड़ी के रुधिर जैसे लाल-वर्णी जल में स्नान करके गीले वस्त्रों सहित बाहर निकली, तो गगन में उड़ रहे भारण्ड नाम के एक मांस-भक्षी पक्षी ने उसे देखा। भारंड ने आनन्दप्रद भोजन मिला, ऐसा जानकर मृगावती को अपने पंजों से पकड़कर गगन में उड़ चला — यह दृश्य भी वीभत्सपूर्ण है -

बावड़ी झीली नीसरी, अंग ऊघाडइ तेह।
 लाल रंग लागी हर्यउ, जाणि रुधिर मृत देह ॥
 भारंड नामा पंखीयउ, गगन भमतउ देखि।
 तुरत ते नीचो ऊतर्यउ, पूरव करम विशेषि ॥
 आमिष पंखी एह छइ, भलउ मिल्यउ मुझ भक्ष।
 चरण ग्रही उडी चल्यउ, सहु देखतां प्रत्यक्ष ॥^३

१.८ अद्भुत-रस

अद्भुत रस का स्थायीभाव 'विस्मय' है। पण्डित नारायण ने 'सर्वत्राप्यद्भुतो' रसः^४ की स्थापना कर अद्भुत को ही मूल और एक मात्र रस माना है। इस सिद्धान्त का मूलाधार है, चमत्कार। अद्भुत रस अपनी अपूर्वता, विचित्रता या विलक्षणता से हमें मुग्ध एवं स्तब्ध कर देता है। अद्भुत रस दो प्रकार का मान्य है —

१. दिव्यज — देव-संबंधी चमत्कार से उत्पन्न और २. आनन्दज — मनोरथ की सिद्धि करने वाली आकस्मिक घटनाओं से उत्पन्न।^५

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सत्यासिया दुष्काल-वर्णन छत्तीसी (१७)
२. चंपक-श्रेष्ठी-चौपाई (२.६.१३)
३. मृगावती-चौपाई (१.४. दो १-३)
४. साहित्य दर्पण, विमला-टीका, पृष्ठ ४९
५. नाट्यशास्त्र (६.८३)

विवेच्य रचनाओं में विस्मयजनक प्रसंगों का प्राचुर्य है। कुछेक संक्षेप में नीचे प्रस्तुत हैं —

अग्निभूति और वायुभूति नामक दो पंडित नंदीवर्धन मुनि से शास्त्रार्थ में पराजित होने पर रात्रि में वे मुनि को तलवार से मारने के लिए उद्यत हुए, किन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उनके हाथ ही पत्थर के बन गये।^१ इन्हीं मुनि ने जब एक गूंगे व्यक्ति से बातचीत की, तो समस्त ग्रामीण आश्चर्य से चकरा उठे।^२

प्रद्युम्न ने द्वारिका में आकर जितने कौतुहल-युक्त कार्य किये वे, सब के सब अद्भुत रस के स्रष्टा हैं। उदाहरणार्थ — प्रद्युम्न द्वारा वानर का आविर्भाव करना, मात्र एक वानर द्वारा रानी सत्यभामा के विराट् उद्यान के समस्त फल खा जाना व सारे पेड़-पौधे नष्ट कर देना। इसी तरह एक अश्व की अवतारणा करना, अश्व द्वारा खेतों को तृणशून्य और कूपों को जलशून्य करना, भानुकुमार के विवाह हेतु बनाये हुए सारे पकवानों को खा जाना आदि...आदि।^३

इलापुत्र, मेलार्य आदि जिन व्यक्तियों या साधनों ने जिस अवस्था में कैवल्य प्राप्त किया, उसका वर्णन अद्भुत रस का परिपाक करता है।^४

इन्द्र दशार्णभद्र के अहं को नष्ट करने निमित्त महावीर स्वामी को वन्दन करने के लिए आता है। उसके हाथी का चित्रण प्रत्येक व्यक्ति को असंभावित-सा लगता है —

एक हाथी तण्ड आठ दंतसूला,
दंत-दंत आठ-आठ वावि सोहड़।
वावि-वावि आठ-आठ कमल तिहां,
आठ-आठ पांखड़ी पेखतां मन्न मोहड़ ॥
पत्र-पत्रइ बत्तीस बद्ध नाटक पड़इ,
कमल बिचि इंद्र बइठउ आणन्दइ।
आठ वलि आगलिं अग्र महिषी खड़ी,
वीर नइं एण विधि इन्द्र वांदइ ॥^५

श्रेणिक द्वारा राजर्षि प्रसन्नचन्द्र की गति पूछने पर भगवान् महावीर ने नरकगति बतायी और कुछ क्षणों पश्चात् ही मोक्ष। भगवान् की इस अटपटी उक्ति से राजा बड़ा आश्चर्यित होता है।^६

१. द्रष्टव्य — शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (५.२७-२९)
२. द्रष्टव्य — वही (५.२०-२३)
३. द्रष्टव्य — शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१०-११)
४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि (साधुगीतानी)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री दशार्णभद्र गीतम् (५-६)
६. वही, श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि गीतम्

एक स्त्री एक पति ही वरण करती है और वही पतिव्रता मानी जाती है, लेकिन द्रौपदी पांच पतियों की पत्नी होकर भी सती कहलाती है — यह तथ्य अजीब-सा लगता है।^१ सती सुभद्रा ने अपने सतीत्व-बल पर कच्चे धागे के सूत्र के द्वारा चलनी में कूप से पानी निकाला और किसी से न खुलने वाले 'चंपाद्वार' पर उस पानी के छींटे गिराकर खोल दिया। यह प्रसंग कितना विलक्षण एवं विचित्र है —

काचे तांतण सूत्र नइ जी, चालणी काढ्युं नीर।

चंपा बार उघाडियउ जी, सीले साहस धीर॥^२

राम द्वारा देवाधिष्ठित धनुष चढ़ाना^३, लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला को बांयी भुजा से ऊँची उठाना^४, मुनि को वन्दन करने मात्र से पक्षी (जटायुध) के दुर्गन्धित शरीर का सुगन्धित और नीरोग हो जाना^५ इत्यादि प्रसंग भी अचरज-भरे हैं। सीता के शील की अग्नि-परीक्षा अद्भुत रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। सौ हाथ दीर्घ वापी की धधकती हुई अग्नि में सीता प्रवेश करती है, परन्तु अचम्भे की बात यह है कि वह अग्नि जल में परिवर्तित हो जाती है। अजस्र जल-प्रवाह के कारण सब लोग डूबने लगे। सबने सीता को देवनिर्मित स्वर्णमणि-पीठिका पर सहस्रदल कमलासन पर विराजमान देखा। सीता ने जल-प्रवाह को स्तम्भित कर दिया और देवों ने प्रकट होकर पुष्टवृष्टि की।^६ इस तरह यह अद्भुतरस का एक अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार राजा सिंहरथ के पास दो घोड़े भेंट-रूप आये। घोड़ों की परीक्षा करने के लिए राजा और राजकुमार — दोनों एक-एक घोड़े पर सवार होकर शहर से बाहर निकल पड़े, परन्तु जब वे घोड़ों को रोकने के लिए जैसे-जैसे लगाम खींचते हैं, वे घोड़े वैसे-वैसे अधिक तेज गति से दौड़ते हैं। अन्त में उन्होंने जब मजबूर होकर लगाम ढीली छोड़ी, तो घोड़े भी तत्काल रुक गये। दोनों व्यक्ति इस रहस्यपूर्ण घटना से चकित हो जाते हैं।^७

सिंहलकुमार ने कूप से मनुष्य की आवाज सुनी, तो उसने उसे बाहर निकाल दिया, लेकिन सिंहल के आश्चर्य का पार ही न रहा कि वह वास्तव में सर्प था, जो मानवीय बोली बोल रहा था। उसने बाहर निकलते ही सिंहल को काट खाया, जिससे वह कुबड़ा

१. वही, दौपदी-चौपाई (२.८.२)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री सुभद्रासती गीतम् (४)
३. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (१.७.१७)
४. द्रष्टव्य — वही (६.१.२३)
५. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (५.१.६-१०)
६. द्रष्टव्य — वही (९.२)
७. द्रष्टव्य — चार प्रत्येक-बुद्ध-चौपाई (४.१)

हो गया।^१ नल ने भी इसी तरह जलते हुए सर्प को अग्नि से निकाला, पर सर्प ने उसे काट दिया, जिससे उसके आकार-प्रकार में विस्मयजनक विकृति आ गई थी।^२

इस तरह हम देखते हैं कि कवि ने अपने काव्यों में अनेक कथानकों को लेकर अद्भुत रस की अच्छी सृष्टि की है।

१.९ शान्त-रस

कविवर समयसुन्दर के साहित्य-प्रणयन के पार्श्वपक्ष में एक ही मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है कि मनुष्य को सांसारिक विषय-भोगों से उदासीन बनाकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करना। इसी के फलस्वरूप कवि की सम्पूर्ण रचनाएँ शान्तरस में पर्यवसित होती हैं। रचनाओं के बीच का वातावरण शृंगारादि रसों से कितना भी ओतप्रोत क्यों न हो, उनका अन्त शान्त-रस में होता है। अतः प्रत्येक रस का पर्यवसान अन्ततः शान्त में होने के कारण हम विवेच्य साहित्य का रसराजत्व 'शान्तरस' को प्रदान कर सकते हैं।

'नाट्यशास्त्र' में 'शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः'^३ उद्घोषित कर शान्त की मूलरस के रूप में प्रतिष्ठा की गई है। इस रस के परिपाक से कष्ट, दरिद्रता, रोग, प्रियजनों के विरोध आदि के कारण मन में खेद तथा ग्लानि होती है। परिश्रमादि के निष्फल होने पर सद्गति हित हृदय में पश्चात्ताप होकर वैराग्य उत्पन्न होता है और वासना आदि मनोविकारों का शमन होता है।

शान्त-रस के स्थायीभाव के संबंध में विविध मत हैं। कुछ विद्वान् शान्त का स्थायीभाव 'शम' कहते हैं, कुछ निर्वेद, कुछ तृष्णाक्षय, कुछ आत्मज्ञान और कुछ तत्त्वज्ञान आदि। वर्तमान में निर्वेद सर्वमान्य है। वैसे निर्वेद का इन सभी से कोई विशेष अन्तर नहीं है। अतः निर्वेद ही शान्त का स्थायीभाव है।

समयसुन्दर के साहित्य में निर्वेदमूलक भावनाओं की अतिशय प्रधानता है। विस्तार-भय से उनका संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण ही अपेक्षित होगा। उनके काव्यों के निम्नलिखित प्रसंगों में शान्तरस का परिपाक देखा जाता है —

राजा मधु, राजा कनकरथ की पत्नी चन्द्राभा पर मुग्ध होकर उसे छलपूर्वक ले आता है। पत्नी-वियोग से कनकप्रभ की हुई दयनीय दशा देख मधु को आत्म-ग्लानि हो उठती है।^४

दत्तपुर में साध्वी द्वारा रानी पद्मावती को दिया गया उपदेश संसार की निस्सारता को

१. द्रष्टव्य — सिंहलसुत चौपाई (६.४-६)

२. द्रष्टव्य — नलदवदन्ती-रस (२.५)

३. नाट्यशास्त्र (६८४)

४. द्रष्टव्य — शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (ढाल ७)

बताता है। उपदेश से प्रभावित होकर रानी भी संसार से विरक्त हो साध्वीजीवन अंगीकार कर लेती है।^१

चारों प्रत्येकबुद्धों के वैराग्य उत्पन्न होने के कारणों का विवेचन शान्त रस के उत्तम प्रसंग हैं। इन प्रसंगों में संसार की क्षणभंगुरता को साकार रूप प्रदान किया गया है।^२

सुदर्शन मुनि पर मिथ्या दोषारोपण करने पर वेगवती की जो दीन अवस्था हुई, उससे उसके मन में स्वयं के प्रति घृणा हो जाती है और वह प्रायश्चित्त निमित्त अपना पाप प्रकट कर मुनि को निर्दोष घोषित कर देती है।^३

राजा दशरथ ने एक वृद्ध व्यक्ति को अपनी पट्टरानी को बुलाने भेजा। वृद्ध के विलम्ब से पहुँचने का कारण वृद्धावस्था की दुर्दशा ज्ञात होने पर राजा को वैराग्य हो गया। वृद्धावस्था की दारुण स्थिति का चित्रण करते हुए कवि वृद्ध के मुख से कहलवाता है —

कुण भगिनी कुण भारिजा, कुण माता रे कुण बाप नइ वीर ।
 वृद्धपणइ वसि को नहीं, पोतानुँ रे जे पोष्युं शरीर ॥
 पाणी झरइं बूढ़ापणई, आंखि मांहि रे वरइ धूंधलि छाय ।
 काने सुरति नहीं तिसी, बोलतां रे जीभ लडथडि जाय ॥
 हलुया पग वहइ हांलतां, सूगाली रे मुहडइ पडइं लाल ।
 दांत पडइ दाढ़ उखडइ, वलि माथइ रे हुयइं धडला बाल ॥
 कडि थायइ वलि कूबड़ी, वलि ऊँची रे उपडई नहि मीटि ।
 सगलइ डीलइ सल पडइं, नित आवइ रे वलि नाके रीटि ॥
 हाल हुकम हालइ नहीं, कोई मानइ रे नहि वचन लगार ।
 धिग बूढ़ापन दीहड़ा कोई न करई रे मरतां नी सार ॥^४

मुनि सर्वभूतहित ने संसार की असारता का जो चित्रण किया, उससे दशरथ का वैराग्य और अधिक पृष्ठ हो गया। मुनि के ये वचन कितने मार्मिक हैं —

१. द्रष्टव्य — चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (१.४)
२. द्रष्टव्य — चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (१.९; २.७; ३.१४, ४.६)
३. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (१.२)
४. सीताराम-चौपाई (२.१.९-१३)

साध कहइ ध्रम सांभलउ, ए संसार असार ।
 जनम मरण वेदन जरा, दुखु तणउ भंडार ॥
 काचउ भांडउ नीरकरि, जिण वेगउ गलि जाय ।
 काया रोग समाकुली, खिण मइ खेरुं थाय ॥
 बीजलि नउ झबकउ जिस्यउ, जिस्यउ नदी नउ वेग ।
 जोवन वय जाणउ तिस्यउ, ऊलट वहइ उदेग ॥
 काम भोग संयोग सुख, फल किंपाक समान ।
 जीवित जल नउ बिंदुयउ, सम्पद सन्ध्यावान ॥
 मरण पगां मांहि नित वहइ, साचउ जिनध्रमसार ।
 संयम मारग आदरउ, जिम पामउ भव पार ॥^१

अज्ञानवश शम्बूक की हत्या कर देने पर लक्ष्मण इस दुष्कृत्य के लिए अपने पौरुष को धिक्कारता है।^१ कामासक्त रावण द्वारा सीता को पुनः-पुनः भोग के लिए निमन्त्रण देने पर वह मरणासन्न-सी हो जाती है। अन्ततः रावण के चित्त में भारी दुःख होता है और वह पश्चाताप करते हुए कहता है कि ओह ! मैं कैसा अधम हूँ, मैंने विभीषण जैसे भाई को तिरस्कृत कर निकाल दिया, सीता जैसी सती को महान् कष्ट दिया, राम-लक्ष्मण जैसे सत्पुरुषों से युद्ध किया — इस तरह मैंने अपने कुल को कलंकित किया है।^२ लक्ष्मण पर चलाये चक्र के निरर्थक जाने पर रावण निराश हो जाता है और संसार की सारशून्यता को व्यक्त करता है —

धिग मुझ विद्या तेज प्रतापा, रावण इणपरि करइं पछतापा ।
 हा हा ए संसार असारा, बहुविध दुख तणा भण्डारा ।
 हा हा राज रमणी पणि चंचल, जौवन उलट्यो जाय नदी जल ।
 सोहइ रोग समाकुल देहा, कारमा कुटुम्ब संबंध सनेहा ।
 हा हा धिग-धिग मुज्झ जमारो, मइं तो निफल गमाइयो सारो।^३

अग्नि-परीक्षा के बाद राम सीता से अपनी सोलह हजार रातियों में पट्टरानी होने की प्रार्थना करते हैं, लेकिन सीता संसार को निस्सार एवं स्वार्थमय जानकर विरक्त हो जाती है।^४ मृत लक्ष्मण की देह को लिए राम गली-गली में भटकते हैं और उसे पुनः जीवित करने का अनेक प्रयास करते हैं, तब इन्द्र उन्हें समझाने के लिए अनेक घटनाएँ

१. वही (२.२ से पूर्व, दोहा ४-८)
२. द्रष्टव्य — सीताराम-चौपाई (५.३ से पूर्व, दोहा ५-७)
३. द्रष्टव्य — वही (७.१.१७-१९)
४. द्रष्टव्य — वही (७.२.३१, ३३-३४, ३९)
५. द्रष्टव्य — वही (९.३ से पूर्व, दूहा १-१३)

घटित करता है। वास्तव में ये सभी घटनाएँ शान्त रसोत्पादक हैं। अन्ततः उन्हीं से प्रेरित होकर राम ने लक्ष्मण का अन्त्येष्टि-संस्कार किया और विरक्त होकर अनगार बन गये।^१

अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक से कहा कि ऐश्वर्य और परिवार से कोई सनाथ नहीं होता है, मेरे पास ये सब होते हुए भी मैं अनाथ था, मुझे ये रोगमुक्त नहीं कर पाये — यह प्रसंग वास्तव में आत्म-प्रतीति करानेवाला है।^२

संयम त्यागी अरहन्नक, पुत्र-विरह में पागल बनी अपनी माँ की करुण-दशा देखकर स्वयं को धिक्कारता है। यहाँ भी निर्वेद की प्राप्ति होती है।^३

भगवान् ऋषभदेव ने अपने ९८ पुत्रों को जो प्रतिबोध दिया, उससे उनका उद्वेग एवं क्षोभ पूर्णतः शान्त हो गया। भगवान् का यह उपदेश कवि ने ३२ पद्यों में निबद्ध किया है। सभी पद्य शान्तरस के अच्छे उदाहरण हैं।^४

नटिनी के रूप पर आसक्त इलापुत्र एक साधु को एक अतिशय सुन्दर स्त्री से आहार लेते समय अनासक्त देखकर आत्म-ग्लानि से भर जाता है। उसकी विरक्ति इतनी चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है कि उसे नृत्य करते हुए ही कैवल्य प्राप्त हो जाता है।^५

माता धारणी अपने पुत्र जम्बू को सांसारिक भोग-विलास के प्रति मोहित करने की चेष्टा करती है, परन्तु जम्बू वैराग्य के चरम शिखर पर पहुँच चुका था। उसने जो उत्तर दिये, उन्होंने उसके माता, पिता, पत्नियों आदि को भी विरक्त कर दिया।^६ इसी तरह मुमुक्षु थावच्चापुत्र और उसकी माता के मध्य जो विस्तृत वार्तालाप हुआ, उसकी प्रत्येक पंक्ति शान्तरस की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है। थावच्चापुत्र के कुछ उद्गार यहाँ अवतरित हैं —

अध्रुव अनित्य असासतउ, संझवा राग समानू ए।
जल बुदबुद दीसई जिसा, पाकउ पीपल पानू ए॥
डाभ अणी जल बिंदूयउ, जेहवउ सुपन जंजालू ए।
बीजलिनउ झषकउ जिसउ, नरभव तेहवउ निहालू ए॥
कुण जाणइ पहिलउ पछइ, मरिस्यइ पुत्र के मायू ए।
बाल मरइ बूढ़ा रहइ, ए जग उलट्यउ जायू ए॥^७

१. द्रष्टव्य — वही (९.५)

२. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री अनाथी मुनि गीतम्

३. द्रष्टव्य — वही, श्री अरहन्नक मुनि गीतम् (१-९)

४. द्रष्टव्य — समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम् (१.१-२८)

५. द्रष्टव्य — वही, इलापुत्र गीतम् (१३-१६)

६. द्रष्टव्य — वही, श्री जम्बूस्वामी गीतम् (१-१२)

७. थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.५.८-११)

खिण माहे खेरु हुइ रे, काचउ माटी भण्ड ।
 जीरण तृणनउ झूपरडउ रे, अथिर ज्युं सूकड़ एरण्डो रे ॥
 काया ए कृतघन कही रे, पोषउ विविध उपाय ।
 एक दिन जउ नवि पोषीइ रे, तउ ते लडथडी जायो रे ॥
 जरा करी तन जाजरउ रे, सडण पडण विध्वंश ।
 पहिलउ पणि परछइ पणइ, छोटिवउ केही प्रसंसो रे ॥^१

× × ×

मोक्ष भणी जातां थकां जी, विषय करइ अन्तराय ।
 संयम प्रवहण भंजिवा जी, विषय कह्या महावाय रे ॥
 विषय सेवइ कुण एहवा जी, कामनी कुण वेसास ।
 खिण राचइ विरचइ खिणइ, खिण नाखइ नीसास रे ॥^२

इसी तरह साधु-साध्वियों तथा सतियों से संबंधित कवि के अनेक गीतों में हमें शान्तरस का दर्शन होता है। उनकी लगभग १०० औपदेशिक रचनाएँ तो आद्यन्त शान्तरस से परिपूर्ण हैं। इनकी इन सभी रचनाओं का विवरण द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि महोपाध्याय समयसुन्दर ने रस-परिपाक में विशेष रुचि ली है। भावाभिव्यंजना में वे बड़े प्रवीण दिखाई पड़ते हैं। उनके साहित्य में विविध रसों का यथा-स्थान सुन्दर परिपाक हुआ है। शान्त-रस में पाठक को डुबो देना — यही उनके रस-परिपाक का अन्तिम परिणाम है। शृंगार-रस के उद्दीपन में कहीं-कहीं अवरोध होता हुआ-सा भी पाते हैं, जिसका मुख्य कारण था — कवि का भोगपरक जीवन की असारता एवं योगपरक चारित्रिनिष्ठ जीवन की श्रेष्ठता को व्यक्त करना। फिर भी उन्होंने भौगिक रसों का भी अपने काव्यों में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, जो सहृदय-संवेद्य है।

२. अलङ्कार-शिल्प

अलङ्कार काव्य के सौन्दर्य एवं कलापक्ष की आधारशिला हैं। काव्य में रस से यदि आनन्द की अनुभूति होती है, तो अलङ्कार से सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। अलंकार मात्र चमत्कार-प्रदर्शन की वस्तु ही नहीं है, अपितु रसानुभूति को अधिक प्रभावोत्पादक एवं रोचक बनाने में सहायक भी हैं। संक्षेप में, रस आनन्दसूचक है और अलंकार विस्मयसूचक।

‘अलंकार’ की परिभाषा तथा उसके प्रयोजन के संबंध में भारतीय काव्य-शास्त्रियों में भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। दण्डी ने काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को

१. वही (१.६.३-५)

२. थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.७.७-८)

‘अलंकार’ बताया है - ‘काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।’ आनन्दवर्धन ने वाणी की अनन्त शैलियों को ‘अलंकार’ कहा है - ‘अनन्ता हि वाग्विकल्पाः तत्प्रकाश एवं चालङ्काराः।’ विश्वनाथ के अनुसार, ‘शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः’ अर्थात् शब्द तथा अर्थ के जो शोभातिशायी - सौन्दर्य की विभूति बढ़ाने वाले अस्थिर धर्म हैं, वे ही अलंकार हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शब्दों एवं उनके अर्थों में अनियमित रूप से निहित वह धर्म या तत्त्व जिसके कारण, किसी व्यंग्यार्थ की प्रतीति के बगैर भी शब्दों की विलक्षण विन्यास-शैली से ही किसी कथन के व्यंग्यार्थ में कुछ विशेष रमणीयता या शोभा आ जाती है, अलंकार है। और जहाँ अलंकार एवं अलंकार्य में सामंजस्य स्थापित हो जाय, वहाँ काव्य की प्राकृतिक रमणीयता उच्छलित होती है।

अलंकार कविता का मुख्य अंग होने से सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक हर्बर्टरीड ने लिखा है कि किसी कवि की कृति की आलोचना करते समय उसके अलंकारों की शक्ति तथा मौलिकता पर अवश्य दृष्टि रखनी चाहिये।^१ अतः समयसुन्दर की रचनाओं में प्रयुक्त अलंकारों पर भी समालोचनात्मक दृष्टि से विचार कर लेना नितान्त जरूरी है। कवि समयसुन्दर की कृतियों में शब्दालंकार, अर्थालंकार, और उभयालंकार — ये तीनों प्रकार के अलंकार बड़ी रमणीयता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। शब्दालंकारों आदि का व्यामोह तो कभी-कभी कवियों पर इतना अधिक हावी हो जाता है कि प्रेषणीय भाव-तत्त्व बिल्कुल गौण बन जाता है। केशव प्रभृति अनेक कवियों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है, किन्तु समयसुन्दर के काव्यों में अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से हुआ है। उन्होंने अलंकारों का विनियोजन इस प्रकार किया है कि उससे उनके काव्य प्रभावशाली तथा रोचक बन गये हैं। उनके अलंकार-प्रयोग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को चरितार्थ करते हैं - ‘अलंकारों के द्वारा हृदय के भाव-बन्धन खुलते हैं और नीरसता का भाव मिट जाता है।’^२ हमें ऐसा अहसास होता है कि कवि ने अपने काव्य के रसों तथा भावों के उत्कर्ष एवं अपनी अभिव्यक्ति को सबल एवं सुन्दर बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है। कवि के काव्य-रचना के उपक्रम में कुछ अलंकारों के लिए कवि को प्रयत्न करना पड़ा और कुछेक अलंकार उनके काव्यपक्षीय स्वभाव के अंग बनकर अनायास उनकी रचनाओं में आ गये। यद्यपि कवि समयसुन्दर कतिपय रचनाओं में अलंकार के मोह से ग्रस्त हुए हैं, लेकिन फिर भी उन अलंकारों का प्रयोग ललित ही बना है, न कि भार रूप। जो रचनाएँ अलंकार प्रधान हैं, उनमें भी हम पायेंगे कि कवि ने उन्हें यथाम्भव कृत्रिमता से बचाया है। यहाँ अब हम देखेंगे कि कविवर्य समयसुन्दर ने अपनी रचनाओं को किस प्रकार विविध अलंकारों से विभूषित किया है —

१. दि पोइटिक इमेज, पृष्ठ १६
२. चिन्तामणि, पृष्ठ १८१

२.१ अनुप्रासालङ्कार

जहाँ वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है, वहाँ अनुप्रास-अलंकार होता है। विवेच्य साहित्य में प्रयुक्त अनुप्रास-अलंकार ही यह छटा द्रष्टव्य है। इससे काव्य के नाद-सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। यथा —

सम लक्षण लावण्य गुण, सम मार्दव सम रूप,
सम मति सम गति सोभती, सरिखउ सकल सरूप ॥

— थावच्चासुत रिषि चौपाई, खण्ड १, ढाल ७ से पूर्व दूहा ३
यहाँ 'स' की और 'म' की अनेक बार आवृत्ति होने से अनुप्रास-अलंकार सिद्ध होता है। पुनर्यथा —

वापी-वप्र-विहार-वर्ण-वनिता वाग्मी वनं वाटिका,
वैद्य-ब्राह्मण-वेश्य-वादि-विबुध-वेश्या-वणिग् वाहिनी।
विद्या-वीर-विवेक-वित्त-विनयो वाचंयमो वल्लिका,
वस्त्रं वारण-वाजि-वेसर-वरं चैभिः पुरं शोभितम् ॥

— कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ १९८

चंदो चंदन नइ चित्रसाली, चरणउ चूनड़ि सार जी।
चूड़उ चीर अनइ चतुराई, अम्ह तनि लागाइ अंगार जी ॥

— पुण्यसार-चरित्र चौपाई (१०.५)

भरतार सुं सुख भोगवं रे, हुंस घणी घणउ हेज रे।
सुण हइ सखर समारीयउ रे, सखरी सजी सुख सेज रे ॥

— द्रौपदी-चौपाई (१.९.१)

अलख अगोचर तूँ परमेसर, अजर अमर तूँ अरिहंत जी।
अकल अचल अकलंक अतुल बल, केवल ज्ञान अनंत जी ॥
निराकार निरंजन निरूपम, ज्योतिरूप निरखंत जी।
तेरा सरूप तूँ ही प्रभु जाणइ, के जोगीन्द्र लहंत जी ॥

— चौबीसी, धर्मजिनस्तवन (१-२)

कमन-कंद-निकंदन-कर्म्मदं, कठिन-कक्ष ममा नमति समम्।
मदन-मंदर-मर्दन-नंदिरं, नयन-नंदन-नंदनि निर्द्धनम् ॥
निखिल-निर्वृत्त-निश्चन-नर्दितं, नत जनं सम नर्म्मद दंभनम्।
दम-पदं विमदं धन-नव्यभं, नभ वनं हससं शिवसंभवम् ॥
सतत-सज्जन-नंदित नव्यभं, नयधनं वरलब्धिधरं समम्।
रदन-नक्रमनश्चलनप्रियं, नलिन-नव्यय नष्ट वनं कलम् ॥

— श्री पार्श्वनाथ श्रृंगाटकबन्ध स्तवनम् (१-३)

ऋषभदेव कुं माय बुलावै, खुसिया करेदा आपे आपे आवै ।
आणंद अम्मा अंग ऋषभ जी, आउ अषाड़ा कोल ॥

— सिंधी भाषामय श्री आदिजिन स्तवनम् (९)

२.२ यमकालङ्कार

जब किसी चरण में एक ही शब्द दो या दो से अधिक बार आता है और हर बार अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त होता है, तब यमक-अलंकार होता है। यमक जैसे कठिन अलंकार के प्रयोग से अधिकांशतः काव्य में कृत्रिमता आ जाती है — ऐसा माना जाता है; किन्तु यदि हम कवि के यमक-अलङ्कार के प्रयोगों को देखें, तो यह बात सत्य नहीं लगती। कवि यमक के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। उनके द्वारा की गई यमक की योजना पाठक को चमत्कृत किये बिना नहीं रहती है। वह कवि की कवित्वशक्ति के प्रति सहजतया नतमस्तक हो जाता है। कवि ने अधिकांश रचनाओं में यमक को यथायोग्य स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ऐसे भी स्तोत्र, गीत आदि रचे हैं, जो मात्र यमक-प्रधान ही है। ऐसी रचनाएँ हैं —

(१) श्री पार्श्वनाथ यमकबद्ध स्तवनम्, पद्य ८ (२) पार्श्वनाथ यमकमय स्तोत्र, पद्य ५ (३) यमकमयं पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्, पद्य ८ (४) महावीर बृहत्स्तवनम्, पद्य १४ (५) यमकबद्ध-प्राकृतभाषायां पार्श्वनाथ लघु स्तवनम्, पद्य ९ आदि। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोक्य हैं —

प्रणत मानव-मानव-मानवं, गतपराभव-राभव-राभवम् ।

दुरितवारण-वारण-वारणं, सुजन तारण तारण-तारणम् ॥

— श्री पार्श्वनाथ यमकबद्ध स्तोत्रम् (१)

यहाँ प्रथम पाद में 'मानव' शब्द, द्वितीय पाद में 'राभव' शब्द, तृतीय पाद में 'वारण' शब्द और चतुर्थ पाद में 'तारण' शब्द की आवृत्ति होने से यमक-अलंकार स्पष्ट है। अन्य उदाहरण —

पार्श्वप्रभुं केवलभासमानं, भव्याम्बुजे हंसविभासमानम् ।

कैवल्यकान्तैकविलासनाथं, भक्त्या भजेहं कमला-सनाथम् ॥

— श्री पार्श्वनाथ यमकबद्ध लघु स्तवनम् (१)

विज्ञान-विज्ञानं नुवति के त्वां, मासार-मासारमधर्मपंके ।

नीराग-नीरागम-कानने, सहेला-महेला-मव हेलयंतम् ॥

— यमकमयं पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (१)

विधुवरेण्ययशः प्रसरोवर-प्रविल सदगुण हंस सरोवरः ।

दिशतु में भिमतं सुमनोहरः, स्मरतिरस्कृत रूप मनोहरः ॥

— यमकमयं महावीर बृहत्स्तवनम् (२)

कलिकषायकलंकमलावहं, निरुवमाणकलाकमलावहं ।

अहिणुवामि तुमं समयालयं, जयइदीव समं समयालयं ॥

— यमकबद्धप्राकृतभाषायां पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (८)

राजुल नारि कहइ मृग नयणी, मृग कउ कहइउ म मानउ रे ॥

— श्री नेमिनाथ गीतम् (२)

२.३ पुनरुक्ति-अलङ्कार

जहाँ भाव की रोचकता को बढ़ाने के लिए एक ही शब्द अनेक बार कहा जाए, वहाँ पुनरुक्ति-अलङ्कार होता है। विवेच्य साहित्य से कतिपय पद्य इसके उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं —

जय जय शब्द सुउच्चरे, अपछर आनन्दपूर ।

धम धम धमके घुघरी, बाजे वाजंत तूर ॥

— चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३/१०/२)

इस पद्य में भाव की रमणीयता के लिए 'जय-जय' और 'धम-धम' शब्द की पुनरावृत्ति हुई है। अतएव यहाँ पुनरुक्ति अलंकार कहा जाएगा। पुनर्यथा —

नेलि नेमि नेमि नेमि जपत राजुल नारि हो ।

— श्री नेमि-राजुल गीतम् (१)

२.४ पुनरुक्त-वदाभास-अलङ्कार

जब किसी काव्य में ऐसे शब्द हों जिनका अर्थ सामान्य दृष्टि से समान प्रतीत हों, किन्तु विशेष दृष्टि से समान न हों, तब पुनरुक्तवदाभास-अलङ्कार होता है। इस अलङ्कार हेतु निम्नांकित उदाहरण अवलोकनीय है —

भूत प्रेत पिशाच वेताल वली, शाकिणी डाकिणी जाइ टली ।

छल छिद्र न लागइ को झउड़उ, नित नाम जपउ श्री नाकउड़उ ॥

— श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ स्तवनम् (३)

यहाँ भूत, प्रेत आदि के सामान्य भाषा में समानार्थक होने से पुनरुक्ति प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुतः इनके भिन्न-भिन्न होने से पुनरुक्ति नहीं है। और भी —

न पडइ दुरभिक्ष दुकाल कदा, शुभ वृष्टि सुभिक्ष सुगाल सदा ।

ततखिन तुम्हें अशुभ करम तोड़उ, नित नाम जपउ श्री नाकउड़उ ॥

— श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ स्तवनम् (६)

२.५ श्लेषालङ्कार

जहाँ पर एक ही शब्द के प्रसंग के अनुसार दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हों, वहाँ श्लेष-अलङ्कार होता है। एक शब्द के अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति करना कवि के लिए सामान्य बात थी। 'राजा नो ददते सौख्यम्' इन अष्टाक्षरों के दस लक्षाधिक अर्थ

करने का श्रेय कवि के अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ है। समयसुन्दर ने निम्नलिखित अनेकार्थी कृतियाँ निबद्ध की हैं —

१. अष्टलक्षी, २. मेघदूत प्रथम श्लोक के तीन अर्थ, ३. द्वयर्थरागगर्भित पाल्हणपुर-मण्डन चन्द्रप्रभजिन स्तवनम्, ४. चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-गुरुनाम-गर्भित श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्, ५. छः राग, छत्तीस रागिणी-नाम-गर्भित श्री जिनचन्द्रसूरि गीतम्, ६. पूर्वकवि-प्रणीत श्लोक द्वर्थकरण अमीझरा-पार्श्व-स्तव, ७. श्री वीतराग स्तव-छन्द जातिमयम्, ८. श्लेषमय चिन्तामणि पार्श्व स्तवनम्, ९. नानाविध श्लेषमयं श्री आदिनाथ स्तोत्रम्, १०. श्लेषादिभावमय श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवन आदि।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि समयसुन्दर ने 'श्लेष' के प्रयोग में अद्भुत कौशल का परिचय दिया है, जिससे वह केवल बुद्धि का व्यायाम न होकर विवक्षित अर्थ को सुन्दर रीति से प्रकट करने में सहायक होता है। नीचे उद्धरण उद्धृत किये जाते हैं —

नित्यं प्रकृति-मत्वेऽपि, नाना विग्रह-वर्तिनि।

अभव्ये व्यभिचारित्वात्सर्व-सिद्धि-करं कथम् ॥

— श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (४)

इस पद्य में 'प्रकृति' शब्द के दो अर्थ हैं — (क) व्याकरण शास्त्रीय अर्थ अर्थात् वह शब्द जिसके साथ कोई प्रत्यय जोड़ा जाता हो और (ख) स्वभाव। इसी तरह 'विग्रह' शब्द के भी दो अर्थ हैं — (क) समस्त पद के अर्थ को बतानेवाला वाक्य और (ख) शरीर। अन्य उदाहरण —

तव मित्र वदादेश, तथा शत्रु-रिवागमः।

समीहित-कृते रीति, संहते शब्द-वारिधे ॥

— श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (३)

एकधातोरनेकानि, रूपाणि किल तत्कथम्।

एकमेवाऽभवद्रूप - मथिते सप्तधातुभिः ॥

— श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ श्लेषमय लघु स्तवनम् (३)

सती चरण फरसइ करी, पृथिवि हुई निपाप।

रज रूपइ ऊँची गइ, ऐ ऐ सील प्रताप ॥

— नल-दवदंती रास (२.३. दूहा ५)

२.६ उपमालङ्कार

समान गुणों के आधार पर एक वस्तु को दूसरी वस्तु के तुल्य बतलाना, उपमा-अलंकार कहलाता है। कवि ने अपनी रचनाओं को पद-पद पर उपमा-अलंकार से उपमित किया है, इससे उनमें सौन्दर्य एवं चारुता की अभिवृद्धि हुई है। कवि के बहुविध

उपमा-प्रयोग एवं उसके बहुविध लालित्य को देखकर यदि हम 'उपमा कालिदासस्य' की तरह 'उपमा समयसुन्दरस्य' कहें, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यद्यपि यह सत्य है कि उनके साहित्य में कवि कालिदास की कोटि का उपमा-उत्कर्ष नहीं है, लेकिन फिर भी समयसुन्दर द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ अपना वैशिष्ट्य रखती हैं। कवि समयसुन्दर उपमानों के चयन में काफी सजग रहे हैं। उन्होंने न केवल शास्त्रीय और रूढ़िगत उपमानों को चुना अपितु लोकजीवन एवं लोकमानस से भी उपमानों को ग्रहण किया है। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा —

चाल्यो लंका दिसि रामचंद साथह विद्याधर तणा वृंद ।

नक्षत्र बीट्यो चंद जेम, आकाश सोहइ राम तेम ॥

— सीताराम-चौपाई (६.३.१२)

यहाँ लंका की यात्रा करते समय विद्याधरों के बीच शोभायमान् रामचन्द्र की उपमा आकाश में नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा के साथ दी गयी है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है। और भी —

हीयड़इ श्रेणिक हरखीयउ, मेघ आगम जिम मोर ।

वसंत आगम जिन वनस्पती, चाहइ चंद चकोर ॥

— वल्कलचीरी-चौपाई (१.दूहा २)

इम संसार ना सुख भोगवतां ऊपनउ गरभ उद्योती रे ।

जिम पूरव दिस चंद विराजइ, सीप सोहइ जिम मोती रे ॥

प्रगट्यउ पांडुर भाव कपोले रे, गरभ नी वृद्धि जणावइ रे ।

जागे गरभसूत्र नी टीका, गुपत अरथ समझावइ रे ॥

— मृगावती-रास (१.३. ७-८)

पश्यन्त्या बदनं प्राची, पद्मिन्यां दर्पिणेऽरुणः ।

प्रवालाधररागेण, रविबिम्बमिव प्रगे ॥

— उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टकम् (४)

पंच घाइ पाली जती रे, चंद कला जिम बाधइ रे ।

गिरि कंदरि चंपक लता रे, बहुपरि बधइ अबाधइ रे ॥

— द्रौपदी-चौपाई (२.१.५)

ते संख धउलउ एहवउ रे, जेहवी गो क्षीर धार ।

अथवा धउलउ चन्द्रमा रे, अथवा माती हार ॥

— द्रौपदी-चौपाई (३.२.१९)

राजहंस जिम चाले मलपती, केसरि सम कटि लंक रे ।

— चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३.२. ८)

आंखि ऊँडी तारा जगमगइ, सुरतरु सुरुआ कान।
 सूकी आंगली मग नी फली, पग जिम सूकू पान॥
 सूकूं खोखुं जेहवुं सर्प नूँ, तेहवुं दीठ सरूप॥

— श्री धन्ना (काकंदी) अणगार गीतम् (१.९२)

जुतसेण तीर्थकर सेती, मोहि रह्या मन मोरा रे।
 मालति सुं मधुकर जिम मोह्या, मेघघटा जिम मोरा रे॥
 मयगल जिम रेवा सुं मोह्या, हंस मानस सुं सदोरा रे।
 मीन मोह्या जिन जलनिधि मांहे, चंद सुं जेम चकोरा रे॥

— ऐरवतक्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (८.१-२)

चन्द्रवदन मृगलोयणी, भासुर ससिदल भाल।
 नासिका दीप-सिखा जिसी, केलि गर्भ सुकुमाल॥
 दंत जिसा दाडिमकूली, सीस फूल सिणगार।
 काने कुंडल झलहलइ, कटि ऐ काउलि हार॥

— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.६.७-८)

दरियउ तरिवउ बांहे करी, अगनि उल्हामणी पाय।
 गंगाजल साम्हउ जइवउ, तिम संजम कहिवाय॥
 निसवाद वेलूना कउलीआ, त्राकडि तोलिवउ मेर।
 राधावेधरी पूतली, तीर सुं वींधवी फेरि॥

— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.९.२३-३४)

२.७ उत्प्रेक्षालङ्कार

इस अलंकार में उपमेय एवं उपमान के भेद का ज्ञान होने पर भी इस बात का उल्लेख होता है कि उपमेय मानो उपमान के सदृश जान पड़ता है। आलोच्य साहित्य में उत्प्रेक्षा का बाहुल्य देखा जा सकता है। कवि ने अपनी रचनाओं में जहाँ पर भी जाणे, जनु, मनु, मानो, जानो, निश्चय, इव, जानहु, मनहु आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं, वे उत्प्रेक्षालंकार वाचक हैं। देखिये उनके उत्प्रेक्षालंकार की कमनीयता के कुछ उदाहरण —

दिनश्रीधिवकृता यांती रुष्टा, रात्रि-निशाचरी।

वह्निज्वालावलीर्मुञ्चतीव, भानुप्रकाशतः॥

— उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टकम् (२)

उपर्युक्त पद्य में 'दिनश्री' के द्वारा भयागी गयी रात्रि रूपी निशाचरी के क्रोधाभिव्यक्ति की उत्प्रेक्षा भानु के प्रकाश से वह्नि की ज्वाला को प्रकट करने से की गई है। अपि च —

मुख पूनम नो जाणे चंदलो, मृग लोयण अणियाल रे ।
नासिका दीपसिख जिम दीपती, कोकिल कंठ रसाल रे ॥

— चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३.२.७)

अथिर मान राजा तणो जाणे गंग तरंग ।

— चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (४.६.११)

रावण लखमण चक्र प्रहारइं, ततखिण ढलि पड्यो धरती तिवारइं ।
जाणे प्रबल पवन करि भागो, रावण ताल ज्युं दीसिवा लागो ॥
जाणे केतू ग्रह ऊपरती, किंवा चुटि पड्यो ए धरती ।
रावण सोहइ पडियो धरती, जाणे आथमतउ सउ दिनपती ॥

— सीताराम-चौपाई (७.२.५२-५५)

तिण देस कोसंबी पुरी, जाणे इन्द्रपुरी अवतरती ।
जमुना नदी बहई जसु पास, जाणि जलधि मूंकी (क) हई तास ॥
प्रासाद शृंग ऊपरि पूतली, कमल नेत्र नई कटि पातली ।
जाणि नगर रिधि जोवा भणी, अमर सुंदरी आवी घणी ॥

— मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.१.४-६)

२.८ रूपकालङ्कार

रूपक-अलंकार में बहुत अधिक साम्य के आधार पर प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अर्थात् उपमेय में उपमान के साधर्म्य का आरोप करके और दोनों में भेद का अभाव दिखाते हुए उपमेय का उपमान के रूप में ही वर्णन किया जाता है। कवि समयसुन्दर ने अपने साहित्य में रूपक-अलंकार को प्रचुर स्थान दिया है। कवि ने जिस रीति से रूपक को गृहीत किया है, वह उनके विवक्षितार्थ को सुन्दर ढंग से प्रकाशित करता है। उदाहरण के लिए उनके रूपक-अलंकार से युक्त कुछ पद्य यहाँ अवतरित किये जाते हैं —

प्राचीदिक्प्रमदा चक्रे विशाले भालपट्टके ।

बालारुणरवेबिम्बं, चारुसिन्दूरचन्द्रकम् ॥

— उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टकम् (३)

इस पद्य में प्राची दिशा का प्रमदा के साथ और प्रातःकालीन सूर्यबिम्ब का सिन्दूर के तिलक के साथ रूपक है। पुनर्यथा —

चतुर्यामेषु शीतार्ता यामिनी कामिनी किमु ।

तापाय तदनोद्गच्छद्विम्बमङ्गेषिका व्यधात् ॥

प्रतीच्याभिमुखं क्रीडोच्छालनाय नवाऽरुणः ।

प्राचीकन्याकरस्थः किं रक्तद्युदरत्न कंदुकः ॥

प्राचीदिग्रतकी-व्योमवंशाग्रमधिरोहति ।

कृतरक्ताम्बराशीष न्यस्तार्कस्वर्णकुम्भभृत् ॥

— उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टकम् (१, ५, ७)

वीरस धनुष चढावीयो समति प्रत्यंचा चाढी रे ।

धीरज मूठ काढी ग्रही, सत्यसुं वींटी गाढी रे ॥

बारभेद तप बाण सुं कर्म कंचुक नै भेदी रे ।

मुनि आतमरूप शत्रु ने जीपै जिनमत वेदी रे ॥

— चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३.१.११-१२)

तिमिर करीनइ स्याम वदन थइ रे, दिसबधु दुख प्रमाणि ।

कुमर वियोगइ लोक दुखी घणुं रे, ते देखि नइ जाणि ॥

— सीताराम-चौपाई (२.६.११)

ससि दल भालि जीतउ थकउ रे, सेवइ ईसर देव रे ।

गंगा तटि तपस्या करइ रे लाल, चिंतातुर नितमेव रे ॥

नयन कमल नी पांखडी रे, अणिआली अनुरूप रे ।

हठि वधती हटकी रही रे लाल, देखि श्रवण दो कूप रे ॥

— मृगावती-चरित्र चौपाई (१.३.७-८)

पदक प्रियु तउ हूँ मोतिन माला, हीरउ तउ हूँ मूंदरडी रे बहिनी ।

चन्द्र प्रियु तउ हूँ रोहिणी थाऊँ, चन्दन मलय डूंगरडी रे बहिनी ॥

— श्री नेमिनाथ गीतम् (२)

आंबउ प्रीतम माहरउ, फूलफलादिक राज ।

फल सवाद ते भोगरस, भ्रमर समान समाज ॥

राज सरिखउ कूबर हुयउ, राज भंश उनमूल ।

प्रिय विणु हूँ धरती पड़ी, देव थयउ प्रतिकूल ॥

— नलदवदन्ती-रास (३.२, दूहा १-२)

२.९ उदाहरणालङ्कार

प्रस्तुत अलङ्कार में पहले साधारण रूप से कोई बात कह दी जाती है और फिर उसे बोधगम्य बनाने के लिए उसका स्पष्टीकरण किया जाता है। कवि ने अपने साहित्य को अनेक स्थलों पर उक्त अलङ्कार से अलंकृत किया है। जैसे —

लखमी पामी न लोभ कीजै, दीधो आवै साथि रे ।

समयसुन्दर कहै नहीं तर, माखी ज्युं घसे हाथ रे ॥

— चम्पक-श्रेष्ठी चौपाई (१.९.२२)

इस पद्य में कृपण के प्रति कवि का सदुपदेश है कि अवसर पर अपने धन का

सदुपयोग करें, अन्यथा पश्चाताप करना पड़ेगा; जैसे समय पर मधु का उपयोग न करने वाली मधुमक्खी को मधु का अपहरण होने के बाद पश्चाताप करना पड़ता है। एक और उदाहरण —

नजरि-नजरि बिहुंनी मिली, जाणि साकर सुँ दूध।
मन-मन सुं बिहुं नउ मिल्यउ, दूध पाणी जिम सूध॥

— सीताराम-चौपाई (१.३.२)

२.१० मालोपमालङ्कार

एक ही उपमेय के अनेक उपमान कथन करने को मालोपमा-अलङ्कार कहते हैं; यथा —

मुझ मन मोह्यो रे गुरु जी, तुम्ह गुणे जिम बाबीहड़उ मेहो जी।
मधुकर मोह्यो रे सुन्दर मालती, चन्द चकोर सनेहो जी।
मानसरोवर मोह्यो हंसलउ, कोयल जिम सहकारो जी।
मयगल मोह्यो रे जिम रेवा नदी, सतिय मोही भरतारो जी॥

— श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१-२)

यहाँ गुरु-गुण से शिष्य के चित्त के आकर्षण की सात उपमाएँ प्रयुक्त होने से मालोपमा - अलङ्कार सिद्ध होता है। पुनर्यथा —

इन्द्राणी जिमि इन्द्र नइ, हरि नइ लखमी जेम।
चन्द तणइ जिमि रोहणी, राजा राणी तेम॥

— सीताराम-चौपाई (१.३. दूहा ५)

घड़ी मांहि बाधइ घटइ रे, जेहवी वृक्ष नी छांह।
अथिर कान हाथी तणउ रे, अथिर कापुरुष नी बांह॥
अथिर माणस नउ आउखउ रे, अथिर कुमास साथ।
अथिर मुँछ उँदिर तणी रे हाँ, अथिर पारधीना हाथ॥
अथिर घड़ी अरहट्ट नी रे हाँ, अथिर समुद्र नी वेल।
अथिर दण्ड ऊपरी ध्वजा रे हाँ, अथिर पणि छसि मेल॥
अथिक वात-हत पानड़ा रे हाँ, अथिक सीतातुर दन्त।
अथिर सूरिज बिंब जल तणउ रे हाँ, अथिर असती तणई कंत॥

— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.८.१-२, ४-५)

२.११ स्वभावोक्ति-अलङ्कार

जिसमें किसी वस्तु या व्यक्ति की स्वाभाविक क्रियाओं, गुणों, विशेषताओं आदि का ठीक उसी रूप में वर्णन किया जाता है, जिस रूप में कवि को दिखाई देती है, स्वभावोक्ति-अलङ्कार कहलाता है। आलोच्य रचनाओं में इस अलङ्कार की बहुलता पाई

जाती है, यथा —

सहजइ सुख दुख संपजइ, परमेसर पिण करइ पक्षो रे ।

ते मन मांहे माणज्यउ, पुण्य पाप ना फल परतक्षो रे ॥

— गौतमपृच्छा-चौपाई (५.४)

इसमें मानव-जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होने से स्वभावोक्ति-अलंकार है । पुनर्यथा —

बेड़ली मेरी री, तरइ नीर विचाल, अइमतउ रमइ बाल ।

मुनि बांधी माटी पाल, जल थम्यउ ततकाल ।

काचली मूक्री विचाल, रिषि रामतियाल ॥

— श्री अइमत्ता ऋषि गीतम् (१)

२.१२ दृष्टान्तालङ्कार

जहाँ उपमेय, उपमान संबंधी दो पृथक् वाक्यों में धर्मों की भिन्नता होने पर भी बिम्ब- प्रतिबिम्ब आदि भावनाओं में समानता दिखाई गई हो, वहाँ दृष्टान्त-अलङ्कार की सिद्धि होती है । देखिये, कवि की दृष्टान्त-अलंकार योजना —

सोनउ हो सुगंध ते तउ अति भलउ, एक सांख भर्यउ दूध ।

कनक मुद्रडी जवहर सुं जडी, जैन क्रिया मन सूध ॥

इसमें जैन-आचार के प्रति मानव-मन के आकर्षण के तीन दृष्टान्त दिये गये हैं — (क) सोने में सुगंधि, (ख) शंख में दूध और (ग) सोने की अंगूठी में जड़ित मणि । अतः यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है । कतिपय अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत हैं —

राम थकां बीजा तणउ, राजनउ नहीं अधिकार ।

सीह सादूलइ गूंजतइ, कुण बीजउ मिरगारि ॥

— सीताराम-चौपाई (२.५ से पूर्व दूहा २)

गुण देखि राचइ सको, अवगुण राचइ न कोई रे ।

हार सको हियडइ धरइ, नेउर पायतलि होय रे ॥

— श्री जिनसिंहसूरि-गीतानि (४)

सामलियउ नेमि सुहावइ रे सखियां, कालउ पणि गुण भरियउ रे लखियां ।

आंखि सोहइ नहीं अंजण पारवइ, कालउ मरिच कपूर नइ राखइ ।

काली कीकी करइ अजुवालउ, रक्षा करइ रूडउ चंदलउ कालउ ।

कालउ कृष्ण वृन्दावनि सोहइ, सोल सहस गोपी मन मोहइ ।

नर-नारी सहु को घणुं तरसइ, कालउ मेह घटा करि वरसइ ।

राजुल कहइ सखि स्युं करुं गोरइ, समयसुन्दर प्रभु मन मान्यउ मोरइ ।

— श्री नेमिनाथ गीतम् (१-६)

२.१३ अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कार

जिसमें किसी की प्रशंसा आदि करने के लिए प्रस्तुत की चर्चा न करके केवल अप्रस्तुत की चर्चा की जाती है और उसी से प्रस्तुत का बोध कराया जाता है, वह अप्रस्तुत-अलङ्कार कहलाता है। उदाहरण के लिए —

साठी चोखा सूपडइ, छडतां ऊजला थायइ रे।

रूपइया खरा आगिमइ, घाल्यां कसमल जायइ रे॥

— सीताराम-चौपाई (१.२.१८)

इसमें वेगवती द्वारा मुनि को कलंकित कर देने पर बाद में उसी के द्वारा निर्दोष घोषित कर देने पर साधु की स्वच्छता प्रस्तुत है, किन्तु कवि ने अप्रस्तुत साठी-चावल और स्वर्ण-सिवके की स्वच्छता का वर्णन कर साधु की स्वच्छता की ओर संकेत किया है। यहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोपण होने से अप्रस्तुत-प्रशंसा-अलङ्कार है।

२.१४ विरोधाभासालङ्कार

विरोध न होने पर भी जहाँ विरोध-सा प्रतीत हो, वहाँ विरोधाभास-अलंकार होता है; जैसे —

प्रकृत्यापि विना नाथ, विग्रहं दूरतस्त्यजन्।

केवलप्रत्ययेनैव, सिद्धि साधितवान् भवान्॥

— श्री पार्श्वनाथ लघु स्तवनम् (१)

इसमें व्याकरण के अनुसार विग्रह-प्रदर्शन पूर्वक प्रकृतिभूत शब्द के साथ प्रत्यय जोड़कर शब्द सिद्धि की जाती है, किन्तु पार्श्वनाथ ने प्रकृति और विग्रह के बिना ही सिद्धि (शब्दसिद्धि) की, यह व्याकरण शास्त्र की मर्यादा से विरुद्ध है। जब हम 'प्रकृति शब्द' का अर्थ माया-मोह, 'विग्रह' शब्द का अर्थ कलह और 'केवल प्रत्यय' का अर्थ केवलज्ञान, मान लेने पर किसी प्रकार का विरोध नहीं रहता है। अतः यहाँ विरोधाभास-अलंकार है।

२.१५ सन्देहालङ्कार

जहाँ किसी पदार्थ को देखकर संशय बना रहे और निश्चय न हो कि यह अमुक ही है, वहाँ सन्देह-अलङ्कार होता है। उदाहरणार्थ —

के देवी के किन्नरी, के विद्याधरि व०।

सीताराम-चौपाई (१.७ से पूर्व दूहा ८)

इसमें नारद ऋषि द्वारा भानुकुमार को सीता का चित्र प्रदान करने पर भानुकुमार उसके बारे में सन्देह करता है कि यह देवी है, या किन्नरी है या कोई विद्याधरी है। एक व्यक्ति के बारे में एक ही काल में अनेक विकल्प होने से सन्देह-अलङ्कार होता है। और भी —

कबहु मिलइ मुझ जउ करतारा, तउ पूछुं दोइ बतियां रे।

तूं कृपाल कि तूं हइ पापी, लख न सकूं तोरी गतियाँ रे।

— करतार गीतम् (१)

आरीसा मांहि मुहड़उ दीसइ, कहउ ते पुद्गल केहा रे।

जीव अरूपी करम सरूपी, किम सम्बन्ध संदेहा रे ॥

— सन्देह गीतम् (२)

ऐ ऐ विद्याधरी ए कोई, के अपछर अवतार।

के किन्नरि के पाताल सुंदरी, सुन्दर रूप अपार ॥

— सीताराम-चौपाई (४.९)

२.१६ अतिशयोक्ति-अलङ्कार

जिसमें किसी की निन्दा, प्रशंसा आदि करते समय किसी साधारण बात को बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है, वह अतिशयोक्ति-अलङ्कार होता है। समयसुन्दर ने अपनी स्तुतिपरक रचनाओं में अतिशयोक्ति-अलङ्कार की लड़ियाँ बिछा दी हैं, लेकिन उन्हें विशुद्ध रूप में अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कवि ने जिन आदर्श पुरुषों की स्तुति की है, वे उनके लिए अत्यन्त श्रद्धास्पद हैं और श्रद्धेय के वर्णन में अतिशयोक्ति का आ जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त भी कवि ने इस अलङ्कार का प्रयोग किया है —

सर्वसहा प्रश्रुतित्त्वात्मद्यानिं पदैरधः।

न कुप्यसि कदापि त्वं रजस्ते क्षातिरुत्तमा ॥

— रजोष्टकम् (४)

उपर्युक्त पद्य में अचेतन रज के साथ चेतन का धर्म क्षमा का (और क्रोध का) संबंध बताया गया है। अतः अतिशयोक्ति-अलङ्कार है। पुनश्च —

एक हाथी तणइ आठ दंतसूला, दंत-दंत आठ आठ वावि सोहइ।

वावि-वावि आठ-आठ कमल तिहाँ, आठ-आठ पांखडी पेखतां मन्न मोहइ ॥

पत्र पत्रइ बत्तीस बद्ध नाटक पड़इ, कमल विचि इन्द्र बइठउ आणन्दइ।

आठ वलि आगलिं अग्र महिषी खड़ी, वीर नइ एण विधि इन्द्र वांदइ ॥

— श्री दशार्णभद्र गीतम् (५-६)

२.१७ विषमालङ्कार

जहाँ या तो दो परस्पर विरोधी बातों या वस्तुओं के संयोग का उल्लेख होता है, या उस संयोग की विषमता दिखाई जाती है, वहाँ विषम-अलङ्कार होता है। उदाहरणतः —

मेरे मनि तूँ ही तेरे मनि कछु नहीं, तउ कीजइ कहा प्रीति जोरइ।

— श्री नेमिनाथ गीत (२)

यहाँ एक पक्षीय अनुराग होने से विषम-अलङ्कार हुआ है।

२.१८ अतद्गुणलङ्कार

जहाँ संगति लगने पर भी उसके प्रति संगति न लगे, वहाँ अतद्गुण अलङ्कार होता है। यथा —

हुँ रागिणी पण नेमि निरागी, जोरइ प्रीति न होइ हो।

एक हथि ताली पिण न पड़इ, मुझ मन तरसइ तोइ हो॥

— श्री नेमिनाथ फाग (७)

यहाँ रागिणी राजीमति के सम्पर्क में आने पर भी नेमिनाथ में राग उत्पन्न नहीं होता, अतः अतद्गुण-अलङ्कार हुआ।

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि समयसुन्दर का अलङ्कार-प्रयोग व्यापक है। यद्यपि यह सही है कि अलंकार-प्रयोग उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य नहीं था, तथापि उनका काव्य स्वभावतया अनेक अलङ्कारों से अलंकृत हुआ है। कुछेक रचनाएँ ऐसी अवश्य हैं, जिनकी रचना अलङ्कारों से अलंकृत करने के लिए ही की गई हैं, किन्तु सामान्यतः अलङ्कार-प्रयोग काव्य को रसोद्दीपक एवं आवर्जक बनाने के लिए ही हुआ है, जो कि पूर्णतः स्वाभाविक प्रतीत होता है। हाँ, जितने अलङ्कार प्रयुक्त हुए हैं, उनसे लगता है कि समयसुन्दर अलङ्कारों के प्रयोग में अति पटु थे। उपर्युक्त अलङ्कारों से काव्य के भाव तथा कला — दोनों पक्षों की शोभा में अभिवृद्धि हुई है।

३. गुण

गुण वे भावात्मक तत्त्व हैं, जो मुख्य रूप से रस का तथा गौण रूप से शब्दार्थ का उत्कर्ष करते हैं।^१ गुण से काव्य की शोभा बढ़ती है। गुण का संबंध काव्य एवं भाषा की आन्तरिक विशेषता से है। काव्य यदि अलङ्कारयुक्त होने पर भी गुणरहित है, तो वह प्रीतिजनक नहीं हो सकता, जैसे कुरूपवती स्त्री के हार आदि आभूषण केवल भाररूप होते हैं।^२ वस्तुतः गुण काव्य के केवल शोभाकारक धर्म ही नहीं हैं, अपितु वे रस के धर्म भी हैं, रस के उत्कर्ष के हेतु हैं और रस में अविचलित भाव से स्थित रहने वाले हैं।^३ संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण का वर्णन मुख्यतः दो रूपों में हुआ है —

(क) वामन के अनुसार शब्द और अर्थ (काव्य) के धर्म रूप में;^४

१. काव्य शास्त्र : एक नव्य परिबोध, पृष्ठ ६२

२. अलंकृतमपि प्रीत्यैन काव्य निर्गुणं भवेत्।

वपुष्वललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्॥ — अग्निपुराण (१.३४६)

३. ये रसस्याग्निनो धर्माः शौर्यदिय इवात्मनः।

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ काव्यप्रकाश (८.६६)

४. काव्याशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः। — हिन्दी काव्यालंकार सूत्र (३.१.१)

(ख) आनन्दवर्धन के अनुसार अंगीरस के आश्रित रहने वाले तत्त्व रूप में^१ परवर्ती आचार्यों ने गुणों को रसाश्रित ही माना^२, किन्तु उन्होंने गुणों का वर्णों के साथ स्पष्ट संबंध भी स्वीकार किया। अतः गुणों का संबंध काव्य के अन्तः और बाह्य—दोनों पक्षों से है। आचार्य मम्मट एवं विश्वनाथ ने गुण तीन माने हैं — (१) माधुर्य, (२) ओज और (३) प्रसाद।^३ समयसुन्दर की कृतियों में वर्ण्य-विषय के अनुरूप इन तीनों गुणों का उचित समावेश प्राप्त होता है।

३.१ माधुर्य-गुण

जिसके कारण अन्तःकरण आर्द्र हो जाये या पिघल-सा जाये, वह आह्लाद विशेष ही माधुर्यगुण कहलाता है। यह संयोग-शृंगार, विप्रलम्भ-शृंगार, करुण और शान्तरस में क्रमशः अधिकता से पाया जाता है।^४ ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर स्पर्श, वर्ण, वर्गान्त वर्ण से युक्त अर्थात् अनुस्वार-सहित वर्ण, ह्रस्व 'र' और 'ण' समास का अभाव अथवा दो-तीन या अधिक से अधिक चार पद मिले हुए समास और मधुर कोमल पद-रचना — ये सब माधुर्य-गुण के व्यञ्जक हैं।^५ समयसुन्दर की रचनाएँ उक्त लक्षणों से भूषित हुई हैं। जैसे —

निखिल-निर्वृत निश्वन नर्दितं, नत जनं सम नर्मद-दम्भमम्।

दमपदं विमदं धननव्यभं, नभ वनं हससं शिवसम्भवम् ॥

— श्री पार्श्वनाथ शृंगाटकबन्ध स्तवनम् (२)

लसण्णाण-वित्राण सन्नाण मेहं, कलाभिः कलाभिर्युतात्मीय देहम्।

मणुण्णं कलाकेलिरूवाणुगारं, स्तुवे पार्श्वनाथं गुणश्रेणिसारं ॥

सुआ जेण तुम्हाण वाणी सहेवं, गतं तस्य मिथ्यात्वमात्मीयमेवम्।

कहं चंद मज्झिंल्ल-पीऊस-पाणं, विषापोहकृत्ये भवेत्त प्रमाणम् ॥

— संस्कृतप्राकृतभाषामयं पार्श्वनाथलघु स्तवनम् (१-२)

१. तमर्थमवलम्बने येऽङ्गिन ते गुणाः स्मृताः। — हिन्दी ध्वन्यालोक (२.६)
२. द्रष्टव्य — (क) काव्यप्रकाश (८.६६) (ख) रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यदयो यथा।
३. (क) माधुऽयौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। — काव्यप्रकाश (८.८.९)
(ख) गुणाः माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। — साहित्यदर्पण (८.१)
४. आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्वुतिकारणम्।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ॥ — काव्यप्रकाश (८.६८)
चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेधिकं क्रमात् ॥ — साहित्य दर्पण (८.२)
५. काव्य-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ ३३९-४०

अईओ नन्दन नन्दना, नन्द नन्दना; साह वच्छराज के नन्दना ।
 अइओ चन्द चन्दना, चन्द चन्दना; वचन अमीरस चन्दना ॥
 अइओ फन्द फन्दना, फन्द फन्दना; नहिं माया मोह फन्दना ।
 अहओ कन्द कन्दना, कन्द कदना, दुख दारिद्र विकन्दना ॥
 अइओ इन्द्र इन्द्रना, इन्द्र इन्दना; जिनसागरसूरि इन्दना ।
 अइओ वन्द वन्दना, वन्द वन्दना; समयसुन्दर कहइ वन्दना ॥

— जिनसागरसूरिगीतानि (५.१-३)

हंस कहइ हूँ न रहूँ परवश, संबल छै मुझ साथ ।
 समयसुन्दर कहइ ए परमारथ, हंस नहीं किण हाथ ॥

— काया-जीव गीतम् (४)

एक करूँ अरदास, प्रीति सम्भालउ पाछली ।
 तुम्ह बिण खिण न रहाय, क्यूँ जीवइ जलविण माछली ॥

— श्री स्थूलिभद्रगीतम् (१)

मन ना मनोरथ सवि मन मां रह्या रे ।

— श्री स्थूलिभद्रगीतम् (४)

३.२ ओज-गुण

चित्त की दीप्ति — जिसमें चित्त का विस्तार होता है, चित्त आवेशित हो जाता है, ओज कहलाती है। वीर, बीभत्स और रौद्र रस में इस गुण का क्रमशः आधिक्य होता है।^१ ओजगुणमूलक पद को सुनने वाले अथवा पढ़ने वाले के चित्त में आवेश, साहस आदि का संचार होता है। क वर्ग आदि के पहले और तीसरे वर्णों का दूसरे और चौथे वर्णों के साथ क्रमशः योग, 'र' का वर्णों के ऊपर और नीचे अधिक प्रयोग, ट, ठ, ड, ढ की अधिकता तथा लम्बे समास ओज गुण व्यंजक हैं।^२ यथा —

त्रटक्कि हार तोड़ती, मटक्कि अंग मोड़ती,

छटक्कि वीण छोड़ती, लटक्कि मुँहि लोड़ति, जपत्ति राजु वाउरी ।

— नेमिनाथ सवैया (१७)

१. (क) दीप्त्मात्तु विस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितौ ।

बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ॥ — काव्यप्रकाश (८.६९)

(ख) ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते ।

वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु ॥ — साहित्यदर्पण (८.४-५)

२. काव्य-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ ३४०

रडवडता गलीए मूआ रे, मडा पड्या ठाम ठाम ।

गलि मांहे थइ गन्दगी रे छै कुण नांखण दाम ॥

— चम्पकश्रेष्ठी-चौपाई (२.६.१३)

आम्हा साम्हा कटक आव्या चडी, फोजइ फोज अडी। वगतर नइ जीन साल, सुभटे पहिर्या तत्काल। माथइ धर्या टोप, सुभट चड्या सबल कोप, पांचे हथियार बांध्या, तीरे तीर सांध्या, अमल पाणि कीधा, भाजणरा सुंस लीधा। घोडे घाली पाखर, जाणे आडा आया भाखर, जागइ कीया गज, उपरि फरहरइ धज, हमामे दीघी घाई, सूरवीर आया धाई, रणतूर वागइ, ते पिणि सिंधु (मइ) डारा गइ। ठाकुर वपु कारइ, वडवडा बापांरा विरुद सम्भारइ। छूटइ नालि, निपट थोड़ी विचाली, वहइ गोला लोक ल्यइ ओला, छूटइ कुहक बांध, कायरारा पडइ प्राण, काबिली मीर, नांखई तीर,, मारइ भालारां बिच्चविधिं लागइ, बगतर भेदीनइ विच्चाविच्च लागइ, खडगारी, खडाखडि वागी, भडाभडी गर्दभिल्लरी फोज भागी, सबल लीक लागी। हूंतउ जे सेनानी ते तउ धुरथी थयो कानी, जे हूंतउ कोटवाल, ते तड नासउ ततकाल, जे हूंतउ फोजदार, मितणरइ माथे पड़ी मार, जे हूंत वागिया ते पिण भाजी (गी) गया अभागिया, जे हूता मुहता ते नासी घरे पहुता, जे हूता चउरासीया तीए दांते त्री (तृ) णां लीया, जे हूता खवास तीए मूकी जीवारी आस, जे हूता कायर, तिणनइ सांभरइ आपणी बायर। जे चडता बाहर ते हथियार छोड़ी थया काहर, जे ढोलरइ ढमकइ मिलता, ते गया पासइ टलता, जे बांधता मोटी पाघडी, ते ऊभा न रह्या एका घडी, जे हूता एकएकडा तिणरे नाम दिया बेकडा, जे माथइ धरता आंकडा, ते मुहडा कीया आंकडा, जे वणा (जा) वता सारंगी वांकी, तीए तउ रणभूमिका पण पाकी, जे बांधता बिहू पासे कटारी, तीयां नइ नासतां भूमि भारी, जे पहिरता लांबा साडा, तीए नासिते कोडि कीया पवाडा। गर्दभिल्ल नाठउ, बोल घणउ माठउ, गढमहि जई पइठउ, चिंता करइ बैठउ, पोलि ताला अड्या, कालिकाचार्यना कटक चहुं दीसी विटी पड्या ॥

— कालिकाचार्य-कथा

३.३ प्रसाद-गुण

जो गुण चित्त में शीघ्र व्याप्त हो जाय, उसे 'प्रसाद' कहते हैं। यह गुण समस्त रसों एवं समस्त रचनाओं में रह सकता है। सुनते ही जिनका अर्थ प्रतीत हो जाय, ऐसे सरल और सुबोध पद प्रसाद-गुण के व्यंजक होते हैं।^१ समयसुन्दर की रचनाओं में इस

१. (क) शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत् सहसैव यः।

व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ॥ — काव्यप्रकाश (८. ७०-७१)

(ख) चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।

स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।

शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः ॥ — साहित्यदर्पण (८. ७-८)

गुण का विशेष रूप से विकास पाया जाता है। उनके वर्ण्य विषयानुरूप होने के कारण उनके काव्यों में इसका आधिक्य है। इसीलिए पाठक या श्रोता को उनकी रचनाओं का आशय समझने में कुछ भी कठिनता नहीं होती तथा उसके हृदय में उद्दिष्ट भावों का संचार का परिपाक अनायास हो जाता है। वस्तुतः प्रसाद गुण की अधिकता के कारण ही समयसुन्दर की काव्य-रचना सरल, सहज और स्वच्छ बनी है। यथा —

चंद्र सूरज ग्रह नक्षत्र तारा, तेसूं तेज आकाश रे।

केवलज्ञान समउ नहीं कोई, लोकालोक प्रकाश रे ॥

— ज्ञानपंचमी लघु स्तवनम् (४)

बाल वृद्ध नइ रोगियउ, साध बांभण नइ गाइ।

अबला एह न मारिवा, मार्यां महापाप थाइ ॥

— सीताराम-चौपाई (३.७.१३)

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विवेच्य साहित्य में प्रसाद गुण कहीं भी एकाकी रूप में समाविष्ट नहीं हुआ है। वह माधुर्य या ओज संयुक्त ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसुन्दर के साहित्य में माधुर्य, ओज और प्रसाद — तीनों गुणों का विषयानुरूप समुचित सामवेश हुआ है। माधुर्य-व्यंजक कोमल वर्णों के प्रयोग से तथा दीर्घ समासों के अभाव में उनकी समस्त रचनाएँ हृदय-स्पर्शी बन गई हैं। कवि ने नाद-सौन्दर्य की ओर भी ध्यान दिया है। प्रसाद-गुण तो उनकी निजी विशेषता है। सचमुच, इन तीनों गुणों के समावेश से उनकी रचनाएँ ललित, आवर्जक एवं प्रभावोत्पादक हुई हैं।

४. छन्द-योजना

काव्य के कला-पक्ष में जहाँ अलंकार-विधान द्वारा शब्दों की रमणीयता प्रदान की जाती है एवं उसके अर्थ-गौरव की अभिवृद्धि की जाती है, वहीं छन्द-योजना द्वारा रचना को नाद तथा गेयता में आबद्ध करके उसे अधिक भावग्राही और संवेदना-परक बनाया जाता है। 'निरंकुशाः कवयः' के अनुसार आज के कवि छन्द के राजमार्ग को तिलाञ्जलि देकर अपनी नई-नवीन पगाडंडियाँ बना रहे हैं, परन्तु काव्यार्थ के उत्कर्ष में छन्द-योजना का विशेष महत्त्व है। कवि के भावों के अनुकूल छन्द मिलने पर उसकी कल्पना अत्यन्त मनोहर रूप अंगीकार कर लेती हैं। इसीलिए विविध रसों की अभिव्यञ्जना के लिए विभिन्न छन्द उपयुक्त सिद्ध होते हैं। क्षेमेन्द्र का कथन है कि —

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।

कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ॥

अर्थात् काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का सोच-समझकर विनियोग करना चाहिए।

छन्द उस वाक्य-रचना को कहते हैं, जिसमें गेयता के लिए पदों के वर्णों या मात्राओं का कोई निश्चित मान हो और जो अपने चरण, गति, यति तथा यथासम्भव तुक में आबद्ध होती है। कवि समयसुन्दर ने अपनी कृति 'वृत्तरत्नाकर-वृत्ति' में छन्दों के संबंध में अन्य जानकारी देते हुए लिखा है कि हमारे यहाँ छन्दः सूत्र, भाष्य के प्रणेता पिङ्गल आदि आचार्यों ने छन्द मुख्यतया दो प्रकार के माने हैं— मात्रिक और वार्णिक। मात्रिक छन्द के चरणों में मात्राओं की संख्या निश्चित होती है। एक ह्रस्व-स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे 'मात्रा' कहते हैं। मात्रिक छन्द को 'मात्रा वृत्त' भी कहते हैं। वार्णिक छन्द के चरणों में लघुगुरु के क्रम से वर्णों की संख्या निश्चित की जाती है। इसे 'वर्णवृत्त' भी कहा जाता है।

वार्णिक छन्दों में तीन वर्णों के समुदाय को 'गण' कहते हैं और मात्रिक छन्दों में चार मात्राओं के समूह को 'गण' कहते हैं। वर्ण-गण आठ हैं — १. मगण (SSS), २. नगण (III), ३. भगण (SII), ४. जगण (ISI), ५. सगण (ISS), ६. यगण (ISS), ७. रगण (SIS), ८. तगण (SSI)। जिस वर्ण के उच्चारण में एक मात्रा का समय अर्थात् ह्रस्व-उच्चारण का समय लगता है, उसे 'लघु' कहते हैं। लघु वर्ण का संकेत ऊर्ध्वरेखा (|) द्वारा प्रगट किया जाता है। जिसके उच्चारण में लघु से दुगुना समय व्यय होता है, उसे 'गुरु' या 'दीर्घ' कहते हैं। इसका चिह्न अवग्रह (ऽ) होता है। छन्द में प्रयुक्त संयुक्त व्यञ्जन का प्रथम लघु-वर्ण गुरु होता है। जिस वर्ण के ऊपर अनुस्वार हो और जिस वर्ण के आगे विसर्ग हो, वह भी गुरु है। पाद के अन्त में आया हुआ ह्रस्व-स्वर भी आवश्यकतानुसार गुरु माना जाता है।

कविप्रवर समयसुन्दर छन्दःशास्त्र के पण्डित थे। किसी विशिष्ट छन्दःशास्त्र की व्याख्या वही व्यक्ति कर सकता है, जो उसका पूर्णतः ज्ञाता है। उन्होंने 'वृत्तरत्नाकर' नामक विशद छन्दःशास्त्र की सुन्दर वृत्ति लिखी है। अतएव छन्दों के प्रयोग में उनके पूर्ण कौशल की सहज आशा की जा सकती है। 'विविध छन्द जातिमयं श्री वीतराग स्तव' में उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के लगभग २५ छन्दों को व्यवहृत कर अपने छन्दःशास्त्रीय अध्ययन का प्रदर्शन किया है। कवि का छन्दःशास्त्रीय ज्ञान विस्तृत था— इसका प्रमाण हमें इस बात से भी मिल जाता है कि उन्होंने ऐसे छन्दों का प्रयोग भी किया है, जिसका प्रयोग अन्य कवियों ने नहीं किया है। 'छन्द-मञ्जरी' या 'वृत्तरत्नाकर' जैसे छन्दःशास्त्रों में भी उन्हें अप्रसिद्ध या अप्रयुक्त होने के कारण ग्रहण नहीं किया गया है।

प्रस्तुत कवि के साहित्य का सर्वेक्षण करने से तो यह लगता है कि कवि छन्दों के चुनाव में प्रवीण थे। उनकी छन्द-योजना विषयानुसार परिवर्तित होती रहती है। उन्होंने काव्य में एकरसता से बचने के लिए प्रायः विविध छन्दों का प्रयोग किया है। घटना, भाव, विचार या विषय के अनुकूल छन्दोपरिवर्तन करना कवि की स्वाभाविक

प्रवृत्ति थी। यहाँ हम कवि की छन्दोयोजना को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें प्रत्येक छन्द का लक्षण कवि द्वारा 'वृत्तरत्नाकर' पर लिखी व्याख्या के आधार पर एवं उनकी रचनाओं से एक-एक उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे —

४.१ अनुष्टुप

आठ-आठ अक्षरों के चार चरणों के छन्द को अनुष्टुप छन्द कहते हैं। उदाहरण के लिए निम्न पद्य अवलोक्य है —

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

साधुचक्षुर्व्यथोद्भूत-पापशुद्धिकृते तृणम् ।

पुनः पुनर्ज्वलत्याशु कृशानौ जनसाक्षिकम् ॥^१

४.२ विद्युन्माला

यह चार चरणों का एक वर्णवृत्त है, जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण और दो गुरु होते हैं। यथा —

म. म. गु-२
SSS SSS SS

श्रीसर्वज्ञं प्रोद्यत्प्रज्ञं, मोक्षावासं दत्तोल्लासम् ।

भव्याधारं रम्याकारं, वंदे नित्यं नष्टासत्यम् ॥^२

४.३ मधुमती

यदि प्रत्येक पाद में दो-दो नगण तथा एक-एक गुरु हो, तो उस वर्ण-वृत्त को मधुमती कहते हैं। जैसे —

न. न. गु.
| | | | | | S

प्रमुदित-हृदयं स्तुति-गुण-निकरे ।

मधुकर इव ते, मधुमति कुसुमे ॥^३

प्रस्तुत छन्द का नाम 'वृत्तरत्नाकर' में मधु दिया गया है, मधुमती संज्ञान्तर है।

४.४ भद्रिका

यह वृहती का एक भेद है। संस्कृत-छन्द के ग्रन्थों में नवाक्षर भद्रिका का उल्लेख नहीं है, किन्तु एकादशाक्षर भद्रिका-छन्द 'वृत्तरत्नाकर' आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट है। प्रस्तुत उदाहरण से इसका लक्षण मगण, नगण और रगण प्रतीत होता है, किन्तु उदाहरण के तृतीय पाद में यह लक्षण नहीं मिलता है। ऐसा लगता है कि तृतीय पाद का मुद्रित पाठ अशुद्ध है, क्योंकि इसका अर्थ भी अस्पष्ट है।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, तृणाष्टकम् (२)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नानाविधकाव्यजातिमयं नेमिनाथस्तवनम् (१२)

३. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (४)

म.	न.	र
५१५	१११	५११

भव्य-जीव-कृत-भावुक, पापवृक्षवन-पावकम्।
साभजित जनत जिन, भद्रिका भवति या भृशम् ॥^१

४.५ चम्पकमाला

जिन चार चरणों के प्रत्येक चरण में क्रमशः, भगण, मगण, सगण और गुरु होता है, उसे चम्पकमाला वर्ण-वृत्त कहते हैं। उदाहरण इस प्रकार है —

भ.	म.	स.	गु.
५११	५५५	११५	५

नाश्रयति त्वां सद्गुणवन्तं, वञ्चित एवासौ गुणवृन्दा।
या मधुकृत प्राणी भगवन्तं, चम्पकमालायामृतवन्तम् ॥^२

४.६ दोधक

तीन भगणों के अनन्तर दो गुरु हों, तो उसको 'दोधक' वर्णवृत्त कहा जाता है। जैसे —

भ.	भ.	भ.	गु.२
५११	५११	१११	५५

रूप्य-सुवर्ण-सुरलमयोच्चैः, वप्र सुमध्य-चतुर्मुख-मूर्तेः।
त्वं जन राजसि मानव-तिर्यग्, दिवस-दोधकर-प्रतिबोधे ॥^३

४.७ हंसमाला

यह वर्ण-वृत्त है। इसमें क्रमशः सगण, रगण और एक गुरु होता है। उदाहरणार्थ —

स.	र.	गु
११५	५१५	५

भ्रमति भ्राजमान, सुतरां सर्व-लोके।
तव कीर्ति-विशाला, धवला हंसमाला ॥^४

यहाँ प्रथम पादान्त 'न' गुरु माना है।

४.८ चूड़ामणि

यह सप्ताक्षर वर्ण-वृत्त है। इसका वर्ण नाम उष्णिक् है। इसमें तगण, भगण और अन्त में एक गुरु होता है— ऐसा निम्नलिखित उदाहरण से प्रकट होता है, यद्यपि

१. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (८)
२. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (९)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (१२)
४. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (५)

संस्कृत ग्रन्थों में इसका उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है —

त. भ. गु.
S S I S I I S

दृष्टो मयाऽर्त्तिहतो, भाग्याद्भवं भ्रमता ।
श्री वीतराग-जगच्चूडामणि स्वमहो ॥^१

४.९ उपजाति

जिस वार्णिक वृत्त में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का लक्षण मिला हो, उसका नाम 'उपजाति' छन्द है। दो तगण, एक जगण और दो गुरु इन्द्रवज्रा का लक्षण है और क्रम से जगण, तगण, जगण के अनन्तर दो गुरु उपेन्द्रवज्रा का लक्षण है। उदाहरण इस प्रकार है —

त. त. ज. गु.गु.
S S I S S I I S I S S

(इन्द्र) निर्मुक्तराग प्रमदाभिराम, वने मतंगप्रमदाभिराम। (उपेन्द्र)
(इन्द्र) नम्रीभवन्मंदरविग्रहाभ, जय प्रभो! मंदरविग्रहाभ ॥^२ (उपेन्द्र)

I S I S S I I S I S S
ज. त. ज. गु.२

विशेष— यहाँ पादान्त ह्रस्व-स्वर गुरु है।

४.१० भुजङ्गप्रयात

जिसके प्रत्येक चरण में चार-चार यगण होते हैं, उसको 'भुजङ्गप्रयात' वर्ण-वृत्त कहते हैं। इसका उदाहरण —

य. य. य. य.
I S S I S S I S S I S S

लसण्णाण-विन्नाण-सन्नाण-मेहं,

कलाभिः कलाभिर्युतात्मीय देहम्।

मणुण्णं कला-केलि-रूवाणुगारं,

स्तुवे पार्श्वनाथं गुणश्रेणि-सारम् ॥^३

४.११ तोटक

जिस वर्ण-वृत्त के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं, उसे तोटक कहा जाता है। यथा —

१. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (६)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नानाविधश्लेषमयं श्री आदिनाथस्तोत्रम् (२)

३. वही, संस्कृतप्राकृतभाषामयं पार्श्वनाथलघुस्तवनम् (१)

स. स. स. स.
 1 1 5 1 1 5 1 1 5 1 1 5

प्रणमामि जिनं कमला सदनं, सदनंतगुणं कुलहारसमम् ।
 रस मंदमंदभसुधानयनं, नयनंदितवैश्वजनं शमिनम् ॥^१

४.१२ द्रुतविलम्बित

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः १ नगण, २. भगण और १ रगण होता है, उसे 'द्रुतविलम्बित' नामक वर्ण-वृत्त कहते हैं। निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है —

न. भ. भ. र.
 1 1 1 5 1 1 5 1 1 5 1 5

सतत-सज्जन-नन्दित-नव्यभं, नयधनं वरलब्धिधरं समम् ।
 रदननक्रमनश्चलन-प्रियं, नलिन-नव्यय-नष्ट-वनं कलम् ॥^२

४.१३ स्रग्विणी

यह वर्ण-वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार रगण होते हैं। विवेच्य साहित्य से स्रग्विणी का उदाहरण —

र. र. र. र.
 5 1 5 5 1 5 5 1 5 5 1 5

त्वां नुवे यस्य तं शंकरे मे मते, देवपादांबुजेशं करे मे मते ।
 मन्मनश्चंचरीकोपसंतापते, नाभिभूपांगभूः कोपसंतापते ॥^३

४.१४ वंशस्थ

यह बारह वर्णों का वार्णिक छन्द है। इसका व्यवहार संस्कृत काव्यों में अधिक मिलता है। इसमें जगण, तगण और रगण आते हैं। इसे 'वंशस्थविलम्ब' भी कहते हैं। इसका उदाहरण —

ज. त. ज. र.
 1 5 1 5 5 1 1 5 1 5 1 5 1 5

विनौति यो नो सकलानिकेतनं, कुले जिनं हंसकलानिकेतनम् ।
 सुखानि लेभे समहंस किन्नर-प्रणम्य पादं समहंसकिन्नर ॥^४

४.१५ वसन्ततिलका

जिस वर्ण-वृत्त में तगण, भगण, जगण, पुनः जगण, और अन्त में दो गुरु होते

१. वही, श्री पार्श्वनाथस्य शृंखलामयलघुस्तवनम् (१)
२. वही, श्रीपार्श्वनाथशृंगाटकबन्धस्तवनम् (३)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नानाविधश्लेषमयं श्रीआदिनाथस्तोत्रम् (१३)
४. वही, नानाविधश्लेषमयं श्रीआदिनाथस्तोत्रम् (१)

हैं, उसको वसन्ततिलका कहते हैं। काश्यप मुनि के मतानुसार इसका नाम 'सिंहोन्नता' और सैवत मुनि के मतानुसार 'उद्धर्षिणी' तथा पिंगल के मतानुसार 'मधुमाधवी' भी है। वसन्ततिलका का उदाहरण इस प्रकार है —

त. भ. ज. ज. गु.२
 ५ ५ । ५ ।। १ ५ । १ ५ । ५ ५
 वन्दामहे वरमतं कृत-सात-जातं,
 तं मानकान्तमनघं विपरौध कोपम् ।
 पद्यामलं परम-मंग-कराऽमदा कं,
 कष्टावली कलिवनद्विप-हीन-पापम् ॥^१

४.१६ मालिनी

यह वार्षिक वृत्त है। इसे कोई-कोई मात्रिक भी मानते हैं। इस छन्द के प्रत्येक पाद में दो नगण, एक मगण, पुनः दो यगण होते हैं। यथा —

न. न. म. य. य.
 । । । । । । । ५ ५ ५ । ५ ५ । ५ ५
 प्रथमजिनवरा संकल्पभावप्रमाणं,
 प्रकटभुवनकीर्त्तं कल्पभावप्रमाण ।
 प्रदलितरिपुवृन्दः सर्वदा तातमेशं,
 प्रथम मदतिमिश्रे सर्वदाता तमेश ॥^२

४.१७ मणिगुणनिकर

यह मणि-गुण नामक वार्षिक वृत्त का एक भेद है। मणि-गुण के प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। मणिगुणनिकर उसके आठवें वर्ण पर विराम करने से बनता है। समयसुन्दर ने इसका नाम 'गुणमणिनिकर' दिया है। उदाहरणार्थ —

न. न. न. न. स.
 । । । । । । । । । । । । । ५
 अशरण-शरण-मरण-भय-हरण, सुरपति-नरपति-शिवसुख-करण ।
 जय जिनवर भव-जलनिधि-तरण, गुणमणिनिकर-चरणमयधरण ॥^३
 विशेष - पादान्त-वर्ण गुरु है।

४.१८ हरिणी

जिस वर्ण-वृत्त में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु तथा एक गुरु

१. वही, श्री पार्श्वनाथहारबन्धचलच्छृखलागर्भितस्तोत्रम् (१)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नानाविधश्लेषमयं श्री आदिनाथस्तोत्रम् (४)
३. वही, श्रीवीतरागस्तव — छन्दजातिमयम् (१८)

हो, तो उसका नाम 'हरिणी' होता है। उदाहरण नीचे प्रस्तुत है —

न. स. म. र. स. ल.गु.

।।। ।।५ ५५५ ।।५ ।।५ ।५

तिमिर-निकर-ध्वंश-सूर्य भवोदधि-तारणम्।

हित-सुखकर-भव्य-प्राणि-व्रजा-सुख-वारणम्॥

तव सुवचनं पीयूषाभां करिष्यति नान्यथा।

नरकगतितो नश्येत् प्राणी यथा हरिणी हरेः॥^१

४.१९ शार्दूलविक्रीडित

इस वर्णवृत्त का प्रत्येक पद १९ अक्षरों का होता है। उनका क्रम इस प्रकार है—
मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, पुनः तगण और अन्त में एक गुरु। जैसे —

म. स. ज. स. त. त. गु.

५५५ ।।५ ।५। ।।५ ५५। ५५ ।५

आचार्यः शतशश्च संति शतशो, गच्छेषु नाम्ना परां,

त्वं त्वाचार्य पदार्थयुग युगवरः प्रौढः प्रतापाकरः।

भव्यानां भवसागरप्रतरणे, पोताय मानो भुवि,

श्री मच्छीजिनसागरः सुखकरः सर्वत्रशोभाकरः॥^२

४.२० स्रग्धरा

यदि मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण हों तथा तीन बार सात-सात अक्षरों पर यति हो, तो वह वार्षिक छन्द 'स्रग्धरा' कहलाता है। यथा —

म. र. भ. न. य. य. य.

५५५ ५।५ ५।। ।।। ।५५ ।५५ ।५५

ब्रह्माणं केपि देवं पुनरपि गिरिशं केपि नारायणं च।

केचिच्छक्तिस्वरूपं पुनरपि सुगतं केचि दल्लाभिधानम्॥

मुग्धाध्यायंत्यहं सद्गुणमपिजलधिं वीतरागं स्मरामि।

को वांछेत्काचमालां यदि मिलति माहकांचिनी स्रग्धरायां॥^३

विशेष — यहाँ प्रथम चरणान्त 'च' को गुरु माना गया है।

४.२१ आर्या

आर्या छन्द के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में चातुर्मात्रिक सात गण एवं अन्त में एक-एक गुरु वर्ण होता है। इस अर्द्धमात्रिक छन्द के पूर्वार्ध में ३० मात्राएँ एवं उत्तरार्ध में २७

१. वही, श्री वीतरागस्तव-छन्दजातिमयम् (१९)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री जिनसागरसूर्याष्टकम् (५)

३. वही, श्रीवीतरागस्तव — छन्दजातिमयम् (२१)

मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार पूरे छन्द में कुल ५७ मात्राएँ होती हैं। यथा —

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. गु.
 । । । । । ५ । । ५ ५ ५ ५ ५ । । । ५ । ५ ५ ५ ५

पणमिय पासजिणंद, साणंदं सयललोयणाणंदं। = ३० मात्रा

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. गु.
 ५ । । ५ । । ५ ५ । ५ । ५ । । । ५ ५ ५

श्रीजिणचंदमुणिंदं शुणामि भो भविय भावेण ॥^१ = २७ मात्रा

विशेष = १. आर्या छन्द के छठे गण में केवल एक लघुवर्ण ही होता है।

२. पादान्त-अक्षर 'गुरु' मान्य है।

४.२२ गाथा

यह प्राकृत-भाषा का छन्द है। इसमें ताल, स्वर आदि के नियमों का बन्धन नहीं होता है। जैसे —

दीसइ विविहं चरियं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण विसेसो।

अप्पाणं च कलिज्जइ, हिंङ्गिज्जइ तेण पुहवीए ॥^२

४.२३ चङ्ग

इस मात्रिक-वृत्त के प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। वस्तुतः गलात्मक (५।) अन्तवाली 'लीला' के अन्तिम लघु को गुरु कर देने से यह छन्द बनता है। उदाहरण इस प्रकार है —

५ । । । । ५ । ५ ५ = १३ मात्रा

वीस विहरमान गाया, परमानन्द सुख पाया।

जीभ पवित्र पिण कीधी, मिश्री दूधस्यु पीधी ॥^३

४.२४ चौपाई

इसमें १५ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में ५। अनिवार्य है। जैसे —

। । । ५ ५ ५ । । ५ ५ । = १५ मात्रा

नयणां दीठां नित आणंद, सेवंतां सुरतरु ना कंद।

लहियइ लक्ष्मी लील विलास, सहसफणा चिंतामणि पास ॥^४

४.२५ पद्धति

इसमें १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में जगण रखने का विधान है। उदाहरणतः

१. वही, यु० जिनचन्द्रसूरि गीतम् (१)

२. प्रियमेलकतीर्थप्रबन्धे सिंहलसुत-चौपाई (३.१)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, विहरमान-वीसी-स्तवनाः, कलश (१)

४. वही, श्रीलौद्रवपुर सहसफणा पार्श्वनाथ स्तवनम् (६)

इह वीस जिनवर भुवन दिनकर, विहरमान जिनेसरा ।
नियनाम माय सुताय लांछन, सहित हित परमेसरा ॥
जिनचंद्रसूरि विनेय पण्डित, सकलचन्द महामुणी ।
तसु सीस वाचक समयसुन्दर, संथुण्या त्रिभुवन धणी ॥^२

४.३० गीता

इसमें १४ वीं, १६ वीं मात्रा पर विराम के साथ २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में ।
S या रगण (S।S) रहता है। उदाहरणार्थ —

१६ १२ र. = २८ मात्रा
।।S।S।।S। S S; ।।S S S S।S
सिरिवंत साहि सुतत्र माता सिरिया देवी नंदणो ।
वइरागि लहुवय लिद्ध संजम, भविय जण आणंदणो ।
शुभ भाव समकित, ध्यान समरण, पंच श्री परमिट्टओ ।
सो गुरु श्री जिनचंदसूरि, धन्न नयणे दिट्टओ ।^२

४.३१ मरहट्टा माधवी

इस वृत्त में १६-१३ पर विश्राम के साथ २९ मात्राएँ होती हैं। अन्त में ।S रहता
है। इसका निर्माण चौपाई और उल्लाला के चरणों के मेल से होता है। इस वृत्त का
उदाहरण इस प्रकार है —

१६ १३ ल० गु०
S ।।S ।।S ।।S ।।; S ।S S ।S ।S = २९ मात्रा
सोवनकार करी अतिवेदन, वाघ्र सुं वीट्युं सीस जी ।
मेतारज मुनि मुगते पहुँता, उपशम एह जगीश जी ॥
कुरुड़ अकुरुड़ बे साधु कहाता, रह्या कुणाला खाल जी ।
क्रोध करी कुगते ते पहुँता, जन्म गमायो आल जी ॥^३

४.३२ दोहा

दोहे के विषम चरणों में १३-१३ और सम में ११-११ मात्राएँ होती हैं। अन्त
में S। रहता है। यथा —

थण मुखि श्याम पणो थयो, गुरु नितंब गति मंद ।
नयन सनेहाला थया, मुखि अमृत रस विंद ॥^४

१. वही, वीस विहरमान जिनस्तवनम् (कलश, २३)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, यु० जिनचन्द्रसूरि गीतम् (४)
३. वही, क्षमा-छत्तीसी (६-७)
४. सीताराम-चौपाई (८.४, दूहा २)

४.३३ सोरठा

सोरठे के विषम चरणों में ११-११ और सम में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। दोहे का उल्टा सोरठा है। अतः इसमें तुक-योजना विषम चरणों में होती है। यथा —

विषम ११

सम १३

।। ५५ ५५।; ।।५ ५५ ५।।।

अति मीठा आहार, सखरा देज्यो साधनइ।

सुख लहिस्युं श्रीकार, फल बीजां सरिखा फलइ॥^१

सोरठा के सम चरण बेतुके भी रहते हैं। यथा —

क्रीड़ा कारण कुमार, इण अवसर वनि आवियउ।

पूठीं बहु परिवार, खेलण लागण खांति सुं॥^२

४.३४ मिश्र

सम और अर्द्धसम के मेल से गठित छन्दों को मिश्र छन्द कहते हैं। जैसे —

श्री गौतम गुरु पय नमी, गाउ श्री गच्छराज।

श्री जिनसिंघसूरीसरु, पूरवइ वंछित काज॥

पूरवइ वंछित काज सहगुरु, सोभागी गुण सोह ए।

मुनिराय मोहन वेलिनी परि, भविक जन-जन सोह ए॥

चारित्र पात्र कठोर किरिया, धरम कारिज उद्यमी।

गुरुराज ना गुण गाइस्यु जी, श्री गौतम गुरु पय नमी॥^३

यहाँ प्रथम दो पंक्तियाँ दोहे की और शेष चार हरिगीतिका की हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि महाकवि समयसुन्दर ने काव्य-निर्माण के लिए विभिन्न छन्दों को अपनाया है। संख्या विशेष की दृष्टि से कवि ने सर्वाधिक रूप से अनुष्टुप, दोहा आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

५. रागें तथा देशी

५.१ राग

‘राग’ भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य है। राग वह रंजक धुन है, जिसमें स्वर संवाद-सम्बन्ध से परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। श्रोताओं को रंजित करने में राग प्रमुख है। कवि समयसुन्दर ने अपनी रचनाओं को लोक-रञ्जक बनाने के लिए विविध रागों में रचना की। लोक-गीतों की अपेक्षा शास्त्रीय रागों में रचना करना कुछ कठिन सा होता है, लेकिन समयसुन्दर को सभी शास्त्रीय रागों का अपेक्षित ज्ञान था। ‘जिनचन्द्रसूरि गीतम्’

१. प्रियमेलक सिंहलसुत-चौपाई (१.४)

२. प्रियमेलक सिंहलसुत-चौपाई, (ढाल २ से पूर्व सोरठा, १)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जिनसिंहसूरिगीतानि (१)

में गुरु-वर्णन करते हुए उन्होंने शास्त्रीय संगीत की छः राग और छतीस रागिनियों का नामोल्लेख किया है। 'चन्द्रप्रभ जिन स्तवनम्' में उन्होंने भगवान् चन्द्रप्रभ की स्तुति करते हुए द्वयर्थक रूपों में चवालीस रागों के नाम प्रयुक्त किये हैं। एक ऐसा भी स्तवन प्राप्त होता है, जो सतरह रागों में गुम्फित है। उस स्तवन का नाम है, 'श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम्।'

कवि ने अपने साहित्य में अनेक रागों का प्रयोग किया है, जिनमें आशावरी, केदार, गौड़ी, धन्याश्री, सारंग, मल्हार आदि प्रमुख हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, केदार राग में निर्मित एक गीत —

प्रभु तेरे गुण अनन्त अपार।

सहस रसना करत सुरगुरु, कहत न आवे पार ॥

कोण अम्बर गिणै तारा, मेरु गिरी को भार।

चरम सागर लहरि माला, करत कोण विचार ॥

भगति गुण लवलेश भाखुं, सुविध जिन सुखकार।

समयसुन्दर कहइ हमकुं, स्वामी तुम आधार ॥^१

समयसुन्दर के इन गेय पदों में सूरदास तथा तुलसीदास की पद-शैलियों का रस प्राप्त किया जा सकता है। अधिक विस्तार में न जाते हुए यहाँ केवल उनके काव्य में प्रयुक्त रागों का नामोल्लेख किया जा रहा है। साथ ही जिन रचनाओं में वे रागें प्रयुक्त हुई हैं, उनका भी निर्देश किया जा रहा है —

५.१.१ अडाणउ कनड़उ—ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति जिन गीतम् (२०)।

५.१.२ अधरस—अगगपुत्त जिन गीतम्; भावना गीतम्।

५.१.३ आसावरी—सीताराम-चौपाई (१.७); नलदवदंती-रास (३.१ : ६.३); सिंहलसुत्त-चौपाई (४); शत्रुञ्जय रास (२); वही (४); शांब-प्रद्युम्न चौपाई (१६) नेमिनाथ गीतम्; अंत समये जीव-निर्जरा गीतम्; अठारह पाप स्थानक परिहार गीतम्; चौरासी लक्ष जीवयोनि-क्षामणा गीतम्; मनोरथ गीतम्; अध्यात्म सञ्ज्ञाय; साधुगुण गीतम्; स्वार्थ गीतम्; मरण-भय-निवारण गीतम्; घड़ी लाखीणी गीतम्; जीव प्रतिबोध गीतम्; श्री जिनराजसूरि गीतानि (२); श्री जिनचन्द्रसूरिस्तवन; भट्टारकत्रय गीतम्; गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम्; श्री जैसलमेर मंडन पार्श्वजिन स्तवनम्; श्री नेमिनाथ गूढा गीतम्; श्री नेमिनाथ गीतम्; विहरमान-वीसी-स्तवना: (३); चौबीसी (२१,१५)

५.१.४ आसावरी सिंधुडो—सीताराम-चौपाई (२.३); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.८); शत्रुञ्जय रास (४); चार शरणा गीतम्; शुद्ध श्रावक दुष्कर मिलन गीतम्;

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, चौबीसी, सुविधि जिन स्तवन (१-३)

जीव प्रतिबोध गीतम्; श्री जिनचन्द्रसूरि गीतम्।

५.१.५ कङ्खा—सीमंधर स्वामी गीतम्।

५.१.६ कनडउ अडाणउ—नावी गीतम्।

५.१.७ कल्याण—जिनसिंहसूरि गीतानि (२५); श्री श्रेणिक-विज्ञप्ति-गर्भितं श्री महावीर गीतम्; तारंगा पार्श्वनाथ स्तवनम्;; श्री लोद्रवपुर सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवन; जैसलमेर मंडन पार्श्वजिन स्तवनम् (१६); विहरमान-वीसी-स्तवना: (८)।

५.१.८ कांनडउ—नल-दवदंती रास (२.४); सुमति जिन स्तवन; श्री जैसलमेरमण्डण पार्श्वजिन स्तवन (७); श्री अइमत्ता ऋषि गीतम्; श्री जिनराज सूरि गीतानि (१)।

५.१.९ काफी— श्री तिमरीपुर पार्श्वनाथ गीतम्.; श्री बीबीपुर-मण्डन चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन; श्री कंसारी-त्रंवावती-मंडन भीड़भंजन पार्श्वनाथभास (३); चौबीसी (३)।

५.१.१० काफी—अठताला-ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१०)।

५.१.११ काफी-धन्याश्री—वल्लकलीचीरी रास (४)।

५.१.१२ कालहरउ—क्षुल्लककुमार रास(२); शांब-पद्युम्र चौपाई (६); तप गीतम्; आत्मप्रमोद गीतम्; श्री बाहुबलि गीतम्।

५.१.१३ केदारो—गौड़ी—सीताराम-चौपाई (८.६); पुण्यसार-रास (२,६); नलदवदंती-रास (६,१); मान-निवारण गीतम्; काया-जीव गीतम्; स्थूलिभद्र गीतम्, श्री नेमिनाथ गीतम्; शनुञ्जयमण्डन युगादि देव गीतम्; ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (२१); शांब-प्रद्युम्र चौपाई (१,११); चार प्रत्येकबुद्ध चौपाई (१.४); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.३, १.९)।

५.१.१४ केदारो—नलदवदन्ती-रास (१.५,५.५); चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.७); मृगावतीचरित्र चौपाई (१.२,३.६); विषयनिवारण गीतम्, क्रोध निवारण गीतम्; जिनसिंहसूरि गीतानि (२६); सामान्य जिन विज्ञप्ति गीतम्; जिनप्रतिमा-पूजा गीतम्; श्री अजाहरा पार्श्वनाथ भास; जैसलमेरुमण्डण पार्श्वजिन स्तवनम् (१२); श्री नेमिनाथ गीतम्; श्री शान्तिनाथ गीतम्; विहरमान वीसी स्तवना: (१८); ऐखत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (८); चौबीसी (९,१०)।

५.१.१५ खम्भायति— जैसलमेर-मण्डन पार्श्वजिनस्तवनम् (१५); पुण्यसार रास (७); शांब-प्रद्युम्र चौपाई (१५); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.६)।

५.१.१६ खेलानी—सीताराम-चौपाई (६.५)।

५.१.१७ गुण्ड—विहरमान वीसी स्तवना: (५); अर्बुदाचल-मण्डन-युगादिदेव गीतम्;

- जिनसागरसूरि गीतानि (५); श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवनम्; जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम् (९); शांब-प्रद्युम्न चौपाई (३,१४)।
- ५.१.१८ गुण्ड-मल्हार—श्री सामान्य जिन गीतम्।
- ५.१.१९ गुण्ड मिश्र—पारकी होड निवारण गीतम्।
- ५.१.२० गूजरी—दान-शील तप-भावना गूढा गीतम्; उद्यम-भाग्य गीतम्; श्री सौरीपुर मण्डन नेमिनाथ भास; चौबीसी (२२)।
- ५.१.२१ गौड़ी—शांब-प्रद्युम्न चौपाई (५,८); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.१,२.२,४.८); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.११,३.४); नलदवदन्ती रास (२.५,४.३,५.३,६.४); सीताराम-चौपाई (१.६,३.४,४.४); पुण्यसार रास (११,१४); वल्कलचीरी रास (३); क्षुल्लककुमार रास (१); धनदत्त चौपाई (६); जीव प्रतिबोध गीतम्; जिनसिंहसूरि गीतानि (२७); ज्ञान पंचमी वृहत्स्तवन (कलश); गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम् (२.३); जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम् (११); सीमन्धर जिन गीतम् (२); विरहमान-वीसी-स्तवनाः (२,९,१६); ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (२२); चौबीसी (२)।
- ५.१.२२ गौड़ी-केदारो—वासुपूज्य जिन स्तवन।
- ५.१.२३ जइतसिरी—पुण्यसार रास (१३); श्री गिरनार मण्डन नेमिनाथ गीतम्; विमल जिन स्तवन; शांब-प्रद्युम्न चौपाई (७); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.४)।
- ५.१.२४ जइतसिरी-धन्नासिरी—श्री स्थुलिभद्र गीतम्; दादा श्री जिनकुशलसूरि गीतम्।
- ५.१.२५ जत्तिनी—सीताराम-चौपाई (२.२)।
- ५.१.२६ जांगण्डा-नी—सीताराम-चौपाई (६.४)।
- ५.१.२७ तौड़ी—हुंकार-परिहार गीतम्; श्रीजिनसागरसूरि गीतानि (६); विमलाचल मण्डन आदि जिन स्तवन; ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१८); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.९); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.३)।
- ५.१.२८ देशाख—श्री शीतल जिन गीतम्; श्री नेमिनाथ गीतम्; श्री जैसलमेर-मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम् (२)।
- ५.१.२९ देवगंधार—जीव-व्यापारी गीतम्; चौबीसी (२३)।
- ५.१.३० धन्याश्री—सिंहलसुत चौपाई (११); द्रौपदी चौपाई (३.६); वल्कलचीरी रास (१०); पुण्यसार चौपाई (१५); चम्पकश्रेष्ठि चौपाई (२.८); धनदत्त चौपाई (९); शत्रुञ्जय रास (६); शांब-प्रद्युम्न चौपाई (१३); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.१०,२.८); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.१०,२.१३,३.९,३.१२); केशीप्रदेशी प्रबन्ध (४); रात्री जागी गीतम्; श्री संघ गुण गीतम्, श्री जिनसागरसूरि गीतानि (७); श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (२९); श्री ननोल

- पार्श्वनाथ भास; श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवनम् (३); श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवन (१७); गणधर वसही आदि जिन स्तवन (१२); विहरमान वीसी स्तवनाः (कलश); वारिसेण जिन गीतम् (कलश); चौबीसी (कलश)।
- ५.१.३१ धमाल—श्री सिकन्दरपुर चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवनम्।
- ५.१.३२ नट्ट नारायण—कर्म गीतम्; सर्वभेषमुक्तिगमन गीतम्; जीव नटावा गीतम्; श्री जिनराजसूरि गीतानि (४); चौबीसी (१८); श्री भोड़िया ग्राम मण्डन वीर जिन गीतम्; गुर्वावली गीतम्; श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (२३)।
- ५.१.३३ परजीयउ—चौबीसी (२४); श्री ऋषभदेव हुलरामणा गीतम्; श्री नेमिनाथ गीतम्; श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्।
- ५.१.३४ परदउ— श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम् (१३)।
- ५.१.३५ पंचम—श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (३०)।
- ५.१.३६ पूरवी— श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (६); श्री सामान्य जिन स्तवनम्।
- ५.१.३७ प्रभाती—श्री जिनसागरसूरि गीतानि (१५); श्री जिनसिंहसूरि—तिथिविचार गीतम्; श्री गौतमस्वामी गीतम् (३); श्री अनागत चौबीसी स्तवन; श्री अतीत चौबीसी स्तवन; विहरमान बीसी स्तवनाः (६); श्री फलवर्द्धि पार्श्वनाथ स्तवनम्; पंच परमेष्ठी गीतम्।
- ५.१.३८ प्रोहितियारी—सीताराम—चौपाई (६.६)।
- ५.१.३९ बंगालु—सीताराम—चौपाई (७.४); वल्कलचीरी रास (९); मृगावती चरित्र चौपाई (२.१०,३.८)।
- ५.१.४० भूपाल— सीताराम—चौपाई (१.१); चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.४); मुलताण मण्डन जिनदत्तसूरि—जिनकुशलसूरि गीत; जीव—कर्मसम्बन्ध गीतम्; सन्देह गीतम्; दुषमाकाले संयम पालन गीतम्; जीवदया गीतम्; वीतराग सत्यवचन गीतम्; श्री जिनसागरसूरि गीतानि (४); श्री शालिभद्र गीतम्; श्री अरिहंत पद स्तवनम्; श्री आदित्ययश आदि ८ साधु गीतम्।
- ५.१.४१ भूपाल—अठतालउ—ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१३)।
- ५.१.४२ भैरव— कुन्थु जिन स्तवनः श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवनम् (४); श्री भामा पार्श्वनाथ स्तवनम् (२); श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ भास, श्री शामला पार्श्वनाथ गीतम्; अन्तरंग विचार गीतम्; क्रिया—प्रेरणा गीतम्; पठन—प्रेरणा गीतम्; सूता जागरण गीतम्; श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (२१); श्री जिन कुशलसूरि गीतम्।
- ५.१.४३ म्लहार— मृगावती चरित्र चौपाई (१.१२); सीताराम—चौपाई (१.६,२.८,६.७), पुण्यसार रास (५,९,१२); पाटणमण्डन श्रीजिनकुशलसूरि गीतम्; श्री इलापुत्र

गीतम् ।

- ५.१.४४ मल्हार-मिश्र—श्री शंखेश्वर पार्श्वजिन स्तवन ।
- ५.१.४५ मारवणी— पुण्यसार रास (१०) ।
- ५.१.४६ मारुणी-धन्याश्री—शांब-प्रद्युम्न चौपाई (४); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१); विमलजिन स्तवन; श्री शत्रुंजय तीर्थ भास; श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१३) ।
- ५.१.४७ मारु—पुण्यसार रास (४); जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवन (१०); चौबीसी (१) ।
- ५.१.४८ मारुणी—नलदवदन्ती रास (२.२); मृगावती-चरित्र चौपाई (२.७); चौबीसी (१.६); ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (११,१५); विहरमान बीसी स्तवना: (१,१३,१४,१९); सीमंधर जिन स्तवन; नेमिनाथ गीतम्; नेमिनाथ गीतम्; नेमिनाथ गीतम्; (ये सभी पृथक-पृथक गीत हैं); श्री कंसारी-त्रम्बावती मण्डन भीड़भंजन पार्श्वनाथ भास; श्री सामान्य जिन आंगी गीतम्; श्री रामचन्द्र गीतम्; अजयमेरु मण्डन जिनदत्तसूरि गीतम्; जीव प्रतिबोध गीतम्; अमरसर मण्डन श्री जिनकुशलसूरि गीतम् ।
- ५.१.४९ मालवी गौड़ी— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.९); जिनसिंहसूरि गीतानि (२४); अष्टापद मण्डन शान्तिनाथ गीतम्; ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि; चौबीसी (४) ।
- ५.१.५० मिश्र—घड़ियाली गीतम्; हीयाली गीतम् ।
- ५.१.५१ मुलतानी— धन्याश्री—श्री नेमिनाथ गीतम् ।
- ५.१.५२ मेवाड़उ— श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१) ।
- ५.१.५३ रामगिरि—सीताराम-चौपाई (३.१); सिंहलसुत चौपाई (१); वल्कलचौरी रास (१); पुण्यसार रास (१); शत्रुञ्जय रास (१); दान गीतम्; यति लोभ-निवारण गीतम्; श्री जिनसिंहसूरि गीतानि; श्री राजुल-रथनेमि गीतम्; श्री दशार्णभद्र गीतम्; चौबीसी (८,२०); श्री नेमिनाथ गीतम्; नेमिनाथ गीतम्; श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवनम् (१); मृगावती चरित्र चौपाई (२.१,३.११); शांब-प्रद्युम्न चौपाई (२); चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.५) ।
- ५.१.५४ ललित—श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (८); चौबीसी (११); विहरमान वीसी स्तवना: (१२) ।
- ५.१.५५ वसं त— दादा श्री जिनकुशलसुरि गीत; ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१२); विहरमान वीसी स्तवना: (११); चन्द्रवारि मण्डन श्री चन्द्रप्रभ भास; नेमिनाथ फाग; श्री जैसलमेर मण्डन पार्श्वजिन स्तवन (४); श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ गीतम् ।

- ५.१.५६ विहागड्ड— ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (२४) ।
- ५.१.५७ विहागड्ड—केदारउ— ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१६) ।
- ५.१.५८ वेलाउल— पुण्यसार रास (८); चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.१); चौबीसी (६); ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (१४,१७); श्री भड्कुल पार्श्वनाथ गीतम्; एकादश गणधर गीतम्; जग-सृष्टिकार परमेश्वर गीतम्; व्रत पच्चक्खाण गीतम् ।
- ५.१.५९ वैराडी—श्री जैसलमेर मंडन पार्श्वनाथ गीतम् (५); श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१५); परमेश्वर स्वरूप दुर्लभ गीतम्; निरंजन ध्यान गीतम्; सिंहलसुत चौपाई (६); शत्रुञ्जय रास (५); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.१) ।
- ५.१.६० शुद्ध नट—ऐरवत क्षेत्र चतुर्विंशति गीतानि (९); विहरमान वीसी स्तवना: (१५); श्री जिनसागरसूरि गीतानि (२) ।
- ५.१.६१ श्रीराग— चौबीसी (७); विहरमान वीसी स्तवना: (१७); श्री आदिदेव चन्द्र गीतम्; श्री जैसलमेर पार्श्वजिन स्तवनम् (६); श्री गौड़ी पार्श्वनाथ गीतम्; श्री महावीर गीतम्; जिनराजसूरि गीतानि (१) ।
- ५.१.६२ संघवीरी— सीताराम—चौपाई (६.६) ।
- ५.१.६३ सबाब— विहरमान वीसी स्तवना: (१७); श्री कंसारी—त्रंबावती मंडन भीड़भंजन पार्श्वनाथ भास (२); निंदा परिहार गीतम् ।
- ५.१.६४ सबाब मिश्र—श्री परमेश्वर भेद गीतम्;
- ५.१.६५ सारंग—चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.६); सीताराम—चौपाई (१.१); जिनकुशलसूरि गीतम्; कामिनी—विश्वास—निराकरण गीतम्; श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (२२); श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (५); श्री स्थूलिभद्रगीतम्; श्री पयुर्षण पर्व गीतम्; श्री सुरियाभसुर नाटक—दर्शन महावीर गीतम्; श्री वरकाणा पार्श्वनाथ स्तवनम्; श्री अमीझरा पार्श्वनाथ गीतम्; श्री जैसलमेर मंडन पार्श्वजिन स्तवनम्; श्री नडुलाई मंडण नेमिनाथ भास; चौबीसी (१४) ।
- ५.१.६६ सारंग—मल्हार—चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.५); मृगावती—चरित्र चौपाई (३.१) ।
- ५.१.६७ सूघडउ—विहरमान—वीसी—स्तवना: (१०); श्री नेमिनाथ गीतम् ।
- ५.१.६८ सूहब—श्री जैसलमेर मंडन पार्श्वजिन स्तवनम् (१४); मृगावती—चरित्र चौपाई (२.३) ।
- ५.१.६९ सोरठं—चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.६); मृगावती—चरित्र चौपाई (१.१३,२.९); श्री पार्श्वनाथ अनेक तीर्थ नाम स्तवन: हितशिक्षा गीतम् ।
- ५.१.७० हमीर—कल्याण—जिनसागरसूरि गीतानि (३) ।

५.२ देशी

समयसुन्दर ने 'मार्गी' अर्थात् शास्त्रीय रागों के अतिरिक्त जिनके आधार पर

गेय-रचना की, उनके लिए लोकगीत, देशी, जाति आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ये जनसाधारण के बीच गाये जाने वाले वे गीत हैं, जो परम्परा से किसी जन-समाज में प्रचलित तथा लय-प्रधान हैं। यद्यपि मार्गी और देशी-दोनों का स्रोत लोक-संगीत है, अन्तर केवल यही है कि प्रथम को संस्कारित होने के कारण उच्च श्रेणी में स्थान मिला और द्वितीय लोक-रुचि के अनुकूल विकसित होने के कारण जनसाधारण में लोकप्रिय हुई। प्रथम में अनुशासन नियमों का था, दूसरे में लोक-रुचि का। इस तरह मार्ग संगीत को राजतन्त्र का प्रतिनिधि मानें, तो देशी को लोकतन्त्र का प्रतिनिधि माना जा सकता है।

समयसुन्दर ने गेय-रचनाओं में मार्ग अर्थात् शास्त्रीय रागों को तो प्रयुक्त किया ही है, साथ ही साथ 'देशी' का भी प्रयोग किया है। वस्तुतः स्थानीय विशेषताओं को आत्मसात् करने के कारण ही वे देशी कहलाती हैं। कवि ने मारवाड़, गुजरात, मेड़ता, मालवी, नागौर, सिन्ध, ढूँढ़ाड आदि विभिन्न प्रदेशों की भिन्न-भिन्न देशियों को व्यवहृत किया है। उन्होंने जिन देशियों को प्रयुक्त किया, उनके उदाहरण विस्तार-भय से नहीं दिये जा रहे हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त देशियों का विवरण इस प्रकार है —

५.२.१ अतिरङ्ग भीने हो रंग भीने।

— नलदवदन्ती-रास (५.५)

५.२.२ अपणै सौदागरउ कुं हूँ चलण न देस्युं।

— नलदवदन्ती-रास (१.५)

५.२.३ अब तुम आवो हो सिमन्धर साम्भलो।

— चार प्रत्येकबुद्ध रास (४.६)

५.२.४ अमां म्हांकी चित्रालंकी जोइ, अमां म्हाकी मारुड़इ मारुड़इ मइवासि को साद सुहामणो रे लो।

— सीताराम-चौपाई (९.१)

५.२.५ अम्मां मोरी मोहि परणावि हे अम्मां मोरी जेसलमेरां जादवां हे।

— सीताराम-चौपाई (८.७)

५.२.६ अम्हनइ अम्हारइ प्रियु गमइ, काजी महमद ना।

— सीताराम-चौपाई (३.१)

५.२.७ अरघ मण्डित नारी नागिला।

— श्री खन्दक-शिष्य गीतम्

५.२.८ अलबेला।

— सिंहलसुत चौपाई (५); गणधरवसही आदिजिन स्तवन (२)

५.२.९ आंबो मोह्यो रे जिन तणो रयण के तारे माइ झलमला।

— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१६); सीताराम-चौपाई (७.७)

- ५.२.१० आख्यान-नी। राजा राज करइ जय नामे।
— द्रौपदी-चौपाई (२.९)
- ५.२.११ आज धराहूँ धुंधलउ।
— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.३)
- ५.२.१२ आदर जीव क्षमा गुण।
— पुण्यसार रास (११)
- ५.२.१३ आवउ जुहारो रे अझारउ पास।
— सीताराम-चौपाई (५.१)
- ५.२.१४ आवउ रे सहियर सवि मिली जी।
— जिनसागरसूरि-गीतानि (८)
- ५.२.१५ आव्यउ तिहां नरहर।
— सत्रह प्रकार जीव अल्प-बहुत्व गर्भित स्तवनम् (२)
- ५.२.१६ आहे पोस पढम पखि दसमी निसि जिण जायउ।
— उपधानतप स्तवनम् (२)
- ५.२.१७ इक दिन महाजन आवे ए।
— क्षुल्लकऋषि-रास (१); नलदवदन्ती-रास (२.५)
- ५.२.१८ इडर आंबा आंबिली।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.६)
- ५.२.१९ इडरगढ नी।
— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.७)
- ५.२.२० इणइ गामडि वाडी वलि, के आम्बा रावला रे।
— मृगावती-चौपाई (३.३)
- ५.२.२१ इम सुणि दूत वचन कोपियउ राजा मन्न।
— सीताराम-चौपाई (५.६); वल्कलचीरी-रास(९)
- ५.२.२२ इडरियै-र उलगाणइ आबू उलग्यउ आ।
— सीताराम-चौपाई (३.६)
- ५.२.२३ उपशम तरु छाया रस लीजइ।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (४.२); युगमंधर जिन गीतम्.
- ५.२.२४ उमटि आइ बदली।
— चम्पकश्रेष्ठि चौपाई (२.३)
- ५.२.२५ उमटि आई मारु बादली म्हांका ढोलणा वरसाण लागउ मेह।
— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.६)

- ५.२.२६ ऊलालानी ।
— सीताराम-चौपाई (५.७); पुण्यसार-रास(८)
- ५.२.२७ ऋषभदेव मोरा हो ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.२)
- ५.२.२८ ऋषभ प्रभु पुजीयई ।
— शत्रुञ्जय-रास (६)
- ५.२.२९ एउ-एउ चन्द्रानन जिणचंद नमो ।
— विहरमान वीसी स्तवना: (७)
- ५.२.३० एक दिन नमि राजा नउ हाथी छूटउ अति मदमस्त थकउ ।
— नलदवदन्ती-रास (६.७)
- ५.२.३१ एक दिवस कोइ मागध आयउ पुरदंर पासि ।
— नलदवदन्ती-रास (६.१)
- ५.२.३२ एक पुरुष सामल सुकलीणउ ।
— उपधानतप-स्तवन
- ५.२.३३ एक लहरि ल्यइ गोरत्या रे ।
— नलदवदन्ती-रास (६.६)
- ५.२.३४ ओलगडी ।
— सीताराम-चौपाई (२.६); मृगावतीचरित्र चौपाई(१.१२)
गणधरवसही आदि जिन स्तवन (३)
- ५.२.३५ कइयइ पूजि पधारिस्स्य ।
— सीताराम-चौपाई (२.१)
- ५.२.३६ कइयइ मिलस्यइ मुनिवर एहवा ।
— शुद्ध श्रावक दुष्कर मिलन गीतम्
- ५.२.३७ कनइउ, ठमकि ठमकि पाय पावरी बजाइ,
गजगति बांह लुडावइ रंग भीनी ग्वालणि आवइ ।
— वल्कलचीरी-रास (७)
- ५.२.३८ कपूर हुवई अति ऊजलुं रे ।
— पुण्यसार रास (६); सीताराम-चौपाई(४.७); दान-शील-
तप-भावना-संवाद शतक (४); साधु-वन्दना रास(१०),
शांब-प्रद्युम्न चौपाई (१०); जीव-प्रतिबोध गीतम्,
श्री शालिभद्र गीतम्.

- ५.२.३९ कबहि मिलइ मुझ जउ करतारा ।
— द्रौपदी-चौपाई (२.११)
- ५.२.४० करइ चितारइ निन्दा आपणी जी ।
— नलदवदन्ती-रास (४.४)
- ५.२.४१ कर जोड़ी आगल रही ।
— गणधरवसही आदिजिन स्तवन (११); चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.१)
- ५.२.४२ करम परीक्षा करण कुमर चाल्यो ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (९)
- ५.२.४३ कलाला-नी ।
— द्रौपदी-चौपाई (३.२)
- ५.२.४४ कहिज्यो पण्डित एह हीयाली ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१३)
- ५.२.४५ काची कली अनार की रे हां सूयड़ा रह्या लोभाय मेरे ढोलणा ।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.४); श्री अरहन्नक मुनि गीतम्
- ५.२.४६ काछिवा ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.१३)
- ५.२.४७ कान्हा तुं चउगो मादू रे ।
— द्रौपदी-चौपाई (२.७)
- ५.२.४८ कामणगारा रे लोक ।
— शाम्ब-प्रद्युम्न-चौपाई (२.३)
- ५.२.४९ कारिण कुण समारइ देहा ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.३)
- ५.२.५० किहां गयउ नल किहां गयउ ।
— श्री राजुल-रहनेमि गीतम्
- ५.२.५१ कुमर पुरन्दर चलयउ आगइ आगइ अति आणंद हीयइ धरतउ ।
— नलदवदन्ती-रास (६.७)
- ५.२.५२ कुमरी जाण्यउ कारिज सीधु, तात बिना पणि दहव कोधउ ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.७)
- ५.२.५३ कुमरी बोलावइ कूबडउ ।
— धनदत्त-चौपाई (३); थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.१०)
- ५.२.५४ कृपानाथ लइ कूपनउ सधर्यउ री ।
— विहरमान वीसी स्तवना: (८)

- ५.२.५५ कृपानाथ मुझ वीनति अवधार।
— साधु-वन्दना-रास (६)
- ५.२.५६ केकड़ राणी वर मांगै।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.७); थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.२)
- ५.२.५७ कोइ पूछो बाँझण जोसी रे, हरि को मिलण कद होसी रे।
— सीताराम-चौपाई (८.५)
- ५.२.५८ कोइलउ परवत धूंधलो रे लाल।
— नलदवदन्ती-रास (३.२)
- ५.२.५९ खेलानी।
— द्रौपदी-चौपाई (२.४)
- ५.२.६० गंगा मीणा रा थारी मिरगली।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१)
- ५.२.६१ गजरा-नी
— श्री गजसुकुमाल मुनि गीतम्
- ५.२.६२ गडइ मेवाड़ लोडियउ रे लाल।
— नलदवदन्ती-रास (३.२)
- ५.२.६३ गलियारे साजण मित्या रे।
— सीताराम-चौपाई (९.२); श्री करकण्डु प्रत्येकबुद्ध गीतम्;
गणधरवसही आदि जिन स्तवन (१)
- ५.२.६४ गिरधर आवेगो।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (४.३); नलदवदन्ती-रास (१.४)
चम्पकश्रेष्ठि चौपाई (१.१२)
- ५.२.६५ गुजराती पूलड़ाँ।
— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (११)
- ५.२.६६ गुजराती सहलेड़ी नी।
— श्री शान्तिनाथ हुलरामणा गीतम्
- ५.२.६७ गुण वेलड़ी-नी।
— श्री शान्तिनाथ हुलरामणा गीतम्
- ५.२.६८ गुरुजी ने वधामण्डुं।
— सांझी गीतम्
- ५.२.६९ गौड़ी मंडन पास।
— श्री ज्ञानपंचमी वृहत् स्तवनम्

- ५.२.७० गौतम स्वामी समोसर्था ।
— द्रौपदी-चौपाई (१.१)
- ५.२.७१ घड़ी घड़ी रुसणउ ।
— नलदवदन्ती-रास (२.३)
- ५.२.७२ घरि आव रे मनमोहन घोटा ।
— सीताराम-चौपाई (१,११)
- ५.२.७३ चंद नगरी दीपती जी ।
— शांब-प्रद्युम्न चौपाई (१.१०)
- ५.२.७४ चंदायणा नीपज दूहे दूहे ।
— सीताराम-चौपाई
- ५.२.७५ चंद्रप्रभ भेट्यउ रे मइं चंदवारि ।
— विहरमान वीसी स्तवना: (११)
- ५.२.७६ चंद्राउला-नी
— नलदवदन्ती रास (२.१); श्री जिनचन्द्रसूरि चन्द्राउला गीतम्
- ५.२.७७ चउवीसमउ जिणराय रंगे पणमिय ।
— उपधानतप स्तवनम्
- ५.२.७८ चढ्यउ रण जूझिवा चंडप्रद्योत नृप ।
— सीताराम-चौपाई (६.१)
- ५.२.७९ चतुर सनेही रे मेरे लाल ।
— नलदवदन्ती-रास (६.८)
- ५.२.८० चरण करण घर मुनिवर वंदियइ ए ।
— गौतम-पृच्छा चौपाई (४); क्षुल्लक ऋषि रास (४); चम्पकश्रेष्ठि
चौपाई (१.२); शाम्ब-प्रद्युम्न चौपाई (२०); द्रौपदी-चौपाई (२.१०)
- ५.२.८१ चरणाली चामुंडा रणि चढइ ।
— द्रौपदी-चौपाई (२.५); सीताराम-चौपाई (२.३);
गणधरवसही आदि जिन स्तवन (१०)
- ५.२.८२ चितोड़ी री राजा रो ।
— चार प्रत्येक-बुद्ध रास (१.७)
- ५.२.८३ चेति चेतन करि ।
— सीताराम चौपाई (४.५); दान-शील-तप-भाव-संवाद-शतक (५);
थावच्चासुत-ऋषि चौपाई (१.६); पौषध-विधि गीतम् (४);

शांभ-प्रद्युम्न-चौपाई (११); चार प्रत्येक-बुद्ध रास (१.८);
मृगावती-चरित्र चौपाई (२.१२)

- ५.२.८४ चोचो रिति करि चिहु गमइ।
— साधु-वन्दना-रास (१५)
- ५.२.८५ छइ मोटं पणि पदम सरोवर।
— विहरमान वीसी स्तवना: (९)
- ५.२.८६ छानो नइ छिपी नइ वाल्हो किंहा रहिउ।
— सीताराम-चौपाई (७.१)
- ५.२.८७ जंतरी-री।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.६)
- ५.२.८८ जंबुद्वीप पूरव सुविदेह।
— सीताराम-चौपाई (२.२)
- ५.२.८९ जंबुद्वीप मझार अवसर जाणी इन्द्र।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.५); थावच्यासुत ऋषि चौपाई
(१.३); सीताराम चौपाई (४.६)
- ५.२.९० जंबुद्वीप मझारि भरत क्षेत्र माहें हथिणाउरपुर सलहीयर।
— नलदवदन्ती-रास (३.५)
- ५.२.९१ जउ तुं चाल्यउ चाकरी पूरवउ उगमणनि वार उलगाणा वार हूं चालिवाने
द्युं।
— नलदवदन्ती-रास (६.५)
- ५.२.९२ जकड़ी-नी
— द्रौपदी-चौपाई (१.१४); नलदवदन्ती-रास (२.५);
सीताराम-चौपाई (१.६); मृगावती-चरित्र चौपाई (१.७);
वल्कलचीरी रास (३)
- ५.२.९३ जग जीवन वीर जी कुवण तुम्हारइ सीस।
— पौषध-विधि गीतम् (५)
- ५.२.९४ जगि छइ घणाइ घणेरा, तीरथ भला भलेरा।
— सीताराम-चौपाई (५.७)
- ५.२.९५ जत्ती-री।
— नलदवदन्ती-रास (१.३)
- ५.२.९६ जननि मनि आसा घणि।
— साधु-वन्दना-रास (१३); कर्म-निर्जरा गीतम्;

श्री थावच्चा ऋषि गीतम्; चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.३)

५.२.९७ जलालिया-नी

— द्रौपदी-चौपाई (३.६); सिंहलसुत-चौपाई (६);
गणधरवसही आदि जिन स्तवनम् (७)

५.२.९८ जाइ रे जीउरा निकसकइ।

— वल्कलचीरी-रास (४); द्रौपदी-चौपाई (१.२)

५.२.९९ जा जा रे बांधव तुं बड़उ।

— सीताराम-चौपाई (४.२)

५.२.१०० जानी एता मान न कीजियइ ए।

— सीताराम-चौपाई (७.४)

५.२.१०१ जानी बे सिहर बड़ा मुलताण विचि मन्दारा सोहदा मइज जाषी बे।

— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.९)

५.२.१०२ जिणवर सुं मेरउ मन लीणउ।

— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.९); नलदवदन्ती-रास (३.१);
शत्रुञ्जय-रास (२); श्री ऋषिदत्ता गीतम्; सीताराम-चौपाई (३.१,५.२)

५.२.१०३ जिनजी तुम दरसण मुझ नइ बालहु।

— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.११)

५.२.१०४ जीवड़ा जिनधर्म कीजियइ।

— शत्रुञ्जय-रास(४)

५.२.१०५ जुद्ध सण्यउ पद्यावती रे।

— द्रौपदी-चौपाई (१.४)

५.२.१०६ जैसलमेर जीराउलइ रे।

— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१५)

५.२.१०७ जोगनानइ कहिज्यो रे आदेश।

— नलदवदन्ती-रास (१.२)

५.२.१०८ झांखर दीवा रे बलइ रे, कालरि कमल न होइ।

छोरि मूरिख मेरी बांहड़िया, मीया जोरइंजी प्रोति न जोइ ॥

— सीताराम-चौपाई (८.२)

५.२.१०९ झूबखरा।

— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.४)

५.२.११० ठमकी-ठमकी पायनउ।

— सीताराम-चौपाई (९.३)

- ५.२.१११ ढोलणी दहिया नइ महिया रे, बांभणी वीरला रे रायजादी रे।
— वल्कलचीरी-चौपाई (५)
- ५.२.११२ तपोधन रूडा रे।
— श्री प्रसन्नचन्द राजर्षि गीतम्
- ५.२.११३ तिण अवसर एक भील आवि उभऊ रह्यउ।
— नलदवदन्ती-रास (३.५)
- ५.२.११४ तिमरी पासइ वडलुं गान।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१०); सीताराम-चौपाई (२.२);
सिंहलसुत-चौपाई (१०); धनदत्त-चौपाई (२);
वस्तुपाल-तेजपाल रास (२)
- ५.२.११५ तिल्ली रा गीतनी।
— सीताराम-चौपाई (९.१)
- ५.२.११६ तीर्थङ्कर रे चउवीस मइ संस्तव्या रे।
— वल्कलचीरी-रास (१०)
- ५.२.११७ तुंगिया गिरि सिखर सोहई।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (९.१); साधु-वन्दना-रास (११); क्षुल्लक ऋषि रास (२);
बारह भावना गीतम्; नववाङ्शील गीतम्; शांब-प्रद्युम्न चौपाई (२१);
चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१)
- ५.२.११८ ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं।
— चम्पकश्रेष्ठि चौपाई (१.५), आलोयणा-छत्तीसी
- ५.२.११९ तोरा नउं रंज्यो रे लाखीरण जाती, तोरा कीजइ म्हाकां लाल।
दारु पिअइ जी, पडवइ पधारउ म्हाका लाल लसकर लेज्यो जी।
— सीताराम-चौपाई (५.३)
- ५.२.१२० तोरे कोडले वेदरमी परणुं कुअरी रे।
— द्रौपदी-चौपाई (२.१)
- ५.२.१२१ त्राटक वेलि नी।
— सीताराम-चौपाई (१.७)
- ५.२.१२२ थांकी अवलु आवइ जी।
— सीताराम-चौपाई (२.७)
- ५.२.१२३ दिल्ली के दरबार मइं लख आवइ लख जाय। एक न आवइ नवरंग
खान जाकी पधरी ढलि ढलि जावइ बे नवरंग वइरागी लाल।
— सीताराम-चौपाई (९.४)

- ५.२.१२४ दुमुह नाम राजा घरइ रे गुणमाला पटराणी ।
— श्रीजिनसागरसूरि-गीतानि (१२)
- ५.२.१२५ दुलह किसण दुलहणी राधिका जी ।
— द्रौपदी-चौपाई (२.८); सिंहेलसुत चौपाई (८)
- ५.२.१२६ दूर दक्षिण कइ देसइइ ।
— पुण्यसार-रास (१३)
- ५.२.१२७ देखि देखि जीव नटावइ अइसउ नाटक मंडाणउ री ।
— विहरमान वीसी स्तवनाः (१३)
- ५.२.१२८ देखो माइ आसा मेरइं मन की सफल फली रे, आणंद अंगि न माय ।
— सीताराम-चौपाई (४.३)
- ५.२.१२९ धन-धन अयवन्ती सुकुमाल नइ ।
— शत्रुञ्जय-रास (५); साधु-वन्दना-रास (९); केशीप्रदेशी प्रबन्ध (१);
श्री ढंढण ऋषि गीतम्; श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम्;
मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.६)
- ५.२.१३० धन-धन ते रिषि गाइयइ ।
— साधु-वन्दना-रास (१); थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.५)
- ५.२.१३१ धन पद्मावती ।
— सीताराम-चौपाई (२.५)
- ५.२.१३२ धन सारथवाह साधु नइ ।
— श्री दमयन्ती-सती गीतम्
- ५.२.१३३ धरम हीयइ धरउ ।
— धनदत्त-चौपाई (८)
- ५.२.१३४ धर्म भलो छइ भावना ।
— पुण्यसार-रास (१५)
- ५.२.१३५ नगर सुदरसण अति भलउ ।
— द्रौपदी-चौपाई (१.६); चम्पकश्रेष्ठि चौपाई (१.५);
गौतम पृच्छा चौपाई (३); साधु-वन्दना-रास (७); थावच्चासुत ऋषि चौपाई
(१.४); वल्कलचीरी-रास (८), मनोरथ गीतम्
- ५.२.१३६ ~~मृगावती~~-री ।
— पुण्यसार-रास (५); दानशीलतपभाव-संवाद-शतक (३);
श्री जिनसिंहसूरि गीतानि (१०); चार प्रत्येकबुद्ध रास (१.५)

५.२.१३७ नयण निहालो रे नाहला ।

— श्री जिनसागरसूरि-गीतानि (११)

५.२.१३८ नयन सल्लूणी रे गोरी नागिला ।

— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.२)

५.२.१३९ नयरी द्वारामती कृष्ण नरेस ।

— शत्रुञ्जय-रास (१); सिंहलसुत चौपाई (१)

५.२.१४० नल-नल बींदलो रे ।

— सीताराम-चौपाई (१.५)

५.२.१४१ नल राजा रइ देसी हो जी पूगल हुँती पलाणिया ।

— थावच्चासुत ऋषि चौपाई (२.४); श्री नमि प्रत्येकबुद्ध गीतम्

५.२.१४२ नाचै इन्द्र आणंद सुं ।

— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.२)

५.२.१४३ नायका-नी ।

— सीताराम-चौपाई (५.४); मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.२)

५.२.१४४ नारिंग पुरवर पास जी ए ।

— श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ गीतम्

५.२.१४५ नाहलिया म जाए गोरी रइ वणहटइ ।

— सीताराम-चौपाई (३.७)

५.२.१४६ नाहलिया म जाए गोरी रावण हरइ ।

— श्री जिनराजसूरि-गीतानि (३)

५.२.१४७ नीबइयानी ।

— क्षुल्लक ऋषि रास (४); नलदवदन्ती-रास (१.५), गौतमपृच्छा

चौपाई (४); केशी-प्रदेशी प्रबन्ध (२), थावच्चासुत ऋषि

चौपाई (१.२); द्रौपदी-चौपाई (२.१०)

५.२.१४८ नेमि समीपइ रे संजम आदर्यउ ।

— ढंढण ऋषि गीतम् (२)

५.२.१४९ नोखारा-नी ।

— सीताराम-चौपाई (८.३)

५.२.१५० परियां! हम तुम एकणी गांम के पणि युं किसुं विवहार रे ।

— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.२)

५.२.१५१ परीयां री कनकमाला इम चिंतवइ ए ।

— वल्कलचीरी-रास (६)

- ५.२.१५२ पहिलुं परणाम वारुं जिनराय ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.१)
- ५.२.१५३ पाइल री ।
— सिंहलसुत-चौपाई (२)
- ५.२.१५४ पाछी नइ वउ लावे रावण जानकी रे ।
— नलदवदन्ती-रास (६.२)
- ५.२.१५५ पाय पणमी रे जिणवर नइ सुपसाउलइ ।
— श्री ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम् (३)
- ५.२.१५६ पास जिणंद जुहारियई ।
— गौतमपृच्छा चौपाई (५); दानशीलतपभाव-संवाद-शतक (२);
साधु-वन्दना-रास (१८); द्रौपदी-चौपाई (३.६);
सीताराम-चौपाई (९.७); केशी-प्रदेशी प्रबन्ध (४)
- ५.२.१५७ पियु चले परदेस, सबइं गुण ले चले ।
— नलदवदन्ती-रास (३.३)
- ५.२.१५८ पुरंदर री विसेषाली ।
— सीताराम-चौपाई (१.२)
- ५.२.१५९ पुरोहितिया-नी
— द्रौपदी-चौपाई (१.१५)
- ५.२.१६० पूजीजइ हे सखि फबवधि पास कि आसा पूरइ सुरमणी ।
— श्री अमरसर मण्डण श्री शीतलनाथ वृहत्स्तवनम्
- ५.२.१६१ पूरउ नइ सुहागण रूढो साथियो जी ।
— चार प्रत्येकबुद्ध रास (४.४)
- ५.२.१६२ पूरव भव तुम्हें सांभलउ ।
— सिंहलसुत-चौपाई (९)
- ५.२.१६३ पोपट चाल्यो रे परणवा ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१); गौतमपृच्छा-चौपाई (२);
थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.९); श्री जिनसागरसूरि गीतानि (११)
- ५.२.१६४ प्रतिबुधउ रे ।
— पुण्यसार-रास (१४)
- ५.२.१६५ प्रभु प्रणमुं रे पास जिणेसर थंभणो ।
— श्री घंघाणी पार्श्वनाथ स्तवन पौषध विधि गीतम्

५.२.१६६ प्रहसम सूधा साधु नमुं नित ।

— साधु-वन्दना-रास (१६)

५.२.१६७ प्राण पियारी जानकी ।

— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.२)

५.२.१६८ प्राण पियारे कां तजी री ।

— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.६), नलदवदन्ती-रास (४.३)

५.२.१६९ प्रियुड़ा मानउ बोल हमारउ रे ।

— सीताराम-चौपाई (३.३); नलदवदन्ती-रास (२.४)

५.२.१७० फाग ।

— मृगावतीचरित्र-चौपाई (२.४)

५.२.१७१ फिट जीव्युं थारुं रामला रे, जसूड़ी लूखउ लूखउ खाय ।

— श्री जिनसागरसूरि गीतानि (१२); श्री दुमह प्रत्येकबुद्ध गीतम्

५.२.१७२ बंसी बाज हो बीणा ।

— चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१७)

५.२.१७३ बधावरी ।

— सीताराम-चौपाई (७.६)

५.२.१७४ बांधव गज थकी ऊतरउ ।

— द्रौपदी-चौपाई (१.५)

५.२.१७५ बीसामा-रो ।

— पौषध विधि गीतम् (२)

५.२.१७६ बुझि रे तुं बुझि प्राणी ।

— क्षुल्लक ऋषि-रास (२)

५.२.१७७ बेकर जोड़ी ताम ।

— १७ प्रकार जीव अल्प-बहुत्व गर्भित स्तवनम्

५.२.१७८ बे बांधव वांदण चल्या ।

— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.४); साधु-वन्दना-रास (५), श्री ज्ञान पंचमी
वृहद्स्तवनम् (२); श्री संयती साधु गीतम्;
चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.१५)

५.२.१७९ बोलड़ो देज्यो सबक पुत्र ।

— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.११)

५.२.१८० भणइ मन्दोदरी दैत्य दसकंध सुणी रे ।

— चार प्रत्येकबुद्ध रास (२.५); सीताराम-चौपाई (६.१)

५.२.१८१ भमरली-री।

— नलदवदन्ती-रास (४.५)

५.२.१८२ भमरा-नी।

— द्रौपदी-चौपाई (२.५); शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१९); मृगावती
चरित्र-चौपाई (१.११); श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि गीतम्

५.२.१८३ भरत थयो ऋषिराय रे।

— सीताराम-चौपाई (५.७)

५.२.१८४ भरत नृप भाव सुं ए।

— धनदत्त-चौपाई (९); वस्तुपाल-तेजपाल रास (१)

५.२.१८५ भरत यात्रा भणी ए।

— श्री जिनसागरसूरि गीतानि (९)

५.२.१८६ भलुं रे कीधुं सामी नेमकुमारा।

— श्री महावीर देव गीतम्

५.२.१८७ भलुं रे थयुं म्हाइ पूज जी पधार्या।

— श्री नेमिनाथ गीतम्; श्री महावीर देव गीतम्;
श्री जिनसागरसूरि गीतानि (१०)

५.२.१८८ भव्य तणे परिपाक।

— साधु-वन्दना-रास (४)

५.२.१८९ भावन-री।

— नलदवदन्ती-रास (२.४)

५.२.१९० भीली-नी।

— श्री गौतमस्वामी गीतम्

५.२.१९१ मंइ वहरागइ संग्रह्णउ।

— सिंहलसुत-चौपाई (७)

५.२.१९२ मंगल कमला नी।

— साधु-वन्दना-रास (१७)

५.२.१९३ मदन मदं वासउ माहव मांडियउ रे।

— सिंहलसुत-चौपाई (११)

५.२.१९४ मधुकर-नी।

— दानशीलतपभाव-संवाद-शतक(१); चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.६);
मृगावतीचरित्र-चौपाई (१.४); श्री उदयन राजर्षि गीतम्

- ५.२.१९५ मनकउ प्यारउ मनकउ प्यारउ ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (२.१)
- ५.२.१९६ मन जाणइ के सिरजणहार ।
— विहरमान वीसी स्तवना: (१०)
- ५.२.१९७ मनडं रे उमाह्यो मिलवा पुत्र ने रे ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.७); धनदत्त-चौपाई (६);
द्रौपदी-चौपाई (१.१२)
- ५.२.१९८ मरुराय नरवर तेडउ रे साहिबा ।
— नलदवदन्ती-रास (२.२)
- ५.२.१९९ महावीर जी देसणा ।
— चार मंगल गीतम्
- ५.२.२०० मांगी तुंगी रे बलभद्र जइ रह्या रे ।
— श्री द्रौपदीसती भास
- ५.२.२०१ मांझी रे बाबा वीर गोसाई ।
— सीताराम-चौपाई (५.५)
- ५.२.२०२ माछीयडा ।
— अनाथी मुनि गीतम्
- ५.२.२०३ माता जी धन ते नर नारी ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (४.७)
- ५.२.२०४ मारग में आंबो मिल्यो ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.४)
- ५.२.२०५ मुझ नइ चार सरणा होज्यो ।
— नलदवदन्ती-रास (४.३); मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.११)
- ५.२.२०६ मुनि मेघकुमार पछतावइ पाइ लागी वीर खमावइ ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.९)
- ५.२.२०७ मुनिसर भलउ कोई ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (१.९)
- ५.२.२०८ मेघमुनि काइं डमडोले ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (४.५)
- ५.२.२०९ मेटारिज मुनिवर बलिहारी तोरे नाम ।
— साधु-वन्दना-रास (८)

५.२.२१० मेरु गुरु जिणचंदसूरि।

— विहरमान-वीसी स्तवना: (१३)

५.२.२११ मेरा साहिब हो श्री शीतलनाथ की।

— सीताराम-चौपाई (३.५)

५.२.२१२ मेरी बहिनी सेतुंज भेटुंगी।

— श्री नेमिराजुल गीतम्

५.२.२१३ मेरे अरहना।

— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.८)

५.२.२१४ मोडिआ नी।

— द्रौपदी-चौपाई (१.१०)

५.२.२१५ मो मनडउ हे डाल हो मिश्री ठाकुर महि दरउ।

— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.१)

५.२.२१६ मोरा साहिब हो श्री शीतलनाथ कि वीनति सुणउ एक मोरडी।

— श्री इलापुत्र गीतम्

५.२.२१७ मोरो मन मोहो हण डूंगरे, मरुदेवी माता जी इम भणे।

— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.१२)

५.२.२१८ मोहना

— मृगावती चरित्र-चौपाई (३.१०)

५.२.२१९ यादवरायउ रंग लागउ जी।

— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१७)

५.२.२२० योगना-नी।

— गणधरवसही आदि जिन स्तवनम् (४); चार प्रत्येकबुद्ध रास (३.१३)

५.२.२२१ राजा जो मिले।

— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.३)

५.२.२२२ राजा नी कुमरी ए चाल।

— पुण्यसार-रास (३)

५.२.२२३ राजिमती राणी इण परि बोलइ, नेमि विणा कुण घूघंट खोलइ।

— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.८); सीताराम-चौपाई (३.२);

केशीप्रदेशी प्रबन्ध (३); श्री मंगलोर मंडण नवपल्लव

पार्श्वनाथ भास; श्री अंजना सुन्दरी सती गीतम्

५.२.२२४ रातडी नइ रमी नइ किहां थी आवीया।

— मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.५)

- ५.२.२२५ राती कांबलड़ी ।
— श्री पुरिमताल मंडण आदिनाथ भास
- ५.२.२२६ रामचन्द्र के बाग चम्पो मोही रह्यो री ।
— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (२.२)
- ५.२.२२७ राम देसउटइ जाय ।
— धनदत्तश्रेष्ठि-चौपाई
- ५.२.२२८ राय गंजण सभा, स्वाम स्वयंप्रभ सांभलउ ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१०)
- ५.२.२२९ रिषभ जिनेसर भेटिया रे लाल ।
— श्री राणकपुर आदि जिन स्तवनम्
- ५.२.२३० रिषभ प्रभु पूजियइ ।
— शत्रुंजय-रास (६)
- ५.२.२३१ रुकमणी राणी अति विलखाणी ।
— पुण्यसार-रास (१०)
- ५.२.२३२ रूडी रे रूडी वारण रमता पदनी रे ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (२.७)
- ५.२.२३३ रे जीव जिनधर्म कीजियइ ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.११)
- ५.२.२३४ रे रंग रत्ता करहला, सो प्रीउ रत्तउ आणि ।
— सीताराम-चौपाई (७.३)
- ५.२.२३५ लंका लीजइगी, सुणि रावण, लंका लीजइगी ।
— सीताराम-चौपाई (६.२)
- ५.२.२३६ लाखा फूलाणी ।
— नलदवदन्ती रास (१.७)
- ५.२.२३७ लाल्हरे-नी
— श्री नगगइ चतुर्थ प्रत्येकबुद्ध गीतम्
- ५.२.२३८ वरंसा लउ सांभरउ ।
— सीताराम-चौपाई (२.४)
- ५.२.२३९ वरंसारी होली आवी प्राहुणी रे ।
— नलदवदन्ती-रास (४.६)
- ५.२.२४० वलि करकण्डू आवियउ ।
— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.७)

- ५.२.२४१ वांगलिया
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.८)
- ५.२.२४२ वाज्यउ वाज्यउ मादल कउ घोकांर ।
— सीताराम-चौपाई (४.५)
- ५.२.२४३ वाडी फूली अति भली मन भमरा रे ।
— नलदवदन्ती-रास (५.३); चार प्रत्येकबुद्ध-रास (४.८)
- ५.२.२४४ वालुं रे सवायो वयर हूं माहरो रे ।
— पुण्यसार-रास (४); द्रौपदी-चौपाई (२.२); सिंहलसुत-चौपाई (३)
- ५.२.२४५ वाहण सिलामती ए ।
— श्री जिनसागरसूरि गीतानि (९); चार प्रत्येकबुद्ध-रास (४.१)
- ५.२.२४६ वीर वखाणी राणी चेलणा ।
— नलदवदन्ती-रास (४.४); गणधरवसही आदि जिन स्तवनम् (८)
- ५.२.२४७ वीरा हो थारइ सेहरइ मोह्या पुरुष वियार लाडण वी ।
— सीताराम-चौपाई (९.६)
- ५.२.२४८ वीसारी मुन्हे वालहइ तथा हरियानी ।
— सीताराम-चौपाई (४.२)
- ५.२.२४९ वेगवती तिहां बांभणी ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.५)
- ५.२.२५० वेगि विहरण आव्यो घरे ।
— श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि गीतम्
- ५.२.२५१ वेसर सोना की घरि दे वे चतुर सोनार वे ।
— सीताराम-चौपाई (४.१)
- ५.२.२५२ शांति जिण भामिडलइ जाऊं ।
— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.१०); मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.१२)
- ५.२.२५३ शालिभद्र आज तुम्हानइ आपणी माता ।
— श्री जिनसागरसूरि गीतानि (४)
- ५.२.२५४ शील कहे जगि हूं बड़ो ।
— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (२.८); सीताराम-चौपाई (९.७)
- ५.२.२५५ श्रावण मास सोहामणउ ए चउमासिया ।
— सीताराम-चौपाई (६.७)
- ५.२.२५६ श्री गौतम श्री अगनिभूति ।
— साधु-वन्दना-रास (१४)

५.२.२५७ श्री जिनचन्द्रजी सा ।

— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (६)

५.२.२५८ श्री नवकार मनि ध्याइयइ रे ।

— क्षुल्लक ऋषि-रास (१); नलदवदन्ती-रास (२.५);
तुर्य विसामा गीतम्; सीताराम-चौपाई (९.५)

५.२.२५९ श्रेणिक राय हूँ रे अनाथी निर्ग्रन्थ ।

— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (२.७)

५.२.२६० सकल चीतारां मांहि सुन्दरु रे ।

— द्रौपदी-चौपाई (१.९)

५.२.२६१ सकल सदा फल पास जिणंद ।

— नलदवदन्ती-रास (५.४)

५.२.२६२ सखि जादव कोडि सुं परिवरे प्रियु आवे तोरण वारि रे ।

— क्षुल्लक-ऋषि-रास (३); द्रौपदी-चौपाई (१.७)

५.२.२६३ सगुण सनेही रे मेरे लाल, विनती सुणो मेरे कंत रसालु ।

— पुण्यसार-रास (२); चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३.३);
मृगावती-चरित्र-चौपाई(१.९)

५.२.२६४ सफल संसार-नी ।

— साधु वन्दना-रास (१३)

५.२.२६५ सरीखी छै पण आकजी लहरकउ छइ ।

— सीताराम-चौपाई (५.४)

५.२.२६६ सलुणे हावा तेरा रे ।

— द्रौपदी-चौपाई (१.१३)

५.२.२६७ सहजइ छेहड़उ रे दरजणि स वालि रे भर जोवन माती ।

— सिंहलसुत-चौपाई (४)

५.२.२६८ सहर भलो पणि सांकड़ो रे, नगर भलो पणि द्वारि रे ।

— सीताराम-चौपाई (५.४)

५.२.२६९ सांभली सनतकुमार हाँ राजेसरजी ।

— नलदवदन्ती-रास (६.९)

५.२.२७० साधु जी न जाए परघर एकलो ।

— चार प्रत्येकबुद्ध-रास (३. ८); श्री नर्मदासुन्दरी सती गीतम्

५.२.२७१ साधुनइ वहिराव्युं कडवुं तुंबड़ो रे ।

— श्री भवदत्त-नागिला गीतम्

- ५.२.२७२ सामी नयर विनीता राया नाति कुल वरताया ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.८)
- ५.२.२७३ साहेली आंबउ मउरीघउ ।
— सीताराम-चौपाई (१.१); श्री जिनसागरसूरि-सवैया (१४);
चार प्रत्येकबुद्ध संलग्न गीतम्
- ५.२.२७४ सिहरां सिहर मधुरपुरी रे । गढां वडउ गिरनारि रे ।
— द्रौपदी-चौपाई (२.३); सीताराम-चौपाई (७.५)
- ५.२.२७५ सीखन सीखन चेलणा ।
— शांब-प्रद्युम्न चौपाई (१२); नरकगति-प्राप्ति गीतम्
- ५.२.२७६ सीतानइ संदेसउ राम भाकल्यउ रे ।
— नलदवदन्ती-रास (६.२)
- ५.२.२७७ सीमंधर सामी उपदिसई ।
— द्रौपदी-चौपाई (१.१); नलदवदन्ती-रास (४.३)
- ५.२.२७८ सीमन्धर जी सुणो मोरी विनती, विनती ए अवधारे जी ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.५)
- ५.२.२७९ सीमन्धर सामी सांभलउ ।
— नलदवदन्ती-रास (६.४)
- ५.२.२८० सील सुरंगी चूनड़ी, पहरिइ राजुल नारि रे ।
— नलदवदन्ती-रास (१.६)
- ५.२.२८१ सुणउ रे भविक उपधान बूहां विण, किम सूझइ नवकार जी ।
— सीताराम-चौपाई (५.२)
- ५.२.२८२ सुण मेरी सजनी रजनी न जावइ रे ।
— थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (२.५); सीताराम-चौपाई (३.३);
द्रौपदी-चौपाई (२.४); मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.६)
- ५.२.२८३ सुणि बहिनी पिउडो परदेशी ।
— चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.८)
- ५.२.२८४ सूंबरा तुं सुलताण, बीजा हो बीजा हो थारा सूंबरा ओलगू हो ।
— सीताराम-चौपाई (८.६) श्री जिनसागरसूरि गीतानि (५)
- ५.२.२८५ सेजा वालिम की जयउं चढी पायल वाजइ ।
— मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.५)
- ५.२.२८६ सोभागि सिंह ।
— शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१६)

- ५.२.२८७ सोभागि सुन्दर तुम बिन घड़ीय न जाय ।
— सीताराम-चौपाई (१.३)
- ५.२.२८८ सोभागी सुन्दर भाव वडड संसारि ।
— पौषध-विधि गीतम् (३)
- ५.२.२८९ सोरठ देस सोहामणउ साहेलड़ी ऐ देवा तणउ निवास ।
— सीताराम-चौपाई (१.३)
- ५.२.२९० सोहला-नी ।
— पुण्यसार-चौपाई (७); द्रौपदी-चौपाई (१.८,३४)
- ५.२.२९१ हरिया मन लागो ।
— सीताराम-चौपाई (४.४); द्रौपदी-चौपाई (१.११);
मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.१०)
- ५.२.२९२ हांजरा री ।
— नलदवदन्ती-रास (४.१)
- ५.२.२९३ हाथीयांरइ हलकइ आवे महारइ प्राहणउ रे ।
— नलदवदन्ती-रास (५.२)
- ५.२.२९४ हिव करकण्डु आवीयउ जी ।
— धनदत्त-चौपाई (४); द्रौपदी-चौपाई (१.४); साधुवन्दना-रास (२)
- ५.२.२९५ हिव रानी पद्मावती ।
— धनदत्त-चौपाई (७)
- ५.२.२९६ हिव श्री चंद सकल वन जोतुं ।
— सीताराम-चौपाई (४.४)
- ५.२.२९७ हींङोलना-नी ।
— श्री जिनचन्द्रसूरि हींङोलणा गीतम्
- ५.२.२९८ हुं वारी लाल नी ।
— वल्कलचीरी-रास (२)
- ५.२.२९९ हो रंग लीयां हो रंग लीयां नणद ।
— सीताराम-चौपाई (७.२)
- ५.२.३०० हो संग्राम राम नइ रावण मंडाया ।
— द्रौपदी-चौपाई (३.१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि समयसुन्दर का गेय-साहित्य रागों और देशियों का एक 'वृहत कोश' है। उनके गेय-साहित्य में पूर्णतः प्रवाहशीलता है। रागों में संगीत-शैली की जहाँ गंभीरता एवं संयतता है, वहीं देशी में स्वर-वैचित्र्य एवं चपलता

है। उनके रागों की तुलना यदि सरिता के धीरे, गम्भीर और प्रशान्त प्रवाह से की जाये, तो देशी की तुलना पहाड़ी प्रदेशों में उन्मुक्त रूप से प्रवाहित कल-कल करते हुए छोटे-छोटे झरनों से की जा सकती है। इस तरह कवि ने अपने गेय-साहित्य का निर्माण राग और देशी की दोहरी प्रक्रिया से किया है। उनके द्वारा गृहीत एवं निर्मापित देशियों की टेरे-पंक्तियों को रहस्यवादी कवि आनन्दघन, कवि ऋषभदास, नयसुन्दर प्रभृति अनेक परवर्ती कवियों ने व्यवहृत किया है। मोहनलाल दलीचन्द देसाई का कथन है, 'यह कहा जाता है कि गूर्जर-साहित्य में कवि प्रेमानन्द ने गूर्जर-भूमि के ही वृत्त-संतानों—गुजराती रागों जैसे मारु, रामेरी, रामग्री आदि देशी रागों का बहुत खुलकर उपयोग किया है, परन्तु यहाँ मैं यह कहूँगा कि कवि समयसुन्दर ने उनसे पहले ही देशी रागों को अति विस्तृत प्रमाण में अपनी सर्व कृतियों में व्यवहृत किया है। समयसुन्दर तो देशी एवं रागों के मार्मिक ज्ञाता एवं प्रयोक्ता थे और उनका प्रयोग कर जो सुन्दर काव्य रचे, वे यहाँ तक प्रसिद्ध हो गये थे कि न केवल उनके पश्चात् होने वाले, अपितु नयसुन्दर और ऋषभदास जैसे उनके समकालीन समर्थ जैन कवियों ने भी समयसुन्दर के काव्यों की देशियों को उद्धृत कर उन देशियों में अपनी कविताएँ रची हैं।'^१

खण्ड ख

१. सूक्त/सुभाषित

'सूक्त-शोभनोक्तिविशिष्टम्'-अर्थात् विशिष्ट रूप में सुशोभन कथन ही सूक्ति है, जिनमें किसी सामान्य सत्य की सारगर्भित अभिव्यक्ति होती है। सूक्तियों का महत्त्व सार्वभौमिक रहा है। सूक्तियों के श्रवण या पठन से मात्र मन ही प्रकाशित नहीं होता, अपितु मस्तिष्क भी प्रकाशित होता है। अतः इनका सम्बन्ध हृदय और बुद्धि—दोनों से है।

१. एवु कहेवामां आवे छे के गूर्जर साहित्य मां कवि प्रेमानन्दे गूर्जरभूमिनां ज वृत्तसन्तानो — गुजराती रागो जेवा के मारु, रामेरी, रामग्री आदि देशी रागो नो बहु छूट थी उपयोग क्योँ छे, परन्तु अत्रे मने कहेवा द्यो के तेमना पूरोगामी आ समयसुन्दरे तेमनी पहेलां ज देशी रागो ने अति विस्तृत प्रमाणमां पोतानी सर्व कृतिओमां वापर्या छे, समयसुन्दर तो देशी रागो-ढालो-देशीओना मार्मिक जाणकार अने वापरनार हता, अने ओ वापरी जे सुन्दर काव्यो रचना ते एटले दरजे सुधी प्रसिद्ध थई गया हतां के तेमना पछीना ज नहीं पण नयसुन्दर अने ऋषभदास जेवा तेमना समकालीन समर्थ जैन कविओए पण समयसुन्दरनां काव्योनी देशीओ टांकी ते-ते देशी ढालोमां पोतानी कविताओ रची छे।

— आनंदकाव्य-महोदधि, मौक्तिक ७ मुं, कविवर

समयसुन्दर, पृष्ठ ५५-५६

२. शब्दकल्पद्रुमः, भाग-५, पृष्ठ १८९

सूक्तियाँ काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। कभी-कभी तो अर्थ-गौरव-पूरित एक सूक्ति सम्पूर्ण काव्य को मूल्यवान् बना देती है और कभी-कभी वह स्वयं सैकड़ों ग्रन्थों की अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान् हो जाती है। सूक्तियों की महत्ता के सम्बन्ध में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि सूक्तियों में नीति के वचन थोड़े शब्दों में गागर में सागर की भांति बड़ी सुन्दरता से व्यक्त होते हैं। इनमें उपदेश देने की छटा निराली होती है। ये भावों को सजा-संवार कर सजीव बनाने एवं वक्तव्य-कला को चमकाने में बड़ी सहायक होती हैं।^१

हमारे विवेच्य कवि समयसुन्दर भी सूक्तियों एवं सुभाषितों के महत्त्व से सुपरिचित थे तथा अपनी रचनाओं में यदा-कदा सूक्त वचनों का प्रयोग किया करते थे। 'कालिकाचार्य-कथा' आदि ग्रन्थों में उन्होंने कतिपय प्रसिद्ध सूक्तियों को स्थान दिया है। ऐसी सूक्तियाँ कवि ने अपनी बात को पुष्ट करते हुए प्रयुक्त की हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वयं 'गाथासहस्री' नामक ग्रन्थ में लगभग १००० प्रसिद्ध सुभाषित वचनों का संकलन किया है। इसी ग्रन्थ में वे सूक्तियों के महत्त्व के सम्बन्ध में लिखते हैं —

व्याख्याकाले विचाले प्रवरमसरं प्राच्य वाच्यं प्रसक्तं।

सभ्येभ्यानां पुरस्ताच्चतुरचमत्कारकारं च भावि ॥^२

अर्थात् प्रवचन करते समय समयानुसार सुभाषित पद्य बोलने से सज्जनों के चित्त को आप (प्रवक्ता) अवश्य चमत्कृत करने वाले होंगे।

कवि की मान्यता है कि जैसे भूख की पीड़ा से आकुल व्यक्ति भोजनखीर का और तृषा से आतुर चातक जल का कथमपि परित्याग नहीं करता, वैसे ही रसिक विद्वज्जन सुभाषित-सूक्तियों का परित्याग नहीं करता है। भला, रसप्रद वस्तु का कभी त्याग किया जा सकता है —

भूखो भोजन खीर, विण जिम्यां, छोड़इ नहीं, इम जाणइ सही रे।

तरस्यो चातक नीर, सुपण्डित सुभाषित रसियो किम तजइ रे ॥^३

कवि ने न केवल सूक्तियों का प्रयोग किया है, अपितु स्वयं ने भी स्थान-स्थान पर सूक्त/सुभाषित वचन कहे हैं। ये सूक्तियाँ अधिकांशतः उपदेशमूलक हैं। इनके प्रयोग से कवि की काव्य-कृतियाँ सौष्ठव एवं गाम्भीर्य गुण से युक्त हुई हैं। साथ ही साथ इनसे उनकी शैली भी आकर्षक बनी है। इन सूक्तियों द्वारा समयसुन्दर के नीति, धर्म और दर्शन आदि से सम्बद्ध बहुआयामी ज्ञान का बोध होता है। अगले पृष्ठों पर द्रष्टव्य हैं, कवि समयसुन्दर की आचार-विचार विषयक कतिपय मार्मिक सूक्तियाँ —

१. उद्धृत — वृहत् सूक्ति-कोश, पृष्ठ १

२. गाथा सहस्री, प्रशस्ति (३)

३. सीताराम-चौपाई (८.१.१-२)

१.१ अटवी

वसती थी अटवी भली, जिहाँ दुरवचन न होइ ।
इच्छाई रहियइ आपणी, फल फूल भोजन सोइ ॥^१

१.२ अति

तेनाधमेनातितानितं तर्हि त्रुटत्येव ।^२

१.३ अप्रमाद

- (क) नीद्रडी निवारो रहो जागता, वालिभ म करि विश्वास रे ।
सांप सिरहाणै सूतो ताहरइ रे, चोर फिरइ चिहुँ पास रे ॥^३
- (ख) चतुर सुणउ चित लाइ कइ, कहा कहइ घरियारा ।
जीवित मांहि जायइ घरी, न कोइ राखणहारा ॥
पहु र पहु र कइ आंतरइ, राति दिवस मझारा ।
बाजा रे बाजम जम तणा, सब रहु हुसियारा ॥^४

१.४ अशरण-भावना

कुण जाणइ पहिलउ पच्छइ, मारिसइ पुत्र कइ माऊ ए ।
बाल मरइ बूढा मरइ, ए जग ऊलट्यउ जाऊ ए ॥^५

१.५ आत्म-निरीक्षण

दूर बलंती कां देखो तुमे रे, पग मां बलती देखो सहु कोइ रे ।
पर ना मल मांहि धोयां लुंगड़ा, कहो केम किम उजला होइ रे ॥^६

१.६ आत्म-प्रकाश

अन्तर विचार करउ, समयसुन्दर कहइ ।
अन्तर प्रकाश विना, शिवसुख कुण लहइ ॥^७

१.७ आत्म-प्रशंसा

आप प्रशंसा आपणी, करता इन्द नरिंद ।
लघुता पामइ लोक मइ, नासइ निज गुणवृन्द ॥^८

१. सीताराम-चौपाई (३.७. ८)
२. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०३
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अन्तरङ्गबाह्यनिद्रानिवारण गीतम् (१)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, घड़ियाली गीतम् (१-२)
५. थावच्चासुत ऋषि चौपाई (१.५.११)
६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, निन्दावारक गीतम् (२)
७. वही, प्रमाद-त्याग गीतम् (५)
८. वही, दानशीलतपभाव-संवाद (ढाल ५ से पूर्व दूहा ४)

१.८ आत्म-स्वरूप

जीव नइ करम माही मांही संबंध, अनादिकाल नउ कहियइ रे ।
ए पहिलउ ए पछइ न कहियइ, धातु उपलभेद लहियइ रे ।
तप जप अगनि करी नइ एहनउ, दुष्ट करम मल दहियइ रे ।
समयसुन्दर कहइ एहिज आत्मा, सिद्ध रूप सरदहियइ रे ॥^१

१.९ ईश्वर कृपालु या पापी?

कबहु मिलइ मुझ जउ करतारा, तउ पूछूं दोइ बतियाँ रे ।
तूँ कृपाल कि तूँ हइ पापी, लखि न सकूं तोरी गतियाँ रे ॥^२

१.१० उत्थान और पतन

किसी के सब दिन सरिखे न होई ।
प्रह ऊगत अस्तंगत दिनकर, दिन मई अवस्था दोई ॥^३

१.११ एकत्व-भावना

- (क) एक आवै चलै एकणा, कु छ साथ न आवइ ।
भली बुरी करणी करी रे, पीछे सुख दुख पावइ ॥^४
- (ख) हो एकलो आवे जीवड़ो रे, हो परभव जाउ पण एक ।
हो कुटुंब सहु को कारिमो रे, हो वारु धर्म विवेक ॥
हो परभव जाए एकलो रे, हो साथे कर्म सखाय ।
हो पुण्ये शुभगति पामीए रे, हो पापे दुर्गति जाय ॥^५

१.१२ कर्म

- (क) के कहइ ईश्वर के कहइ विधाता, सुख-दुख सरजनहारा रे ।
समयसुन्दर कहइ मइं भेद पायउ, करम जु हइ करतारा रे ॥^६
- (ख) करम थी को धूटइ नहीं प्राणी, कर्म सबल दुख खाणा जी ।
कर्म तणइ वस जीव पड़या सहु, कर्म करइ ते प्रमाण जी ॥
तीर्थकर चक्रवर्ति अतुल बल, वासुदेव बलदेव जी ।
ते पणि कर्म विटंब्या कहिये, कर्म सबल नितमेव जी ॥^७

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीवकर्म-संबंध गीतम् (१-२)
२. वही, करतार गीतम् (१)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, मान-निवारण गीतम् (१)
४. वही, वैराग्य शिक्षा गीतम् (२)
५. चार प्रत्येक-बुद्ध चौपाई (३.१४.१४-१५)
६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, करतार गीतम् (५)
७. वही, कर्म-छत्तीसी (१-२)

१.१३ कषाय

विष हलाहल कहियइ विरुयउ, ते मारइ इक वार जी ।
पण कषाय अनंती वेला, आपइ मरण अपार जी ॥^१

१.१४ काम-भोग

- (क) तन-धन यौवन कारमुं रे, क्षण मा खेरु थाय ।
काम-भोग फल पाडुया रे, दुर्गति ना दुख दाय ॥^२
- (ख) काम-भोग संयोग सगला, जाण फल किंपाक रे ।
दीसतां रमणीक दीसइ, अति कटुक विपाक रे ॥^३
- (ग) मोक्ष भणी जातां थकां जी, विषय करइ अंतराय ।
संयम प्रवहण भंजिवा जी, विषय कह्या महावाय रे ॥
विषय सेवइ कुण एहवा जी, कामनी कुण वेसास ।
खिण राचइ विरचइ खिणइ, खिण नाखइ नीसास रे ॥^४
- (घ) राग-द्वेष रूडा नहीं रे, कडुआ वलि करम विपाको रे ।
विषय-सुख विष सरिखा वली, विरुआ जेहआ आको रे ॥^५

१.१५ कुकर्म

कुकर्म कर्तुं न युक्तम् ॥^६

१.१६ कुशिष्य

गीतार्थ नाम धृत्वा च, बृहत्क्षेत्रे यशोर्जितम् ।
यदि ते न गुरोर्भक्ताः, शिष्यैः किं तैर्निरर्थकैः ॥^७

१.१७ केवलज्ञान

चंद्र सूरज ग्रह नक्षत्र तारा, तेसूं तेज आकास रे ।
केवलज्ञान समो नहीं कोई, लोकालोक प्रकास रे ॥^८

१. वही, क्षमा छत्तीसी (३१)
२. वही, श्री जम्बूस्वामी गीतम् (७)
३. वही, आत्मप्रमोद गीतम् (४)
४. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.७.७८.)
५. चम्पक श्रेष्ठी-चौपाई (२. ८.९)
६. कालिकाचार्य कथा, पृष्ठ २०२
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, गुरुदुःखित वचनम् (८)
८. वही, ज्ञान पंचमी लघु स्तवनम् (४)

१.१८ क्षोभंगुरता

- (क) राति दिवस जे जायइं छइं, पाछा नावइ तेहो जी ।
खिण खिण वूटइं आउखुं, खीण पडइ वलि देहो जी ॥^१
- (ख) खिण खिण इन्द्रिय बल घटइ, खिण खिण टूटै आय ।
वृद्ध पणइ परवश पड्या, कहि किम धर्म कराय ॥^२

१.१९ क्षमा

आदर जीव क्षमा गुण आदर, म करि राग नइ द्वेष जी ।
समतयाये शिव सुख पामीजे, क्रोध कुगति विशेष जी ॥^३

१.२० क्रोध

क्रोध करंता तप जप कीधा, न पडइ कांइ ठाम जी ।
आप तपै पर नइ संतापइ, क्रोध सुं केहो काम जी ॥^४

१.२१ गुरु

- (क) बलिहारी गुरु वयणडे, बलिहारी गुरु मुख चंद रे ।
बलिहारी गुरु नयणडे, पेखहतां परमाणंद रे ॥^५
- (ख) गुरु दीवउ गुरु चंद्रमा रे, गुरु देखाडइ वाट ।
गुरु उपगारी गुरु बड़ा रे, गुरु उत्तारइ घाट ॥^६

१.२२ चौर्यकर्म

परधन चोर्या लुटिया, पाड्यउ धसकउ पेट ।
भूख्यो भमि संसार मां, निर्धन थकउ नेट ॥^७

१.२३ जिनधर्म

श्री जिनधर्म सुरतरु समो, जेहनी शीतल छांहि ।
समयसुन्दर कहइ सेवता, मुक्ति तपां फल पाहि ॥^८

१. वही, श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम् (६)
२. वही, जीव प्रतिबोध गीतम् (२)
३. वही, क्षमा छत्तीसी (१)
४. वही, क्षमा छत्तीसी (३२)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, बधावा गीतम् (४)
६. वही, श्री जिनसिंह पूरि गीतम् (५)
७. वही, आलोयणा छत्तीसी (६)
८. वही, धर्ममहिमा छत्तीसी (६)

१.२४ ज्ञान

- (क) ज्ञानेन बिना मानवः पशुरेव ।^१
 (ख) ज्ञान बड़उ संसार, ज्ञान मुगति दातार ।
 ज्ञान दीवउ कस्यउ ए, साचउ सरदह्यौ ए ॥
 ज्ञान लोचन सुविलास, लोकालोक प्रकास ।
 ज्ञान बिना पसू ए, नर जाणइ किसूं ए ॥^२

१.२५ ज्ञान-कर्म-योग

- (क) क्रियावंत दीसइ फूटरउ, क्रिया उपाय करम छूटरउ ।
 पांगलउ ज्ञान किस्सउ कामरउ, ज्ञान सहित क्रिया आदरउ ॥^३
 (ख) किरिया सहित जउ ज्ञान, हुयइ तउ अति प्रधान ।
 सोनउ नइ सुहत ए, सांख दूधइ भर्यउ ए ॥^४

१.२६ ज्ञानी

- (क) विद्यावन्तो हि पूज्यन्ते ।^५
 (ख) विद्यावतां परदेशोऽपि स्वदेशः ।^६
 (ग) ज्ञानी सासोसास, करम करइ जे नास ।
 नारकि नइ सही ए, कोड़ि वरस कही ए ॥^७
 (घ) ज्ञान की बात लहे गा ज्ञानी,
 समयसुन्दर कहइ आतमध्यानी ।^८

१.२७ तप

भला दान शील भावना, पिण तप सरिखो नहीं कोय ।
 दुःख दीजइ निज देह ने, वाते बड़ा न होय ॥^९

१. कालिकाचार्य कथा, पृष्ठ १९९
२. वही, ज्ञानपंचमी बृहत्स्तवनम् (३-४)
३. वही, क्रिया प्रेरणा गीतम् (६-७)
४. वही, श्रीज्ञान पंचमी बृहत्स्तवनम् (८)
५. कालिकाचार्य कथा, पृष्ठ २०३
६. वही, पृष्ठ २०४
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ज्ञान पञ्चमी बृहत्स्तवनम् (६)
८. वही, अध्यात्म-सञ्ज्ञाय (८)
९. वही, पुंजारत्न-ऋषि रास (४)

१.२८ दान

अवसर देखी दीजिये रे, कीजै पर उपकार ।
लखमी नो लाहो लीजीये रे, समयसुन्दर कहै सार ॥^१

१.२९ लुर्वचन

झूठ बोल्या घणा जीभड़ी, दीधा कूड़ कलङ्क ।
गल जीभी थास्यै गलै, हुस्यइ मुँहडो त्रिबंक ॥^२

१.३० दोहरापन

विनय विवेक ने जाणे मरम, श्रावक होइ नइ न करे धरम ॥
क्रिया न करइ कहावइ साध, नाम रतन दाम न लहइ आध ॥
मनुष्य जन्म नवि हारो आल, तमे पाणी पहली बांधो पाल ॥^३

१.३१ द्रव्योपाय

कोऽपि द्रव्योपायः कार्यः यथा सम्बलं भवति ।^४

१.३२ धर्म

- (क) शरीरादि सर्वमनित्यं ज्ञात्वा विवेकिना ।
दीर्घदर्शिना मनुष्येण धर्मस्यैव संग्रहः कर्तव्य ॥^५
- (ख) धर्मस्यापि पंडितेन सुवर्णस्येव परीक्षा कार्या ।^६
- (ग) धरम थकी धन संपजइ रे, धरम थकी सुख होय ।
धरम थकी आरति टलइ रे, धरम समउ नहीं कोय ॥^७

१.३३ धर्म-मर्म

जीवनइं मारइं जे नहीं, जूठ न बोलइ जेह ।
अणदीधउ जे ल्यइ नहीं, न धरइ नारी देह ॥
आरम्भ कर्म करइं नहीं, न करइं पाप करम्म ।
वलि जे इन्द्री वस करइं, धरमनउ एह मरम्म ॥^८

१. चम्पकश्रेष्ठी-चौपाई (१.१३.२५)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, आलोचन छत्तीसी (१३)
३. वही, व्रत पञ्चकषाण गीतम् (७,९-१०)
४. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
५. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २००
६. वही, पृष्ठ २००
७. दानशीलतपभाव-संवाद-शतक (५.३)
८. रीताराम-चौपाई (३, दूहा ४.३-४)

१.३४ धर्म-द्रव्य भक्षक की गति

देव द्रव्य गुरु द्रव्य वलि, साधारण द्रव्य खाय ।

दीन हीन निर्धन थकउ, दुखियउ ते नर थाय ॥^१

१.३५ निंदक

निंदक निच्चय नरगइ जाई, निंदक चउथउ चण्डाल कहाई ।

निंदक रसना अपवित्र होई, निंदक मांस भक्षक सम होई ॥

समयसुन्दर कहइ निन्दा म करिज्यो, परगुण देखि हरख मनि धरज्यो ॥^२

१.३६ निन्दा

निन्दा न करजो कोई नी पारकी रे, निन्दा ना बोल्या महापाप रे ।

वेर विरोध बाधई घणा रे, निन्दा करतां न गणइ माय-बाप रे ॥^३

१.३७ परस्त्री

जेहवी आगिनी झाल, विसकंदली विकराल ।

वाघणि भुजंगी होइ, परमारि कहइ सहु कोइ ॥^४

१.३८ परस्त्रीगमन

(क) पररमणी फरसता, निज कुल मइलउ थाय ।^५

(ख) परस्त्री नइ भोगवी, तुच्छ स्वाद तु लेसि ।

पिण नरके ताती पूतली, आलिंगन देसि ॥^६

१.३९ पाप-फल

जीव तणी हिंसा करइ, बोलइ मिरषावाद ।

प्राण समा परधन हरइ, सेवइ पंच प्रमाद ॥

नरक जायइ ते जीवइउ, पामइ दुख अनंत ।

छेदन भेदन ते सहइ, भाखइ श्री भगवंत ॥^७

१.४० पापी

पापात्मा न प्रतिबुद्धयते ।^८

१. नरकगति-प्राप्ति गीतम् (५)

२. निन्दा परिहार गीतम् (२-४)

३. निन्दावारक गीतम् (१)

४. सीताराम-चौपाई (५.६.४५)

५. सीताराम-चौपाई (६.१.१८)

६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, आलोचना छत्तीसी (१५)

७. वही, नरक-गति-प्राप्ति गीतम् (१-१)

८. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६

१.४१ पुण्य

पुण्य तणा फल परतिख देखो, करो पुण्य सहू कोय जी ।
पुण्य करतां पाप पुलावे, जीव सुखी जग होय जी ॥^१

१.४२ पुण्य-कृत्य

अभयदान सुपात्र अनोपम, वलि अनुकम्पा दान जी ।
साधु श्रावक धर्म तीरथ यात्रा, शील धर्म तप ध्यान जी ॥
सामायिक पोषह पडिकमणो, देव पूजा गुरु सेव जी ।
पुण्य तणा ए भेद परूष्या, अरिहंत वीतराग देव जी ॥^२

१.४३ प्रीति

- (क) जे जेहनइ मन मांहि वस्या रे, ते तउ दूरि थकां पणि पास रे ।
किहां कुमुदिनी किहां चन्द्रमा रे, पणि दूरि थी करइ परकास रे ॥^३
- (ख) पर दुक्ख जाणइ नहीं पापिया रे, दुसमण घालइ विचइ घात रे ।
जीव लागउ जेहनउ जेहस्युं रे, किम सरइ कीधां विण वात रे ॥^४
- (ग) प्रीतड़िया न कीजइ हो नारि परदेशियां रे, खिण-खिण दाइइ देह ।
वीछड़िया वाल्हेसर मलवो दोहिलउ रे, सालइ अधिक सनेह ॥^५

१.४४ बुद्धि

बुद्धिमतो मनुष्यस्य बुद्धः तदेव फलं ।
यत् पुण्यपापादौ तत्त्वविचारणा क्रियते ॥^६

१.४५ भवितव्यता

- (क) उद्यम भाग्य विना न फलइ ।
बहुत-उपाय किये क्या होई, भवितव्यता न टलइ ॥
पूरब रवि दिस ऊगत, अविचल मेरु चलइ ।
तउ पण लिखित मिटइ नहीं कबही उद्यम क्या एकलइ ॥^७

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पुण्य छत्तीसी (१)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पुण्य छत्तीसी (२-५)
३. वही, श्री रामसीता गीतम् (३)
४. वही, श्री स्थूलिभद्र गीतम् (३)
५. वही, स्थूलिभद्र गीतम् (१)
६. कालिकाचार्य कथा पृष्ठ २००
७. समयसुन्दर कृति सुकुमांजलि, उद्यम-भाग्य गीतम् (१-२)

- (ख) जे सिरज्यो ते थाइस्यै, बैस रहै बल छोड़ि ।
अधम तिके नर आलसू, खरी लगाड़े खोड़ि ॥^१
- (ग) कुण न करइ रिधि गारवउ, नारि सुं कुण न मुज्झ ।
विधिनां कुण न खण्डीयो, कुण चूको नहि बुज्झ ॥^२
- (घ) सहू को लोक कहै छै सरज्युं, ते बोल केता वाचुं रे ।
उद्यम छै पणि भावी अधिकुं, समयसुन्दर कहै साचुं रे ॥^३

१.४६ भाग्य और पुरुषार्थ

वखत मांहि लिख्यउ ते लहिस्यइ, निश्चय बात हुयइ हुणहार ।
एक कहइ काछड़ बांधीनइ, उद्यम कीजइ अनेक प्रकार ॥
त्रीखण करमां वाद करतां, इम झगड़उ भागउ पहुतो दरबार ।
समयसुन्दर कहइ बेऊ मानऊँ, निश्चय मारग नइ व्यवहार ॥^४

१.४७ भावना

- (क) भावना मन बार भावउ, तूटइ करम नी कोड़ि रे ।
तप संयम तउ छइ भला, पण नहीं भावना नी जोड़ि रे ॥^५
- (ख) तउ पणि अधिकउ भाव छइ, एकाकी समरत्य ।
दान सील तप त्रिण भला, पणि भाव विना अकयत्थ ॥
अंजन आँखें आंजतां, अधिकी आणि ए रेख ।
रज मांहे तज काढतां, अधिकउ भाव विशेष ॥^६

१.४८ मनःशुद्धि

कोलो करावउ मुंड मुंडावउ, जटा धरउ को नगन रहउ ।
को तप्प तपउ पंचागनि साधउ, कासी करवट कष्ट सहउ ॥
को भिक्षा मांगउ भस्म लगावउ, मौन रहउ भावइ कृष्ण कहउ ।
समयसुन्दर कहइ मनसुद्धि पाखइ, मुगति सुख किमही न लहउ ॥^७

१. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.६, दूहा ३)
२. सीताराम-चौपाई (६.१.१९)
३. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१३-२५)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (२९)
५. वही, बारह भावना गीतम् (१)
६. वही, दानशीलतपभाव संवाद-शतक (ढाल ५ से पूर्व, दूहा ६-७)
७. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१६)

१.४९ महापाप

बालक, वृद्ध नइ रोगियउ, साध बांभण, नइ गाइ।
अबला एह न मारिवां, मार्यां महापाप थाइ ॥^१

१.५० मानवजन्म की दुर्लभता

मानुषी भव लही दुर्लभ, पापे पिंड म भार रे।
आल काग उडावणै कुं, मूढ़ रत्न म हार रे ॥^२

१.५१ माया

- (क) माया कारण देश देसांतर, अटवी वन मां जावै रे।
प्रवहण बइसी धीर द्विपांतर, सायर मां झपावै रे ॥
माया मेली करी बहु भेली, लोभे लक्षण जाय रे।
भीतें धन धरती में घाले, ऊपर विषहर थाय रे ॥
जोगी जंगम तपसी सन्यासी, गगन थइ परवरीया रे।
ऊंधे मस्तक अगन धखंती, माया थी न ओसरीया रे ॥^३
- (ख) जनम थी माया मेलवे रे, सीखइ घर नो सूत्र।
ढलडीए रमती कहे रे, ए मुझ पति ए पुत्र ॥^४

१.५२ मुक्ति-फल

पानड़ा प्रत्यक्ष प्रभुता, फूटरा सुख फुल रे।
मुक्ति ना फल घणा मीठा, आपइ ए अमूल रे ॥^५

१.५३ म्रियमाण

याता म्रियमाणश्च न केनापि रोद्धुं शक्यते ॥^६

१.५४ मृत्यु

मरण सहु नइ सारखउ रे, कुण राजा कुण रांक।
पणि जायइ जीव निसंबलउरे, एहिज मोटउ बांक ॥^७

१. सीताराम-चौपाई (३.७.१३)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, आत्मप्रमोद गीतम् (२)
३. वही, मायानिवारण सज्जाय (२-४)
४. चार प्रत्येकबुद्ध-चौपाई (२.३.३)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नव वाङ् शील गीतम् (१२)
६. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०१
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव-प्रतिबोध गीतम् (५)

१.५५ मृत्यु भय

मरणादप्याधिकं भयं किमपि नास्ति।^१

१.५६ यतिधर्म

यतिधर्म एव सर्व धर्मोत्तमः।^२

१.५७ राजलक्ष्मी

इयं राजलक्ष्मीः चंचला दृश्यते, यदि न त्यज्यते ।
तदा आरम्भपापपङ्कमगन्त्वेन दुर्गतौ गम्यते ॥^३

१.५८ लोभ

रामा रामा धनं धनं, भमतउ रहइ तूं राति दिनं ।
पुण्य बिना कहि क्युं धन पाइयइ, पूछि न मानइ तउ पंच जनं ॥
घर धंधइ सब धरम गमायउ, वीसरि गयउ देव गुरु भजनं ।
पोटि उपाड़ि गये कुण परभवि, म करि म करि जीव लोभ घनं ॥^४

१.५९ विनय

समृद्धः पुमान् विनयं कर्वन मृ-(मि)ष्टो लगति।^५

१.६० विनाशकाल

विनाशकाले विपरीत बुद्धि।^६

१.६१ वीर-पुरुष

सुभट तिके ज सराहियइ, जे रण पहिलो भेलि ।
सेना भांजइ शत्रु नी, अणिए अणिए मेलि ॥
अरि करि दंत उपरि चढ़ी, हणइ उपरि सिरदार ।
धड़ विण घा मारइ धसी, ते साचा झुझार ॥^७

१.६२ वैराग्य

(क) क्षण क्षण करम नो क्षय करी, संवेग शुद्ध धरंतो जी ।
भवसायर बीहामणउ, ते नर तुरत तरंतो जी ॥^८

१. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०४

२. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २००

३. वही, पृष्ठ २००

४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, लोभ निवारण गीतम् (१-२)

५. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २००

६. चार प्रत्येकबुद्ध चौपाई (२.४.४)

७. सीताराम-चौपाई (६. दूहा ३१.२४-२५)

८. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम् (२२)

(ख) खरच कोई लागस्यै नहीं, देह में नहीं दुख।
पण मन वैरागे बालजे, सही पामिस सुख ॥^१

१.६३ शील

कल्पवृक्ष ए शील कहियइ, रोप्यउ श्री जिनराज रे।
वाड़ रक्षा भणी भाखी, सेवज्यो सुखकाज रे ॥^२

१.६४ संगति

संगत तेसुं कीजिये, जल सरिखा हुवे जेह।
आवटणुं आपणि सहै, दूध न दाझण देह ॥^३

१.६५ संघ

संघ गिरुयउ रे, श्री संघ गुणे करि गिरुयउ रे।
मात-पिता सरिखउ हित वल्लभ, किमही करई नहीं विरुयउ रे।
समयसुन्दर कहइ श्री संघ सोहइ, वाड़ी माहे जिम मरुयउ रे ॥^४

१.६६ संयम-मार्ग

संयममार्गोऽति दुःखकरोऽस्ति ॥^५

१.६७ सती

केसर केस मणि सापनी रे, कृपण तणउ धन जेम।
जीवतां हाथ पडइ नहीं रे, सतीय पयोहर तेम ॥^६

१.६८ सांसारिक सुख

अति तुच्छ सुख संसार नो, मधु लिप्त खड्ग नी धार।
किंपाक ना फल सारिखा, छै दुख अनेक प्रकार ॥^७

१.६९ साधु

ध्यान धरंता साधुनउ, चोखउ थायइ चित्त।
जीभ थायइ गुण जोड़तां, सुणितां कांन पवित्र ॥^८

१. वही, आलोचना-छत्तीसी (३५)
२. वही, नववाड़शील गीतम् (११)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, नेमिजिनस्तवनम् (२)
४. वही, श्री संघगुण गीतम् (१,३)
५. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०१
६. नलदवदन्ती-रास (२.३.५)
७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव-प्रतिबोध गीतम् (६)
८. साधु-वन्दना-रास (८)

१.७० सूक्तिकण

- (क) मांस भोजन ते अहित कहीजइ, ताव मांहे घी पान रे ।
तप संयम आतम हित कहीयइं, मांदानइ मुंग धान रे ॥^१
- (ख) भूखो भोजन खीर, बिण जीम्यां छोडइ नहीं, हम जाणइ सही रे ।
तिरस्यो न छोडइ नीर, सुपण्डित सुभाषित रसियो किम तजइ रे ॥
दरिद्र लाधो निधान, किम छोडइ, जाणइ हम वलि नहिं संपजइ रे ॥^२

१.७१ स्वाद-मुक्त

जीभ नइ स्वाद मार्या जिके, ते मारस्यइ तुज्झ ।
भव मांहे भमता थकां, थास्यै जिहां तिहां जुज्झ ॥^३

१.७२ स्वार्थ

- (क) कुटुम्ब सहु को कारिमुं, पुत्र कलत्र परिवारो जी ।
स्वारथ विण विहडइ सहु, कुण केहनउ आधरो जी ॥^४
- (ख) स्वारथ की सब हइ रे सगाई, कुण माता कुण बहिन री भाई ।
स्वारथ भोजन भगति सजाई, स्वारथ बिण कोऊ पाणी न पाई ।
स्वारथ मां बाप सेठ बड़ाई, स्वारथ बिण नित होत लड़ाई ।
स्वारथ नारी दासी कहाई, स्वारथ बिण लाठी ते धाई ।
स्वारथ चेला गुरु गुरहाई, स्वारथ सब लपटाणा भाई ॥^५

१.७३ शुद्धि

साठी चोखा सूपडइ, छडतां ऊजला थायइ रे ।
रूपइया खरा आगिमइ, घाल्यां कसमल जायइ रे ॥^६

१.७४ मिथ्याभाषी

कामी, लिंगी, वाणियो, कपटी अनइ कुनारि ।
सांच न बोलइ पाँच ए, छट्टउ वली जूआरि ॥^७

गत पृष्ठों में हमने कविवर समयसुन्दर की प्रमुख सूक्तियों, सुभाषित वचनों को प्रस्तुत किया है। उनकी कोई भी रचना ऐसी नहीं है, जिसमें सूक्त-सुभाषितयों की

१. सीताराम-चौपाई (३.१.१३)
२. वही (८.१.१-३)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, आलोचना-छत्तीसी (१२)
४. वही, श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम् (१०)
५. वही, स्वार्थ गीतम् (१-५)
६. सीताराम-चौपाई (१.२.१८)
७. वही (५. दूहा ९.७)

अनुपस्थिति हो। वास्तव में कवि महान् उपदेशक थे। अतः उनकी रचनाओं में सूक्त/सुभाषितों का बाहुल्य होना स्वाभाविक है।

२. कहावतें तथा मुहावरे

कहावतें तथा मुहावरे काव्य के ही अंग हैं। कहावत उस बन्धी हुई लोकप्रचलित उक्ति को कहते हैं, जिसमें किसी तथ्य या अनुभूत सत्य का चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रतिपादन या प्रस्थापन किया गया हो; और मुहावरा उस वाक्य या वाक्यांश को कहते हैं, जो अभिधार्थ से भिन्न किसी और अर्थ में रूढ़ हो गया हो। काव्य में इनके प्रयोग से उसकी भाषा में प्रौढ़ता आती है तथा उसकी अभिव्यंजना शक्ति बढ़ जाती है। शब्दों का चमत्कार एवं अर्थ-गाम्भीर्य प्रकट करने में भी इनका प्रयोग विशेष सहायक होता है। वस्तुतः कहावतें युगों का सद्ज्ञान है (जर्म कहावत) और मुहावरे किसी भी सजीव भाषा के प्राण होते हैं (भारतीय कहावत)। वास्तव में कहावतें तथा मुहावरे लक्षणा एवं व्यंजना द्वारा भाषा के अर्थ-गौरव के विस्तारक होते हैं।

कवि समयसुन्दर के साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अनेक कहावतें तथा मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। सचमुच, इन दोनों के प्रयोग से उनकी रचनाओं के अर्थ-गौरव का विस्तार हुआ है, प्रेषणीयता तथा प्रभावोत्पादकता बढ़ी है। यहाँ हम समयसुन्दर द्वारा प्रयुक्त कहावतों एवं मुहावरों पर क्रमशः विचार कर रहे हैं।

२.१ कहावतें

समयसुन्दर ने जिन कहावतों को प्रयुक्त किया है, उनमें से कतिपय कहावतें उदाहरणार्थ नीचे दी जा रही हैं —

- २.१.१ आपणी करणी पार उतरणी^१
- २.१.२ आप डूबे सारी डूब गई दुनियां^२
- २.१.३ आप आपणइ मत थापयइ सगला।^३
- २.१.४ आप मुयां विण सरग न जइयइ।^४
- २.१.५ आप बखाणइ पर नइ निंदइ।^५
- २.१.६ इहां बाघ इहां तौ कूऔ।^६

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव प्रतिबोध गीतम् (८); वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१,३३); सीताराम-चौपाई (३.४.६)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, निद्रा गीतम् (३)
३. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१२)
४. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१९)
५. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (३१)
६. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१२.१५)

- २.१.७ इणगी बाघ इहां खाई^१
 २.१.८ उषरक्षेत्रे उप्तान्यापि बीजानि नोद्गच्छन्ति ।^२
 २.१.९ एक हाणि नइ बीजउ हांसउ ।^३
 २.१.१० एक हाथि न पड़इ तालि ।^४
 २.१.११ एकलउ आव्यउ, एकलउ जाइसि, नहिं को आवइ साथ ।^५
 २.१.१२ एक हाथ मुक्ति, एक हाथ फांसी ।^६
 २.१.१३ ओल्युं करतां थाइ पैल्युं ।^७
 २.१.१४ कहिता बात सोहिली, करता दोहिली होय ।^८
 २.१.१५ करम तणी गति कहिय न जाय ।^९
 २.१.१६ काको धौतो दुग्धेनापि धवलतां न प्राप्नोति ।^{१०}
 २.१.१७ कीड़ी ऊपरि केही कटकी ।^{११}
 २.१.१८ कूर्मकायः प्रहारशतैरपि न भेतुं शक्यते ।^{१२}
 २.१.१९ खलो वा सत्क्रियमाणोऽपि न मैत्रीभावं भजते ।^{१३}
 २.१.२० खत ऊपरि जिम खार, दुख माहे दुख लागो ।^{१४}
 २.१.२१ गज चढ्या केवल न होइ रे ।^{१५}
 २.१.२२ गज दरसण श्रीकार ।^{१६}

१. सीताराम-चौपाई (२.३.४)
 २. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 ३. नलदवदन्ती-रास (२.१.४)
 ४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री राजुल रहनेमि गीतम् (२)
 ५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, बारह भावना गीतम् (५)
 ६. वही, निद्रा गीतम् (२)
 ७. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.९.२)
 ८. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, धन्ना-शालिभद्र सज्जाय (१३)
 ९. सीताराम-चौपाई (२.२.२४)
 १०. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 ११. सीताराम-चौपाई (६.२.५०)
 १२. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 १३. वही, पृष्ठ २०७
 १४. सीताराम-चौपाई (८.१.२२)
 १५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री बाहुबलि गीतम् (२)
 १६. सीताराम-चौपाई (१.८.१०)

- २.१.२३ चोरां विच पड्या मोर ।^१
 २.१.२४ छट्टी रात लिख्यउ ते न मिटइ ।^२
 २.१.२५ जल विण किण रहइ माछली ।^३
 २.१.२६ जसु रक्खे गोसाइयां, मार न सकै कोइ ।^४
 २.१.२७ जिण कीधउ हो सदा हाल हुकम्म, तउ वे तूं कार्यउ किम खमइ ।^५
 २.१.२८ जीवतो जीव कल्याण देखइ ।^६
 २.१.२९ जोरइ प्रीति न होयइ ।^७
 २.१.३० झबकइ जाणि बीजलि ।^८
 २.१.३१ तिमिरहरण सुरजि थकां, कुण दीवानउ लाग ।^९
 २.१.३२ तिरस्यो न छोडइ नीर ।^{१०}
 २.१.३३ त्राकडि तोलिवउ मेर ।^{११}
 २.१.३४ त्रुटिस्यइ अति ताणियो ।^{१२}
 २.१.३५ त्रुटी नाडि न को काज, करि सकइ तउ करि पहिली सवरणा ।^{१३}
 २.१.३६ थूकि गिलइ नहि कोइ ।^{१४}
 २.१.३७ दाहिनी आंख सखी मोरी फरूकी, रंग में भंग जणावइ हो ।^{१५}
 २.१.३८ दरिद्र लाधो निधान किम छोडइ ।^{१६}

१. वही, (१.३.३)
 २. वही (१.७.११)
 ३. मृगावती चरित्र-चौपाई (१.५.१३)
 ४. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.९. दूहा २)
 ५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री अमरसर मंडण शीतलनाथ बृहत्स्तवनम् (९)
 ६. सीताराम-चौपाई (६.१.४३)
 ७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री राजुल-रहनेमि गीतम् (२)
 ८. मृगावतीचरित्र-चौपाई (१.७.२)
 ९. सीताराम-चौपाई (२.३.१२)
 १०. वही (८.१.१३)
 ११. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.९.२४)
 १२. सीताराम-चौपाई (६.७.१२)
 १३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अंतसमये जीव-निर्जरा गीतम् (६)
 १४. सीताराम-चौपाई (९.३.११)
 १५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिनाथ फाग (५)
 १६. सीताराम-चौपाई (८.१.३)

- २.१.३९ दूध थकां कुंण छासिनइ पीवइ ।^१
 २.१.४० धुरि थी जे हुवइ धीठ, नहीं रहइ ते नीठ ।^२
 २.१.४१ निसवाद वेलू ना कउलीआ ।^३
 २.१.४२ पंचो माइं कहीजियइं, परमेसर परसाद ।^४
 २.१.४३ पाछा नावइं जे मुआ ।^५
 २.१.४४ पेटइ को धालइ नहीं, अति वाल्ही छरी ।^६
 २.१.४५ पोलि ताला जइया ।^७
 २.१.४६ बधिरस्य ग्रन्थकोटि श्रवणेऽपि नावबोधो जायते ।^८
 २.१.४७ बिछावणो लह्यो ऊंघतां ।^९
 २.१.४८ बातें पापइ किमही न थाइ ।^{१०}
 २.१.४९ बूढ़ा ते किम बाल कहीजइ ।^{११}
 २.१.५० भूखो भोजन खीर बिण जीम्यां छोडइ नहीं ।^{१२}
 २.१.५१ माय बाप आगल बोलतां जी, बालक केही लाज ।^{१३}
 २.१.५२ मंजार मुखि छछुंदरी ।^{१४}
 २.१.५३ मनहूइ राजी तउ क्या करइ काजी ।^{१५}
 २.१.५४ माल मलूक महल मन हरणा, साथइ नहीं आवइ इक तरणा ।^{१६}

१. वही (२.३. दूहा १३)
 २. नलदवदंती-रास (ढाल ४ से पूर्व सोरठा ३)
 ३. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.९.२४)
 ४. सीताराम-चौपाई (५.१.४)
 ५. सीताराम-चौपाई (३.२०)
 ६. वही (८.१.१७)
 ७. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 ८. वही, पृष्ठ २०६
 ९. सीताराम-चौपाई (४.४. दूहा ४)
 १०. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१९).
 ११. वही, हित शिक्षा गीतम् (२)
 १२. सीताराम-चौपाई (८.१.२)
 १३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, आलोचनागर्भित श्री शत्रुञ्जय-मण्डन आदिनाथ भास (७)
 १४. मृगावती चरित्र-चौपाई (१.५.६)
 १५. शांब-प्रद्युम्न-चौपाई (१६.२)
 १६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अंतसमये जीव-निर्जरा गीतम् (४)

- २.१.५५ मुद्गशैलःपुष्करावर्त्तमेघप्लावितोऽपि नार्द्रा भवति ।^१
 २.१.५६ मूंग मांहि दुल्यो घीय ।^२
 २.१.५७ मेरु अधिक कनक दीयउ ।^३
 २.१.५८ रतन चिंतामणि लाभतां, कुण ग्रहइ कहउ काच ।^४
 २.१.५९ राधावेधरी पूतली तीर सुं वींधवी फेरि ।^५
 २.१.६० रूपइया खरा आगिमइ घाल्यां कसमल जायइ ।^६
 २.१.६१ लशुनं कर्पूरवासितमपि न सुगन्धं स्यात् ।^७
 २.१.६२ लिख्या मिटइं नहि लेख ।^८
 २.१.६३ लोभ ते किसूं न थाई ।^९
 २.१.६४ वन्ध्याया वा बहूपचारैपि न संतान-प्राप्तिः ।^{१०}
 २.१.६५ वामी दुरगा बोलती, पंथी करैय प्रयाण ।^{११}
 २.१.६६ विषममृतमिश्रितमपि न मृष्टं भवति ।^{१२}
 २.१.६७ समरथ सज्जा देई ।^{१३}
 २.१.६८ सरखे सरखुं सहु मिल्युं ।^{१४}
 २.१.६९ सरज्यां बिन सखि क्युंकर पाइयइ, मन मान्या मेलाया ।^{१५}
 २.१.७० साठी चोखा सूपडइ, छडतां ऊजला थायइ ।^{१६}

१. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 २. सीताराम-चौपाई (४.४ दूहा ४)
 ३. मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.२.१८)
 ४. वही (२.३ दूहा १३)
 ५. थावच्चासुत ऋषि-चौपाई (१.९.२४)
 ६. सीताराम-चौपाई (१.२.१८)
 ७. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 ८. सीताराम-चौपाई (५.३.१)
 ९. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१३.४)
 १०. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०७
 ११. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (१.१२.१९)
 १२. कालिकाचार्य-कथा, पृष्ठ २०६
 १३. सीताराम-चौपाई (५.१.२७)
 १४. चम्पकश्रेष्ठि-चौपाई (२.४.१)
 १५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिनाथ फाग (६)
 १६. सीताराम-चौपाई (१.२.१८)

- २.१.७१ सुपंडित सुभाषित रसियो किम तजइ ।^१
 २.१.७२ साप मुखइ मुहिं उंदरी ।^२
 २.१.७३ सीह मुखइ पडी मिरगली, सीचाणइ मुख चिडकली ।^३
 २.१.७४ सुख सरसव दुख मेरु समाणि ।^४
 २.१.७५ सूतउ सींह जगायउ ।^५
 २.१.७६ सोनइ सामि न होई ।^६
 २.१.७७ हुवनहारी बात ते हुवइ ।^७

वास्तव में समयसुन्दर को कहावतों का विस्तृत ज्ञान था, जो कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। अनेक स्थानों पर उन्होंने एक तथ्य की पुष्टि के लिए अनेक कहावतों का प्रयोग किया है; यथा —

चिंतामणि हो जउ पायउ रतन्न, तउ काच ग्रहइ नहीं को सही ।
 पंचामृत हो जउ भोजन कीध, तउ खलि खावा किम मन थियइ ।
 कंठ तांइ हो जउ अमृत पीध, तउ खारउ जल कहउ कुण पीयइ ।
 मोती कउ हो जउ पहिरउ हार, तउ चिरमठि कुण पहिरइ हियइ ।
 जसु गांठि हो लाख कोड़ि गरथ, ते व्याज काढी दाम किम लीयइ ।
 घर मांहे हो जउ प्रगट्यउ निधान, तउ देसंतरि कहउ कुण भमइ ।
 सोना कउ हो जउ पुरुसउ सीध, तउ धातुवादि नइ कुण धमइ ।
 जिण कीधा हो जवहर व्यापार, तउ मणिहारी मनि किम गमइ ।
 जिण कीधउ हो सदा हाल हुकम्म, तउ वे तुंकार्यउ किम खमइ ॥^८

२.२ मुहावरे

समयसुन्दर के जन-साधारण की भाषा में भी साहित्य-सर्जन किया था। जनता की भाषा में प्रायः मुहावरों की प्रचुरता रहती है। अतः जनसामान्य में प्रचलित अनेक मुहावरों को उन्होंने सहज ही ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि उनकी कोई भी ऐसी रचना नहीं है, जिसमें मुहावरा-प्रयोग का अभाव हो। यदि प्रयुक्त सभी मुहावरों की यहाँ

१. वही (८.१.२)
२. मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.५.६)
३. वही (१.५.५)
४. मृगावती-चरित्र-चौपाई (३.७.७)
५. वही (२.९.१६)
६. सीताराम-चौपाई (१.२.१७)
७. वही (५.६ दूहा २१)
८. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री अमरसर मण्डण श्री शीतलनाथ बृहत्स्तवनम् (५-९)

चर्चा की जाए, तो अनावश्यक विस्तार हो जाएगा। उदाहरण के लिए कुछ मुहावरे-प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं —

माल मलूक महल मन हरणा।^१

मुग्ध कर लेने की अभिव्यंजना के लिए 'मन हरना' मुहावरा अधिक प्रभावपूर्ण है। इसी प्रकार —

कीरति कारण उपगरण मांड्यउ, लाख लोक घरि लूँटइ।^२

सम्पत्ति लूटने के लिए 'घरि लूँटइ' (घर लूटना) मुहावरा-प्रयोग है।

पुनर्यथा —

मनुष्य जन्म नवि हारो आल, तमे पाणी पहली बांधो पाल।^३

यहाँ कवि कहना चाह रहे हैं कि जीवन को व्यर्थ में मत गमाओ। मृत्यु आने से पूर्व कुछ करणीय कार्य कर लो। इस अभिव्यक्ति के लिए 'जन्म हारना' और पानी आने से पहले 'पुल अथवा बांध बांधना' मुहावरे का प्रयोग अधिक सटीक बना है।

इसी तरह 'मनोरथ माहरउं फलीजो'^४ (मनोरथ फलना), हीयडइ दुक्ख न मायो^५, मन तरसइ^६, खरो शास्त्र खोटो कीयो^७, परचा दादो पूरवे^८ (परचा पूरना—मनोवांछित सिद्ध करना) आदि मुहावरा-प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कविवर समयसुन्दर के साहित्य में कहावतों तथा मुहावरों का बाहुल्य है। उनकी कहावतों से उनके साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष भी उद्घाटित होता है और मुहावरों से लक्षणा शब्द-शक्ति; क्योंकि मुहावरे लक्षणा पर ही आधारित होते हैं।



१. वही, अंतसमये जीव निर्जरा गीतम् (४)
२. वही, हित शिक्षा गीतम् (५)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, व्रत पच्वक्खाण गीतम् (१०)
४. वही, मनोरथ गीतम् (८)
५. मृगावती-चरित्र-चौपाई (१.७.२)
६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री नेमिनाथ फाग (७)
७. वही, सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी (२)
८. वही, वही देरावर-मण्डण जिनकुशलसूरि गीतम् (१)

षष्ठ अध्याय

समयसुन्दर का विचार-पक्ष

विश्व विराट् और व्यापक है। मनुष्य उसका एक घटक है। विश्व में मनुष्य के आविर्भाव के साथ ही विचार या चिन्तन का भी आविर्भाव हुआ। 'उत्तराध्ययन सूत्रचूर्णि'^१ के अनुसार चिन्तन और मनन करना मनुष्य का प्रधान लक्षण है।

समयसुन्दर एक महान् विचारक और चिन्तक थे। उनके विचार और चिन्तन अत्यन्त प्रौढ़ थे। उनके विचार या चिन्तन का मूलाधार है, 'जैन दर्शन'। चूंकि वे जन्म से जैन थे और इसी धर्म में दीक्षित हुए, अतः उनके विचार भी जैन दर्शन से प्रभावित हों - यह स्वाभाविक है। किन्तु जब कोई विचारशील व्यक्ति प्रौढ़ हो जाता है, तो उसके विचार या चिन्तन भी प्रौढ़ होने लगते हैं और वह अपनी मान्यताओं में कुछ संशोधन एवं परिष्कार की अनुभूति करने लगता है। समयसुन्दर पर भी अन्य विचार-धाराओं का आंशिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने उन कतिपय विचार-धाराओं को ग्रहण भी किया। इस तरह अन्य विचार-धाराओं का समागम हो जाने से उनकी विचार-गंगा विस्तीर्ण हो गयी। उनके विचारों में नैतिकता, धार्मिकता एवं दार्शनिकता का त्रिवेणी-संगम है। हम उनकी विचार-धाराओं को संक्षेप में नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं -

१. ईश्वरवाद बनाम अनीश्वरवाद

ईश्वरवादी वह है जो सृष्टि का कर्ता-धर्ता या नियामक एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर या परमात्मा को मानता है। उसके अनुसार भूमण्डल पर जब-जब अधर्म बढ़ता है, धर्म का ह्रास होता है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं और दुष्टों का दमन करके सृष्टि की रक्षा करते हैं, उसमें सदाचार का बीज-वपन करते हैं। इसके विपरीत अनीश्वरवादी वह है जो व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास में विश्वास करता है। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या जीव अपना सम्पूर्ण विकास कर सकता है। वह स्वयं ही अपना नियामक या संचालक है। वह स्वयं ही अपना मित्र है, शत्रु है।^२

महोपाध्याय समयसुन्दर ने अपने सैद्धान्तिक ग्रन्थों में न तो ईश्वरवादिता का समर्थन किया है और न ही निरीश्वरवादिता का। उनके एतद् सम्बन्धी विचार केवल लघु गीतों में ही व्यक्त हैं। उनका भक्तिपरक गीति-साहित्य जहाँ ईश्वरवादिता का समर्थक है, वहाँ उपदेशपरक गीति-साहित्य न केवल निरीश्वरवादिता का समर्थक है, अपितु ईश्वरवादिता

१. उत्तराध्ययनचूर्णि (३)

२. द्रष्टव्य - समणसुत्तं, भूमिका, पृष्ठ १०

का विरोधक भी है।

समयसुन्दर व्यवहारिक तौर पर ईश्वरवाद के विरोधक नहीं थे। अपने भक्तिपरक गीतों में उन्होंने परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् तथा संसार-सागर से तारक बताया है। जिस तरह तुलसीदास आदि के भगवान् सब-कुछ कर सकते हैं, वैसे ही समयसुन्दर के भगवान् भी सब-कुछ करने में समर्थ हैं। वे पापी से पापी और घोर अपराधी को भी अनन्त सुख प्रदान कर सकते हैं, उसका उद्धार कर सकते हैं।^१

एक गीत में समयसुन्दर ने परमेश्वर को एक भी माना है। उनके मतानुसार वही एक लोगों में परम्परा-भेद से अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। बाबा आदम, अनादि, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, ईश्वर, देव, परमेश्वर, राम, साईं, गोसाईं, बिल्ला इल्ला, यति, योगी, भुक्तभोगी, निराकार, साकार, निरंजन, दुखभंजन, अलक्ष, एकरूपी, घट-घट-भेदी, अन्तर्यामी, जगद्व्यापी, सहस्रनामी, अरिहन्त आदि सब उसी परम परमात्मा के नाम हैं या विशेषण हैं।^२ जबकि एक अन्य रचना में समयसुन्दर अपने परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने में स्वयं को समर्थ न पाकर कहते हैं कि परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण करना ठीक वैसा ही कठिन है, जैसे आकाश में पक्षी के पंखों के चिह्न को खोजना, जल में मछली की गति के चिह्न को खोजना, गंगा की बालू के कणों को गिनना, मस्तक पर मेरु को वहन करना। जो व्यक्ति कषाय-मुक्त, तपयुक्त और योग-ध्यान की ज्योति से ज्योतित है, वही उन्हें पा सकता है।^३

समयसुन्दर के गीतों से यहाँ हम एक पद्य उद्धृत करते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि यद्यपि समयसुन्दर स्वयं ईश्वरवादिता से प्रभावित थे, लेकिन उनका ईश्वर वह नहीं था जो लोग मानते हैं, वह तो वीतरागी और निस्पृह था —

पणि मुझ नइ संभारज्यो, तुम्ह सेती हो घणी जाणपिछाण।

तुमे नीरागी निस्प्रीही, पणि म्हारइ तो तुमे जीवन प्राण॥^४

समयसुन्दर ने अपने औपदेशिक गीतों में निरीश्वरवाद का समर्थन तो किया ही है, साथ ही साथ ईश्वरवाद का विरोध भी किया है तथा ईश्वरवादियों के प्रति व्यंग्य भी कसे हैं। ईश्वर सृष्टि का स्रष्टा है - यह मानने से वे सर्वथा मुकर जाते हैं। भला, यदि मनुष्य का नियामक ईश्वर को मान लिया जाये, तो बिचारा मनुष्य नितांत असहाय, स्वतन्त्र रूप से संकल्प और पुरुषार्थ करने में असमर्थ और ईश्वरीय हाथों का एक उपकरण मात्र ही होगा। ऐसी दशा में वैयक्तिक विकास और मुक्ति भी स्वाधीन न होकर पराधीन हो जाएगी।

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री महावीरजिन विज्ञप्तिस्तवनम्, पृष्ठ २०३

२. वही, श्री परमेश्वर भेद गीतम्, पृष्ठ ४४४-४५

३. वही, परमेश्वर-स्वरूप दुर्लभ गीतम् ४४५-४६

४. वही, विहरमान वीसी स्तवनाः, अजितवीर्य जिन गीतम्, पृष्ठ ३८

इसीलिए समयसुन्दर कहते हैं कि मुझे जब भी कर्तार मिलेंगे तो मैं उनसे केवल दो ही बातें पूछूंगा - तू कृपालु है अथवा तू पापी है? यदि तुम कृपालु हो तो वियोग क्यों कराते हो? देवकुमार जैसा पुत्र देकर अधबीच में क्यों छीन लेते हो और पुरुष-रत्न को हर घड़ी क्यों तोड़ते हो? किसी को तुम छत्रपति राजा के रूप में स्थापित कर देते हो, तो किसी को रंक बना देते हो और जिस हाथ से दान दिलवाते हो, उसी हाथ को क्यों तुम दूसरों के आगे फैलाने के लिए मजबूर करते हो।^१ जगत् की सृष्टि करते समय तो तुम उपकारी हो, किन्तु संहार करते समय भी तुम्हें खेद नहीं होता है। आह! यह कैसा असत्य-भरा सत्य है। समयसुन्दर कहते हैं कि मैंने तो एक रहस्य का पता लगा लिया है कि कर्म ही एकमात्र कर्ता है।^२

समयसुन्दर कहते हैं कि परमेश्वर-परमेश्वर सभी कहते हैं, लेकिन वास्तव में क्या किसी ने परमेश्वर का दर्शन किया है? चलो, उसी से पूछें जिसने परमेश्वर को देखा हो। वे आगे कहते हैं कि किसको पूछें? कारण, परमेश्वर अलख, अगोचर, निराकार, निरञ्जन है।^३

समयसुन्दर स्वयं एक प्रखर पण्डित थे और वे पण्डितों को ही ललकार कर सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि पण्डितो! बताओ, इस जगत् की सृष्टि किसने की? यदि कोई अकाट्य युक्ति जानते हो तो कहो, अन्यथा इधर-उधर की बातें छोड़कर सीधे-सादे स्पष्ट रूप से 'न' का उत्तर दे दो।^४

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर समयसुन्दर भक्त-हृदय होकर ईश्वरवादी हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर तार्किक होकर निरीश्वरवाद का समर्थन करते हैं।

२. भाग्य बनाम पुरुषार्थ

पूर्वोपाजित शुभाशुभ कर्म ही भाग्य है और वर्तमान में किया जाने वाला प्रयत्न पुरुषार्थ है। समयसुन्दर यद्यपि भाग्य को प्रमुखता देते हैं, किन्तु वे पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं करते। उनके अनुसार प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए भाग्य और पुरुषार्थ — दोनों की विद्यमानता आवश्यक है।

भाग्य की प्रबलता बताते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि पुरुषार्थ चाहे जितना किया जाय, लेकिन बिना भाग्य के वह फलीभूत नहीं हो सकता है। मनुष्य कार्य की सिद्धि के लिए अनेक उपाय सोचता है, परन्तु बहुत उपाय सोचने अथवा करने से भवितव्यता टल नहीं सकती। पूर्व दिशा में उदीयमान सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हो जाए

१. समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, करतार गीतम्, पृष्ठ ४४३-४४

२. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५१५-१६

३. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५१५

४. वही, जगसृष्टिकार परमेश्वर-पृच्छा गीतम्, पृष्ठ ४४३

तथा अविचल मेरु भी चलायमान हो जाए तो भी लिखित (भाग्य) पुरुषार्थ से कभी नहीं मिट सकता।^१ भावी एक घड़ी के लिए भी घट-बढ़ नहीं सकती है। होनहार तो होकर ही रहता है।^२ समयसुन्दर का कहना है कि भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का संयोग होने पर प्रत्येक मनोवांछित सिद्ध किया जा सकता है।^३

समयसुन्दर के विचारानुसार यद्यपि भवितव्यता प्रबल है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पुरुषार्थ फलीभूत नहीं होता है। यदि व्यक्ति भाग्य पर भरोसा रखकर पुरुषार्थ नहीं करेगा तो वह साध्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। यदि किसी व्यक्ति के सामने भोजन की थाली रख दी जाय और अब वह यह सोचे कि भाग्य में होगा तो पेट भर जाएगा तो यह सम्भव नहीं है। यहाँ कौर उठाने रूप पुरुषार्थ की ही अपेक्षा है। वस्तुतः पुरुषार्थ से ही सब कार्यों की सिद्धि होती है।^४

समयसुन्दर कहते हैं कि यह कभी मत कहो कि एकाकी भाग्य ही प्रबल है अथवा एकाकी पुरुषार्थ ही प्रबल है। वे दोनों का समन्वय करते हुए कहते हैं कि निश्चय दृष्टि से भाग्य प्रबल है तथा व्यवहार दृष्टि से पुरुषार्थ। निश्चय और व्यवहार दोनों का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है। अतः भाग्य एवं पुरुषार्थ दोनों का समन्वय अनिवार्य है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है।^५

३. स्याद्वाद

समयसुन्दर लिखते हैं कि स्याद्वाद तीर्थङ्कर वचन और जैन-दर्शन का मूल है। इसमें पारस्परिक वचनों में विरोध की सम्भावना नहीं रहती है। स्याद्वाद की सिद्धि नय से होती है। नय सात है- १. नैगमनय, २. संग्रहनय, ३. व्यवहारनय, ४. ऋजुसूत्रनय, ५. शब्दनय, ६. समभिरूढनय और ७. एवंभूतनय। इन सप्तनयों से अनन्त धर्मात्मक वस्तु का परीक्षण किया जाता है। इसलिये ये सुनय हैं। कुनयों में एक वस्तु को सदात्मक मानने वाले सांख्य, असदात्मक कहने वाले माध्यमिक, अभिलप्यमान मानने वाले वैयाकरण प्रभृति एकान्तवादी परिगणित हैं। वस्तुतः एक वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं और अनन्त धर्मात्मक वस्तु का पर्यालोचन उपर्युक्त सुनयों से अतीव सुगम है।^६

४. साम्प्रदायिक सहिष्णुता

समयसुन्दर की विचार-धारा अनाग्रही एवं समन्वयवादी हैं। समयसुन्दर के

१. वही, उद्यम भाग्य गीतम्, पृष्ठ ४३९
२. चम्पक श्रेष्ठि-चौपाई (३-१-२)
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, उद्यम भाग्य गीतम्, पृष्ठ ४३९
४. चम्पक श्रेष्ठि-चौपाई (ढाल ७ दूहा ३.४; ८-२)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५२१
६. सप्तस्मरणस्तववृत्ति, द्वितीय स्मरणम्, पृष्ठ १७

समय में आचार एवं विचार सम्बन्धी मतभेदों को लेकर जैन धर्म में अनेक गच्छ थे। उनमें पारस्परिक सौहार्द्र भी नहीं था। यह बात समयसुन्दर द्वारा किये गये उल्लेखों से भी स्पष्ट है।

समयसुन्दर की मान्यता थी कि हमें आग्रहवादी नहीं बनना चाहिये। दूसरे के सत्य को अस्वीकार नहीं करना चाहिये एवं वैचारिक संघर्ष की भूमिका तैयार नहीं करनी चाहिये। वे कहते हैं कि जिनधर्म (जैनधर्म) जिनधर्म सभी चिल्लाते हैं, लेकिन सभी अपने-अपने मतों की ही स्थापना करते हैं, न कि जिनधर्म के सिद्धान्तों की। सभी जिनधर्म के अनुयायी हैं, लेकिन सबकी समाचारी, सबका आचरण अलग-अलग है। समयसुन्दर का कहना है कि लोग इतने आग्रहवादी हैं कि दूसरे के सत्य को मान्य ही नहीं करते। ऐसे लोगों का कहना है कि हम ही केवल सच्चे हैं, दूसरे झूठे हैं। स्वमत की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करना समयसुन्दर के अनुसार अनुचित है। वे कहते हैं कि हम ही सच्चे, दूसरे झूठे हैं—यह कहना छोड़ दो। सत्य तो वही है, जो वीतरागदेव-कथित है।^१

समयसुन्दर एक अन्य रचना में कहते हैं कि इस समय चौरासी गच्छ मुख्य रूप से देखे जाते हैं, लेकिन उन सबके भिन्न-भिन्न आचार हैं। सभी गच्छानुयायी अपने-अपने गच्छ को एक-दूसरे से श्रेष्ठ बता रहे हैं। अब ऐसी स्थिति में व्यक्ति सोचता है कि हमें कि गच्छ की विधि करनी चाहिये। समयसुन्दर कहते हैं कि इस समय परम ज्ञानी कोई विद्यमान नहीं है, जिससे शंका का निवारण किया जा सके। अतः प्रत्याक्षेप कभी नहीं करना चाहिये। किसी भी गच्छ के प्रति अप्रीति नहीं रखनी चाहिये।^२

समयसुन्दर बताते हैं कि जिनशासन में गच्छों के कारण बहुत संघर्ष हुए हैं और पता नहीं अभी तक कितने संघर्ष होंगे। वे कहते हैं कि सभी लोग अपने-अपने गच्छों के प्रति इतना महत्व रखते हैं और उसे ही पकड़ कर बैठ गये हैं^३ यह कौन जानता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? सूत्र सिद्धान्त सबके वही है। समयसुन्दर कहते हैं कि तुम पुरुषार्थ को समझो। अपने हृदय में मन्थन करके सोचो कि तुमने गच्छवाद में पड़कर कितना राग-द्वेष किया है।^४

तापागच्छवाले कहते हैं 'इरियावही' सामायिक-पाठ उच्चारण करने से पहले होती है, जबकि खरतरगच्छवाले कहते हैं, 'इरियावही' सामायिक-पाठ ग्रहण करने के बाद होती है। अचलगच्छवाले मुँहपति (मुखवस्त्रिका) के बारे में अन्य दृष्टिकोण रखते

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, वीतराग-सत्य वचन गीतम्, पृष्ठ ४४७

२. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (६), पृष्ठ ५१६

३. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (७), पृष्ठ ५१६

४. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (११), पृष्ठ ५१७

हैं, लौकागच्छवाले जिनप्रतिमा-पूजन का विरोध करते हैं तो हुँबड़ (दिगम्बर) स्त्री-मुक्ति को नहीं मानते हैं। समयसुन्दर का कथन है कि इनमें से कोई भी यदि केवली के समीप जाएगा तो उसका संशय दूर हो जाएगा और यथार्थ स्थिति जान जाएगा।^१ खरतर, तपा, आंचलिया, पार्श्वचन्द्र, आगमिया, पूनमिया, दिगम्बर लुंका आदि चौरासी गच्छों के भी अनेक प्रकार हैं। अहंकारवश ये सभी अपने-अपने गच्छ की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील हैं, किन्तु समयसुन्दर इन आग्रहों के परे सत्य का दर्शन करते हैं। उनका कथन है कि भगवान् ने जो कह दिया है, उसी को कहा करो तथा उसी की स्थापना करने का प्रयत्न करो।^२

समयसुन्दर अपने गच्छानुयायियों को भी सावधान करते हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि हमारा गच्छ सबसे बड़ा है और व्याख्यान में सबसे अधिक इसी गच्छ में उपस्थिति होती है, किन्तु इस बात का कभी भी गर्व मत करना। समय का खेल बड़ा विचित्र है। समय-समय पर हानि भी होती है। कौन जानता है कि कौन सा गच्छ प्रमाणभूत एवं जीवित रहेगा?^३

गच्छनायकों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि पूर्ववर्ती गच्छनायक अति महान्, क्षमाशील और गम्भीर हुआ करते थे, परन्तु सम्प्रतिकालीन गच्छनायक स्वेच्छानुसार आचरण करते हैं और यदि कोई उन्हें कुछ कहता है, तो वे उस पर कोई ध्यान नहीं देते। वस्तुतः उन पर कोई हटक नहीं है। उनके अनुसार वे गच्छनायक तरकश में थोथे तीर के समान हैं और रात-दिन खिन्न रहते हैं।^४

५. वैचारिक सहिष्णुता

सामान्यतया यह मान्यता है कि मिथ्यादृष्टि के द्वारा निर्मित भारत (महाभारत) तर्क-व्याकरण काव्यादि ग्रन्थों के पठन से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है, अतः सम्यग्दृष्टियों को इन्हें पठन नहीं करना चाहिये, किन्तु समयसुन्दर के अनुसार 'मिथ्याश्रुतस्यापिसम्यग्दृष्टि परिगृहितत्वेन सम्यक्श्रुतत्वेन भणनात्'। अर्थात् मिथ्याश्रुत को भी सम्यग्दृष्टि से गृहित करने पर वह सम्यक्श्रुत ही होता है। उनका कथन है कि वर्तमान में मैंने भी न केवल अपने सिद्धान्तों या शास्त्रों पर टीका आदि लिखी है, हमारे पूर्वज जैनाचार्यों ने भी जैनदर्शन के अतिरिक्त बौद्ध, सांख्य, जैमिनीय, नैयायिक, चार्वाक आदि दर्शनों पर ग्रन्थ लिखे हैं। वास्तव में यदि हम दूसरों के व्याकरण, तर्क आदि को नहीं समझेंगे, तो हम मन्दमतिवान् लोग अपने सिद्धान्तों एवं शास्त्रों को भी सुगमता से नहीं समझ पाएंगे। जब तक हम

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (११), पृष्ठ ५१७

२. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१२), पृष्ठ ५१७

३. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१३), पृष्ठ ५१७-१८

४. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१४), पृष्ठ ५१८

स्वसिद्धान्त-शास्त्रों के साथ-साथ परसिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन नहीं करेंगे, तब तक हम प्रतिपक्ष के समक्ष वाद-विवाद या शास्त्रार्थ में स्वपक्ष का समर्थन युक्तिपूर्वक नहीं कर सकेंगे। वे पुनः पुनः इस बात को दोहराते हैं कि पुराण, रामायण, महाभारत अथवा कोई भी ग्रन्थ हो, यदि हम उनका सम्यग्दृष्टि से अध्ययन करेंगे तो वह हमारे लिए सम्यक्शास्त्र ही होगा और वह स्वसिद्धान्तवत् ही हो जाएगा।^१

६. सर्ववेश-मुक्तिगमन

जैनधर्म में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर- ये दो प्रधान आम्नाय हैं। इनमें दिगम्बर मत मुक्ति के लिए नग्नता को अनिवार्य मानता है, क्योंकि स्त्री नग्न नहीं रह सकती, अतः उसे स्त्री-मुक्ति स्वीकार नहीं है, जबकि श्वेताम्बर मत स्त्री-मुक्ति को स्वीकार करता है। साथ ही यह भी मानता है कि गृहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है।^२

इस संदर्भ में समयसुन्दर समन्वयवादी हैं। उनका कहना है कि केवल श्वेताम्बर ही मुक्त हो सकते हैं अथवा दिगम्बर ही मुक्त हो सकते हैं, यह बात नहीं है। हर कोई वेश-लिंग वाला मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जो भी निरञ्जन का ध्यान लगायेगा, योग-मार्ग को अपनायेगा, वह निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त करेगा। शैव, श्वेताम्बर, दिगम्बर, हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान (शेख), श्रमण, ब्राह्मण, तापस, सन्यासी, श्रृंगीनादी, नग्न-जटाधर, करपात्री, भस्मभूषित योगी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि सभी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।^३

७. स्त्री-मुक्ति

स्त्री मोक्षपद को प्राप्त नहीं कर सकती (दिगम्बर मत)-यह बात समयसुन्दर को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि जैनधर्म में मोक्षपद प्राप्त करने के लिए नर अथवा नारी का कोई विभाजन नहीं किया गया है। जो लोग स्त्री के मुक्तिगमन का निषेध करते हैं, उनके पास भी इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर वे सिद्ध कर सकें कि स्त्री मुक्तिगमन नहीं कर सकती।

समयसुन्दर के अनुसार तो जो रत्नत्रय- सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र-की सम्यक् रूप से साधना करता है, वह मोक्षपद को निश्चित रूप से प्राप्त करेगा, फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।^४

८. गुरु

समयसुन्दर ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र का रूप त्रिविध साधनामार्ग पर आरूढ़ आदर्श पुरुषों के लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार गुरु महान् होते हैं।

१. विशेषशतक (१८)
२. द्रष्टव्य - जैनधर्मसार, पृष्ठ १७
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सर्वभेषमुक्तिगमन गीतम्, पृष्ठ ४३९-४०
४. विशेषशतक (७६)

मार्ग-दर्शन के लिए गुरु ही सबसे अधिक सहायक हैं। गुरु दीपक है, जो शिष्य को साधना-पथ पर सुचारु रूप से चलने के लिए आलोक दिखाता है। गुरु चन्द्रमा है, जो शिष्य के मन में उत्पन्न होने वाले उद्वेगों को शान्त करता है, शिष्य को आत्मशान्ति रूप शीतलता प्रदान करता है। भव-समुद्र से पार मोक्ष-तट पर उतारने वाला गुरु है। गुरु महान् उपकारी है।^१

समयसुन्दर गुरु के व्यक्तित्व को महान् तेजस्वी मानते हैं। वे गुरु की वाणी को अमृत तथा मोक्ष की निसैनी मानते हैं। वे कहते हैं कि गुरु के नयन, वचन और मुख के दर्शन से परम आनन्द होता है।^२

समयसुन्दर के अनुसार वे निर्ग्रन्थ साधु गुरु हैं, जो पाँच महाव्रतों के पालक हैं, वीतरागदेव-कथित धर्म के आराधक हैं, संसार-सागर के उद्धारक और मोक्ष के साधक हैं।^३ वे कहते हैं कि वस्तुतः गुरु वह है, जो शुद्ध प्ररूपणा करता है और यत्नपूर्वक गमनागमन आदि प्रत्येक क्रिया करता है। स्वयं भी भव-सागर से तिरता है और दूसरों को भी तारता है।^४

समयसुन्दर ने तीन आध्यात्मिक पुरुषों को गुरु कहा है- १. आचार्य, २. उपाध्याय और ३. साधु। ये तीनों ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार (पुरुषार्थ)- इन पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं और दूसरों से पालन करवाते हैं।^५

९. संघ

जैनधर्म में संघ को बहुत महत्त्व दिया गया है। सम्यक्सुन्दर भी संघ को महान् समझते थे। संघ से उनका अभिप्राय है श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका का चतुर्विध समुदाय। उनकी मान्यता है कि संघ दुःखियों के दुःख का हर्ता है। यह माता-पिता के समान हितकर और वल्लभ है।^६

१०. धर्म

जैनधर्म में सामान्यतया 'धम्मो वत्थु सहावो'^७ (धर्मः वस्तुस्वभावः) कहकर जीव के निज-स्वभाव को धर्म कहा जाता है। समयसुन्दर ने धर्म का जो अर्थ और लक्षण

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री जिनसिंहसूरि गीतानि, पृष्ठ ३८७
२. वही, वधावा गीतम्, पृष्ठ ३८३
३. यति-आराधना (पत्र २)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, ५१६
५. सप्तस्मरणवृत्ति, चतुर्थस्मरण, पृष्ठ ३१
६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री संघगुण गीतम् (१-४)
७. समणसुत्तं (८३)

बताया है, वह इससे कुछ भिन्न है। उनके अनुसार 'धर्मो दुर्गति प्रपंचन्तु धारणा लक्षणम्' है।^१ यही बात उन्होंने अपनी एक अन्य रचना में कही है कि 'दुरगति पडतां द्यइ आडी बांहि श्रीजिनधर्म।'^२ इस तरह समयसुन्दर के मतानुसार धर्म दुर्गति में गिरते हुए को धारण करता है। यही धर्म का लक्षण है और यह उत्कृष्ट प्रधान मंगल है। समयसुन्दर की मान्यता है कि वही वास्तव में धर्म है जो केवलज्ञानी वीतराग द्वारा भाषित है, हिंसा से प्रतिकूल है, जीवदया ही जिसका मूल है और जो मुक्तिमार्ग में पाथेय के समान है।^३

समयसुन्दर लिखते हैं कि इस असार लोक में यदि कोई सार वस्तु है, तो वह धर्म ही है।^४ भव-भ्रमण से छुटकारा दिलाने वाला यही एक मात्र परम आधार है।^५ धर्म तो एक कल्पवृक्ष के समान है। इसकी छाया शीतल है, जो इसका सिंचन करेगा वह मुक्ति के फल को प्राप्त करेगा।^६

समयसुन्दर ने धर्म के चार अङ्ग माने हैं— दान, शील, तप और भाव।^७ इन चारों पर समयसुन्दर के विचार इस प्रकार हैं—

१०.१ दानधर्म

समयसुन्दर के अनुसार दान धर्म-रथ के चार पहियों में से एक है। उन्होंने दान करना अनिवार्य माना है। वे कहते हैं कि यद्यपि कुछ लोग यह मानते हैं कि दान से धन का ह्रास होता है, पर वह गलत है। दान से धन घटता नहीं अपितु बढ़ता है। यह इहलोक एवं परलोक — दोनों में लाभदायक है। इस लोक में यह सुयशकर है और परलोक में सम्बल है। इससे सारा विश्व वशीभूत होता है। जनता प्रथम पहर में दाता का नाम-स्मरण करती है। इस तरह दान का फल प्रत्यक्ष है।^८

यद्यपि समयसुन्दर ने दानधर्म को श्रेष्ठ अवश्य माना है, किन्तु वे इस बात की ओर भी संकेत करते हैं कि दान में आडम्बर की भी सम्भावना हो सकती है। उन्होंने

१. दशवैकालिकवृत्ति (पृष्ठ १)
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (५)
३. श्रावकाराधना (पत्र १)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव-प्रतिबोध गीतम् (१)
५. वही, जीव-प्रतिबोध गीतम् (१)
६. वही, धर्ममहिमागीतम् (६)
७. (क) समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दान-शील-तप-भाव संवाद (ढाल ५)
(ख) वही, धर्ममहिमा गीतम् (१)
८. (क) समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दानशील-तप-भाव-संवाद (ढाल १ एवं उसके पूर्व के दोहे)
(ख) वही, दान गीतम् (१-४)

सूचित किया है कि यद्यपि दान से पुण्य-कर्म का बन्ध होता है और यह शुभ भावों में प्रवृत्ति के लिए एवं सांसारिक आसक्तियों से मुक्ति दिलाने में सहायक होता है, किन्तु अन्ततः यह कर्मबन्ध ही है और कर्मबन्ध चाहे शुभ भी क्यों न हो, पुनः संसार-प्राप्ति कराता है।^१

समयसुन्दर ने दान पाँच प्रकार का कहा है - १. अभयदान, २. सुपात्रदान, ३. अनुकम्पादान, ४. उचितदान और ५. कीर्तिदान।^२ समयसुन्दर ने दान के सम्बन्ध में एक प्रश्न भी उपस्थित किया है कि श्रावक यदि साधु के अलावा अन्य दर्शनियों को भोजनादि दान देता है, तो उसके सम्यक्त्व में दोष आता है या नहीं? यदि वह दान देता है, तो असाधु भी साधु के समान हो जायेगा और यदि वह दान नहीं देता है, तो यह लोकविरुद्ध है एवं निर्दयता का सूचक है। समयसुन्दर इस समस्या का समाधान करते हुए कहते हैं कि मोक्षफल के रूप में दान देते समय पात्र-अपात्र का विचार किया जाता है, किन्तु अनुकम्पा से अन्य दर्शनियों को भी भोजनादिदान देना चाहिये।^३ उन्होंने लिखा है कि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका - ये दान देने के लिए सुपात्र हैं।^४

१०.२ शीलधर्म

जैन मनीषियों ने शील को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। समयसुन्दर शील का आदर्श रूप में पालन करने वालों के प्रति नतमस्तक थे। शील के सम्बन्ध में उनका विचार है कि यही संसार में सबसे बड़ी चीज है। शील रूपी आभूषण का धारक परम सुन्दर लगता है और वह शिव-सुख-संपदा को प्राप्त करता है।^५ समयसुन्दर का कथन है कि यदि कोई स्वर्ण का जिनमन्दिर निर्मित करवाता है और करोड़ों का दान देता है तो भी वह शील का पालन करने वाले से बड़ा नहीं है। शील का इतना माहात्म्य है, कि इससे सभी संकट दूर हो जाते हैं, यह सौभाग्य और यशकारक है, इससे देवों का सान्निध्य प्राप्त होता है। शील के प्रताप से सर्प डसता नहीं है, अग्नि शीतल हो जाती है, अरि-करि और केशरी का भय समाप्त हो जाता है। वस्तुतः इससे बड़ा वैराग्य कुछ नहीं है। भव-भ्रमण से मुक्ति दिलाने में यह पूर्णतः समर्थ है।^६

समयसुन्दर के विचारानुसार शील सुरतरु है, जो जिनेश्वर द्वारा रोपित है। इसकी सुरक्षा करना प्रत्येक शीलवान के लिए आवश्यक है। उन्होंने ब्रह्मचारी को अपने ब्रह्मचर्य

१. वही, दान-शील-तप-भाव-संवाद (ढाल ३ से पूर्व, दोहा १-२)
२. चातुर्मासिक व्याख्यान (पत्र १)
३. विशेष शतक (२२)
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी (१९)
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, शील गीतम् (१)
६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दान-शील-तप-भाव-संवाद (ढाल २ से पूर्व दूहा ४-६)

की रक्षा के लिये निम्नलिखित बातों से बचने का निर्देश किया है —

१. स्त्रियों से आकीर्ण स्थान, २. मनोरम स्त्री-कथा ३. स्त्रियों का परिचय, ४. उनके अंगोपांगों को देखना, ५. उनके कूजन, रोदन, गीत और हास्ययुक्त शब्दों को सुनना, ६. भुक्त भोगों और सहवास-स्थान को स्मरण करना, ७. अति पौष्टिक भोजन-पान, ८. मर्यादा से अधिक भोजन-पान, ९. शरीर को शृंगारित करना।^१

उक्त सभी बातें त्याज्य हैं। इन्हें समयसुन्दर ने 'नव वाड़' नाम दिये हैं। इन नववाड़ों के द्वारा शील रूपी कल्पवृक्ष की रक्षा करनी चाहिये। प्रभुता इसके पत्ते हैं, सुख इसके फूल हैं और फल इसका मुक्ति है, जो अत्यन्त मनोहर एवं मधुर है।^२ समयसुन्दर ने 'तप' का मानवीकरण करके उसके द्वारा शील की निम्नलिखित शब्दों में निन्दा भी करवाई है —

सरसा भोजन तइ तज्या, न गमइ मीठी नाद ।
देह तणी सोभा तजी, तुझ नइ किस्यउ सवाद ॥
नारि थकी डरतउ रहइ, कायरि किस्यउ बखाण ।
कूड कपट बहु केलवी, जिम तिम राखइ प्राण ॥
को बिरलउ तुझ आदरइ, छांडइ सह संसार ।
एक आपतुं भाजतउ, बीजा भांजइ च्यार ॥^३

१०.३ तपधर्म

समयसुन्दर ने तप को शरीर एवं आत्मा — दोनों के लिए हितकर एवं लाभदायक बताया है। उन्होंने लिखा है कि तप से काया निर्मल होती है, इच्छाओं का निरोध होता है, इन्द्रियाँ वश में होती हैं, परमार्थ सिद्ध होता है और समाज तपस्वी का आदर करता है।^४ उन्होंने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि तप से कुष्टादिक रोग भी समाप्त हो जाते हैं। उत्तम तप से अट्टाईस प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त होती हैं।^५

समयसुन्दर ने तप के दो भेद बताये हैं — १. बाह्य तप और २. आभ्यन्तर तप। बाह्य तप के छह भेद हैं— १. अनशन, २. ऊनोदरिका, ३. वृत्ति-संक्षेप, ४. रस-परित्याग, ५. कायक्लेश और ६. संलीनता। ये मोक्षसाधना के बहिरंग कारण हैं, अतः इन्हें बाह्य तप कहा जाता है। आभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं— १. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान और ६. व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग)। ये मोक्ष-साधना के अन्तरंग

१. वही, नव-वाड़-शील गीतम् (१-१०)
२. वही, नव-वाड़-शील गीतम् (११-१२)
३. वही, दान-शील-तप-भाव-संवाद, पृष्ठ ५८७
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, तप गीतम्, पृष्ठ ४५४
५. वही, दान-शील-तप-भाव-संवाद, पृष्ठ ५८७

कारण हैं, अतः इन्हें आभ्यन्तर तप कहा जाता है।^१ समयसुन्दर ने ये सभी तप करणीय बतलाये हैं। उनका उपदेश है कि आत्म-रूपी वस्त्र कर्म-रूपी मैल से मैला हो गया है, उसे तप रूपी जल से धोकर निर्मल करना चाहिये। आत्मरूपी वस्त्र के स्वच्छ होने पर ही तुम सुन्दर मुक्ति-रमणी का सुख प्राप्त कर सकोगे।^२

१०.४ भावधर्म

भावना (अनुप्रेक्षा) मन का वह भावात्मक पहलू है, जो साधक को उसकी वस्तु-स्थिति का बोध कराता है। समयसुन्दर ने भावनाओं का माहात्म्य प्ररूपित करते हुए कहा है कि दान, शील, तप और भावना के भेद से धर्म चार प्रकार का है, किन्तु इन चतुर्विध धर्मों में भावना ही सर्वप्रधान एवं महाप्रभावी है।^३ दान, शील, तप में भी केवल भावों की प्रधानता है। वास्तव में भावनाशून्य धर्म-कर्म सब निरर्थक हैं। अतः सभी धर्मों में भाव ही प्रमुख है, शेष सब तो गौण हैं। समयसुन्दर कहते हैं कि धर्माचार्य तो इस बात की साक्षी देते ही हैं, व्याकरणाचार्य भी कहते हैं कि दान, शील, तप - तीनों नपुंसक हैं। अतः भावविहीन ये तीनों उपस्थित होकर भी शून्यवत् हैं। जैसे रस के बिना कनक की उत्पत्ति, जल के बिना तरुवर की वृद्धि और नमक के बिना भोजन का रसवान होना असम्भव है, उसी प्रकार भाव के बिना किसी प्रकार की सिद्धि नहीं होती है। यदि कोई भावरहित होकर मंत्र, तन्त्र, मणि तथा औषधि की सिद्धि अथवा देव, धर्म, गुरु की सेवा-पूजा करता है, तो सब व्यर्थ है। यथार्थतः भाव ही सदैव फलीभूत होता है। यही मोक्ष का सोपान है।^४

समयसुन्दर ने निम्नलिखित बारह भावनाओं के चिन्तन में लीन रहने की प्रेरणा दी है —

१. अनित्य-भावना- तन, मन, यौवन, आयुष्य, कुटुम्ब आदि सभी कुछ अनित्य एवं नाशवान् मानना अनित्य-भावना है।
२. अशरण-भावना- वैराग्य-वृद्धि के लिए धन-कुटुम्बादि की अशरणता का चिन्तन अशरण-भावना है।
३. एकत्व-भावना- अपने कर्मों का फल भोगने में सर्व जीवों की असहायता का चिन्तन एकत्व-भावना है।
४. अन्यत्व-भावना- अपने स्वरूप को देहादि से भिन्न देखने की भावना अन्यत्व-भावना है।

१. (क) दशवैकालिकवृत्ति (पृष्ठ १) (ख) चातुर्मासिक व्याख्यान (पत्र १)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, तप गीतम्, पृष्ठ ४५४

३. सीताराम चौपाई (४.१ से पूर्व दूहा १)

४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, दान-शील-तप-भाव-संवाद, पृष्ठ ५८९

५. संसार-भावना- संसार में जन्म-मरण रूप भय देखते हुए इससे मुक्त होने की भावना का पुनः-पुनः चिन्तन संसार-भावना है।
६. लोक-भावना- लोक की रचना, आकृति, स्वरूप पर विचार करते हुए यह चिन्तन करे कि उसका आचार ऐसा हो, जिससे उसकी आत्मा पतन के स्थानों को छोड़कर ऊर्ध्वलोक में जन्म ले अर्थात् लोकाग्र पर जाकर मुक्ति प्राप्त करे — इस प्रकार का चिन्तन करना लोक-भावना है।
७. अशुचि-भावना- शरीर की अशुचिता का बार-बार चिन्तन करना अशुचि-भावना है।
८. आश्रव-भावना- मोहजन्य भावों को और मन-वचन-काया की प्रवृत्तियों की हेयता का चिन्तन आश्रव-भावना है।
९. संवर-भावना- कर्मों के आगमन को रोकने के उपायों पर विचार करना संवर-भावना है।
१०. निर्जरा-भावना- पूर्व में बन्धे हुए कर्मों को नष्ट करने के उपायों का विचार करना निर्जरा-भावना है।
११. धर्म-भावना- जन्म-जरा-मरण रूप इस दुःखमय संसार में धर्म का ही रक्षकरूप में चिन्तन करना धर्म-भावना है।
१२. बोधि-भावना- बोधि प्राप्त करने के लिए अरिहन्त वीतराग का नाम एवं उनके आदर्श गुणों का बार-बार स्मरण करना बोधि-भावना है।^१

समयसुन्दर ने उक्त बारह भावनाओं का बार-बार चिन्तन करने की सलाह दी है। ये सभी भावनाएँ कर्म-जंजीरों को तोड़ने में समर्थ हैं।^२ दान, शील, तप के साथ भाव भी हो, तो धर्म साधक को मुक्ति अवश्यमेव प्रदान करेगा।^३

११. ध्यान

ध्यान एक ऐसा माध्यम है, जो ध्याता का ध्येय के साथ एकता स्थापित करता है। प्रथमतः ध्यान सालम्ब होता है, किन्तु अन्त में ध्याता सालम्ब ध्यान से निरालम्ब तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। समयसुन्दर कहते हैं कि तीर्थङ्कर-ध्यान रूप सूर्य के उदित होने पर मोह-मिथ्यात्व रूप अन्धकार समाप्त हो जाता है।^४ उनके विचारानुसार उत्कृष्ट ध्यान रूपी उद्दिष्ट अग्नि से मनुष्य अनेक भवों में संचित, उपार्जित समस्त कर्मों का नाश कर सकता है।^५

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, बारह भावना गीतम्, पृष्ठ ४५९-६०
२. वही, पृष्ठ ४६०
३. वही, भावना गीतम्, पृष्ठ ४५४
४. सप्तस्मरणस्तववृत्ति, द्वितीयस्मरणम्, पृष्ठ १८
५. वही, पृष्ठ १८-१९

समयसुन्दर ध्यान और प्राणायाम की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ध्यान के यथेष्ट आसन में बैठकर प्राण-वायु को उड्डयन-बन्ध से आबद्ध कर अर्द्धोन्मीलित नेत्रों की नासाग्र दृष्टि से युत होकर मन को नियन्त्रित करके अन्तरात्मा तक पैठा जा सकता है, अथवा प्राण-वायु को बारह अंगुल प्रमाण बाहर निकाल कर उसे वहीं रोके रखना, इसी प्रकार प्राण-वायु को भीतर रोक देना या फिर प्राण-वायु का बाहर-भीतर रेचन करना - प्राणायाम की ये तीन विधियाँ, जिन्हें क्रमशः पूरक, कुम्भक तथा रेचक कहा जाता है, मन को एकाग्र करने में परम सहायक हैं। समयसुन्दर का कहना है कि मनोविजय से ही आत्म-विजय सम्भव है।^१

इस तरह यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि समयसुन्दर पर ध्यान के क्षेत्र में योगकुण्डलिनी उपनिषद् एवं पातंजलयोग-दर्शन से लेकर उत्तरवर्ती जैन आचार्यों का भी प्रभाव रहा है।

१२. अप्रमत्त-जागरण

राग-द्वेष विहीन आत्म-जागृति ही अप्रमत्त जागरण है। समयसुन्दर के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को आत्मा के प्रति सदैव जागृत रहना चाहिये। आत्म-स्वभाव अर्थात् अध्यात्म के प्रति अनुत्साहित नहीं रहना चाहिये। निद्राधीन, प्रमादी या आलसी व्यक्ति उनकी दृष्टि में सदैव अपने समय को व्यर्थ खो देता है।

समयसुन्दर आत्म-जागृति हेतु उद्बोधन देते हुए कहते हैं कि जागो! जीवन को बदलो। प्रभात हो गया है, धर्म-मार्ग पर प्रवृत्त हो जाओ। सुषुप्तावस्था में भय ही भय है। जागृत को कोई भय नहीं है। अतः आलस्य प्रमाद को त्याग देना चाहिये।^२

जैसे-जैसे दिन और रात्रियाँ जाती हैं, वैसे-वैसे मनुष्य का आयुष्य घटता जाता है। मनुष्य-जन्म निष्फल सिद्ध न हो, यह ध्यान में रखना चाहिये। भला, चौदह पूर्वधारी ज्ञानी व्यक्ति को भी प्रमादवशात् निगोद में जाना पड़ा, तो तुम तो अल्पज्ञानी हो। अतः तुम्हारी क्या गति होगी? जगो भाई जगो! धर्म-सूर्य उदित हो गया है, अँधकार विनष्ट हो गया है।

समयसुन्दर ने मोह-माया की निद्रा के निवारणार्थ बार-बार प्रेरणा दी है। उनका कहना है कि मनुष्य का अन्तरंग और बहिरंग — दोनों जागृत रहने चाहिये। उन्होंने लिखा है कि हे मानव! तुम विश्वस्त होकर निद्राधीन मत बनो। सर्प तुम्हारे सिरहाने ही सोया हुआ है, चोर तुम्हारे पीछे-पीछे फिर रहा है, आक्रमण कर देगा। तुम्हें इस बात से

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अध्यात्म सञ्ज्ञाय, पृष्ठ ४७७

२. (क) वही, सूता जगावण गीतम्, पृष्ठ ४२७

(ख) वही, प्रमादत्यागगीतम्, पृष्ठ ४२८

(ग) वही, प्रमादपरित्याग गीतम्, पृष्ठ ४२८

गाफिल नहीं होना चाहिये।^१

समयसुन्दर कहते हैं कि मैंने सो-सोकर रात्रि व्यतीत कर दी, पता नहीं, यह वैरिनी निद्रा कहाँ से आ जाती है। निद्रा कहती है कि यद्यपि मैं बड़ी भोली-भाली हूँ, किन्तु बड़े-बड़े मुनिजनों को भी परास्त कर देती हूँ। वह कहती है कि वस्तुतः मैं यम की दासी हूँ। मेरे एक हाथ में मुक्ति है, तो दूसरे हाथ में फाँसी। समयसुन्दर कहते हैं कि हे बनिया! यदि तुम डूब गए, तो तुम्हारी सारी दुनिया भी डूब जाएगी अर्थात् यदि तुम मर गए, तो तुम्हारे द्वारा बसाई गई दुनिया भी समाप्त हो जाएगी।^२

समयसुन्दर काया के द्वारा जीव को कहलाते हैं कि हे मेरे स्वामी कन्त जीव! तुम जागृत रहो। धर्म-ध्यान का सुख भोगो और भगवान के नाम का स्मरण करो। यदि हम जागृत हैं, तो हमारा धन हमारे पास रहेगा, कोई भी हमें धोखा नहीं दे सकता।^३

१३. मनोगति

मन बड़ा शैतान एवं चंचल है। समयसुन्दर कहते हैं कि आत्मा को तो किसी न किसी प्रकार समझा जा सकता है, अथवा समझाया जा सकता है, किन्तु मन को समझना या समझाना महादुष्कर है। इसे समझा भी कैसे जाय? सोना हो तो उसमें सुहागा मिला, तपाकर पानीवत् बना सकते हैं। लोहा होता तो उसे भी ठोक-पीटकर बराबर बनाया जा सकता था। हाथी-घोड़ों को भी किसी प्रकार वश में किया जा सकता है, किन्तु मन का तो कोई आकार ही नहीं है और वह किसी प्रकार अपनी चंचलता छोड़ता ही नहीं। थोड़े समय के लिए भी ध्यान में स्थिर नहीं होता। समयसुन्दर ने स्वयं इसे ज्ञान-ध्यान से वश में करना चाहा, किन्तु यह उनके हाथ भी न लग सका। कविवर कहते हैं कि भला, जो योगी-मुनियों के वश न हो सके, वह सर्वसामान्य के वश में कैसे हो सकता है?^४

१४. मन-शुद्धि

प्रत्येक साधक के मन की विशुद्धि नितान्त अपरिहार्य है। समयसुन्दर का कथन है कि मन यदि मलसिक्त है, तो साधना कभी भी फलीभूत नहीं हो सकती। मनः शुद्धि के बिना कोई मुक्ति नहीं पा सकता। वे कहते हैं, यदि मनः शुद्धि नहीं हुई, तो भले तुम मस्तक पर केश-जटा धारण करो, मस्तक मुंडाओ, वन में रहकर क्षुधा-तृषा को सही, तीर्थ-स्नान करो, साधु-वेश अंगीकार करो, भस्म लगाओ, वेद-पुराणों का पठन-पाठन करो अथवा लोक में भक्त कहलाओ, किन्तु इनसे किसी भी तरह का कोई लाभ नहीं है। देखिये समयसुन्दर के शब्दों में -

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, अंतरंगबाह्यनिद्रानिवारण गीतम्, पृष्ठ ४३५
२. वही, निद्रा गीतम्, पृष्ठ ४३६
३. वही, अंतरंगबाह्यनिद्रानिवारण गीतम्, पृष्ठ ४३५
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, मन-सञ्ज्ञाय ४२९

एक मन सुद्धि बिन कोउ मुगति न जाइ ।
 भावइ तूँ केस जटा धरि मस्तकि, भावइ तूँ मुंड मुंडाइ ।
 भावइ तूँ भूख तृषा सहि वन रहि, भावइ तूँ तीरथ न्हाइ ।
 भावइ तूँ साधु भेख धरि बहुपरि, भावइ तूँ भसम लगाइ ।
 भावइ तूँ पढ़ि गुणि वेद पुराणा, भावइ तूँ भगत कहाइ ।^१

उक्त बात को ही कवि ने निम्न प्रकार से भी अभिव्यक्त किया है -

कोलो करावउ मुंड मुंडावउ, जटा धरउ को नगन रहउ ।
 को तप्प तपउ पंचागनि साधउ, कासी करवत कष्ट सहउ ॥
 को भिक्षा मांगउ भस्म लगावउ मौन रहउ भावइ कृष्ण कहउ ।
 समयसुन्दर कहइ मन शुद्धि पाखइ, मुगति सुख किम ही न लहउ ॥^२

समयसुन्दर का कहना है कि मन को सदैव निर्मल रखने का प्रयास करना चाहिये ।

मन के विशोधन की प्रक्रिया बताते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि जिनशासन रूपी एक सरोवर है, सम्यक्त्व उसकी पाल है, दान-शील-तप-भाव चार दरवाजे हैं । उस सरोवर में नव तत्त्वों का विशाल कमल प्रस्फुटित है । उसमें मुनि रूपी हंस तैर रहे हैं, जो तप, जप, शम, दम आदि का नीर पीते हैं और आत्मा को प्रक्षालित करते हैं । ऐसे सरोवर में हे धोबी ! तुम अपने मन रूप मैली धोती को स्वच्छ करो । तप के ताप में उसे तपाना, आलोचना की साबुन से धोना । जब अठारह पापों के दाग उड़ जाएँ, तब तत्काल तुम्हारी मन रूपी धोती उज्वल हो जाएगी । समयसुन्दर कहते हैं कि इस मन रूपी धोती को एक बार धो लेने के बाद भी सदैव पवित्र और शुद्ध रखना, क्योंकि यह मन रूपी धोती बड़ी विलक्षण है ।^३

१५. त्रिविध साधना-मार्ग

समयसुन्दर के अनुसार प्रत्येक साधक का गन्तव्य स्थल मुक्ति है । साधक को मुक्ति प्राप्त करने के लिए मुक्ति-मार्ग से यात्रा करनी होगी । मुक्ति-मार्ग की व्याख्या करते हुए समयसुन्दर कहते हैं, 'मुक्तौ मुक्तिपत्तने मार्ग इव मुक्तिमार्गः'^४ अर्थात् मोक्ष रूपी नगर का जो पथ है, वही मुक्ति मार्ग है ।

समयसुन्दर मुक्ति की प्राप्ति के लिए त्रिविध साधना मार्ग प्रस्तुत करते हैं ।

१. वही, मनःशुद्धि गीतम्, पृष्ठ ४३४
२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५१८
३. वही, मनधोबी गीतम्, पृष्ठ ४३०
४. सप्तस्मरणवृत्ति, द्वितीयस्मरण, पृष्ठ १९

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र — यही मुक्ति-मार्ग है।^१ जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र — इस क्रम से त्रिविधि साधना-मार्ग का विधान किया गया है।^२ ज्ञान अथवा दर्शन में पूर्व-पश्च चाहे जिस किसी को रख सकते हैं, क्योंकि बिना ज्ञान के दर्शन सम्यक् नहीं हो सकता और बिना दर्शन के ज्ञान सम्यक् नहीं हो सकता। ज्ञान, दर्शन, चारित्र — तीनों की पूर्णता आवश्यक है।

१५.१ सम्यग्ज्ञान

इसकी व्याख्या करते हुए समयसुन्दर बताते हैं 'यस्तत्तत्त्वागमः स ज्ञानम्'^३ अर्थात् तत्त्व का अवगमन यानि उसे समझना ही ज्ञान है। द्रव्य का अन्य निरपेक्ष निज स्वभाव या सर्वस्व - यही तत्त्व से अभिप्राय है। तत्त्व नौ हैं - जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष।^४

ज्ञान का माहात्म्य बताते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि ज्ञान संसार में उत्कृष्ट वस्तु है। यह मुक्ति-दाता है। यह दीपक है, जो साधक के साधना-मार्ग को आलोकित करता है। ज्ञान-लोचनों का सुविलासक है, यह लोक और अलोक — दोनों का प्रकाश है अथवा प्रकाशक है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य पशु है।^५

समयसुन्दर के अनुसार चारित्र की अपेक्षा ज्ञान सर्वप्रथम है। वे कहते हैं कि पहले ज्ञान, बाद में क्रिया होनी चाहिये, क्योंकि ज्ञान के समान अन्य कुछ नहीं है।^६ ज्ञानी व्यक्ति का ज्ञान तो मरने के बाद भी उसके साथ सर्वत्र चलता है, जबकि क्रिया-चारित्र तो इसी जन्म तक साथ है।^७

ज्ञान और दया की चर्चा करते हुए समयसुन्दर कहते हैं कि दया से भी पहले ज्ञान आवश्यक है। उनके अनुसार जब तक व्यक्ति ज्ञान के द्वारा जीव के स्वरूप को, उसके रक्षण के उपाय को तथा उससे भविष्य में प्राप्त होने वाले फल को नहीं जानेगा, तब तक वह दया अथवा क्रिया क्यों, कैसे और किसकी करेगा?^८

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, चार मंगल गीतम्, पृष्ठ ४८२
२. तत्त्वार्थ सूत्र (१.१)
३. विशेष शतकम् (६६)
४. नौ तत्त्वों पर समयसुन्दर के विचारों को सविस्तार जानने के लिए द्रष्टव्य है, उन्हीं की लिखित 'नवतत्त्व प्रकरण वृत्ति'।
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम्, पृष्ठ २३६
६. वही, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २३९
७. वही, ज्ञानपंचमी वृहत्स्तवनम्, पृष्ठ २३६
८. दशवैकालिकसूत्रवृत्ति, पृष्ठ २१

समयसुन्दर के विचारानुसार एकाकी ज्ञान भी सार्थक नहीं है। समाचरित ज्ञान ही फलदायक हो सकता है। यदि क्रियासहित ज्ञान है, तो वह दुग्धभरित शंख के समान है।^१

समयसुन्दर का विचार है कि ज्ञान न केवल मोक्ष-सुखदायक है, अपितु लौकिक सुख प्रदान करने में भी सहायक है। व्यवहारिक जगत् में ज्ञान का अपना महत्त्व है। वे अपने शिष्यों को अथवा शिष्यों के माध्यम से सभी साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, 'भणउ रे चेला भाई भणउ रे भणउ!' वे अध्ययन का फल बताते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति को बहुत आदर-सम्मान प्राप्त होता है, विहार (पद-यात्रा) अच्छी तरह होता है, अच्छे वस्त्र पहनने को मिलते हैं, पाठक, वाचक आदि सम्माननीय उपाधियाँ प्राप्त होती हैं; जबकि अनपढ़-अज्ञानी व्यक्ति पाप करता हुआ और उत्पीड़ित देखा जाता है। वास्तव में अध्ययन इस लोक और परलोक — दोनों में लाभदायक एवं शोभाकारक है।^२

समयसुन्दर ने ज्ञान के पाँच भेद बताए हैं — १. मति ज्ञान, २. श्रुत ज्ञान, ३. अवधि ज्ञान, ४. मनःपर्यव ज्ञान और ५. केवल ज्ञान।^३

१५.१.१ मतिज्ञान

इन्द्रियाभिमुख विषयों का ग्रहण मतिज्ञान है। समयसुन्दर ने इसके अट्ठाईस भेद बताए हैं।^४

१५.१.२ श्रुतज्ञान

धूम को देखकर वह्नि को जानने की तरह अर्थ से अर्थान्तर का ग्रहण करने वाला मन एवं इन्द्रियों की सहायता से होने वाला परोक्षज्ञान अथवा वाचक से वाच्यार्थ को ग्रहण करने वाला शब्दलिंगज ज्ञान श्रुतज्ञान है। समयसुन्दर ने श्रुत के चौदह भेद कहे हैं।^५

१५.१.३ अवधिज्ञान

मर्यादित देश-काल की अपेक्षा अन्तरित कुछ द्रव्यों को तथा उनके कुछ सूक्ष्म भावों तक को एक सीमा तक प्रत्यक्ष करने वाला ज्ञान-विशेष अवधिज्ञान है। समयसुन्दर के अनुसार इसके भेद असंख्य हैं।^६

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ज्ञानपंचमीवृहत्तवनम्, पृष्ठ २३६

२. वही, पठनप्रेरणा गीतम्, पृष्ठ ४३६-४३७

३. वही, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २४०

४. वही, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २४०

५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २४०

६. वही, ज्ञानपंचमी वृहत्तवनम्, पृष्ठ २३६

१५.१.४ मनः पर्यव ज्ञान

दूसरे की मन की बात प्रत्यक्ष जान लेने वाला ज्ञान मनःपर्यव ज्ञान है। समयसुन्दर ने इसके दो भेद बताए हैं।^१

१५.१.५ केवलज्ञान

इन्द्रिय आदि से निरपेक्ष तथा सर्वग्राही आत्मज्ञान केवलज्ञान है। समयसुन्दर लिखते हैं कि केवलज्ञान अभेद होने से यह एक ही प्रकार का होता है। केवलज्ञान का वर्णन करते हुए समयसुन्दर लिखते हैं —

चंद्र सूरज ग्रह नक्षत्र तारा, तेसूं तेज आकाश रे।

केवलज्ञान समउ नहीं कोई, लोकालोक प्रकास रे।^२

१५.२ सम्यग्दर्शन

समयसुन्दर के मतानुसार सम्यग्दर्शन का अर्थ है—‘अवगतेषु तत्त्वेषु रुचिः परमा श्रद्धा आत्मनः परिणामविशेषरूपा सा सम्यग्दर्शनम्।’^३ अर्थात् ज्ञात तत्त्वों में रुचि और आत्मा की परिणाम विशेष जो परम श्रद्धा है, वही सम्यग्दर्शन है। समयसुन्दर ने सम्यग्दर्शन के लिए सम्यक्त्व शब्द का प्रयोग किया है। सम्यक्त्व की परिभाषा उन्होंने उपरोक्त परिभाषा से कुछ भिन्न की है। उन्होंने लिखा है, ‘देवगुरुधर्मतत्त्वत्रयश्रद्धान् स्वरूपं सम्यक्त्वम्’^४ अर्थात् देव, गुरु और धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा रखना ही सम्यक्त्व है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समयसुन्दर के अनुसार सम्यग्श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है, सम्यक्त्व है।

समयसुन्दर की मान्यता है कि सम्यक्त्व प्राप्त होने पर ही ज्ञान और चारित्र सार्थक सिद्ध होते हैं। बिना सम्यक्त्व या दर्शन के ज्ञान और चारित्र का कोई मूल्य नहीं है।^५ समयसुन्दर के अनुसार सम्यक्त्व जैनधर्म का मर्म है और सभी धर्मों का यह मूल है।^६

समयसुन्दर का कहना है कि सम्यक्त्व की प्राप्ति बहुत कठिन है। मुक्ति के आकांक्षी को सम्यक्त्व की आराधना सर्वप्रथम करनी चाहिये, क्योंकि इसकी प्राप्ति होने पर मुक्ति अवश्य मिलती है। सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है — १. क्षायिक सम्यक्त्व,

१. वही, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २४०
२. वही, ज्ञानपंचमी लघुस्तवनम्, पृष्ठ २४०
३. विशेषशतक, पृष्ठ ६६
४. श्रावकाराधना (पत्र १)
५. सप्तस्मरणवृत्ति, चतुर्थस्मरण, पृष्ठ ३१
६. (क) यति-आराधना (पत्र १),
(ख) श्रावकाराधना (पत्र १)

२. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ३. औपशमिक सम्यक्त्व। अति-विशुद्ध जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है और मन्दविशुद्ध जीव औपशमिक सम्यक्त्व।^१

१५.३ सम्यक्चारित्र

आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता के लिए ज्ञान और दर्शन (श्रद्धा) जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी चारित्र-आचरण है। इस सम्बन्ध में समयसुन्दर स्पष्ट लिखते हैं, 'न केवलं ज्ञानमेव दर्शनसहितं मोक्षकरं, किन्तु चारित्रमपि-दर्शनसहितं एव मोक्षसाधकं भवति।'^२ अर्थात् न केवल दर्शन सहित ज्ञान मोक्षकर है, अपितु दर्शनसहित चारित्र भी मोक्ष-साधक होता है। उनके अनुसार सम्यक्त्व उपलब्ध होने पर क्रिया रूप चारित्र की प्रवृत्ति सफल होती है।^३ वस्तुतः चारित्र सम्यक्त्व और ज्ञान-दोनों का अनुगामी हुआ करता है।^४

समयसुन्दर अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि चारित्रशून्य पुरुष का विपुल ज्ञान भी व्यर्थ ही है। वे कहते हैं कि क्रिया-सहित ज्ञान लाभदायक होता है, क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है और अज्ञानियों की क्रिया व्यर्थ है। एकाकी ज्ञान तो पंगु व्यक्ति के समान है। जैसे पंगु व्यक्ति वन में लगी आग को देखते हुए भी भागने में असमर्थ होने से जल मरता है और अन्धा व्यक्ति दौड़ते हुए भी देखने में असमर्थ होने से जल मरता है; अतः ज्ञान और क्रिया के संयोग से ही फल की प्राप्ति होती है, जैसे कि पंगु और अन्धा दोनों यदि मिल जायें तो अपने को वन में लगी आग में जलने से बचा सकते हैं।^५

समयसुन्दर अपने शिष्यों को क्रिया के लिए प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि शिष्यो! तुम क्रिया करो, ताकि तुम्हारा निस्तार हो। प्रमाद और आलस्य का त्याग कर दो। क्रियावन्त देखने में भी बड़ा अच्छा लगता है और कर्मों से मुक्त भी होता है।^६

समयसुन्दर ने चारित्र के सम्बन्ध में जिन तथ्यों का उल्लेख किया है, उनसे यह लगता है कि वे चारित्र के सम्यक् परिपालन के लिए व्यवहार चारित्र और निश्चय चारित्र दोनों की विद्यमानता अपरिहार्य मानते हैं। व्रत-समिति आदि का पालन व्यवहार-चारित्र है और निजस्वरूप में स्थितिरूप, मोह-क्षोभविहीन समता या प्रशान्त भाव निश्चय-चारित्र है। व्यवहार चारित्र का लक्ष्य निश्चय चारित्र है। वस्तुतः निश्चय चारित्र के लिए ही व्यवहार चारित्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसुन्दर द्वारा मान्य प्रस्तुत त्रिविध साधना-मार्ग

१. विशेषशतकम् (६५)
२. सप्तस्मरणवृत्ति, चतुर्थस्मरण, पृष्ठ ३१
३. वही, पृष्ठ ३१
४. वही, पृष्ठ ३२
५. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, क्रियाप्रेरणा गीतम्, पृष्ठ ४३७-३८
६. वही, क्रियाप्रेरणा गीतम्, पृष्ठ ४३८

अत्यन्त प्रशस्त है। इस साधना में व्यक्ति का मस्तिष्क, हृदय और काया — तीनों का योग रहता है। वस्तुतः समयसुन्दर ने जिस साधना-पथ को स्वीकार किया है, वह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र — इन तीनों की साधना के लिए मिथ्यात्व का विसर्जन होना अनिवार्य है। मिथ्यात्व का आवरण हटने पर सम्यक्त्व के सूर्य का प्रकाश प्रकाशित हो जाता है।

१६. कर्म

जैन ग्रन्थों में कर्म सम्बन्धी विचार सूक्ष्मतम, व्यवस्थित और अत्यन्त विस्तृत हैं। कर्मों की शुभाशुभ प्रकृति के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होने की धारणा में समयसुन्दर का अटूट विश्वास था। 'जीव नइ करम माहो मांहि संबंभ अनादि काल नउ'^१ कहकर उन्होंने आत्मा और कर्म का अनादि सम्बन्ध बताया है।

समयसुन्दर ने कर्म का अस्तित्व दो प्रकार से सिद्ध किया है — १. प्रत्यक्ष प्रमाण से और २. अनुमान प्रमाण से। जीव पुण्यकर्म से पुण्यात्मा होता है और पापकर्म से पापात्मा होता है — यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। इस लोक में सौभाग्य, दौर्भाग्य, विरूपता, दरिद्रता आदि का कोई कारण होना चाहिये, क्योंकि कार्य का कोई कारण अवश्य होता है, जैसे घट का कारण मृत्तिका और पट का कारण उसके तन्तु — यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध है।^२

जैनदर्शन में कर्म को द्रव्यकर्म और भावकर्म के रूप में जड़-चेतनमय माना गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है —

करम अचेतन किम हुयउ करता, कहइ किम सकियइ थापी रे।
परमेसर पिण किम हुयइ करता, छइ दुख तउ ते पापी रे॥
आरीसा मांहि मुहइउ दीसइ, कहउ ते पुद्गल केहा रे।
जीव सरूपी करम अरूपी, किम सम्बन्ध संदेहा रे॥
जिनसासन शिव सासन प्रच्छूं, पुस्तक पाना वांचुं रे।
समयसुन्दर कहइ सांसउ न भागउ, भगवत कहइ ते सांचुं रे॥^३

समयसुन्दर का कर्म-सिद्धान्त है — जैसी करणी, वैसी भरणी। उनका कहना है कि जिस समय जीव जैसा भाव करता है, वह उस समय वैसे ही कर्मबन्ध करता है और कर्म-विपाक का उदय होने पर वह उसी के अनुरूप शुभ-अशुभ फल प्राप्त करता है।

समयसुन्दर अनीश्वरवादी विचारधारा के थे; अतः उनका इस बात में बिल्कुल

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, जीव-कर्म-सम्बन्ध गीतम्, पृष्ठ ४४२

२. कल्पलता, पृष्ठ १५२

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, सन्देह गीतम्, पृष्ठ ४४२

विश्वास नहीं था कि ईश्वर मनुष्य का अच्छा या बुरा कुछ भी कर सकता है।^१ प्रत्येक जीव कर्माधीन है। यदि वह शुभ कर्म करता है, तो उसे शुभ फल की प्राप्ति होगी और यदि वह अशुभ कर्म करता है, तो उसे अशुभ फल की प्राप्ति होगी।^२

समयसुन्दर लिखते हैं कि कर्म-मुक्ति ही मोक्ष है। आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय — इन आठ कर्मों से आवृत है।^३ कर्मों के व्यपगत होते ही आत्मा शाश्वतगति रूप मोक्ष को प्राप्त करता है। यदि जीव को हम चन्द्रमा मानें, तो कर्म को मेघ कह सकते हैं। कर्म रूपी मेघ का आवरण हो जाने से आत्मारूपी चन्द्रमा की ज्ञानादि रूप किरणें प्रकट नहीं हो सकतीं। जैसे-जैसे कर्म-मेघ आत्म-चन्द्र के आगे से हटेंगे, वैसे-वैसे आत्मा रूपी चन्द्रमा की विभा प्रकट होती जाएगी। जिस समय कर्म-मेघ पूर्णतः हट जायेंगे, आत्मा मुक्त हो जायेगी।^४

समयसुन्दर के मतानुसार कर्म से छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। यह अतुल बलशाली है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि अतुलबली महापुरुष भी कर्म के चंगुल में फँसे हैं।^५ उनका उपदेश है, 'जीव अछड़ करमें तूँ जीतो, पिणहिव जीपि तूँ कर्म'^६ अर्थात् पहले तो तुम कर्म से विजित हो गये थे, अब तुम कर्म को विजित करो। किये हुए कर्मों को भोगे बिना अथवा क्षय किये बिना छुटकारा नहीं मिल सकता।^७

समयसुन्दर ने मुख्यतः कर्म के दो भेद माने हैं - पुण्यकर्म और पापकर्म।^८

१६.१ पुण्यकर्म

शुभ कर्म को पुण्य कहते हैं। समयसुन्दर ने अभयदान, सुपात्रदान, अनुकम्पादान, साधु-श्रावक-धर्म, तीर्थ-यात्रा, शील-धर्म, तप, ध्यान, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, देव-पूजा, गुरु-सेवा — ये पुण्य के भेद बताए हैं।^९ उन्होंने पुण्य करने के लिए प्रेरणा दी

१. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५१५-१६
२. (क) वही, कर्म छत्तीसी, पृष्ठ ५२६
(ख) कल्पलता (कल्पसूत्र-टीका), पृष्ठ १५१
३. सप्तस्मरणस्तववृत्ति, प्रथमस्मरण, पृष्ठ २
४. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, कर्मछत्तीसी, पृष्ठ ५३२
५. थावचासुत ऋषि-चौपाई (खण्ड १, ढाल ५ से पूर्व दूहा ४)
६. सप्तस्मरणस्तववृत्ति, प्रथमस्मरण, पृष्ठ २
७. (क) समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, कर्मगीतम्, पृष्ठ ४४०
(ख) वही, कर्मछत्तीसी, पृष्ठ ५२६
८. कल्पलता, पृष्ठ १५१
९. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पुण्य-छत्तीसी, पृष्ठ ५३२

है और कहा है कि इसके फल प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। यह पाप का नाशक और सुख का कर्ता है।^१ पुण्य के बिना बोधि-बीज की प्राप्ति नहीं हो सकती।^२

१६.२ पापकर्म

अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। ज्ञानावरण आदि अशुभ कर्म ही पाप हैं। जीव को पापकर्म के कारण ही विविध प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। समयसुन्दर ने जैन परम्परा में स्वीकृत अठारह प्रकार के पापों का उल्लेख किया है। वे हैं -

१. प्राणातिपात, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२. कलह, १३. अभ्याख्यान, १४. पैशून्य, १५. रति-अरति, १६. परपरिवाद, १७. मायामृषावाद, १८. मिथ्यात्वशल्य।^३

समयसुन्दर ने पुण्य-कर्म को करणीय बताया है और पाप-कर्म को त्याज्य।

१७. कषाय

कषाय आत्मा का वैभाविक धर्म है। यह मन की विकृत दशा है। समयसुन्दर ने चार कषाय बताये हैं - १. क्रोध, २. मान, ३. माया और ४. लोभ।^४ ये चारों ही आत्मघातक विकार हैं। उन्होंने इन चारों कषायों को पाप कहा है।^५ उनका कहना है कि कषाय जैसी घातक अन्य कोई वस्तु नहीं है। विष तो मनुष्य को केवल एक बार ही मारता है, किन्तु कषाय अनन्त समय तक मारता है।^६

१७.१ क्रोध

यह क्षमा का शत्रु है। समयसुन्दर के विचारानुसार किसी भी व्यक्ति को क्रोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह क्रोधी को तो आतप्त करता ही है, साथ ही साथ दूसरे को भी तपाता है। क्रोध करते हुए तप-जप करना अर्थहीन है, वह लेखे नहीं लग सकता।^७ समयसुन्दर कहते हैं कि व्यक्ति पहले तो क्रोध ग्रस्त हो जाता है, लेकिन बाद में पछताता है; फिर दुःखी होकर कर्म को दोषी बताता है। अतएव क्रोध का परित्याग कर देना चाहिये और उसके स्थान पर क्षमा धारण करनी चाहिये।^८

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, पुण्य छत्तीसी, पृष्ठ ५३२

२. वही, श्री आदीश्वर ९८ पुत्र प्रतिबोध गीतम्, पृष्ठ २५३

३. (क) वही, अठारह पापस्थानक गीतम्, पृष्ठ ४८३

(ख) षडावश्यकबालावबोध (इस कृति में अष्टादश पापों की सविस्तार व्याख्या है।)

४. श्रावकाराधना (पत्र २)

५. वही (पत्र १)

६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, क्षमा-छत्तीसी, पृष्ठ ५२५

७. वही, पृष्ठ ५२५

८. वही, क्रोधनिवारण गीतम्, पृष्ठ ४४९

१७.२ मान

मान विनय का विनाशक है।^१ समयसुन्दर कहते हैं कि आजकल यत्र-तत्र-सर्वत्र हुंकार अधिक सुनाई पड़ती है। सभी में 'हूँ' (मैं) भरा पड़ा है। अरे भाई! तुम अति मान किसलिए कर रहे हो? इस जगत् में पता नहीं कितने आए हैं और कितने चले गये, तो तुम किस गान में गुम हो गए हो? तुम्हें भी आज या कल अन्ततः मरना ही है, फिर मान किसका और क्यों? जिस संसार के लिये तुम अहंकार कर रहे हो, वह तो सारशून्य है। अतः अहंकार का परित्याग कर देना चाहिये।^२

समयसुन्दर कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति के सभी दिन एक समान नहीं हुआ करते। दिनकर प्रभात-काल में उदित होता है; संध्याकाल में अस्त हो जाता है। इस तरह एक दिन में दो अवस्था हो जाती है। वस्तुतः उतार-चढ़ाव होता रहता है। आज जो ऊँचा है, कल वही नीचा हो जाता है और जो नीचा था, आज वह ऊँचा हो जाता है। जब उतार-चढ़ाव जीवन के साथ जुड़ा हुआ है, तब अभिमान करना मूढ़ता है।^३

समयसुन्दर लिखते हैं कि सभी लोग दूसरों से आगे बढ़ने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। उनके अनुसार दूसरों की होड़ करना अच्छा नहीं है। यह होड़ अभिमान का पोषण करती है। अतः हमें अभिमान तो करना ही नहीं चाहिये, साथ ही साथ उसके पोषक-तत्त्वों से भी दूर रहना चाहिये।

१७.३ माया

भारतीय दर्शन में माया को महाघातक बताया गया है। समयसुन्दर भी इसे वैसा ही मानते हैं। साधक को मुक्ति से विमुख रखने में माया प्रधान है। वे माया का प्रभाव बताते हुए कहते हैं कि माया कारमी (धूर्ता या ठगिनी) है। काया की माया में सारा संसार विलुब्ध होकर दुःखित हो रहा है। लोग माया के लोभ में ही देश-विदेश में भटकते हैं, अटवी या वन में जाते हैं। माया के वशीभूत होकर लोग जहाज में देशान्तर-पर्यटन करते हैं, किन्तु वे बीच में ही डूब जाते हैं।^४

समयसुन्दर माया का दुष्परिणाम बताते हुए कहते हैं कि लोग माया का बहुत संग्रह करते हैं, जो कि लोभ का लक्षण है और अन्त में भय के मारे भूमि में धन को गाड़ते हैं। आश्चर्य यह है कि सर्प उस स्थान में अपना बिल बना लेता है। व्यक्ति जब गड़े हुए

१. दशवैकालिक-टीका, पृष्ठ ७८

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि -

(क) हुंकार परिहार गीतम्, पृष्ठ ४४९

(ख) मान-निवारण गीतम्, पृष्ठ ४४९-५०

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, मान-निवारण गीतम्, पृष्ठ ४५०

४. वही, माया-निवारण सञ्ज्ञाय, पृष्ठ ४३०-३१

धन को बाहर निकालने के लिए जमीन को खोदता है, तो उसे सर्प का शिकार होना पड़ता है। अतः चतुर पुरुषों को माया से सदैव दूर रहना चाहिये।^१

समयसुन्दर का कथन है कि माया का प्रभाव बहुव्यापी है। जो योगी, तपस्वी और संन्यासी नग्न भी हो गए, अग्नि जलाकर शीर्षासन में भी स्थिर रहे, वे भी माया से मुक्ति न पा सके। अणोर से अणीयान और महान-महियान — सभी को इस सर्पिणी ने ग्रस रखा है। इससे बचकर रहना नितान्त जरूरी है।^२

१७.४ लोभ

समयसुन्दर धन-पिपासुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम रात-दिन धन के पीछे क्यों पड़े हो? बिना पुण्य के तुम धन कैसे प्राप्त करोगे? विश्वास न हो तो जाओ, पंचजनों को भी पूछ लो। समयसुन्दर कहते हैं कि तुम धन के लोभ में पड़कर देव-गुरु की भक्ति-प्रार्थना भी भूल गये हो। भला, गठड़ी बान्धकर कोई परभव में ले गया है? फिर तुम हे जीव! इतना अधिक लोभ क्यों कर रहे हो? लोभ एक प्रकार का गहन माया-जाल है। इसमें फँसने का प्रयास मत करो। यदि फँस गये, तो वापस उससे निकलना बहुत कठिन हो जाएगा।^३

समयसुन्दर अपने शिष्य-प्रशिष्यों को भी लोभ-त्याग का निर्देश देते हैं। वे कहते हैं, शिष्यो! पुस्तक, पन्ने और उपाधियों का लोभ छोड़ दो और संयम का पालन करो। समयसुन्दर का कहना है कि मुक्ति सम्पदा के लोभ के सिवा मुझे किसी तरह का लोभ नहीं है।^४

समयसुन्दर ने उक्त चारों कषायों को अकरणीय बताया है। पूर्वकृत कषाय-कर्मों को क्षय करना चाहिये और भविष्य में कषाय न करें, इसका संकल्प ग्रहण करना चाहिये।

१८. लेश्या

शुभ-अशुभ प्रवृत्ति का मूलाधार शुभ-अशुभ लेश्या ही है। लेश्या अर्थात् मनोवृत्तियाँ। समयसुन्दर ने लेश्या के छः भेदों का उल्लेख किया है — १. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजसूलेश्या, ५. पद्मलेश्या और ६. शुक्ललेश्या। भाव से द्रव्य और द्रव्य से भाव की कार्यकारण रूप परम्परा होने से उन्होंने लेश्या को भी भाव और द्रव्य, दोनों प्रकार की स्वीकार की है। उनके अनुसार द्रव्य लेश्याएँ पौद्गलिक होने के कारण इनके वर्ण, रस, गंध, स्पर्श आदि भी होते हैं। उक्त लेश्याओं में कृष्णादि प्रथम

१. वही, माया निवारण सञ्ज्ञाय, पृष्ठ ४३०-३१
२. वही, माया निवारण सञ्ज्ञाय, पृष्ठ ४३०-३१
३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, माया-निवारण गीतम्, पृष्ठ ४३२
४. वही, यतिलोभ निवारण गीतम्, पृष्ठ ४५०

तीन लेश्याएँ अप्रशस्त हैं और तेजस् आदि शेष तीन लेश्याएँ प्रशस्त हैं ।^१

१९. निन्दा

समयसुन्दर ने निन्दा-वृत्ति को अनुचित एवं त्याज्य बताया है। वे उसके दुर्गुण बताते हुए कहते हैं कि परनिन्दा करते हुए मनुष्य पाप-पिण्ड भरता है। इससे वैरवर्धन होता है और प्राणी दुर्गति में जाता है। निन्दक जैसा बुरा और पापी व्यक्ति अन्य कोई दिखाई नहीं देता है। वस्तुतः निन्दक का तो मुख भी नहीं देखना चाहिये, क्योंकि वह चण्डाल के समान है ।^२

समयसुन्दर लिखते हैं कि निन्दक रूपी चण्डाल को तो स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। निन्दक की जिह्वा अपवित्र हुआ करती है। निन्दक और मांसाहारी — दोनों एक सदृश हैं ।^३ परनिन्दा करना पृष्ठ भाग का माँस खाना है ।^४ निन्दा करने से वैर-विरोध के बन्धन तो बन्ध ही जाते हैं, व्यक्ति निन्दा करते समय अपने माता-पिता की भी उपेक्षा कर बैठता है और उनकी भी निन्दा करने लग जाता है ।^५

समयसुन्दर सुझाव देते हैं कि यदि तुम्हें निन्दा करने की आदत ही पड़ गई है, तो अपनी निन्दा करो ताकि कुछ तुम्हारा भला होगा, आत्म-संस्कार होगा। दूसरों के तो गुणों को ही ग्रहण करना चाहिये ।^६

समयसुन्दर के अनुसार ऐसा व्यक्ति प्रशंसनीय है, जो किसी की पर-निन्दा नहीं करता। उनके अनुसार ऐसा व्यक्ति धन्यवाद का पात्र है ।^७

२०. स्वार्थ

समयसुन्दर का अनुभव है कि यह संसार स्वार्थी है। स्वार्थ के बिना माता-पिता-भाई-बहिन आदि कोई भी परिजन अपना नहीं होता है, बिना स्वार्थ के कोई जलपान भी नहीं करवाता। स्वार्थ के वश होकर ही लोग बड़ी आत्मीयता दर्शाते हैं, किन्तु स्वार्थ सिद्ध नहीं होने पर कलह होता है। स्वार्थवशात् पत्नी भी अपने को दासी कहती है, परन्तु स्वार्थ सिद्ध न होने पर आँखें दिखाती है, लाठी लेकर पीछे भागती है। समयसुन्दर कहते हैं कि गुरु और शिष्य— ये सब भी स्वार्थ के संबंध हैं। वस्तुतः संसार स्वार्थ में

१. विचारशतक (४७)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, निन्दापरिहार गीतम्, पृष्ठ ४५१

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, निन्दापरिहार गीतम्, पृष्ठ ४५१

४. वही, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५२१

५. वही, निन्दावारक गीतम्, पृष्ठ ४५१-५२

६. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, परप्रशंसा गीतम्, पृष्ठ ४७४

७. वही, निन्दावारक गीतम्, पृष्ठ ४५२

लिप्त है। स्वार्थ-त्याग के लिए परमार्थ की साधना उपयोगी है।^१

२१. रात्रिभोजन-परिहार

समयसुन्दर ने रात्रि-भोजन का निषेध अहिंसा-व्रत की रक्षा के लिए अनिवार्य माना है। समयसुन्दर के सामने विपक्ष के द्वारा यह प्रश्न उठाया गया था कि रात्रि में भोजन करना किस प्रकार से अनुचित हो सकता है? दिन में तो मक्खी आदि जीवों की हिंसा का भय बना रहता है, जबकि रात्रि में भोजन ग्रहण करने से इससे छुटकारा पाया जा सकता है। इसका समाधान करते हुए समयसुन्दर ने कहा है कि रात्रिभोजन शास्त्रीय एवं नैतिक—दोनों दृष्टियों से उचित नहीं है। रात्रि-भोजन हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता। रात्रि में भोजन-सेवन करते समय कुन्थु, पिप्पली एवं अन्य अनेक सूक्ष्म जीवों की हिंसा सम्भव है, जो हम रात्रि में भोजन पकाने से लेकर उसे खाने तक की प्रक्रिया में स्पष्टतः देखते हैं। अतः रात्रि भोजन वर्ज्य है।^२

२२. जिनप्रतिमा

महोपाध्याय समयसुन्दर के अनुसार जिन-प्रतिमा एवं उसकी पूजा की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही थी। यह बात स्वयं समयसुन्दर द्वारा उल्लिखित शास्त्रीय उद्धरणों से स्पष्ट हो जाती है। समयसुन्दर के समय में जैनधर्म में एक ऐसी परम्परा पनपी, जो मूर्तिपूजा का विरोध करती थी। समयसुन्दर ने इस परम्परा का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि 'जिनप्रतिमा जिन सारखी'^३ अर्थात् जिनप्रतिमा जिन के सदृश है। यह बात उनकी रचनाओं में अनेक स्थानों पर अभिव्यक्त हुई है। 'समाचारी-शतक' नामक ग्रन्थ में उन्होंने इसी बात की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण भी दिए हैं।^४

वस्तुतः ऐसा लगता है कि समयसुन्दर कट्टर मूर्तिपूजक थे। वे लिखते हैं कि यद्यपि जिनमूर्ति ज्ञानादि गुणरहित है, तथापि वह जिनवत् ही मानी जाती है।^५ उनके मतानुसार साक्षात् जिन की पूजा और अर्चना करने से जो फल मिलता है, वही फल जिन की प्रतिमा की पूजा से उपलब्ध होता है।^६ अतः जिनप्रतिमा जिन के सदृश ही माननी चाहिये। उनके अनुसार यदि कोई इसमें संशय करता है, तो उसका सम्यक्त्व उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे एक बूंद विष से अमृत।^७

१. वही, स्वार्थ गीतम्, पृष्ठ ४३५

२. विचारशतक (१८)

३. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री पार्श्वजिन (प्रतिमा स्थापन) स्तवनम्, पृष्ठ २००

४. समाचारी-शतक (१४, २६, ३९-४२, ४८)

५. वही (४०)

६. समाचारी-शतक (४१)

७. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, श्री पार्श्वजिन (प्रतिमा स्थापन) स्तवनम्, पृष्ठ २००

समयसुन्दर ने लिखा है कि सम्प्रति, यहाँ कोई तीर्थङ्कर विद्यमान नहीं हैं और न ही कोई अतिशयवान महापुरुष हैं। ऐसी स्थिति में जिनप्रतिमा ही एक ऐसा आधार है, जो मुक्तिदायक है। वे लोग जिन्होंने सूत्र-सिद्धान्त तर्क, व्याकरण आदि का अध्ययन किया है और लोक में पण्डित भी कहलाते हैं, किन्तु यदि जिनप्रतिमा को अस्वीकार करते हैं, तो उनका यह सब निरर्थक है। समयसुन्दर अमूर्तिपूजक सम्प्रदायों का उपहास करते हुए कहते हैं कि जिन ग्रन्थों में मूर्ति-पूजा का उल्लेख है, उन ग्रन्थों को तो वे मानते हैं, किन्तु उनमें उल्लिखित जिनमूर्ति को नहीं मानते, उनकी मान्यता वैसी ही आत्मविरोधी है, जैसे यह कहना कि मेरी मां बन्ध्या है।^१

समयसुन्दर का कथन है कि वास्तव में जिनप्रतिमा भव-दुःखहर्ता, सुखकर्ता है और इसकी नित्य पूजा करना श्रावक का कर्तव्य है। यह भविकजनों को भवसागर से पार उतारने के लिए प्रवहण के समान है।^२ श्रावक को द्रव्य और भाव पूजा करनी चाहिये और श्रमण को केवल भाव पूजा।^३

२३. क्षमा

समयसुन्दर क्षमा की साधना के लिए विशेष प्रेरणा देते हैं। उनका कहना है कि क्षमा की साधना चाहे गार्हस्थ्यमूलक जीवन हो या साधनामूलक जीवन — दोनों में अपरिहार्य है। वे क्षमा में समता का भी पर्यवसान मानते हैं। क्षमा की साधना वस्तुतः आन्तरिक साधना है अर्थात् उसका हृदय से ही सम्बन्ध होता है। इसीलिए वे कहते हैं कि क्षमा-प्रदान करने से मनुष्य को कोई व्यय-भार नहीं उठाना पड़ता।

समयसुन्दर ने अपनी रचनाओं में लिखा है कि क्षमा अनेक प्रकार के कलह-क्लेश की विनाशिका है। क्रोध रूपी शत्रु इसके आगे स्थिर नहीं रह सकता। यह परस्पर प्रेम-भावना का प्रसार करती है। अतः लोक में कीर्ति अर्जित होती है।^४

२४. जीवदया

समयसुन्दर के अनुसार दया धर्म का मूल है। जीवदया रूप धर्म की बेल जिनेश्वर द्वारा रोपित है। यह बेल मुक्तिरूपी फल देती है।^५

समयसुन्दर का मत है कि दया न केवल जैनधर्म का सार है, अपितु सभी धर्मों का मुख्य उपदेश है। किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट न देना तथा उसके दुःख दूर

१. वही, पृष्ठ २००

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, शाश्वतजिनचैत्यप्रतिमा वृहत्स्तवनम् (१६)

३. (क) वही, श्री पार्श्वजिन (प्रतिमास्थापन) स्तवन, पृष्ठ २००

(ख) वही, श्री जिनप्रतिमा पूजा गीतम्, पृष्ठ २२०

४. वही, क्षमा छत्तीसी, पृष्ठ ५२३-२६

५. वही, जीवदया गीतम्, पृष्ठ ४४७

करना ही दया है। वे कहते हैं कि लोग पंचाग्नि-साधना, यज्ञ, होम आदि विविध कर्म करते हैं, यह सोचकर कि इससे हम मुक्ति पा जाएँगे, किन्तु यह सब उनका भ्रम है। जिस साधना में दया का अभाव है, वह कभी मुक्ति नहीं दिला सकती। सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानकर व्यवहार करना, यही तो प्राथमिक साधना है। दया धर्म एवं साधना — दोनों का मर्म है।^१

समयसुन्दर का कथन है कि यद्यपि जैनधर्म जीवदया प्रधान है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह किसी भी ऐसी क्रिया या कर्म करने का सर्वथा निषेध करता है जिसमें हिंसा की यत्किञ्चित् भी सम्भावना हो। वस्तुतः अहिंसा को विधायक रूप देने के लिए किया गया कोई भी प्रयत्न हिंसा से रहित नहीं हो सकता। जब भी हम जीवन-रक्षण रूप दया, दान, सेवा, तथा सहयोग की कोई क्रिया करेंगे, तो वे हिंसा के बिना कदापि सम्भव नहीं होगी। नव-कोटि पूर्ण अहिंसा का आदर्श कभी भी दया, दान, सेवा एवं सहयोग के मूल्यों का सहगामी नहीं हो सकता। अतः जीवन-रक्षण और पूर्ण अहिंसा के आदर्श का पालन — दोनों एक साथ शक्य नहीं है। पुनः पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन में तो उसका पालन असम्भव है।

जैन शास्त्रों में ऐसे अनेक पर्याप्त प्रसंग भी मिलते हैं, जिनमें हिंसा के कुछ रूप अनुमोदित हैं। जैसे — नौकागमन, साधु द्वारा नदी-लंघन आदि; यद्यपि इसमें प्रत्यक्ष रूप से हिंसा होती है। इसी तरह श्रमण एवं श्रावक-वर्ग के समस्त धार्मिक कार्यों में पृथ्वीकाय आदि विविध जीवों की हिंसा होती है, फिर भी उन्हें धार्मिक कार्य ही कहा गया। जैसे — श्रेणिक, कोणिक आदि भगवान् महावीर को वन्दन करने के लिए जाते थे, तो गमनागमन में पृथ्वीकाय, वनस्पति, चींटी इत्यादि की हिंसा तो होती ही थी, तथापि उसे प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय बताया गया है।

समयसुन्दर का कहना है कि यद्यपि भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी पिलाना, साधुओं को आहार देना इत्यादि क्रियाओं में भी निश्चित ही मनुष्य को हिंसा-दोष लगेगा, किन्तु यह हिंसा निन्दनीय नहीं है। समयसुन्दर के अनुसार हिंसा का पूर्ण निषेध करने वाले दयाधर्म का ही उच्छेद कर दें, तो फिर धर्मशाला आदि बनाने में भी आरम्भ अर्थात् हिंसा होता है। अतः उसे 'पापशाला' कहना चाहिये, जबकि उसे धर्मशाला ही कहा जाता है, पापशाला नहीं।

समयसुन्दर का कथन है कि धर्म-कार्य में भी आरम्भ-समारम्भ तो होता है, किन्तु धार्मिक पुण्य का जीव-हिंसात्मक कोई अध्यवसाय नहीं होता है, अपितु रक्षण का ही अध्यवसाय होता है। अतः उसके द्वारा बाह्य रूप से होने वाली हिंसा को निश्चयदृष्टि से हिंसा की कोटि में नहीं रखा जा सकता। यदि मनुष्य के अध्यवसाय और मनोवृत्तियाँ

१. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्रस्ताव सवैया छत्तीसी, पृष्ठ ५१६

हिंसा से जुड़ी हुई हैं, तो वह हिंसा होगी। हिंसा और अहिंसा का भेद वस्तुतः मन के भावों पर अवलम्बित है। एक तो हिंसा की जाती है, दूसरी हिंसा करनी पड़ती है और तीसरी हिंसा हो जाती है। यद्यपि ये तीनों हिंसा ही हैं, किन्तु तीनों में स्पष्ट अन्तर है। प्रत्येक क्रिया को यतनापूर्वक-विवेकपूर्वक करना ही हिंसा से विरत होने का सरल उपाय है।^१

२५. समय का मूल्य

समयसुन्दर ने समय का महत्त्व बतलाया है। वे कहते हैं, हे मनुष्य! तुम घड़ी के पास जाकर और चित्त लगाकर सुनो कि वह क्या कहती है? समयसुन्दर के अनुसार घड़ी कहती है कि समय स्थिर नहीं है। गतिशील समय को रोका नहीं जा सकता। गया हुआ समय वापस लौटकर नहीं आता है। एक-एक पहर के अन्तर से घड़ी रात और दिन एक ही टंकार कर रही है कि यमराज के आगमन के बाजे बज रहे हैं, अतः सब सावधान हो जाओ।^२

समयसुन्दर कहते हैं कि अरे मनुष्य! मानव-जीवन की एक घड़ी लाख रूपयों से भी ज्यादा मूल्यवान होती है। तुम ऐसे बहुमूल्यवान समय को व्यर्थ ही मत खोओ। हे मनुष्य! तूने अमूल्य-जीवन का आधा भाग हँसी-खेल में व्यतीत कर दिया। अब जब सामने बुढ़ापा तथा मृत्यु मुँह बाये खड़े हैं, क्यों पछताता है। ज्ञात नहीं, सौ वर्ष जीने की तुम्हारी कामना कब धूलि-धूसरित हो जाए। अतः तुम्हें इस अस्थिर संसार का विश्वास न कर जीवन की प्रत्येक घड़ी धर्माचरण एवं आत्मकल्याण में बितानी चाहिये।^३

निष्कर्ष यह है कि समयसुन्दर एक प्रौढ़ विचारक थे। उनकी प्रत्येक रचना चाहे वह कथा के रूप में हो या सैद्धान्तिक हो अथवा अन्य विषयक हो, उनकी वैचारिक प्रौढ़ता को प्रकट करती है। विचार-शतक, विशेष-शतक, समाचारी-शतक आदि ग्रन्थों में उन्होंने अनेक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर दार्शनिक प्रश्नों को उपस्थित कर उनका सम्यक् समाधान भी दिया है। जैन आचार-दर्शन के विविध नियम, आवश्यक कृत्य, श्रावक एवं श्रमण-धर्म आदि ऐसे अनेक सामान्य विषय हैं, जिन पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। अधिक विस्तार-भय से हमने तत्सम्बन्धी समग्र सामग्री को ग्रहण नहीं किया है। मात्र उनके कुछ विचारों को संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

वस्तुतः समयसुन्दर के समस्त विचार-दर्शन का मूल आधार है — आत्मा और परमात्मा। इन्हीं दो तत्त्व रूप स्तम्भों पर उनके विचार-दर्शन का भव्य भवन खड़ा है।



१. समाचारी-शतक (४२)

२. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, घड़ीयाली गीत, पृष्ठ ४३८-३९

३. वही, घड़ी लाखीणी गीतम्, पृष्ठ ४२७

सप्तम अध्याय

उपसंहार

पूर्ववर्ती अध्यायों में महोपाध्याय समयसुन्दर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनुशीलनात्मक अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं —

प्रथम अध्याय का निष्कर्ष

प्रथम अध्याय है, 'समयसुन्दर का जीवन-वृत्त'। समयसुन्दर जैन मुनि थे। वे इसी नाम से साहित्य-जगत् में विश्रुत हुए, यद्यपि समकालीन कवियों ने उनके लिए 'समयोसुरचन्द' नाम भी प्रयुक्त किया है। यह नाम या तो उनके गृहस्थ-जीवन का रहा होगा या फिर पारस्परिक आत्मीयता के कारण कवियों ने यह नाम प्रयुक्त किया होगा। समयसुन्दर का जन्म-स्थान सांचोर है, जो राजस्थान एवं गुजरात के सीमान्त पर स्थित है। समयसुन्दर की प्रथम उपलब्ध कृति 'भावशतक', जिसका रचना-काल विक्रम संवत् १६४१ है एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उनका जन्म लगभग विक्रम संवत् १६१० में हुआ होगा।

यद्यपि समयसुन्दर ने अपने माता-पिता का नामोल्लेख नहीं किया है, लेकिन वे उनके महान् उपकारों को स्वीकार करते थे और उनके आदर्श गुणों के प्रति उनकी पूर्ण आस्था थी। समयसुन्दर का जन्म प्राग्वाट/पोरवाल वंश में हुआ था और वे इस वंश में हुए महान् पुरुष-रत्नों में सर्वोपरि हुए। उन्हें धर्मश्री नामक आर्या ने साधना-मार्ग पर आरूढ़ किया होगा और इसीलिए वे 'धर्मश्री आर्यिका-सूनु' की संज्ञा से अभिषिक्त हुए।

समयसुन्दर ने यौवनवय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी। यदि उनका जन्मकाल विक्रम संवत् १६१० में लगभग स्वीकार करते हैं, तो उनका अभिनिष्क्रमणकाल विक्रम संवत् १६२८ से १६३० के मध्य मान सकते हैं। वे जिनचन्द्रसूरि के कर-कमलों से दीक्षित हुए और गणिसकलचन्द्र के शिष्य हुए। समयसुन्दर जैनश्वेताम्बर-परम्परा की खरतरगच्छ नामक शाखा के अनुयायी थे। उनकी गुरु-परम्परा में अनेक उद्भट साहित्य-सेवी एवं युग-प्रधान आचार्य हुए, जिनमें जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि आदि उल्लेखनीय हैं। महोपाध्याय समयसुन्दर इस विद्वत् परम्परा की स्वर्णमयी शृंखला की एक कड़ी थे।

समयसुन्दर के गुरु का अल्पायु में ही निधन हो गया था। अतः वाचक महिमराज और उपाध्याय समयराज से उन्होंने विद्याध्ययन किया था। गहन आगमिक प्रशिक्षण, उच्च अभ्यास, तीक्ष्ण बुद्धि, मेधावी प्रतिभा तथा तप-संयम के पालन में दक्ष

देखकर जैनसंघ ने आपको गणि, वाचक/वाचनाचार्य, उपाध्याय, महोपाध्याय आदि विशिष्ट पद प्रदान कर आपका सम्मान किया था। महोपाध्याय जैसा श्रेष्ठ पद वास्तव में उनके महान् व्यक्तित्व का द्योतक है।

यात्रा शिक्षा का एक माध्यम है। यात्रा में पद-यात्रा का अपना महत्त्व है। समयसुन्दर ने भारत के विभिन्न अंचलों में पद-यात्राएँ कीं। वे पक्षी की तरह उन्मुक्त विहारी थे। उन्होंने अनेक तीर्थ-यात्राएँ भी कीं। वे जिस तीर्थ में गये, वहाँ के तीर्थाधिपतियों के चरणों में उन्होंने स्तोत्र-स्तवन रूप सुमन चढ़ाये, जो उनकी आस्था के आयाम थे।

महोपाध्याय समयसुन्दर के जीवन के अन्तिम क्षण संघर्षों से सन्त्रस्त रहे। उन्हें संवत् १६८७ के भयंकर दुष्काल का सामना करना पड़ा, हर्षनन्दन नामक शिष्य की परवशता को स्वीकार करनी पड़ी। समयसुन्दर ने अपने शिष्यों का माता-पिता की तरह पालन-पोषण किया, किन्तु शिष्य वृद्धावस्था में उनका परित्याग करके चले गये। वृद्धावस्था के कष्टों में शिष्यों में सेवा-भावना का अभाव देखकर उन्हें निराश तथा हतोत्साह होकर कहना पड़ा कि जो शिष्य गुरु की श्रद्धा-भक्ति से वैयावृत्य-सेवा नहीं करते, उन शिष्यों से क्या प्रयोजन है? ऐसे शिष्य तो निरर्थक हैं, भारभूत हैं।

भीषण दुष्काल में समयसुन्दर को शास्त्रमर्यादा से प्रतिकूल आचरण भी करना पड़ा, किन्तु दुष्काल से विमुक्त होने पर उन्होंने श्रमण-जीवन के उच्च मूल्यों के आदर्शों का पुनः वरण किया तथा इसी उद्देश्य से उन्होंने 'क्रियोद्धार' भी किया। इस प्रकार भावी परम्परा के लिए उन्होंने आचारगत एक आदर्श की भूमिका छोड़ दी।

महोपाध्याय समयसुन्दर की भारतीय आचारगत साहित्य को महान् देन रही है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका व्यक्तित्व जितना गौरवपूर्ण है, उतना ही प्रेरक भी। उनका ज्ञान-गाम्भीर्य सागर की भांति था। समयसुन्दर केवल ज्ञानी ही नहीं, अपितु भक्त एवं कर्मशील भी थे। उनमें जितनी विद्वत्ता थी, उतनी ही ऋजुता भी। उनका हृदय श्रद्धा और भक्ति से अभिभूत था। अखिल आदर्शों और आदर्श-पुरुषों के प्रति उनकी भक्ति-प्रवणता अगाध थी। ज्ञान के साथ भक्ति का समागम हो जाने से उनके व्यक्तित्व का सौन्दर्य और भी निखर उठा था। जैन धर्म में हिन्दी भाषान्तर्गत भक्ति-सुवासित इतना त्रिशाल साहित्य समयसुन्दर से पूर्व किसी ने भी नहीं लिखा। मीरा की-सी अनुपम भक्ति का दर्शन यदि किसी जैन कवि की रचनाओं में करना हो, तो उनके लिए समयसुन्दर का भक्तिपरक साहित्य बेजोड़ है। वस्तुतः ज्ञान एवं विद्वत्ता जहाँ उनके बाह्य व्यक्तित्व को प्रकाशित करती है, वहीं भक्ति उनके अन्तः व्यक्तित्व को।

समयसुन्दर आचार-पक्ष को भी उतना ही महत्त्व देते थे, जितना ज्ञान-पक्ष को। आचार-शून्य ज्ञानी चन्दन का भार ढोने वाला गर्दभवत् है। वह केवल भार ढोता है, चन्दन की सुगन्ध का उसे कोई पता नहीं है। सत्यतः जिस व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति और

कर्म का पवित्र संगम है, उसकी दिव्यता महान् से महीयान हुआ करती है।

महोपाध्याय समयसुन्दर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवधारणा से अभिभूत थे। उन्होंने अनेक राज्याधिकारियों को अपने प्रभाव से प्रभावित कर उनके राज्यों को अहिंसामय बनाया। सम्राट अकबर, मखनूम मुहम्मद शेख काजी, रावल भीमजी प्रभृति को अपनी विचारधाराओं का अनुयायी बनाना एवं उनके राज्य-शासन में हिंसा-निषेध करवाना समयसुन्दर की अद्भुत प्रतिभा का प्रतीक है।

समयसुन्दर यद्यपि खरतरगच्छीय थे, किन्तु अन्य गच्छों के प्रति भी उनको सहानुभूति थी। जिस युग में साम्प्रदायिकता अपनी चरम सीमा पर हो, उस युग में भी वे साम्प्रदायिकता से ऊपर उठे हुए एक निस्पृह साधक थे। दिगम्बर, तपागच्छ, पार्श्वचन्द्रगच्छ आदि सभी मतावलम्बियों से उनका मधुर सम्बन्ध था। उन्होंने जिस श्रद्धा से श्वेताम्बर तीर्थाधिपतियों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है, उसी श्रद्धा से वे दिगम्बर तीर्थाधिपतियों के प्रति भी नतमस्तक रहे। वे न केवल स्वयं साम्प्रदायिक पाशों से मुक्त रहे, अपितु अन्य मतावलम्बियों को भी इससे असमीपस्थ रहने की प्रेरणा देते थे।

वस्तुतः इन सब गुणों के कारण ही समसामयिक एवम् परवर्ती कवियों तथा जैन समाज पर आपका प्रभुत्व छाया रहा। उनका व्यक्तित्व सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं विश्वजनीन रहा है। सम्प्रदाय रूपी बादलों से आवृत्त होने के कारण उनके व्यक्तित्व रूपी सूर्यमण्डल का प्रकाश सम्प्रदायेतर लोगों तक पहुँच न सका। स्वयं जैन सम्प्रदाय में भी आज सामान्य बौद्धिक स्तर के लोग महोपाध्याय समयसुन्दर के विषय में अज्ञात हैं, परन्तु इनका योगदान तो सम्प्रदायातीत एवं सर्वजनहिताय रहा है। उनकी अनुपमेय एवं अपरिमित साहित्य-साधना को देखते हुए उन्हें जैनधर्म का द्वितीय हेमचन्द्राचार्य कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी। निखिल शास्त्रनिपुणता तथा बहुज्ञता के कारण ही उन्होंने महोपाध्याय आदि की उपाधि प्राप्त की थी। वस्तुतः इनमें एक साथ ही वैयाकरण, दार्शनिक, साहित्यकार, इतिहासकार, आलङ्कारिक, घन्दानुशासक, धर्मोपदेशक और युगकवि का समन्वय हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसुन्दर की योग्यता, उनकी क्षमता, उनका जीवन, उनका कार्य-कलाप, उनका आचार-व्यवहार आदि सभी गुण शतप्रतिशत उनके आदर्श व्यक्तित्व को उजागर करते हैं। यदि निष्पक्ष दृष्टि से कोई भी व्यक्ति उनके व्यक्तित्व का अवलोकन करता है, तो उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा।

विक्रम संवत् 1703, चैत्र शुक्ला 13 को अहमदाबाद में संलेखना सहित समयसुन्दर ने समाधिमरण प्राप्त किया।

महोपाध्याय समयसुन्दर का शिष्य-परिवार विस्तृत था। जैसे प्रतिभाशाली एवं विद्वान् वे स्वयं थे, वैसा ही उनका शिष्य-समूह भी था। उनके अनेक शिष्य थे, जिनमें

हर्षनन्दन प्रमुख थे। समयसुन्दर स्वयं मुनि थे और उनके शिष्य भी मुनि थे, किन्तु पञ्चवर्ती काल में हुए उनके शिष्य-प्रशिष्य यति हो गये थे।

द्वितीय अध्याय का निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय है, 'समयसुन्दर की रचनाएँ'। प्रस्तुत अध्याय में समयसुन्दर के कृतित्व का परिचय है। व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा अन्य किसी पहलू की जानकारी के लिए उसका कृतित्व ही मुख्य आधार है।

महोपाध्याय समयसुन्दर की भारतीय साहित्य को महान् देन रही है। समयसुन्दर जैसे रचनाकार कम ही हुए, जिनकी विविध विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ उपलब्ध होती हों। उन्होंने विद्वत् समाज के लिए जहाँ संस्कृत में साहित्य की सृष्टि की, वहीं जनहित के लिए प्रादेशिक भाषाओं में भी विपुल साहित्य का निर्माण किया। हमने उनकी प्राप्त रचनाओं की विपुलता देखते हुए विवेचन की सुविधा के लिए मौलिक संस्कृत रचनाएँ, संस्कृत-टीकाएँ, संग्रह-ग्रन्थ, भाषा-कृतियाँ, बालावबोध या भाषा-टीका, प्रकीर्णक रचनाएँ - इस प्रकार इन छः विभागों में विभक्त कर उनके सम्पूर्ण साहित्य का आकलन करने का प्रयास किया है। प्रत्येक रचना का नाम, रचना-स्थान, प्रेरणा या अनुरोधकर्ता, वर्ण्य-विषय, रचना-शैली, रचना की प्रामाणिकता इत्यादि का परिशीलन किया है। हमने उनकी शताधिक बृहत् रचनाओं एवम् पंचशताधिक लघु प्रकीर्णक रचनाओं का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

समयसुन्दर की रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका व्याकरण-शास्त्र में महान् योगदान रहा है। उन्होंने केवल वैयाकरण-ग्रन्थों पर व्याख्या-ग्रन्थ लिखे, अपितु उनके रहस्यों को भी प्रकट किया। भाषा-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, व्याकरण - इन तीनों पर उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। छन्दःशास्त्र लक्षण-ग्रन्थ, काव्य-शास्त्र आदि विषयों से सम्बद्ध रचनाओं का भी उन्होंने गुम्फन किया था।

अनेकार्थी साहित्य में समयसुन्दर का कौशल विशेष रूप से वर्णनीय है। उन्होंने 'अष्टलक्षी' अथवा 'अर्थरत्नावली' नामक कृति में 'राजा नो ददते सौख्यम्' - इस अष्टलक्षरीय वाक्य के दसलक्षाधिक अर्थों को प्रकट कर संसार के सम्पूर्ण साहित्य-जगत् को एक अलभ्य एवं अनुपम ग्रन्थ-रत्न प्रदान किया। इस ग्रन्थ की टक्कर का अन्य कोई ग्रन्थ साहित्य-लोक में अभी तक कहीं भी आविर्भूत नहीं हुआ है।

समयसुन्दर के सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों ने महाकोष का रूप धारण कर लिया है। उन्होने लगभग 350 दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक प्रश्नों का सविस्तार समाधान किया है। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर की पुष्टि के लिए उन्होंने अनेक प्रमाण पस्तुत किए। मनोवैज्ञानिक ढंग से जटिल प्रश्नों का सम्यक् निराकरण प्रस्तुत करना समयसुन्दर की

निजी विशेषता थी।

टीका-साहित्य के अन्तर्गत भी समयसुन्दर की देन महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने न केवल अन्य रचित ग्रन्थों पर व्याख्याएँ कीं, अपितु कतिपय स्वरचित रचनाओं पर भी स्वोपज्ञ वृत्तियाँ लिखीं। जैन साहित्य के साथ-साथ जैनेतर साहित्य पर भी व्याख्या-ग्रन्थ लिखकर उन्होंने साहित्य में भी समन्वय-भावना का विकास किया। इस तरह उन्होंने साहित्य-जगत् में भी अपना धर्मनिरपेक्ष एवं सम्प्रदायातीत रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने आगम, प्रकरण, स्तोत्र एवं अन्य साहित्य पर मुख्यतः टीकाएँ लिखी हैं।

इसी प्रकार संस्कृत एवं हिन्दी कथा-साहित्य में भी समयसुन्दर का योगदान सशक्त है। उन्होंने धार्मिक एवं लौकिक आख्यानों की रचना कर साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। उन्होंने न केवल प्राचीन कथानकों के आधार पर कथा-साहित्य का सृजन किया, बल्कि कुछ नयी कथाएँ भी गद्दीं और कुछ पुरानी कथाओं में परिवर्तन भी किये। कथा, आख्यान, वार्ता, उपमा, दृष्टान्त, संवाद, लोकोक्ति, सूक्त-सुभाषित, प्रश्नोत्तर, समस्यापूर्ति, प्रहेलिका आदि द्वारा इन रचनाओं को उन्होंने अति सरस बनाया। यद्यपि समयसुन्दर ने कथा-साहित्य में राजा, धनवान् या महापुरुषों के ही जीवनकाल का चित्रण किया है, किन्तु जनसामान्य के चित्रण को भी उन्होंने विशेष स्थान दिया है। समयसुन्दर ने विशिष्ट मुनि, साध्वी, सती, सेठ-साहुकार, सार्धवाह आदि के शिक्षाप्रद चरित्र भी चित्रित किये हैं। यद्यपि समयसुन्दर का कथा-साहित्य सभी प्रकार का प्राप्त होता है, किन्तु प्रत्येक कथा को उन्होंने धार्मिक, व्यवस्थामूलक तथा नैतिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इसीलिए ये कथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ अन्धकार में दिग्भ्रमित जीवन के लिये प्रकाशस्तम्भ हैं।

समयसुन्दर की कथाओं के सभी पात्र अथवा चरित्रनायक भव्यरूप लिये हुए हैं। रावण जैसे पात्र को, जहाँ अन्य कथाकार निकृष्ट समझते हैं, समयसुन्दर ने उसके चरित्र को ऊपर उठाने का प्रयास किया है। उन्होंने पुरुषों की तरह स्त्री-पात्रों को भी सदैव ऊँचाई पर रखा। साहित्य-प्रेमियों को सीता, मृगावती आदि स्त्री-पात्रों का चित्र समयसुन्दर की अनुपम भेंट है। वैराग्यमूलक धर्म का जीवनभर प्रचार करने वाला जो कवि स्त्री-विषयक आसक्ति की निन्दा करते कभी नहीं थकता, वह एक स्त्री की इतनी भव्य ओजस्विनी और प्रभावपूर्ण मूर्ति गढ़ सकता है, यह देखकर विस्मय होता है। स्त्री-रति के प्रति समयसुन्दर के पास आलोचना के अतिरिक्त कुछ नहीं था, किन्तु उन्होंने अपने स्त्री-पात्रों को सदैव ऊँचाई पर रखा और उनके स्त्री-पात्र पुरुष-पात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली रूप लिये हुए हैं। यह समयसुन्दर के स्त्री-सम्मान के भाव का सूचक है। पुरुष प्रधान है, किन्तु स्त्री गौण नहीं है — यह बात उन्होंने अनेक स्थानों पर अभिव्यक्त की है।

कविवर्य समयसुन्दर ने फुटकर रचनाएँ कितनी रची थीं, इसकी कोई सीमा नहीं है। जिस किसी भी प्राचीन ज्ञानभण्डार में उनकी रचनाएँ खोजने जाएँ, वहीं उनकी रचनाएँ मिल जाती हैं। लगभग ५०० फुटकर रचनाओं का परिचयात्मक विवरण हम दे ही चुके हैं।

काव्य-लोक में कवि ही एकमात्र प्रजापति होता है। 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की उक्ति कवि समयसुन्दर के साथ चरितार्थ होती है। साहित्य की विपुलता एवं विस्तार की दृष्टि से कविवर समयसुन्दर 'साहित्य-सम्राट' की उपाधि के योग्य हैं। उनका वास्तविक मूल्य उनकी विविधता और सर्वदेशीयता में निहित है। उन्होंने काव्य, व्याकरण, न्याय, संग्रह-कोश, दर्शन, चरित्र, साहित्य, छन्द, अलंकार, ज्योतिष — किसी भी विषय की उपेक्षा नहीं की और प्रत्येक विषय की सेवा की। वास्तव में समयसुन्दर की ६३ वर्ष तक की गई निरंतर साहित्य-सेवा अनुपम और अपरिमित है।

तृतीय अध्याय का निष्कर्ष

तृतीय अध्याय है, 'समयसुन्दर की भाषा'। समयसुन्दर बहुभाषाविद् थे। उनका संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी पर समान अधिकार था। संस्कृत भाषा के गूढ़तम तत्त्वों का उन्हें ज्ञान था और वे इस भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। संस्कृत में अष्टाक्षरों के दशलक्षाधिक अर्थ प्रस्तुत करना संस्कृत के महान् भाषाविद् के ही हाथ की बात हो सकती है। उन्होंने संस्कृत में विपुल साहित्य का निर्माण कर उसे जीवित बनाए रखने में अपना महत् सहयोग दिया था।

महोपाध्याय समयसुन्दर प्राकृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने प्राकृत-भाषा में निबद्ध ग्रन्थों पर व्याख्या-ग्रन्थ तो लिखे ही थे, साथ ही साथ स्वतन्त्र रूप से प्राकृत में रचनाओं का प्रणयन भी किया था। प्राकृत रचनाओं में आवर्जक क्षमता अवश्य है, किन्तु वह स्वाभाविकता नहीं है, जो उनकी अन्य रचनाओं में मिलती है। समयसुन्दर की प्राकृत सामान्य प्राकृत है, जिसे हम महाराष्ट्री प्राकृत कह सकते हैं। उनकी प्राकृत पर संस्कृत का प्रभाव होने से वह साहित्यिक प्राकृत बन गयी है।

समयसुन्दर की संस्कृतेतर भाषा को कतिपय विद्वानों ने राजस्थानी बताया है, तो कतिपय विद्वान् गुजराती मानते हैं। वस्तुतः समयसुन्दर की संस्कृतेतर भाषा न तो मात्र राजस्थानी है और न ही मात्र गुजराती है; वरन् उसमें दोनों का मिश्रित रूप है, जिसे हमने मरु-गुर्जरभाषा नाम से अभिसंज्ञित किया है। समयसुन्दर का जन्म-स्थान सांचोर है, जो राजस्थान एवं गुजरात की सीमा पर स्थित है। अतः उनकी भाषा पर भी दोनों प्रदेशों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए उनके भाषा-साहित्य में राजस्थानी और गुजराती — दोनों के रूप उपलब्ध होते हैं। समयसुन्दर ने सारे देश में भ्रमण किया था। अतः उनकी

भाषा में एकरूपता का अभाव है। एक ही शब्द के अनेक रूप पाये जाते हैं। 'ए' के स्थान पर 'अइ' और 'ओ' के स्थान पर 'अउ' का प्रयोग अधिक है। 'ज्ञ' के स्थान पर 'न्य'; 'श', ष, 'स' के स्थान पर 'स' और 'ष' के लिए 'ख'; 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का प्रयोग अधिकांशतः हुआ है। वैसे उनके मूलरूप भी उपलब्ध होते हैं। उर्दू, फारसी, अरबी, सिन्धी, पंजाबी शब्द भी प्रयुक्त हैं। तत्सम, तद्भव एवं देशज — तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

कवि समयसुन्दर की पद्य-हिन्दी में संस्कृत-शब्दावली का बाहुल्य होने से वह आधुनिक हिन्दी से अति साम्यता रखती है।

समयसुन्दर ने सिन्धी भाषा में भी कुछेक रचनाएँ लिखी हैं। उनकी सिन्धी, मुलतानी सिन्धी है, जो सिन्धी और पंजाबी का सम्मिश्रित रूप है। उनकी सिन्धी पठन में मनोहर है।

वादी हर्षनन्दन के शब्दों में समयसुन्दर 'षड्भाषा-गीति-काव्यकर्ता' (उत्तराध्ययन-टीका, प्रशस्ति) थे।

समयसुन्दर की भाषा-शैली भी बहुविध है। उनका साहित्य बहुआयामी होने से उनकी शैलियों का भी विविध होना स्वाभाविक है। वे परिस्थिति, पात्र, लक्ष्य, विषयवस्तु आदि के अनुकूल शैली अपनाते थे और उसमें यथावश्यक परिवर्तन कर लेते थे। उनके साहित्य में गद्य-शैली, पद्य-शैली और गद्य-पद्य मिश्रित शैली पायी जाती है। वर्ण्य-विषय आदि के आधार पर उनकी भाषा-शैली, संवाद-शैली, दृष्टान्त-शैली का अध्ययन करने पर उनके साहित्य में तार्किक-शैली, अनेकार्थी-शैली, संवाद-शैली, दृष्टान्त-शैली, व्याख्यात्मक-शैली, मिश्रित भाषा शैली, पादपूर्ति-शैली आदि विविध शैलियाँ प्राप्त होती हैं। 'जैसी विषय-वस्तु वैसी शैली' - यही उनकी शैलीगत विविधता का कारण है। उनकी सभी शैलियाँ लक्ष्य-पूरक एवं प्रभावोत्पादक हैं।

महोपाध्याय समयसुन्दर की भाषा-शक्ति अद्वितीय है। पूर्ण एवं मार्मिक उपमानों के प्रयोग, चित्रात्मकता, स्वाभाविक अभिव्यक्ति तथा लाक्षणिकता ने उनकी भाषा में अपूर्व शक्ति भर दी है। उन्होंने जिस किसी भी भाषा में अभिव्यक्ति की है, उस भाषा पर उनका जबर्दस्त अधिकार था। आधुनिक भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से, तत्कालीन भाषा के स्वरूप के निर्धारण की दृष्टि से उनकी हिन्दी-भाषा विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है।

चतुर्थ अध्याय का निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय है, 'समयसुन्दर का वर्णन-कौशल'। कवि की कवित्व-शक्ति उसके वर्णन-कौशल से मुखरित हुआ करती है। समयसुन्दर की वर्णन-शक्ति अद्भुत

थी। उन्होंने अपने सूक्ष्मतम निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, आकृति, वर्ण और उसकी समीपतम एवं दूरतम परिस्थिति का परस्पर संश्लेष विवरण प्रस्तुत किया है। अप्रतिहत गति से समयसुन्दर की प्रतिभा वर्णनीय विषयों को वास्तविक रूप से प्रकाशित करती चली गयी है। वर्णन-कौशल के कारण ही उनकी कृतियाँ सतत मूर्त्तवस्तु का दर्शन कराती हैं। प्रकृति-वर्णन, वस्तु-वर्णन आदि में उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपना कौशल प्रदर्शित किया है। इन वर्णनों में तात्कालिक परिस्थितियों की झलक भी प्राप्त होती है। भाषा, भाव, ध्वनि एवं बिम्ब का सुष्ठु सामंजस्य इन वर्णनों की अपनी विशेषता है।

पंचम अध्याय का निष्कर्ष

पंचम अध्याय है, 'समयसुन्दर की रचनाओं में साहित्यिक तत्त्व'। समयसुन्दर की रचनाओं का बहिरंग एवं अन्तरंग — दोनों ही उत्कृष्ट कोटि का है। काव्य-रचना में जिन साहित्यिक तत्त्वों की अपेक्षा होती है, उन सभी का समन्वय उसमें हुआ है। उनकी रचनाएँ नियमों से आबद्ध अवश्य हैं, किन्तु अपने संकेतों में वे निस्सीम और अनन्त का स्पर्श करती हैं।

समयसुन्दर मुख्यतः रसरसिक कवि थे। यों तो उनकी रचनाओं का प्रत्येक वाक्य रससिक्त है, परन्तु कतिपय वाक्यों का विन्यास इस प्रकार हुआ है कि वे 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की सम्पुष्टि करते हुए प्रतीत होते हैं। भावाभिव्यंजना में वे बड़े पटु थे। उनके साहित्य में विविध रसों का यथास्थान परिपाक हुआ है। यद्यपि समयसुन्दर की प्रत्येक रचना का समापन वैराग्य एवं आत्म-शान्ति का क्रोड़ में होता है, किन्तु उन्होंने अन्य रसों का भी आह्लाददायक परिपाक किया है। समयसुन्दर की यह विलक्षण कवित्व शक्ति ही है कि उन्होंने इस प्रकार से रस की निष्पत्ति की है कि वह पाठकों को क्रमशः एक-एक रस का आस्वादन कराते हुए अन्त में शान्त-रस में डुबो देती है। इस प्रकार भोग से योग की ओर ले जाने में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

कविप्रवर समयसुन्दर अलंकार-शास्त्र के वेत्ता थे। उन्होंने वाग्भट लिखित 'वाग्भटालंकार' पर व्याख्या-ग्रन्थ भी लिखा था। उनकी रचनाओं का विभिन्न अलंकारों के प्रयोग द्वारा अलंकरण हुआ है। अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। अधिकतर रचनाओं में सचेष्ट प्रयास न होते हुए भी विभिन्न अलंकारों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं। समयसुन्दर ने अलंकार एवं अलंकार्य में ऐसा सामंजस्य स्थापित किया है कि उनके काव्यों की प्राकृतिक रमणीयता उच्छलित हुई है।

समयसुन्दर की रचनाओं में माधुर्य, ओज और प्रसाद — तीनों गुणों का विषयानुरूप समुचित समावेश हुआ है। माधुर्य एवं प्रसाद तो उनके काव्य का वैशिष्ट्य है।

इन तीनों गुणों के समावेश से उनकी रचनाएँ आकर्षक और मार्मिक बन गई हैं।

भाषा को गत्यात्मक रूप प्रदान करने वाला छन्द-विधान भी कम रमणीय नहीं है। समयसुन्दर छन्द-चयन में बड़े दक्ष थे। घटना, भाव, विचार या विषय के अनुकूल छन्द-परिवर्तन करना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। साहित्य को जनसाधारण से आबद्ध करने के लिए उन्होंने रागों तथा देशियों को भी अपनाया, जिससे उनके काव्यों की लोकप्रियता तथा संगीतात्मकता में सहज ही समृद्धि हुई। वस्तुतः उनका गेय-साहित्य रागों और देशियों का एक 'बृहत् कोश' बन गया है। उनके रागों में संगीत-शैली की जहाँ गम्भीरता एवं संयतता है, वहीं देशी में स्वर-वैचित्र्य एवं चपलता है। उनके द्वारा गृहीत एवं निर्मापित देशियों की टेर पंक्तियों को अनेक परवर्ती कवियों ने व्यवहृत किया है। वास्तव में रागों तथा देशियों को समयसुन्दर ने ही सर्वप्रथम इतने विपुल परिमाण में प्रयुक्त किया था।

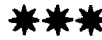
समयसुन्दर के सूक्त-सुभाषित सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हैं। उनकी सूक्तियाँ उनके भावों को सजा-संवार कर सजीव बनाने एवं वक्तव्य-कला को चमकाने में बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं। इन सूक्तियों द्वारा उनका नीति, धर्म और दर्शन आदि से सम्बन्धित बहुआयामी अनुभव का बोध होता है। उन्होंने स्वयं 'गाथासहस्री' नामक ग्रन्थ में लगभग १००० सुभाषित वचनों का बृहत् संकलन किया था।

समयसुन्दर की रचनाओं में कहावतों तथा मुहावरों के प्रयोग से उनके अर्थ-गौरव का विस्तार हुआ है, प्रेषणीयता तथा प्रभावोत्पादकता का वर्धन हुआ है। संक्षेप में, समयसुन्दर की रचनाओं में कालिदास की-सी सरस काव्य-सृष्टि का दर्शन होता है।

षष्ठ अध्याय का निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय है, 'समयसुन्दर का विचारपक्ष'। महोपाध्याय ने धर्मदर्शन से सम्बद्ध गूढ़ एवं गम्भीर विषयों का हृदयग्राही विवेचन किया है। वस्तुतः वे एक प्रौढ़ चिन्तक एवं विचारक थे। वे सिद्धान्ततः आत्मवादी एवं अनीश्वरवादी थे। उनकी विचार-धाराओं का मूल उत्स है, जैन दर्शन। किन्तु उन पर अन्य विचारधाराओं का भी प्रभाव पड़ा था। उनके विचारों में दार्शनिकता, धार्मिकता एवं नैतिकता — इन तीनों का संगम हुआ है। उनके विचार समन्वयवादी एवं अनाग्रही थे। उनके जिन प्रातिनिधिक विचारों को हमने प्रस्तुत किया है, उसका सार यही है कि व्यक्ति को 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' की भौतिक भूमिका अथवा बाह्य जीवन से ऊपर उठकर आभ्यन्तर जीवन का दर्शन करना चाहिये और विवेकपूर्वक ज्ञान, श्रद्धा एवं चारित्र्य रूप त्रिविध साधना-मार्ग में विचरण करना चाहिये। वृत्ति में अनासक्ति, विचार में अनाग्रह, वैयक्तिक जीवन में अहिंसा — यही संक्षेप में उनका वैचारिक पक्ष है।

निष्कर्ष यह है कि महोपाध्याय समयसुन्दर के एक व्यक्तित्व में बहुविध कृतित्व के दर्शन होते हैं। शायद ही ऐसा कोई विषय हो, जो उनसे अस्पृश्य रहा हो। शिक्षा देना, आनन्द प्रदान करना और गूह्यतम सत्यों को उद्घाटित करना, यही उनके साहित्य-निर्माण का उद्देश्य परिलक्षित होता है। उनका साहित्य भाषा, वर्णन-कौशल, साहित्यिक तत्त्व, विचार इत्यादि सभी दृष्टियों से समृद्ध है। उनका साहित्य केवल क्षणिक मनोरंजन का छिछला और सस्ता साधन नहीं है, वरन् समाज के स्थायी और शुभ जीवन का प्रदर्शक है। वह धार्मिक, व्यवस्थामूलक तथा नैतिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठित है। उन्होंने ऐसी-ऐसी कृतियों का निर्माण किया, जो अतुल्य हैं। भाव, भाषा, वस्तु-विधान — सभी दृष्टियों से इनका साहित्य भारतीय साहित्य के गौरव को द्विगुणित करता है। महाकवि तुलसीदास की टक्कर का उनके समय में यदि कोई जनकवि था, तो वह समयसुन्दर थे। यथार्थतः उनके साहित्य के अध्ययन-मनन के बिना भारतीय साहित्य का इतिहास अपूर्ण ही रहेगा।



◆ महोपाध्याय समयसुन्दर के एक व्यक्तित्व में बहुविध कृतित्व के दर्शन होते हैं। शायद ही ऐसा कोई विषय हो जो उनसे अछूता रहा हो। उनकी अनुपमेय एवं अपरिमित साहित्य-साधना को देखते हुए उन्हें जैनधर्म का द्वितीय हेमचन्द्राचार्य कहा जा सकता है। शिक्षा देना, आनन्द-प्रदान करना और गूह्यतम सत्यों को उद्घाटित करना - यही उनके साहित्य-निर्माण का उद्देश्य परिलक्षित होता है। उनका साहित्य केवल क्षणिक मनोरंजन का छिछला और सस्ता साधन नहीं है, वरन् समाज के स्थायी और शुभ जीवन का प्रदर्शक है। वह धार्मिक, व्यवस्थामूलक तथा नैतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है। उन्होंने ऐसी-ऐसी कृतियों का निर्माण किया, जो अतुल्य हैं। भाषा, वर्णन-कौशल, साहित्यिक तत्त्व, विचार इत्यादि सभी दृष्टियों से उनका साहित्य भारतीय साहित्य के गौरव को दुगुना करता है। महाकवि तुलसीदास की टक्कर का उनके समय में यदि कोई अन्य कवि था तो वह समयसुन्दर ही थे। यथार्थतः उनके साहित्य के अध्ययन-मनन के बिना भारतीय साहित्य का इतिहास अपूर्ण रहेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ है उन्हीं के प्रभावी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभ सागर जी द्वारा लिखित विस्तृत अनुसन्धानपरक विवेचन-विश्लेषण।

प्रकाशक

श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ, जोधपुर
श्री जितयशा फाउंडेशन, जयपुर